महाकालसंहिता

कामकलाकालीखण्डः

ज्ञानवतीहिन्दीभाष्येण विभूषिता

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

४०३

महाकालसंहिता

(कामकलाकालीखण्डः)

ज्ञानवतीहिन्दीभाष्येण विभूषिता

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

व्याकरणाचार्यः

एम० ए० (संस्कृत), पी-एच्०डी०, लब्धस्वर्णपदकः

शास्त्रचूडामणिविद्वान्

संस्कृतविभागः, कलासङ्कायः,

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक :

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के-37/117 गोपाल मंदिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी-221001
दूरभाष : (0542) 2335263

पुनर्मुद्रित संस्करण : 2009
मूल्य : 600.00

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली न. 21-ए, अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
दूरभाष: (011) 32996391,23286537, फैक्स: (011) 23286

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38. यू. ए. बंग्लो रोड़, जवाहर नगर,
पोस्ट बॉक्स न. 2113, दिल्ली - 110007

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069, वाराणसी-221001

मुद्रक
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

The

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHMALA

403

MAHĀKĀLASAṀHITĀ

(KĀMAKALĀKĀLĪKHAṆḌA)

With the **Jñânavatī** Hindi Commentary

Commented & Edited By

Prof. RADHESHYAM CHATURVEDI

Vyâkaraṇâcârya, M.A., Ph.D., (Gold medalist)

Śâstracūdâmaṇi Scholar

Department of Sanskrit, Faculty of Arts,

Banaras Hindu University

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

VARANASI (INDIA)

चतुष्पत्रान्तः षड्दलपुटभगान्तस्त्रिवलय-
स्फुरद्विद्युद्वह्निद्युमणिनियुताभद्युतिलते ।
षडस्त्रं भित्त्वादौ दशदलमथ द्वादशदलं
कलाश्रं च द्व्यश्रं गतवति नमस्ते गिरिसुते ॥

सकलजननीस्तोत्र

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्त्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्त्तये ॥

दक्षिणामूर्त्तिस्तोत्र

पुरोवाक्

नदीनां च यथा गङ्गा पर्वतानां हिमालयः ।
तथा समस्तशास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम् ॥

शिवसंहिता का यह वचन अर्थवाद नहीं अपितु यथार्थ कथन है । व्याकरण आदि शास्त्रों के अध्ययन के बाद जिन मनीषियों की ईश्वरकृपावश तन्त्रशास्त्र में रुचि हुई उन लोगों का एक स्वर से यही निर्णय है कि तन्त्रशास्त्र की शरण गये बिना जीव को पूर्णता अर्थात् वास्तविक मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती । तन्त्र एक व्यापक शब्द है। षडाम्नाय के साथ-साथ समस्त सम्प्रदाय भारतीय-अभारतीय समस्त उपासनापद्धति तन्त्र की परिधि में समाविष्ट हैं । तन्त्र एक विशिष्ट व्यवस्था होते हुए भी समन्वयवादी दृष्टिकोण है । वैदिक अर्धवैदिक यहाँ तक कि अवैदिक उपासना-प्रक्रियाओं की भी चरम परिणति तन्त्र में ही होती है । तन्त्र सर्वधर्म के प्रति समभाव का आदर करने वाला तथा साधना के उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त करने का उर्जस्वल ऋजु राजपथ है । आचार्य अभिनवगुप्त के निम्नलिखित वचन इसमें प्रमाण हैं—

अन्तःकौलो बहिः शैवो लोकाचारे तु वैदिकः।
सारमादाय तिष्ठेत नारिकेलफलं यथा ॥[1]
गर्भाधानादितः कृत्वा यावदुद्वाहमेव च ।
तावत्तु वैदिकं कर्म पश्चाच्छैवे ह्यनन्यभाक् ॥[2]

तथा—

न मे प्रियश्चतुर्वेदो मद्भक्तः श्वपचोऽपि वा ।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥[3]

तान्त्रिक वाङ्मय अत्यन्त विशाल है । इसमें दो विभाग हैं—तत्त्व और साधना । विद्या या मन्त्र, क्रिया, योग और चर्या नामक चार स्तम्भों पर आधृत इस वाङ्मय में उपर्युक्त तथ्य सर्वत्र परिलक्षित होता है । तत्त्व के विषय में द्वैत द्वैताद्वैत तथा अद्वैत नामक जो भेद हैं उनका आधार ज्ञान है । इसके अतिरिक्त चर्यागत अथवा आचारगत वैलक्षण्य भी सर्वत्र दृष्ट होता है । इन दोनों प्रकार की विशेषताओं के कारण विभिन्न सम्प्रदायों में परस्पर उत्कृष्टापकृष्ट की भावना भी दृष्टिगोचर होती है । जहाँ तक साधना का प्रश्न है यह दो प्रकार की होती है—अन्तरङ्ग साधना एवं बहिरङ्ग साधना । अन्तरङ्ग साधना सर्वत्र प्रायः समान होती है किन्तु बहिरङ्ग साधना में जहाँ

---

१. तन्त्रालोक २. तन्त्रालोक ५.२७८ ३. तन्त्रालोक ४।२०३

एक भाग में अनुष्ठानजन्य पार्थक्य है वहीं दूसरे भाग में अनुष्ठान से असम्बद्ध उपाय के विभिन्न अंशों का अवलम्बन का भेद किया जाता है । इसीलिये जब—

आमोदार्थी यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत् ।
विज्ञानार्थी तथा शिष्यः गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ॥

की बात आती है तो पूर्वमार्ग में अभिषिक्त शिष्य को मार्गान्तर में जाने के लिये पुनः संस्कृत होना पड़ता है । प्रत्येक सम्प्रदाय अपने को सर्वश्रेष्ठ घोषित करता है । कौलमार्गी कहते हैं—'**कौलात् परतरं नहि ।**'[१] त्रिक मतावलम्बी का कथन है—'**त्रिकं सर्वोत्तमं परम् ।**' ये सब वचन अमूलक नहीं हैं । साधना की प्रक्रिया में प्रत्येक साधक को अपना ही मार्ग सर्वोत्कृष्ट प्रतीत होता है । ऐसा होना भी चाहिये । इसीलिये यदि शैवसिद्धान्ती होतृदीक्षा मानते हैं तो कुलमार्गी स्तोभात्मिका दीक्षा का स्वीकार करते हैं । उत्तर कौल सामरस्यमयी दीक्षा का अङ्गीकार करते हैं तो त्रिकमतानुयायी समावेशमयी दीक्षा को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं ।

जहाँ तक आगमिक अद्वयवाद का प्रश्न है इसमें भी दो पक्ष हैं—शिवाद्वयवाद और शाक्ताद्वयवाद । शिव और शक्ति एक ही हैं क्योंकि एक के बिना दूसरा रह नहीं सकता ।

न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी ।[२]
शक्तिशक्तिमतोरुक्ता सर्वत्रैव ह्यभेदिता ।[३]

इत्यादि वाक्य इसमें प्रमाण हैं । यद्यपि समयीसाधक शिव और शक्ति दोनों में साम्य मानते हैं तथापि पूर्व कौल शक्ति और शिव में अङ्गाङ्गीभाव मानते है अर्थात् शक्ति अङ्ग है और शिव अङ्गी तथा उत्तरकौल उनमें अङ्गाङ्गी भाव नहीं स्वीकारते । उनके मत में शक्ति ही प्रधान और जगत्कर्त्री होने के कारण अङ्गी है । उपर्युक्त सभी मत अपनी-अपनी दृष्टि से युक्तियुक्त हैं । गजवृषभ न्याय से उन दोनों अर्थात शिव और शक्ति को समझा जा सकता है । जैसे एक ही चित्र एक कोण से देखने पर हाथी का और दूसरे कोण से देखने पर बैल का प्रतीत होता है उसी प्रकार एक ही तत्त्व ज्ञानप्रधानदृष्टि वाले साधकों के लिये शिव और क्रियाप्रधानदृष्टि वाले साधकों के लिये शक्ति है । सच कहा जाय तो यह समस्त विश्व शक्ति का ही स्फार है । उसके बिना कुछ भी आभासित नहीं हो सकता—

'शक्त्या विना परे तत्त्वे नाम धाम न विद्यते ।'

साधक को अपने शिवस्वरूप की प्रत्यभिज्ञा के लिये भी शक्ति का ही अवलम्बन करना पड़ता है ।

शक्ति की मान्यता सार्वत्रिक है । आधुनिक विज्ञान भी संसारकलना के मूल में शक्ति का स्वीकार करता है किन्तु यह शक्ति जड़ है । वेद 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप

---

१. तन्त्रालोक १३।३३५ २. शिवदृष्टि ३.२ ३. शिवदृष्टि ३।६५

ईयते' कह कर 'माया' पद से शक्ति की ओर संकेत करता है । योगदर्शन में **'अपरिणामिनी हि भोक्तृशक्तिः अप्रतिसङ्क्रमा'** कहा गया है। मीमांसक और वेदान्ती भी शक्ति को मानते है । सङ्क्षेपशारीरककार ने अमला चिति शक्ति की चर्चा की है । तन्त्र में जो शक्ति स्वीकृत है वह चेतन है । चिद्रूपा यह शक्ति स्वतन्त्र तथा विश्व का कारण है—**'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः।'**[२] इसका न तो नाश होता है, न परिणाम । यह संकोच और प्रसार स्वभाव वाली है । अपने स्वातन्त्र्यवश यह विश्व का अपने ही ऊपर प्रतिबिम्बन करती है—**'सा स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।'**[३] संकोच के फलस्वरूप सृष्टि तथा बन्धन और प्रसार के फलस्वरूप प्रलय तथा मोक्ष होते रहते हैं ।

काली भी शक्ति का एक स्वरूप है । इस विश्वप्रपञ्च को चलाने वाली पारमेश्वरी अनन्त शक्तियाँ हैं । समस्त प्राणियों को प्रेरित करने वाली समस्त इन्द्रियवृत्तियों का सञ्चालन करने वाली इन शक्तियों को समान रूप से व्याप्त कर ठहरी हुई एक और पारमेश्वरी शक्ति है उसका नाम काली या कालसङ्कर्षिणी है । इस काली के अनन्त नाम और अनन्त रूप हैं । इसकी उपासना वाम एवं दक्षिण दोनों विधियों से की जाती है । इस देवी से सम्बद्ध प्रायः साठ ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है । महाकाल-संहिता पचास हजार श्लोकों वाला ग्रन्थ है । इसमें काली की वाममार्गी उपासना का अद्भुत वर्णन है । यह आगम ग्रन्थ सम्भवतः नव भागों में विभक्त है । प्रस्तुत कामकला-कालीखण्ड में नव कालियों—दक्षिणकाली, भद्रकाली, श्मशानकाली, कालकाली, गुह्यकाली, कामकलाकाली, धनकाली, सिद्धिकाली, चण्डकाली का वर्णन आता है । कामकलाकाली खण्ड में कामकला नामक योग का वर्णन है। यतो हि इस योग की अधिष्ठात्री कामकलाकाली है अतः इसका नाम कामकलाकाली खण्ड पड़ा, ऐसा प्रतीत होता है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन का आधार डॉ० किशोरनाथ झा द्वारा सम्पादित तथा गङ्गानाथ झा केन्द्रिय संस्कृत विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तक है । ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद करते समय दो बिन्दुओं को ध्यान में रखा गया है—(१) अनुवाद अक्षरशः हो (२) मूल श्लोक का निहितार्थ अनुवाद में यथासम्भव समाविष्ट हो। श्लोकस्थ विचार को स्पष्ट करने के लिये आवश्यकतानुसार कुछ शब्दों को जोड़ना पड़ा है जो प्रायः कोष्ठकों में लिखे गये हैं । डॉ० किशोरनाथ झा का मन्तव्य है कि यह संहिता दो ही खण्डों में पूर्ण है । यहाँ यह प्रश्न उठता है कि प्रायः प्रत्येक पटल के उपसंहारवाक्य में **'पञ्चाशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायाम्'** पाठ मिलता है जिसका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण महाकालसंहिता पचास हजार श्लोकों में उपनिबद्ध है । कामकलाकाली एवं गुह्यकाली नामक दोनों खण्डों में मुद्रित श्लोकों की संख्या मात्र ५-७ हजार ही है । यदि महाकालसंहिता दो ही खण्डों में पूर्ण है तो फिर उपसंहार

---

१. यो.सू.मा. ४।२३,२।२०   २. प्रत्यभिज्ञाहृदयसूत्र १   ३. प्रत्यभिज्ञाहृदयसूत्र २

में कथित 'पञ्चाशतसहस्र' संख्या की सङ्गति कैसे बैठेगी ।

इस सन्दर्भ में निम्नलिखित तथ्य विचारणीय है—पूर्व संस्करण में कहा गया कि जिस पाण्डुलिपि को आधार मानकर यह ग्रन्थ मुद्रित हुआ था उसमें एक सौ सात पत्रावलियाँ हैं । प्रत्येक पत्र में ग्यारह पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में चालीस अक्षर हैं । यह पाण्डुलिपि काठमाण्डू (नेपाल) से संगृहीत की गयी । दूसरी पाण्डुलिपि दरभङ्गा के चन्द्रधारी संग्रहालय से प्राप्त की गयी जिसमें चार सौ छाछठ पत्रावलियाँ हैं । प्रत्येक पत्र में छब्बीस पंक्तियाँ और एक-एक पंक्ति में अँड़तालिस अक्षर हैं । डेविड नामक मेरे एक फ्राँसीसी छात्र ने अपने लैपटाप में महाकालसंहिता से सम्बद्ध सम्पूर्ण पाण्डुलिपियों की सूची संगृहीत की है । उसमें इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपियों की संख्या सौ से अधिक है । समस्त पाण्डुलिपियाँ नेवारी तथा नागरी लिपि में है । इनमें सात पाण्डुलिपियाँ ऐसी है जिनमें पत्रावलियों की संख्या क्रमशः चार सौ तीस, चार सौ छप्पन, चार सौ उन्सठ, चार सौ चौहत्तर, पाँच सौ छत्तीस और सात सौ छाछठ है । ये पाण्डुलिपियाँ सम्भवतः माइक्रो फिल्म के रूप में सुरक्षित हैं । उक्त संग्रह हैम्बर्ग (जर्मनी) में सुरक्षित है । सम्भव है कि महाकाल संहिता का अवशिष्ट अंश इसमें अवश्य संगृहीत हो ।

महाकाल संहिता के सानुवाद प्रकाशन के सन्दर्भ में मैं सर्वप्रथम भगवान् महाकाल तथा उनकी एवं उनसे अभिन्न देवी काली को नमन करता हूँ जिनकी अहैतुकी कृपा से इस खण्ड के शीघ्र प्रकाशन का अवसर मिला । मेरे दीक्षागुरु श्री ६ शिवचैतन्य जी वर्णी के चरणों में मैं नतमस्तक हूँ तथा उनका आभार व्यक्त करता हूँ । आपका परोक्ष तथा अपरोक्ष आशीर्वाद मेरा प्रेरणास्त्रोत है । इस ग्रन्थ के पूर्व संस्करण के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिसके अभाव में यह कार्य दुष्कर था । अर्थानुसन्धान आदि में जिन ग्रन्थों की सहायता ली गयी उन ग्रन्थों सहित उनके लेखकों का भी मैं ऋणी हूँ । ग्रन्थ के अक्षरसंयोजन हेतु मालवीय कम्प्यूटर्स के व्यवस्थापक पं० रामरञ्जन मालवीय को आशीर्वाद एवं भगवती महाकाली से इनके अभ्युदय की कामना करता हूँ । चौखम्बा प्रकाशन के अधिस्वामी गुप्त-बन्धुओं का भी इसके प्रकाशन के सन्दर्भ में धन्यवाद प्रकट करता हूँ ।

प्रस्तुत संस्करण में यदि कोई त्रुटि, न्यूनता अथवा विसङ्गति है तो वह मेरी अपूर्णता है । जो कुछ समीचीन अन्यूनाधिक तथा सुसङ्गत है वह महाशक्ति का लीलाविलास है ।

वासन्तिक नवरात्र सं० २०६२		विनयावनत

आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

भूमिका

कामकला काली खण्ड

(१)

मुख्य विषय विवेचन

काली तत्त्व और कामकला काली—विश्व के मूल में पूर्ण ऐश्वर्य सम्पन्न जो परम तत्त्व है वह नित्य है और उसमें समवाय सम्बन्ध से वर्त्तमान परमा शक्ति भी नित्य है । विश्वप्रपञ्च इसी शक्ति की कलना है । इसे परमतत्त्व या परमेश्वर का स्वातन्त्र्य कहते हैं । इस शक्ति के बिना परमतत्त्व का नाम रूप भी सम्भव नहीं—

शक्त्या विना परे तत्त्व नाम धाम न विद्यते ।

सत् तो स्वयं परमेश्वर है । चित् उसकी अन्तरङ्गा शक्ति है । इस शक्ति से नित्य सञ्चालित होने के कारण शिव और शक्ति अभिन्न हैं ।

शक्तिशक्तिमतोर्भेदः शैवे जातु न वर्ण्यते ।

परमेश्वर की विश्वोत्तीर्ण अवस्था में यह शक्ति उनके अन्दर सुप्त जैसी रहती हैं किन्तु स्वातन्त्र्य वश जब वे 'एकोऽहं बहु स्याम प्रजायेय' की स्थिति से युक्त होते हैं तब वे विश्वमय होते हैं । इस व्यवस्था मे सम्पूर्ण विश्व अक्रम रूप में अर्थात् एक साथ प्रतिभासित होता है । इस क्रमरहित आभासन की पृष्ठभूमि मे उनकी वही शक्ति काम करती है किन्तु उसका नामकरण उन्मना के रूप में होता है । उन्मना उस शक्ति का पर रूप है । यही स्वातन्त्र्य शक्ति जब क्रम रूप में व्यापार करती है तो उसको समना कहते हैं । समना इसलिये कि इसी सीमा तक मन की गति है । काल की अन्तिम सीमा भी यही है । यहीं से काल और क्रम का प्रादुर्भाव होता है । चूंकि काल का निर्धारण इस समना शक्ति से होता है अत: शक्ति को काली या कालसङ्कर्षिणी कहा जाता है । इस क्रममय संसार में जो कुछ क्रम से हो रहा है उस सबकी अधिष्ठात्री या नियामिका यह कालसङ्कर्षिणी ही है । कालसङ्कर्षिणी का ही दूसरा रूप कालशक्ति अथवा काली है । परमेश्वर इस विश्व को अपनी परा शक्ति के द्वारा 'अहम्' अर्थात् अपने से अभिन्न रूप में धारण करते हैं । 'अहम् इदम्' अर्थात् अपने से अभिन्न होते हुए भी भिन्न रूप में इस विश्व के धारण के मूल में उनकी परापरा शक्ति काम करती है । अपरा शक्ति के द्वारा वे भेदप्रथायुक्त 'इदम्' रूपात्मक जगत् को धारण करते हैं । काली का पर रूप विश्व के 'अहम्' रूप का, परापर या

सूक्ष्म रूप विश्व के 'अहम् इदम्' रूप का और अपर या स्थूल रूप उसके 'इदम्' रूप का भासक है । इस विश्व में जितनी मानवसंख्या है उससे बहुत अधिक इन पारमेश्वरी शक्तियों की संख्या है । कालसङ्कर्षिणी परा परापरा और अपरा नामक चार शक्तियों में से प्रत्येक के सृष्टि स्थिति संहार कार्यों की दृष्टि से तीन-तीन रूप होते हैं। शैवशास्त्र में ये शक्तियाँ द्वादश काली के नाम से अभिहित होती हैं । महाकालसंहिता में दक्षिण काली, भद्र काली, श्मशान काली, काल काली, गुह्य काली, कामकला काली, धन काली, सिद्धि काली और चन्द्र काली नामक नव कालियों का वर्णन है ।

कामकला काली—महाकालसंहिता के प्रणेता आदिनाथ के अनुसार गुह्य काली और कामकला काली एक ही हैं । भगवान शङ्कराचार्य को कामकला का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त था । सौन्दर्यलहरी के निम्नलिखित श्लोकों में उन्होंने कामकला का वर्णन किया है—

मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो
हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम् ।
स सद्यः सङ्क्षोभं नयति वनिता इत्यति लघु
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम् ॥ १९ ॥

तथा

शिवः शक्तिः कामः क्षितिरथ रविः शीतकिरणः
स्मरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः ।
अमी हल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिता
भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम् ॥ ३२ ॥

कामकला काली नव कालियों मे सर्वश्रेष्ठ है । वस्तुतः गुह्यकाली ही मन्त्र, ध्यान, पूजा और प्रयोग के भिन्न होने से कामकला काली कही जाती है । इसका मूल मन्त्र अठारह अक्षरों वाला है । कामकला काली का दो रूप है—निराकार और साकार। निराकार रूप विश्वाकार है । इस काली का साकार रूप वीभत्स, रौद्र, उग्र और भयानक कहा गया है । कामकला काली की पूजा वाममार्ग से होती है। इनकी पूजा के पहले इनकी सात आवरण देवताओं की अर्चना भी करनी पड़ती है। इसके विविध प्रकार के अनुष्ठानों को करने से साधक को अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । यही एकमात्र ऐसी देवी है जिनके लिये छत्तीस प्रकार के पक्षियों और अठारह प्रकार के पशुओं का मांस अर्पित किया जाता है और सियारिनों के रूप में यह देवी स्वयं आकर उनका भोग लगाती है । योगी साधक के धन-सामर्थ्य के अनुसार इसके तीन पूजाप्रकार बतलाये गये हैं—(१) राजोपचार, (२) मध्योपचार और (३) सामान्योपचार । कुण्डलिनीजागरण आदि यौगिक सफलता भी इनकी कृपा से हस्तगत होती है । षोढान्यास का प्रयोग एक मात्र इसी काली का वैशिष्ट्य है ।

विभिन्न रूप वाली वागीश्वरी आदि इक्यावन शक्तियाँ इसी देवी की स्वरूपभूता बतलायी गयी है ।

इस देवी का त्रैलोक्यमोहन कवच धारण करने पर शरीर अजर अमर और वज्रसार हो जाता है । कालकेय असुरों पर विजय प्राप्त करने के लिये रावण ने भुजङ्गप्रयात छन्द में बद्ध श्लोकों से इस देवी की प्रार्थना की थी । कामकला काली का शतनाम सहस्रनाम अद्भुत फल देने वाला है ।

त्रैलोक्याकर्षण मन्त्र—कामकला काली के सात मन्त्र हैं । ये अत्यन्त गुप्त रखे गये हैं । इनमें से त्रैलोक्याकर्षण मन्त्र मुख्य है । इसका स्वरूप है—क्लीं क्रीं हूं क्रों स्फ्रों कामकलाकालि स्फ्रों क्रों हूं क्रीं क्लीं स्वाहा । यह मन्त्र अट्ठारह अक्षरों वाला हैं । इस मन्त्र के स्मरण मात्र से समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं । देवता मूर्च्छित होकर काँपते हुए साधक के समक्ष उपस्थित होते हैं । वे साधक के साथ सेवकवत् व्यवहार करते हैं । यह मन्त्र सर्वार्थसाधक है ।

कामकला काली के आवरण देवता—

(क) भैरव—भैरव शब्द के भयानक, विपत्तिकारक, एक विशिष्ट शास्त्रीय राग जो प्रातःकाल गाया जाता है—आदि अनेक अर्थ हैं । आगमशास्त्र में भैरव शिव का एक विशिष्ट रूप है जो विश्व की रचना भरण और संहार करता है । इसके अतिरिक्त वाममार्गी साधना में साधिका स्त्री को भैरवी तथा पुरुष साधक को भैरव कहते हैं । आगमशास्त्र की मान्यता के अनुसार काली के जितने रूप हैं उतने ही रूप भैरव के भी होते हैं । पौराणिक मान्यता के अनुसार शिव के अनुचरों में भैरव एक विशिष्ट गण हैं । महाकालसंहिता के कामकलाकाली खण्ड के अनुसार कालीयन्त्र के निर्माण में अष्टदल कमल की रचना चतुर्थ आवरण के रूप में होती है । इस कमल के आठ दलों में असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, उन्मत्त, क्रोध, कपाली, भीषण और सम्मोहन नामक आठ भैरव की स्थापना एवं अर्चना होती है । ये सभी काले रङ्ग के भयङ्कर तथा कैंची एवं खप्पर धारण किये हुए होते हैं ।

(ख) क्षेत्रपाल—क्षेत्रपालों की चर्चा पञ्चतन्त्र में आती है । इनकी संख्या उन्चास है । भैरवों की अपेक्षा ये किञ्चित् निम्नकोटि के देवता हैं । क्षेत्रपाल शब्द शिव के विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त होता है । प्रस्तुत ग्रन्थ में क्षेत्रपाल काली यन्त्र के आवरण देवता हैं । इनका स्थान अष्टदलों के बीच है । एकपाद, विरूपाक्ष, भीम, सङ्कर्षण, चण्डघण्ट, मेघनाद, वेगमाली और प्रकम्पन नामक ये सब आठ की संख्या में यन्त्र में पूजित होते हैं । ये सभी विकृतमुख वाले भयङ्कर तथा हाथों में गदा और परिघ लिये रहते हैं ।

कामकला काली के प्रयोग—कामकलाकाली खण्ड काली की वाममार्गी पूजा का पक्षधर है । पुरश्चरण हो या अन्य अनुष्ठान, सर्वत्र वाममार्ग का ही अनुसरण

विहित है । यहाँ अनुकल्प भी ग्राह्य नहीं है । उत्तरकौल की भाँति यहाँ अनुष्ठानों में मांस मद्य आदि का ही प्रयोग होता है । वशीकरण, गद्यपद्यमयी वाग्मिता, सर्वविद्यालाभ, धनावाप्ति, सर्वसिद्धिलाभ आदि के लिये सर्वत्र नग्नता, मैथुन, नग्नस्त्रीवीक्षण, भग का आमन्त्रण, उसका दर्शन करते हुए जप, परस्त्रीसमागम, स्त्री की अनुपलब्धि में स्ववीर्य का निःस्सारण और उसी के साथ रति, स्वदेहरुधिर से उपलिप्त बिल्वपत्र एवं वीर्योलिप्त करवीर या जपा पुष्पों के द्वारा श्मशान में देवी की पूजा, शव के ऊपर बैठ कर रक्त, मांस आदि से तर्पण, मैथुनोत्तर प्रक्षालित भग के जल, पक्व अपक्व मांस, नारीरज आदि का प्रयोग विहित है तथा उत्तम मनोवाञ्छित सिद्धि को शीघ्र देता है । प्रस्तुत ग्रन्थ में इस प्रकार की सिद्धि के लिये तेरह प्रकार के प्रयोग दिये गये हैं ।

शिवाप्रयोग—शिवाप्रयोग महाकाल संहिता का अद्‌भुत और अद्वितीय प्रयोग है। शिवाओं को कामकला काली का स्वरूप माना जाता है । उनके लिये अनेक प्रकार के पशुओं तथा पक्षियों के पक्व-अपक्व मांस तथा चार प्रकार के अन्न का संग्रह करने के बाद उनको विधि विधान के साथ अपनी शक्ति के अनुसार ताँबा, चाँदी, सोना या मिटटी के पात्रों में परोसा जाता है । इसके बाद आधीरात को श्मशान में कफन के आसन पर बैठ कर कामकला काली की पूजा करने के पश्चात् मन्त्र का जप किया जाता है । फिर मन्त्र के द्वारा शिवाओं का आवाहन किया जाता है । यदि शिवायें अर्थात् सियारिनें तत्काल आ जाती हैं तो कार्यसिद्धि शीघ्र समझनी चाहिये; यदि विलम्ब से आती हैं तो कार्यसिद्धि में विलम्ब होता है और यदि न आयें तो कार्य की सिद्धि नहीं होती । शिवाओं के आगमन की प्रतीक्षा आधा प्रहर अर्थात् डेढ़ घण्टा तक करनी चाहिये । उनके आने के बाद दूर से ही उन्हें नमस्कार कर भक्तिपूर्वक विविध उपचारों से उनकी दूर से ही पूजा करनी चाहिये । पात्रों में परोसे गये अन्न को पँक्ति में रखकर मन्त्रोच्चारपूर्वक बलि देनी चाहिये । इसी समय भूतों के लिये भी बलि दी जाती है। दूर खड़े होकर देखना चाहिये कि वे पहले कौन सा पदार्थ खाती हैं । इस भोजनप्रक्रिया से ही फलप्राप्ति का निश्चय हो जाता है । यदि शिवाओं का आगमन न हो तो विघ्न होता है और यदि आकर भी परोसी गयी वस्तुओं का ग्रहण न करें तो साधक या उनके परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु निश्चित होती है । बलिदान के बाद उनको दण्डवत् प्रणाम कर शिवास्तोत्र से उनकी स्तुति करनी चाहिये । उनके भक्षण से अवशिष्ट अन्न पात्र आदि को भूमि में गाड़ देने चाहिये । क्योंकि यदि कौवे या अन्य जीव उस अवशिष्ट अन्न को खा लें तो विघ्न उपस्थित होता है ।

कामकला काली के तान्त्रिक प्रयोग—इस देवी के तान्त्रिक प्रयोग के तीन प्रकार हैं—राजप्रयोग, मध्यप्रयोग और लघुप्रयोग । ये तीनों प्रकार के प्रयोग साधक के सामर्थ्य के अनुसार कहे गये हैं ।

राजप्रयोग—यह राजाओं के द्वारा अनुष्ठित होता है । इसमें ब्राह्मणी से लेकर चाण्डाली तक की छत्तीस प्रकार की स्त्रियाँ ग्राह्य होती हैं । सभी स्त्रियाँ षोडश-वर्षीया रूपयौवनगर्विता, सर्वाङ्गसुन्दरी होनी चाहिये । विद्वान् साधक छत्तीस की संख्या में उन्हें ले आकर सुगन्धित तैल से सिक्त करने के बाद मन्त्रोच्चारपूर्वक कपूरवासित तैल से स्नान कराये । तत्पश्चात् मूल्यवान् वस्त्रों को पहना कर मन्त्र पढ़ते हुए कज्जल .सिन्दूर अलक्तक से उन्हें अलङ्कृत करे । एक कमरे मे छत्तीस स्त्रियों के लिए अठारह-अठारह मण्डल बनाकर उन पर बैठाये । उन्नीसवें कामकला नामक प्रधान मण्डल पर बीच में जगदम्बा काली का मन्त्रोच्चारपूर्वक आवाहन कर उनको प्रतिष्ठित करे । तत्पश्चात् आवाहित स्त्रियों की पूजा के लिये काली से आज्ञा माँगे । अनुज्ञायाचना के पश्चात् प्रधानमण्डल के दोनों ओर बने हुए मण्डलों पर बैठी हुई सुन्दरियों का यथोपलब्ध सामग्री से पूजन करे । हीनजाति के स्त्री के प्रति अनादर की भावना न करे । सबको देवी के रूप में देखे । यथाशक्ति मन्त्रोच्चार करते हुए उनकी पूजा करे ताकि वे सन्तुष्ट तथा प्रसन्न हो जायें । उन्नीसवें प्रधान मण्डल पर साधक प्रसन्नचित्त होकर यथाशक्ति उपलब्ध सामग्री से देवी का यजन करे।

मध्य एवं लघु प्रयोग—यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ में उपर्युक्त दोनों प्रकार के प्रयोगों का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता तथापि मध्य एवं लघु शब्दों के निहितार्थ पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनो प्रयोग राजाओं से भिन्न तथा प्रयोग के लिए उत्सुक मध्यमवर्गीय एवं निम्नवर्गीय लोगों के लिये विहित हैं । इन दोनों प्रयोगों में स्त्रियाँ एवं उपचारद्रव्य यथाशक्ति न्यूनाधिक हो सकते हैं । मध्यप्रयोग मे चौबीस एवं लघु प्रयोग में बारह स्त्रियाँ ग्राह्य होती हैं । इतना ध्यान रखना चाहिये कि निम्नवर्ण के साधक उच्चवर्ण की स्त्रियों को प्रयोग में न लायें । पूजा एवं मन्त्र का विधान सर्वत्र समान है ।

उपर्युक्त सभी प्रयोग ब्राह्मण के लिये निषिद्ध हैं । इसी प्रकार स्त्रियों के सन्दर्भ में ऋषिकन्या, मद्यपायी की कन्या, अन्त्यज, व्रती एवं गुरु की स्त्रियाँ, सगोत्र, शरणागत तथा शिष्य की स्त्री, पापी, जो कभी भी रजस्वला न हुई हो इत्यादि स्त्रियों का प्रयोग निषिद्ध है ।

समस्त प्रयोगों में आहूत सभी प्रकार की स्त्रियों को देवी समझते हुए मन्त्रोच्चार के समय तीन बार पुष्पाञ्जलि देकर प्रदक्षिणा करनी चाहिये । इसके पश्चात् कामकलाकाली के स्तोत्र सहस्रनाम कवच आदि, जिसका कि प्रतिदिन पाठ किया जाता रहा, का पाठ, प्राणायाम षडङ्गन्यास कर उस स्त्री का विसर्जन करना चाहिये।

मानस एवं बाह्य पूजा—किसी भी देवता की मानस एवं बाह्य पूजा का विधान शास्त्रों में मिलता है। इनमें मानस पूजा बाह्य पूजा की अपेक्षा उत्कृष्ट मानी गयी है । 'बाह्यपूजाऽधमाऽधमा' वचन भी है । शङ्कराचार्य प्रभृति ने शिव की मानस पूजा का वर्णन किया है । उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में स्थित भुड़कुड़ा नामक स्थान के

प्रथम महन्त मानस पूजा के द्वारा ही अत्यन्त उच्च स्थिति प्राप्त कर उच्च कोटि के सिद्ध महात्मा हुए थे । महाकाल संहिता के कामकला खण्ड में भी सङ्क्षेप में इस पूजा का वर्णन है—

'पूर्वोक्तेन विधानेन मनसा परिपूजयेत् ।' (५।७७)

मानस पूजा का बहुत महत्त्व है । स्वच्छन्द तन्त्र में कहा गया है—

अकृत्वा मानसं यागं योऽन्यं यागं समाचरेत् ।
अशिवः स तु विज्ञेयो न मोक्षाय विधीयते ॥ (३।३२)

मानस पूजा में देवी के स्वरूप का ध्यान एवं उनका आवाहन कर उनके लिये आसन आदि का समर्पण सब कुछ मन में ही किया जाता है । यह मानस पूजा राजोपचार षोडशोपचार दशोपचार पञ्चोपचार किसी भी रीति से की जा सकती है ।

बाह्यपूजा के लिए बाह्य सामग्री की आवश्यकता होती है । देवता की बाह्यपूजा के लिये आवाहन मुद्रा का प्रदर्शन, शङ्खस्थापन, उसमें तीर्थों का आवाहन, गन्ध आदि से शङ्ख की पूजा करने के बाद साधक सर्षप, कुश, कमल, अपराजिता आदि का संग्रह कर मण्डल बनाये । उसमें गुरुपँक्ति, गणेश आधारशक्ति, कूर्म महामण्डूक, कालाग्निरुद्र पृथिवी कल्पवृक्ष कर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य आदि की स्थापना करे । तत्पश्चात् आसन पाद्य आदि से उन सबकी पूजा करे । पूजा पृथक्-पृथक् करना अधिक श्रेयस्कर होता है । पूजन के पश्चात् मण्डल के मध्य में देवी की स्थापना तथा पूजा करनी चाहिये । ब्राह्मण सात्त्विक द्रव्यों से ही पूजा करे । क्षत्रिय आदि राजस एवं तामस द्रव्यों से पूजा कर सकते हैं । पूजा के पश्चात् बलि देने का विधान है । जीवहिंसा निषिद्ध होने के कारण साधक अपने शरीर से रक्त निकाल कर बलि दें । पशु के अनुकल्प का प्रयोग बलि के लिये किया जा सकता है ।

बलि—बलि का अर्थ है—पूजासामग्री । देवता की पूजा दो प्रकार से होती है—आवाहन से लेकर मन्त्रपुष्पाञ्जलि तथा प्रार्थना तक एक प्रकार है । तदनन्तर बलि के रूप में पूजा की जाती है । यह दूसरी पूजा है । इसमें उस देवता के लिये कुछ विशिष्ट अन्न का समर्पण किया जाता है, अथवा विशिष्ट पशु की एवं खड्ग की पूजा करने के बाद मन्त्रोच्चारपूर्वक उस पशु का वध करते हैं । ब्राह्मण के लिए पशुबलि का निषेध होने के कारण उसके अनुकल्प के रूप में सजल नारियल, कूष्माण्ड, ईख, फल या जायफल आदि की बलि दी जाती है । क्षत्रिय और शूद्र के लिये विशिष्ट वय के विशिष्ट पशु-पक्षी की बलि देने का विधान है । जो लोग जीवहत्या नहीं करना चाहते उनके लिये अपने शरीर से रक्त निकाल कर उसकी बलि देने का नियम है । कामकलाकाली खण्ड में शिवाओं के लिये पशु-पक्षी आदि के मांस का बलि के रूप में प्रयोग करने की चर्चा इस ग्रन्थ में आती है । इन पृथक् बलियों के अर्पण का पृथक्-पृथक् फल भी कहा गया है ।

सिद्धियाँ—प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक सिद्धियों का वर्णन किया गया है । उनकी प्राप्ति कामकला काली की अभ्यर्चना से होती है । सिद्धियों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है—

१. पादुका-सिद्धि—इसमें पलाश के काष्ठ का खड़ाऊँ बनाते हैं । इसका संस्कार कर विशिष्ट मन्त्र से अभिमन्त्रित करने पर वह पादुका सिद्ध हो जाती है । उस पर आरूढ होकर साधक जल स्थल आदि में कहीं भी विचरण करता है ।

२. खेचरी-सिद्धि—खेचरीसिद्धि के लिये चन्द्रग्रहण के समय स्वर्णक्षीरी (=मकोय) की लता का प्रयोग होता है । रजस्वला स्त्री के भग में इस लता को तीन दिनों तक रखने के बाद उसकी पूजा अग्रिम सूर्यग्रहण तक की जाती है । बाद में मुर्गे की बलि दे कर मन्त्र का जप करना पड़ता है । खेचरीसिद्धि होने पर साधक वज्रकाय होकर आकाश पाताल जहाँ चाहे वहाँ जा सकता है ।

३. खड्ग-सिद्धि—इस सिद्धि के लिये कम्बोज से सोलह पल का लोहा मँगाया जाता है । कम्बोज सम्भवत: हिन्दुकुश पहाड़ पर स्थित है । यह तिब्बत से लद्दाख तक फैला हुआ है । घोड़ा, ऊनीशाल और अखरोट के लिए यह देश प्रसिद्ध है। मकर संक्रान्ति के दिन उक्त लोहे को ले आकर उसकी कर्क संक्रान्ति तक अनवरत पूजा की जाती है । फिर लोहार साधक के घर आकर पूर्णतया नग्न होकर उसका खड्ग तैयार करता है । यह तैयारी मन्द गति से होती है अर्थात मकर संक्रान्ति तक धीरे-धीरे उसे तैयार किया जाता है । सिद्ध हो जाने पर साधक उस खड्ग का केवल चालन करता है । शत्रुगण स्वयं उसकी परिधि में आकर मरते हैं । उनकी आँखें उस खड्ग को देखते ही बन्द हो जाती हैं । शुम्भ-निशुम्भ के वधार्थ देवी ने इसी खड्ग का धारण किया था । राजा बलि मेघनाद अर्जुन आदि ने इस खड्ग की सिद्धि की थी।

४. अञ्जन-सिद्धि—सिद्ध अञ्जन के द्वारा साधक धरती के अन्दर छिपे धन आदि को देख लेता है । इसके लिए भौमवार को मृत सूतिका के कपाल को श्मशान में लाकर अञ्जन बनाया जाता है । इसके लिये विशिष्ट बत्ती बनायी जाती है । देवी को समर्पित करने के बाद मन्त्रोच्चारपूर्वक इसे आँख में आँजने से साधक मनुष्य देवता राक्षस आदि के लिये अदृश्य हो जाता है । पृथ्वी, जल, आकाश आदि में स्थित सूक्ष्मतम वस्तु को देख लेता है । इस अञ्जन को आँख में लगाने के बाद साधक समस्त नारियों के लिये कामदेव के समान प्रिय हो जाता है ।

५. गुटिका-सिद्धि—गुटिका सिद्धि सिद्धियों में सर्वश्रेष्ठ है । इसके लिये पीठ पर रेखा वाले स्थूल पीतवर्ण का मेढक लाकर उसे मिट्टी के नये बर्तन में रखा जाता है । साथ ही एक पल शुद्ध पारा भी उसमें रखना होता है । भूखा मेढक उस पारा को खाता रहता है । फिर घड़े का मुख अच्छी तरह बन्द करना होता है ताकि

एक बूँद भी पानी उसमें न घुसे। तत्पश्चात् उस कुम्भ के उपर मन्त्र लिखना चाहिये। छः महीने तक उस घट को बहते पानी वाले नाले के अन्दर एक हाथ नीचे गाड़ देना होता है। ऊपर से पत्थर के टुकडे रख देते हैं। वहाँ पानी लगातार बहता रहता है। उसके लिये प्रति चतुर्दशी को बलि देते रहते हैं। छः महीने के बाद उस घट को निकालते हैं। विशिष्ट संस्कार करने के बाद उसमें से मेढ़क को बाहर निकाल कर उसे धीरे-धीरे ठोंकते हैं। इस प्रकार मेढ़क के पेट से खाये हुए पारे की गोली बाहर आ जाती है। फिर उस गुटिका का संस्कार कर उसे शिखा में बाँध लेते हैं। ऐसे साधक के पास समस्त दैवी शक्तियाँ आ जाती हैं। वह साक्षात् रुद्र हो जाता है। यह गुटिका स्वयं कामकला काली की प्रतिमूर्ति होती है अतः क्षुद्र कार्यों के लिये इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

६. तालबेताल-सिद्धि—यह सिद्धि राजाओं के लिये है। महायुद्ध में मृत किसी भी योद्धा का शिरसहित शरीर ले आकर श्मशान में रखे। किसी नर चोर को चतुर्दशी के दिन श्मशान मे ले आये। मृत योद्धा के शरीर पर बैठ कर जप करे। जब कपालिनी उस शव में प्रवेश करे तो उस देवी के लिये साधक उस नर चोर की बलि दे। बलि के समय विशिष्ट मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। बलि के बाद मृत योद्धा एवं बलिदान किया गया चोर दोनों ताल बेताल हो जाते हैं। राजा उन दोनों के ऊपर आरूढ़ होकर आकाश, पाताल, समुद्र अथवा पर्वत कहीं भी जा सकता है। सिंहासनद्वात्रिंशिका में राजा विक्रम के साथ रहने वाले ताल बेताल की चर्चा आती है।

हवनीय द्रव्य—हवन किसी अनुष्ठान का अनिवार्य विधान है। जप या पाठ की अपेक्षा हवन का दश गुना महत्त्व है। कामकला काली की साधना में हवन एक अपरिहार्य अनुष्ठान है। हवन जप के दशांश का होता है। विशिष्ट लक्ष्य की सिद्धि के लिये विशिष्ट द्रव्य का हवन होता है। वाममार्गी साधना में लौकिक दृष्ट्या अशुद्ध पदार्थों मांस, मद्य, रज, वीर्य, केश, नख आदि का हवन विधिसङ्गत है। घी, दूध, खीर, धान्य आदि खाद्य पदार्थों तथा पुष्प, पत्र, फल, औषधि आदि का हवन भी सिद्धिदायक होता है।

षोढान्यास—न्यास का अर्थ है—रखना। तत्तद् बीजाक्षरों अथवा पदों का उच्चारण करते हुए हाथ से विभिन्न अङ्गों का विशिष्ट स्पर्श न्यास की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के माध्यम से शरीर के विभिन्न अङ्गों में तत्तद् देवताओं की स्थापना की जाती है। सिद्ध गुरु के शिष्यत्व में प्रशिक्षित साधक न्यास की सिद्धि प्राप्त करता है। ऐसा व्यक्ति यदि भूल से किसी को प्रणाम कर ले तो जिसको वह प्रणाम करता है उसका तत्काल देहपात हो जाता है। प्रसिद्धि है कि महातान्त्रिक एवं एक अभिनव सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री भास्कर राय के द्वारा एक उद्धत संन्यासी के दण्ड और वस्त्र को प्रणाम किये जाने पर दण्ड के सहित वह वस्त्र जल गया था।

कामकला खण्ड मे षोढान्यास एक महत्त्वपूर्ण विषय है । ताराक्ष कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक राक्षसों ने ब्रह्मा से सर्वप्राणिअवध्यत्व तथा तीन-तीन लाख योजन के तीन पुरों की याचना की । यह भी वरदान माँगा कि जो एक ही बाण से तीनों पुरों को जला दे वही उन तीनों राक्षसों का निहन्ता हो । उक्त तीनों राक्षसों से त्रस्त समस्त देवगण रुद्र की शरण गये । भगवान रुद्र की इच्छानुसार रथ का निर्माण देवताओं द्वारा किया गया जिसमें चारो वेद चार घोड़े बने । सूर्य और चन्द्रमा उस रथ के पहिये थे । इस प्रकार दिव्य रथ एवं धनुष बाण बनने के बाद शङ्कर ने कवच की आवश्यकता समझी । इसके लिये उन्होंने जगदम्बा का ध्यान किया । देवी के द्वारा शिव को कवच के रूप में दिया गया यह न्यास छः देवताओं से आबद्ध है। वे देवतायें हैं—१. नृसिंह, २. भैरव, ३. कामकला, ४. डाकिनी, ५. शक्ति और ६. देवी । उन न्यासों के ऋषि छन्द देवता पृथक्-पृथक् हैं । नरसिंह भैरव कामकला आदि छहों देवताओं के इक्यावन नाम और ध्यान अलग-अलग हैं । देवीन्यास में इक्यावन देवियों का न्यास करणीय होता है । महालक्ष्मी से लेकर कामकला काली तक इक्यावन देवियों के मूलमन्त्र एवं स्वरूप का ध्यान पृथक्-पृथक् है । अन्त में षोढ़ान्यास के तथा बलि के समर्पण का भी विधान इस ग्रन्थ में वर्णित है ।

इक्यावन देवियाँ—षोढान्यास में जिन इक्यावन देवियों की चर्चा है उनमें से कुछ तो अन्य आगमिक ग्रन्थों में चर्चित हैं । जैसे महालक्ष्मी, वागीश्वरी (=सरस्वती), मातङ्गी भुवनेश्वरी, उच्छिष्टचाण्डालिनी, त्रिपुरा, दक्षिणा काली, छिन्नमस्ता, त्वरिता आदि । लेकिन कुछ ऐसी देवियाँ हैं जिनका वर्णन इसी ग्रन्थ में मिलता है । अश्वारूढ़ा, नित्यक्लिन्ना, त्रिकुटा, वज्रप्रस्तारिणी, कुक्कुटी, शबरेश्वरी, त्रिकण्टकी, नीलपताका, अनङ्गमाला, नाकुली आदि ऐसी ही देवियाँ है । इक्वायन देवियों का न्यास अकार से लेकर क्षकार तक के उच्चारण स्थानों में करने का विधान है । इनके रूप भिन्न-भिन्न है । कोई द्विभुजा तो कोई चतुर्भुजा है । इसी प्रकार उनके मन्त्रों की अक्षरसंख्या भी भिन्न है । इनमें किसी का रूप उग्र तो किसी का सौम्य है । उदाहरणार्थ अघोरा कालसङ्कर्षिणी आदि उग्ररूपा हैं जबकि पद्मा, धनदा, बाला आदि देवियाँ सौम्य रूप वाली हैं । रूप मन्त्र आदि के सन्दर्भ मे भिन्न होती हुई भी इन देवियों के स्तर समान हैं । ये साधकों को समान सिद्धि देने वाली हैं । हाँ कामकला काली अवश्य थोड़ा वैशिष्ट्य लिये हुए है । इसके मन्त्र भी शताक्षर सहस्राक्षर एवं अयुताक्षर हैं ।

कामकला काली—कामकला काली इस ग्रन्थ की मुख्य प्रतिपाद्य देवता है । दक्षिण आदि नव कालियों में यह मुख्यतमा है । कतिपय सन्दर्भों में भी यह अन्य देवियों से विशिष्ट हैं । इसके मन्त्र के पचीस प्रकार हैं । पाँच अक्षर से लेकर दश हजार अक्षर वाले मन्त्र मात्र इसी देवी के हैं । कामकला काली के स्वरूप का वर्णन प्रस्तुत खण्ड में दो बार आया है । १. द्वितीय पटल में इसके अष्टादशाक्षर मन्त्र के

ऋषि आदि के वर्णन के पश्चात् ध्यान के सन्दर्भ में । यहाँ इसके उग्र एवं वीभत्स विशाल स्वरूप की चर्चा है । यह देवी दिगम्बरा है तथा मानवशरीर के आन्तर एवं बाह्य अङ्ग प्रत्यङ्गों को आभूषण के रूप में धारण करती है । ललज्जिह्वा व्यात्तानना दृश्यमानदन्तमण्डला यह देवी रक्तपान से आनन्दित होकर सीत्कार करती रहती है । २. दूसरे स्वरूप का वर्णन दशमपटल में रावणकृत स्तोत्र के रूप में है । यहाँ भी वह दिगम्बरा मांसाशिनी लेलिहानजिह्वाग्रा, दश मुखों तथा सत्ताईस नेत्रों वाली है । इसकी चौवन भुजायें हैं । सर्पराज से आबद्ध जटाजूट वाली यह देवी अन्य अंङ्गो में भी सर्पों का अलङ्कार धारण की हुई है । इस प्रकार इसके दोनों रूप रौद्र हैं । मरीचि, कपिल, हिरण्याक्ष, लवणासुर, वैवस्वत मनु, दत्तात्रेय, दुर्वासा, उत्तङ्क, विश्वामित्र, और्व, पराशर, भगीरथ, बलि, संवर्त्त, नारद, गरुड, परशुराम, शुक्राचार्य, सहस्रार्जुन, पृथु, हनुमान् आदि ने पृथक्-पृथक् मन्त्रों के जप के द्वारा इसकी आराधना कर अपने उद्देश्यों की पूर्ति की थी। इस काली की महिमा इसी से झलकती है कि उपर्युक्त उपासकों में से किसी ने भी शताक्षर, सहस्राक्षर या अयुताक्षर मन्त्र का जप नहीं किया फिर भी इनके व्यक्तित्व एवं ऐश्वर्य से संसार अपरिचित नहीं हैं ।

❀

(२)

विषयवस्तु सङ्क्षेप

तन्त्र अथवा आगम शास्त्र शिवपार्वतीसंवाद्र रूप होते हैं । महाकाल संहिता भी भगवती उमा और महाकाल के मध्य घटित प्रश्नोत्तर रूप है । इस आप्तग्रन्थ में महादेवी काली का भेदप्रभेद सहित साङ्गोपाङ्ग वर्णन प्रस्तुत है ।

प्रथम पटल—देवी ने महाकाल से प्रश्न किया कि आपने तारा छिन्नमस्ता आदि अट्ठाईस तथा अन्य देवियों का वर्णन किया किन्तु कामकला काली का वर्णन नहीं किया । अत: उसका रहस्य कवच आदि के साथ वर्णन कीजिये । महाकाल ने कहा कि कामकलाकालीसदृश भोगमोक्षप्रद अन्य कोई साधन नहीं है । इन्द्र, वरुण, कुबेर बाणासुर, रावण, यम, विवस्वान्, विष्णु आदि देवता एवं ऋषिगण तथा मैने स्वयं इसकी उपासना की है । इसकी साधना से अणिमा आदि समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं तथा मारण आदि षट् कार्य सम्पन्न होते हैं । कोटि जन्म में अर्जित पुण्य का जब उदय होता है तब इसकी सिद्धि मिलती है । इसकी आराधना का प्रारम्भ कभी भी किया जा सकता है । इसके बाद महाकाल ने कामकला काली खण्ड के विषयों को उद्दिष्ट किया है । ये विषय हैं मन्त्र, ध्यान, पूजा, कवच आदि । काली के नव प्रकारों का नामोल्लेख कर कामकला काली को इनमें मुख्यतमा कहा गया है ।

द्वितीय पटल—इस पटल में कामकला काली के मन्त्र का स्वरूप, उस मन्त्र की महिमा, उसके ऋषि आदि का वर्णन करने के पश्चात् षडङ्गन्यास का वर्णन कर कामकला काली के ध्येय स्वरूप का वर्णन है । यह काली पके हुए जामुन के फल के रङ्गवाली, पैर तक लटके बालों वाली, सोलह भुजाओं वाली, रक्तपान में आसक्त, मनुष्य की आँत शिर अङ्गुली आदि का आभूषण धारण की हुई है । तलवार, त्रिशूल, चक्र, बाण, अंकुश आदि अस्त्रों तथा नृमुण्ड आदि को हाथों में ली हुई है । स्वरूपवर्णन के बाद इस काली के यन्त्र-निर्माण की प्रक्रिया को बतला कर काली की पूजा के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले रजस् आदि उपचारों के अर्पण के मन्त्र एवं विधि के साथ बलि के अर्पण का मन्त्र बतलाया गया है ।

तृतीय पटल—देवी के सात आवरण हैं—१. अन्त: त्रिकोण २. मध्य त्रिकोण ३. बाह्य त्रिकोण, इनमें क्रम से संहारिणी आदि छह तथा उग्रा आदि छह इस प्रकार बारह देवियों तथा ब्राह्मी आदि नव देवियों की पूजा होती है । ४. इस आवरण में अष्ट भैरवों का पूजन होता है । ५. पञ्चम आवरण में आठ क्षेत्रपालों की पूजा होती है । ६. छठे आवरण में उल्कामुखी आदि आठ योगिनियाँ पूजी जाती हैं । ७. सातवें में दशों दिशाओं में दश दिक्पाल पूजित होते हैं । कामकला काली की पुरश्चरण-विधि का वर्णन करने के पश्चात् इसकी काम्य उपासना के तेरह प्रकारों को बतला कर अन्त में उत्तमसिद्धिलाभ के लिये विधेय हवन की चर्चा की गयी है ।

चतुर्थ पटल—प्रारम्भ में शिवा अर्थात् सियारिन से सम्बद्ध प्रयोग को बतलाया गया है । इसमें अठारह पशुओं और छत्तीस पक्षियों के मांस को अन्य उपचारों के साथ शिवाओं के लिये देने की विधि बतलायी गयी है । इसके लिये आवाहन आदि से सम्बद्ध मन्त्रों का भी वर्णन है । यह भी बतलाया गया कि अठारह प्रकार के पशुओं एवं छत्तीस प्रकार के पक्षियों के कच्चे मांस के अर्पण का पृथक्-पृथक् विशिष्ट फल होता है । ब्राह्मण वर्ग के लोग शिवाओं के लिये नरमांस का अर्पण न करें । देवता रूपी शिवायें यदि नहीं आती तो अनुष्ठाता को विघ्न का सामना करना पड़ता है । शिवाबलि के माहात्म्य का वर्णन करने के साथ शिवास्तोत्र का तथा शिवाबलि से अवशिष्ट अन्न के विनियोग का वर्णन कर अन्त में गुह्य काली की कामकला काली की अपेक्षा श्रेष्ठता बतलायी गयी है ।

पञ्चम पटल—इस पटल में कामकला काली की आराधना तीन प्रकार की बतलायी गयी है । राज प्रयोग, मध्य प्रयोग और लघु प्रयोग । प्रस्तुत पटल में राजप्रयोग का वर्णन है । इस प्रयोग में तेली धोबी आदि उच्चनीच विभिन्न वर्ग की विभिन्न जाति की सोलहवर्षीया रूपवती यौवनशालिनी सुन्दरियों का प्रयोग होता है । विधिपूर्वक मण्डल की रचना कर उसमें उन सुन्दरियों को मन्त्रोच्चारपूर्वक बैठाया जाता है । उनकी मन्त्रोच्चारपूर्वक स्नान, वस्त्र, कज्जल गन्ध आदि से पूजा की जाती है । इसके बाद कामकला नामक यन्त्र पर जगद्धात्री माँ काली का मन्त्रोच्चारपूर्वक आवाहन और सानिध्य की भावना कर कामकलाकाली प्रयोग के लिये उनसे प्रार्थना का वर्णन करने के बाद षडङ्गन्यास तत्पश्चात् पीठन्यास की विधि का वर्णन है । अनुष्ठाता अपने अन्दर इष्टदेवता का ध्यान कर उनकी मानस पूजा करे । तत्पश्चात् इष्टदेवता के लिये बाह्य पूजासामग्री के संग्रह का वर्णन कर बाह्य पूजा के क्रम और विधि का वर्णन करने के पश्चात् देवी के प्रीतिप्रद नैवेद्य का वर्णन किया गया है । बलि के लिये विहित और निषिद्ध पशुओं का वर्णन कर पशुओं के अनुकल्प का उल्लेख करने के पश्चात् निषिद्ध एवं ग्राह्य सुन्दरियों का वर्णन करते हुए पटल के अन्त में आवाहित सुन्दरियों के विसर्जन की चर्चा है ।

षष्ठ पटल—प्रस्तुत पटल में कामकालीप्रयोग के अधिकारी, उनके कर्त्तव्य, आसन, जपमाला के प्रकारों का वर्णन करने के पश्चात् वशीकरण, उच्चाटन, मारण आदि के पाँच प्रयोग दिये गये हैं । तत्पश्चात् रक्षायन्त्र की रचनाविधि उसका माहात्म्य और उपयोग का फल बतलाया गया है । इसके पश्चात् आकर्षण पादुकासिद्धि, खेचरीसिद्धि, खड्गसिद्धि का वर्णन करने के पश्चात् खड्ग के लिये बलिदान आदि का उल्लेख है । सिद्धाञ्जन की सिद्धि गुटिका सिद्धि गुटिका के लिये प्रयोज्य कुम्भ तथा बलिदान, कुम्भरक्षा के पश्चात् गुटिका धारण करना मन्त्र एवं उसके प्रभाव का विस्तृत वर्णन कर तालबेताल को सिद्ध करने की प्रक्रिया का वर्णन है । अन्त में इस सिद्धि के लिये नरबलि के मन्त्र का वर्णन कर इसके फल का चर्चा की गयी है ।

सप्तम पटल—सप्तम पटल में अग्निस्थापन, कामनाभेद से हवनीय द्रव्य एवं काष्ठ का वर्णन उद्धृत है । ..मविधि का वर्णन कर एकद्रव्य और मिश्रद्रव्य के होम का फल बतलाने के पश्चात् विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिये भिन्न-भिन्न पुष्पों के हवन का वर्णन किया गया है । एवमेव अनेक प्रकार के फलों का पृथक्-पृथक् हवन करने से तत्तत् पृथक् फल का लाभ होता है यह बतलाने के बाद इस पटल में नानाविध अन्न की आहुति के नानाविध फल का वर्णन करने के पश्चात् रसों एवं विविध वस्तुओं की आहुति का फल वर्णित है । इसी प्रकार होम के लिये प्रयोज्य विभिन्न समिधाओं के विभिन्न फलों का वर्णन कर अनेक प्रकार के पशुओं के द्विजाति पुरुषों के तथा पक्षियों के मांस की आहुति के फल की चर्चा की गयी है । इसके पश्चात् आहुतिनिर्माण तथा काम्यकर्म के अनुरूप कुण्डनिर्माण को बतला कर योगविधि योगमाहात्म्य के उल्लेख के पश्चात् योगोपकारि देहसंस्थान का विस्तृत वर्णन किया गया है । देवी के निराकार स्वरूप का ध्यान, षट्चक्रभेदन से कुण्डलिनी जागरण, पुनः कुण्डलिनी की स्वस्थान प्राप्ति एवं योगमहिमा का वर्णन कर मोक्ष का उत्कर्ष एवं सिद्धि का अपकर्ष बतलाया गया है । तदनु देवी के साकार स्वरूप की चर्चा कर उसके ध्यान से नाना प्रकार के सिद्धिलाभ के उपायों को प्रस्तुत किया गया है । पटल के अन्त में पूजा की तीन श्रेणियों का वर्णन कर विश्वास को फलप्राप्ति का आधार बतलाया गया है ।

अष्टम पटल—देवी ने अन्य रहस्यों के बारे में प्रश्न किया । महाकाल ने कहा कि जो षोढ़ान्यास मै बतलाऊँगा वह अत्यन्त गोपनीय है । इस न्यास की महिमा के सन्दर्भ में कहा गया कि पौरव वृहदश्व आदि पैंतीस राजाओं ने इस न्यास का अनुष्ठान कर सप्तद्वीपेश्वरत्व और चक्रवर्त्तित्व प्राप्त किया था । षोढ़ान्यास की उत्पत्ति की मूलभूत त्रिपुरासुर की कथा का वर्णन किया गया है । सङ्क्षेप में वह इस प्रकार है—इन्द्र त्रिपुरासुर के संहार के लिये रुद्र की शरण में गये । इस कार्य के लिये विशिष्ट रथ का निर्माण हुआ । तत्पश्चात् देवी ने शिव को षोढान्यास का उपदेश दिया । इसी क्रम में षोढान्यास के ऋषि आदि का नाम उद्दिष्ट कर उन न्यासों का नामकथन किया गया है । फिर न्यास की विधि बतलायी गयी है । इसके बाद प्रथम नृसिंह न्यास के ऋषि आदि एवं उसकी विधि का वर्णन कर नृसिंह भगवान के इक्यावन नामों का निर्वचन इस पटल में प्रस्तुत है । नरसिंह के विस्तृत रूप का ध्यान बतलाने के बाद भैरवन्यास की चर्चा की गयी है । भैरव के भी इक्यावन नाम हैं । उनके ध्यान का भी वर्णन किया गया है । इसी प्रकार कामकला, डाकिनी, शक्ति, इक्यावन देवियों के ऋषि आदि उनके इक्यावन नाम तथा विशाल स्वरूप के विस्तृत ध्यान की पृथक्-पृथक् प्रस्तुति इस पटल में है । इक्यावन देवियों के नाम निम्नलिखित है—महालक्ष्मी, वागीश्वरी, अश्वारूढा, मातङ्गी, नित्यक्लिन्ना, भुवनेश्वरी, उच्छिष्टचाण्डालिनी, भैरवी, शूलिनी, वनदुर्गा, त्रिपुरा, त्वरिता, अघोरा, जयलक्ष्मी,

वज्रप्रस्तारिणी, पद्मावती, अन्नपूर्णा, कालसङ्कर्षिणी, धनदा, कुक्कुटी, भोगवती, शबरेश्वरी, कुब्जिका, सिद्धिलक्ष्मी, बाला, त्रिपुरसुन्दरी, तारा, दक्षिणकाली, छिन्नमस्ता, त्रिकण्टकी, नीलपताका, चण्डघण्टा, चन्द्रेश्वरी, भद्रकाली, गुह्यकाली अनङ्गमाला, चामुण्डा, वाराही, बगला, जयदुर्गा, नारसिंही, ब्रह्माणी, वैष्णवी, माहेश्वरी, इन्द्राणी, हरसिद्धा, फेत्कारिणी, लवणेश्वरी, नाकुली, मृत्युहारिणी और कामकला काली । उपर्युक्त इक्वायन देवियों के मन्त्र और ध्यान का निर्वचन पृथक्-पृथक् करने के पश्चात् षोढान्यास के समर्पण और विधि की चर्चा की गयी है । मन्त्रसहित बलि-समर्पण का उल्लेख कर अन्त में यह बतलाया गया कि इन न्यासों का अनुष्ठाता साक्षात् देवीपुत्र हो जाता है । वह न तो किसी के ऊपर क्रोध करे और न किसी को अभिशाप दे, क्योंकि वह जिसके प्रति ऐसा करेगा उस मनुष्य की छह महीने कें अन्दर मृत्यु हो जायेगी ।

नवम पटल—इस पटल में त्रैलोक्यमोहन कवच का विवेचन है । पार्वती ने भगवान् महाकाल से त्रैलोक्यमोहन कवच के विषय में प्रश्न किया । महाकाल ने कहा कि इस कवच से समस्त सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं । शिष्य को उसका उपदेश करने वाला गुरु मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । चूँकि मेरी मृत्यु नहीं होती अत: मैं तुमको इसका उपदेश करूँगा । तत्पश्चात् महाकाल ने इस कवच के ऋषि छन्द देवता आदि का वर्णन किया । कवच का भी उल्लेख प्रस्तुत पटल में है । इस कवच से अवगुण्ठित व्यक्ति को प्राप्त होने वाले फल की चर्चा कर अन्त में इसकी गोपनीयता बतलायी गयी है ।

दशम पटल—प्रस्तुत पटल में कामकला काली के रावणविरचित स्त्रोत का वर्णन है । रावण जब मुञ्जमाली आदि कालकेय असुरों पर विजय प्राप्त करने चला तब उसने इस स्तोत्र का पाठ किया था । स्तोत्र में काली के विशाल रूप का वर्णन कर उससे यह प्रार्थना की गयी कि हिरण्याक्ष के वंशजों के ऊपर रावण को विजय प्राप्त हो । अन्त में स्तोत्र-पाठ की फलश्रुति का कीर्त्तन है ।

आगे चलकर प्रसन्नाकलश और शक्तिसामरस्य के विधान की प्रस्तुति है । समस्त मनुष्य इसके अधिकारी हैं । जहाँ तक मुहूर्त्त का प्रश्न है विशिष्ट पर्व के साथ सभी दिन इसके लिये ग्राह्य हैं । उपवास या भोजन का कोई नियम नहीं है । इतना अवश्य है कि इसका अनुष्ठान महानिशा में होता है । इस अनुष्ठान में प्रयोज्य बारह प्रकार की सुरा सभी यजमानों के लिए ग्राह्य है । शक्ति (=स्त्री) के विषय में कहा गया है कि यदि परकीया उपलब्ध न हो तो स्वकीया शक्ति का उपयोग करना चाहिये । ब्राह्मण साधक के लिए चारो वर्ण की स्त्रियाँ ग्राह्य हैं । क्षत्रिय के लिये ब्राह्मणीवर्जित त्रिवर्ण की वैश्य के लिये ब्राह्मणीक्षत्रियावर्जित द्विवर्ण की और शूद्र साधक के लिये उपर्युक्त तीनो स्त्रियाँ वर्जित होकर केवल शूद्रा स्त्री ग्राह्य हैं ।

विकलाङ्गी आदि स्त्रियाँ भी त्याज्य मानी गयी हैं । सुरा के लिए प्रयोज्य पाँचों स्थान का वर्णन करने के बाद समस्त पीठों की स्थापनविधि का निर्वचन है । मन्त्रोच्चारपूर्वक मण्डलरचना को बतलाने के बाद शक्ति की चर्चा है । स्नानोत्तर वस्त्रालङ्कार धारण की हुई शक्ति के शरीर पर स्थित वस्त्र का मन्त्रोच्चारणपूर्वक विमोचन कराकर उसे नग्न करने तथा मन्त्रपूर्वक उसकी गोद में कलश रखने को कहा गया है । तत्पश्चात् अन्य कृत्यों की चर्चा कर आठ शक्तियों की पूजा का विधान वर्णित है । मन्त्र का उच्चारण करते हुए कुल द्रव्य अर्थात् सुरा का शापविमोचन कर उसके अन्दर आनन्द भैरव और आनन्द भैरवी का ध्यान तत्पश्चात् सुधा देवी का ध्यान बतलाकर त्रिकोणचक्रलेखन की चर्चा की गयी है । अन्त में अमृतीकरण अमृतन्यास आदि करने का उल्लेख है ।

एकादश पटल—प्रारम्भ में पूर्व चर्चित देवी के अमृतन्यास की विधि और उस का मन्त्र बतलाया गया है । उक्त मन्त्र के द्वारा कलश में अमृत की स्थापना कर काली का आवाहन करें । उसके पहले पचीस तत्त्वों के लिये पचीस पात्रों की स्थापना का वर्णन भी किया गया है । पात्राधार की स्थापना फिर उस पर कलश की स्थापना कर दोनों की पूजा करनी चाहिये । पुनः स्तम्भन आदि पञ्चमुद्राओं को प्रदर्शित करना चाहिये । ये मुद्रायें महाकला हैं । उसी समय पञ्चविद्या का उच्चारण करने की भी चर्चा है । इसके बाद पाँचों विद्याओं अर्थात् मन्त्रों का स्वरूपवर्णन इस पटल में प्रस्तुत है । अन्त में बतलाया गया है कि ये विद्यायें समस्त दोषों का नाश कर देती हैं ।

द्वादश पटल—इस पटल में देवी ने कामकला काली के सहस्त्र नामों को सुनने की इच्छा व्यक्त की । इनमें कुछ नाम रूढ हैं और कुछ देवी के गुणों के कारण रखे गये हैं। ये नाम इष्टसिद्धि प्रदान करते हैं, रोग अकाल मृत्यु को दूर करते तथा पुरुषार्थचतुष्टय प्रदान करते हैं । इसके बाद इस काली के एक सहस्त्र नामों का उल्लेख है । इस सहस्त्रनाम के श्रवण का फल यह है कि ब्राह्मण वेदपारङ्गत, क्षत्रिय रिपुञ्जय, वैश्य धन-धान्यसमृद्ध और शूद्र समस्त कल्याण युक्त होता है । जो साधक निशीथ में इसका पाठ करता है उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं होता । यह सहस्त्र नाम पद्यात्मक और गद्यात्मक दोनों प्रकार का है । पद्यात्मक सहस्त्रनाम के बाद गद्यात्मक का वर्णन कर अन्त में कहा गया कि पद्य एवं गद्य दोनों नामों में से गद्यात्मक नामों का पाठ पद्यात्मक पाठ के आदि और अन्त दोनों स्थितियों में करना चाहिये । यदि यह सम्भव न हो तो एक ही बार अन्त में पढ़े । गद्यपाठ से पाठक स्तोत्रराज के पाठ का फल प्राप्त करता है ।

त्रयोदश पटल—प्रस्तुत पटल में देवी कामकला काली के एकाक्षर से लेकर जितने मन्त्र हैं उनके स्वरूप को सुनने के लिये याचना करती है । महाकाल ने क्रम

से मरीचि कपिल, हिरण्याक्ष, लवणासुर, वैवस्वत, दत्तात्रेय, दुर्वासा, उत्तङ्क, कौशिक, और्व, पराशर, भगीरथ, बालि, संवर्त्त, नारद, गरुड, परशुराम, भार्गव, सहस्रबाहु, पृथु और हनुमान् के द्वारा उपासित मन्त्रों का उल्लेख कर बाद में कामकला काली के शताक्षर मन्त्र का वर्णन किया है । इसके बाद कामकला काली के उस मन्त्र का वर्णन है जिसमें एक हजार से अधिक अक्षर हैं । इस मन्त्रों का वर्णन कूट भाषा अथवा प्रतीक के माध्यम से किया गया है ।

चतुर्दश पटल—चतुर्दश पटल में पहले कामकला काली से अयुताक्षर (दश हजार अक्षरों वाले) मन्त्र की कथा का वर्णन है । महाकाल एवं नारायण दोनों कामकला काली के दर्शनार्थ ऋष्यन्तर कल्प में सृष्टि के प्रारम्भ में पुष्पक द्वीप में जाकर दिव्य सौ वर्षों तक तपस्या किये । इस तपस्या के फलस्वरूप देवी साक्षात् ऐसे महा उग्ररूप में उपस्थित हुईं कि जिसको ये दोनों देख न सके और अपनी आँखें बन्द कर बैठ गये । माता काली ने दोनों को भयभीत देख कर सौम्य शरीर धारण किया । फिर वे दोनों उनके पैरों पर गिर पड़े । देवी ने उनसे वर माँगने को कहा । भगवान् शिव और भगवान् विष्णु ने कामकला काली के सौम्य एवं उग्र स्वरूपों की संख्या तथा उनके मन्त्रों को जानने की इच्छा प्रकट की । महाकाली ने कहा—न तो मेरी मूर्त्तियों का और न ही मेरे मन्त्रों का अन्त है । सौम्य और भयानक मूर्तियों का मेरे द्वारा प्रकाशन परमशिव को मोह एवं राक्षसों को भय देने के लिये है । मेरी सौम्य मूर्त्तियाँ एक करोड़ तथा उग्र मूर्त्तियाँ आठ करोड़ बतलायी गयी हैं। मेरी सौम्य मूर्तियों के मध्य त्रिपुरसुन्दरी सर्वोत्तम है । इसी प्रकार कामकला काली सबसे उग्र मूर्त्ति कही गयी है । इनके ज्ञाता विश्व में मात्र शिव ही हैं । उक्त नव करोड़ मूर्त्तियों में भी पचपन मूर्तियाँ मुख्य हैं । इन मूर्त्तियों के ध्यान मन्त्र और पूजाविधान पृथक्-पृथक् हैं । पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और अध:—इन छह आम्नायों के उपासकों तथा अन्य देवता आदि के द्वारा दृष्टि एवं अनुभव के अनुसार उनकी उपासना की जाती है । मेरे इस अयुताक्षर मन्त्र के अन्दर षडाम्नाय के समस्त मन्त्र निगूढ हैं । इस प्रकार कामकला काली की उपासना से सभी मूर्त्तियों की उपासना हो जाती है । जिस प्रकार समस्त नदियों का समुद्र एकायतन है उसी प्रकार सभी कालीमन्त्रों का अयुताक्षर मन्त्र भी एक आयतन है । महाकाल ने कहा—इसके बाद हम दोनों ने देवी से उक्त मन्त्र को सुनाने के लिये निवेदन किया । देवी अयुताक्षर मालामन्त्र का उपदेश कर अन्तर्हित हो गयी । इसके बाद इस मन्त्र को भगवान् विष्णु ने नारद और सनक को दिया । भगवान् शिव ने दुर्वासा, कश्यप, दत्तात्रेय और कपिल ऋषियों को सुनाया । इसी शिष्यप्रशिष्य-परम्परा से यह मन्त्र इस लोक मे प्रतिष्ठित हुआ । यह मृत्युञ्जय प्राण मन्त्र है । देवी की कृपा से यह तभी प्राप्त होता है जब गुरु का अनुग्रह हो । अन्त में कहा गया कि गुरु को सन्तुष्ट करके ही इस मन्त्र को प्राप्त करना चाहिये ।

पञ्चदश पटल—इस अन्तिम पटल में छठी काली अर्थात् कामकलाकाली के अयुताक्षर मन्त्र का स्वरूप बतलाया गया है । इसके स्मरण मात्र से समस्त सिद्धियाँ प्रप्त हो जाती हैं । इस काली के अयुताक्षर मन्त्र का स्वरूप छह सौ पचीस श्लोकों में वर्णित है ।

अन्त में इसके माहात्म्य का वर्णन है । राम ने रावण का, नरसिंह ने हिरण्यकशिपु का, शिव ने त्रिपुरासुर का, परशुराम ने कार्त्तवीर्य का वध इसी मन्त्र के प्रभाव से किया था । कुबेर के धनाधीश, इन्द्र के स्वर्गाधीश होने के मूल में यही मन्त्र है । इस मन्त्र के प्रभाव से धनार्थी धन, विद्यार्थी विद्या, राज्यार्थी राज्य और पुत्रार्थी आदि पुत्र इत्यादि प्राप्त करते हैं । यह चिन्तामणि के समान समस्त कामनाओं की सिद्धि करता है । यह अति गुह्यतम है । इसका प्रकाशन योग्यतम पात्र के लिये ही करना चाहिये ।

विषयानुक्रमणिका

...৩*৩...

महाकालसंहिता

(कामकलाकालीखण्डः)

श्रीः

महाकालसंहिता

कामकलाखण्डः

प्रथमः पटलः

[विषयप्रर्वत्तनम्]

देव्युवाच—

परापर परेशान शशाङ्ककृतशेखर ।
योगाधियोगिन् सर्वज्ञ सर्वभूतदयापर ॥ १ ॥
त्वत्तः श्रुता मया मन्त्राः सर्वागमसुगोपिताः ।
विधिवत्पूजनं चापि नानावरणकक्रमैः ॥ २ ॥

देवी ने कहा—हे पर और अपर (तथा परापर) अवस्था वाले, मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करने वाले, योग के अधिकारवान योगी, समस्त प्राणियों के प्रति दयावान, परम स्वामी (अथवा परा शक्ति के स्वामी)! आपसे मैंने समस्त आगमों में भली-भाँति गोपित मन्त्रों को सुना । अनेक आवरणक्रमों से युक्त पूजन का विधिवत् श्रवण किया ॥ १-२ ॥

तारा च छिन्नमस्ता च तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
बाला च बगला चापि त्रिपुरा भैरवी तथा ॥ ३ ॥
काली दक्षिणकाली च कुब्जिका शबरेश्वरी ।
अघोरा राजमातङ्गी सिद्धिलक्ष्मीररुन्धती ॥ ४ ॥
अश्वारूढा भोगवती नित्यक्लिन्ना च कुक्कुटी ।
कौमारी चापि वाराही चामुण्डा चण्डिकापि च ॥ ५ ॥
भुवनेशी तथोच्छिष्टचाण्डाली चण्डघण्टिका ।
कालसङ्कर्षणी चापि गुह्यकाली तथाऽपरा ॥ ६ ॥
एताश्चान्याश्च वै देव्यः समन्त्राः कथितास्त्वया ।
किन्तु कामकलाकालीं नोक्तवानसि मे प्रभो ॥ ७ ॥

तारा, छिन्नमस्ता, त्रिपुरसुन्दरी, बाला, बगला, त्रिपुरा, भैरवी, काली, दक्षिण-काली, कुब्जिका, शबरेश्वरी, अघोरा, राजमातङ्गी, सिद्धिलक्ष्मी, अरुन्धती, अश्वारूढा, भोगवती, नित्यक्लिन्ना, कुक्कुटी, कौमारी, वाराही, चामुण्डा, चण्डिका, भुवनेश्वरी,

उच्छिष्टचाण्डालिनी, चण्डघण्टा, कालसङ्कर्षिणी, अपरा—इन तथा अन्य देवियों के विषय में मन्त्रों के साथ आपने बतलाया; किन्तु हे प्रभो! आपने कामकला काली के विषय में नहीं बतलाया ॥ ३-७ ॥

तत्किं मय्यपि गोप्यं ते प्रायशः परमेश्वर ।
न हीदृशं त्रिलोकेषु तव किञ्चन विद्यते ॥ ८ ॥
यदकथ्यं मयि भवेदपि प्राणाधिकायिकम् ।
तत्किं गोपयसि प्राज्ञ मयीदं दैवतं महत् ॥ ९ ॥

तो हे परमेश्वर! क्या (कोई ऐसा तत्त्व है जो) मेरे विषय में भी आपके द्वारा प्राय: गोप्य है? तीनों लोकों में आपके लिये ऐसा कुछ नहीं है, जो मेरे विषय में प्राण और शरीर से बढ़कर अकथ्य हो । इसलिये हे प्राज्ञ! मेरे प्रति इस महादेवता को क्यों छिपा रहे हैं ॥ ८-९ ॥

यद्यस्मि ते दयापात्रं मान्यास्मि स्नेहभाग्भव ।
अनुग्राह्यास्मि कान्तास्मि तदेमां वद साम्प्रतम् ॥ १० ॥

हे भव! यदि मैं आपकी दयापात्र, मान्या, अनुग्राह्या और प्रियतमा हूँ तो अब इस देवता के विषय में मुझको बतलाइये ॥ १० ॥

देवीं कामकलाकालीं समन्त्रां ध्यानपूर्विकाम् ।
सरहस्यां सकवचां कथयस्व मम प्रभो ॥ ११ ॥

हे प्रभो! देवी कामकला काली को मन्त्र, ध्यान, रहस्य और कवच के सहित मुझे बतलाइये ॥ ११ ॥

[कामकलाकाल्याः मन्त्रस्य माहात्म्यस्य गोपनीयतायाश्चाभिधानम्]

महाकाल उवाच—

धन्यास्यनुगृहीतासि तया देव्यैव सर्वथा ।
यत्ते बुद्धिः समुत्पन्ना तां देवीं प्रति भामिनि ॥ १२ ॥

कामकलाकाली के मन्त्र, माहात्म्य और गोपनीयत्व का वर्णन—महाकाल ने कहा—हे भामिनि ! तुम धन्य हो तथा उस देवी के द्वारा सब प्रकार से अनुगृहीत हो, जो कि उस देवी के प्रति तुम्हें ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई है ॥ १२ ॥

विधाय शपथं देवि कथयामि तवाग्रतः ।
न हीदृशं भुक्तिमुक्तिसाधनं भुवि विद्यते ॥ १३ ॥
यथार्थमात्थ देवि त्वं गोप्यं त्वय्यपि सर्वथा ।
किन्तु भक्तिविशेषात्ते कथयामि न संशयः ॥ १४ ॥

हे देवि ! तुम्हारे आगे शपथ लेकर कह रहा हूँ कि इस धरती पर भोग-मोक्ष का इस प्रकार का साधन नहीं है । हे देवि! तुम सत्य कहती हो । यह देवता तुम्हारे प्रति

भी सर्वथा गोप्य है; किन्तु भक्तिविशेष के कारण तुमको बतला रहा हूँ। इसमें सन्देह नहीं है ॥ १३-१४ ॥

राज्यं दद्याद्धनं दद्यात् स्त्रियं दद्याच्छिरस्तथा ।
न तु कामकलाकालीं दद्यात्कस्मा अपि क्वचित्॥ १५ ॥

राज्य दे दे, धन दे दे, अपनी स्त्री दे दे; यहाँ तक कि अपना शिर भी दे दे; किन्तु किसी के लिये कभी भी, कहीं भी कामकला काली (का रहस्य) न दे अर्थात् कभी भी न बतलाये ॥ १५ ॥

इन्द्रेणोपासिता पूर्वं देवराज्यमभीप्सता ।
वरुणेन कुबेरेण ब्रह्मणा च मया तथा ॥ १६ ॥
बाणेन रावणेनापि यमेनापि विवस्वता ।
चन्द्रेण विष्णुना चापि तथान्यैश्च महर्षिभिः॥ १७ ॥

देवताओं का राज्य चाहने वाले इन्द्र के द्वारा, वरुण, कुबेर, ब्रह्मा, स्वयं मेरे द्वारा, बाणासुर, रावण, यम, विवस्वान् अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु तथा अन्य महर्षियों के द्वारा पूर्व काल में इसकी उपासना की गयी ॥ १६-१७ ॥

सहेलं वा सलीलं वा यस्याः स्मरणमात्रतः ।
विद्यालक्ष्मी राज्यलक्ष्मीर्मोक्षलक्ष्मीर्वशे स्थिता ॥ १८ ॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
राज्यार्थी लभते राज्यं कान्तार्थी कामिनीं शुभाम् ॥ १९ ॥
यशोऽर्थी कीर्तिमाप्नोति मुक्त्यर्थी मोक्षमव्ययम् ।
अणिमाद्यष्टसिद्ध्यर्थी सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात् ॥ २० ॥
वशीकरणमाकर्षं द्रावणं मोहनं तथा ।
स्तम्भनं च तथोच्चाटं मारणं द्वेषणं तथा ॥ २१ ॥
शोषणं मूर्च्छनं त्रासं तथापस्मारमेव च ।
क्षोभणं च महोन्मादं कुर्य्यादितदुपासकः ॥ २२ ॥

अनादर के साथ अथवा क्रीड़ा करते समय भी जिसके स्मरणमात्र से विद्यालक्ष्मी, राज्यलक्ष्मी और मोक्षलक्ष्मी वश में हो जाती है । राज्यार्थी राज्य प्राप्त कर लेता है; कान्ता का इच्छुक शुभ लक्षणों वाली कामिनी को प्राप्त करता है; अणिमा आदि अष्टसिद्धियों को चाहने वाला अष्टसिद्धि प्राप्त करता है । ऐसी इस (कामकला काली) का उपासक वशीकरण, आकर्षण, द्रावण, मोहन, स्तम्भन, उच्चाटन, मारण, द्वेषण, शोषण, मूर्च्छन, त्रास, अपस्मार (मिर्गी), क्षोभण तथा महा उन्माद कर सकता है ॥ १८-२२ ॥

अञ्जनं खड्गवेतालपादुकायक्षिणीगतिम् ।
गुटिकाधातुवादादि वर्षसाहस्रजीवनम् ॥ २३ ॥

साधयेत् खेचरत्वं च कामरूपित्वमेव च ।
नानया सदृशी विद्या त्रैलोक्ये क्वापि विद्यते ॥ २४ ॥

(इसका उपासक) अञ्जन, खड्ग, वेताल, पादुका, यक्षिणी की गति, गुटिका, धातु, वाद आदि, सहस्त्रवर्ष तक का जीवन, खेचरत्व, कामरूपित्व की सिद्धि कर लेता है । इस त्रैलोक्य में कहीं भी इसके समान कोई विद्या नहीं है ॥ २३-२४ ॥

कुर्य्याद् ग्रहगतिस्तम्भं पिशाचोरगरक्षसाम् ।
कुर्य्यान्नद्यर्णवस्तम्भमनिलानलयोरपि ॥ २५ ॥
धारास्तम्भं शत्रुसैन्यस्तम्भं वाक्स्तम्भनं तथा ।
यद्यदिच्छति तत्सर्वं कुर्य्यादेव न संशयः ॥ २६ ॥

(यह उपासक) ग्रहों, पिशाचों, सर्पों, राक्षसों की गति को रोक देता है । नदी, समुद्र का स्तम्भन कर देता है । वायु और अग्नि की धारा का, शत्रु की सेना का, किसी की वाणी का स्तम्भन कर देता है । वह जो-जो चाहता है सब कर देता है । इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २५-२६ ॥

चतुर्वर्गश्चतुर्भद्रो लभ्यते यत्प्रसादतः ।
अन्यासां क्षुद्रसिद्धीनां तत्र कैव कथा प्रिये ॥ २७ ॥

हे प्रिये ! जिसकी प्रसन्नता से चतुर्वर्ग (=धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष) और चतुर्भद्र (=धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष) प्राप्त हो जाता है वहाँ अन्य कई छोटी-छोटी सिद्धियों की क्या बात ॥ २७ ॥

द्विसप्ततितमं यावत्पुरुषाः पूर्वजाः स्मृताः ।
तेषां भाग्योदयैः पूर्णैर्विद्येयं यदि लभ्यते ॥ २८ ॥
तदा सर्वस्वदानेन गृह्णीयादविचारयन् ।
कृतकृत्यं मन्यमानो गुरोः पादावभिस्पृशन् ॥ २९ ॥

बहत्तरवीं पीढ़ी तक के पुरुष पूर्वज माने गये हैं । यदि उनका पूर्ण भाग्योदय होता है तो यह विद्या प्राप्त होती है । उस समय अपने को कृतकृत्य मानते हुए गुरु के चरणों का स्पर्श कर विना विचारे सर्वस्व दान के द्वारा (इस विद्या का) ग्रहण करना चाहिये ॥ २८-२९ ॥

नात्र सिद्धाद्यपेक्षास्ति न कालनियमस्तथा ।
नैव शुक्रास्तदोषादि मलमासादिको न च ॥ ३० ॥

इस (विद्या के ग्रहण) के विषय में न तो सिद्ध आदि की अपेक्षा है, न ही काल का कोई नियम है तथा शुक्रास्त मलमास (=पुरुषोत्तम मास) आदि का दोष भी नहीं होता है ॥ ३० ॥

एकतः प्राणदानं स्यादेकतश्चैतदर्प्पणम् ।
तुलया विधृतं चेत्स्यादेतद्दानं विशिष्यते ॥ ३१ ॥

एक ओर प्राणदान और दूसरी ओर इस (विद्या) का दान; दोनों को यदि तुला पर रखा जाय तो इसका दान भारी पड़ता है ॥ ३१ ॥

पद्मिनीपत्रसंस्थायिजलवज्जीवनं चलम् ।
ततोऽपि चञ्चला सम्पद्दत्तयोश्चेत्तयोर्द्वयोः ॥ ३२ ॥
लभ्यतेऽसौ महाविद्या किं नु भाग्यमतः परम् ।
कोटिजन्मार्जितैः पुण्यैर्लभ्यते वा न लभ्यते ॥ ३३ ॥

(मनुष्य का) जीवन कमल के पत्ते पर स्थित जल की बूँद के समान चञ्चल होता है (अर्थात् कभी भी च्युत हो सकता है) इससे भी चञ्चल लक्ष्मी है । यदि उन दोनों के देने से यह महाविद्या प्राप्त हो जाती है तो इससे बढ़कर और सौभाग्य की बात क्या हो सकती है । करोड़ों जन्मों में अर्जित पुण्य से भी यह प्राप्त हो सकती है, नहीं भी प्राप्त हो सकती (अत: जब भी यह मिले किसी भी मूल्य पर इसे ले लेना चाहिये) ॥ ३२-३३ ॥

शपथं कुरु देवेशि प्रकाश्येयं न कुत्रचित् ।
सत्यं सत्यं त्रिसत्यं मे ततो वक्ष्यामि ते त्विमाम्॥ ३४ ॥

हे देवेशि! तुम शपथ लो कि तुम इसे कहीं प्रकाशित नहीं करोगी । (यह शपथ) मेरे लिये सत्य होगा, सत्य होगा, त्रिसत्य होगा (यदि ऐसा है) तो मैं इसे तुमको बतलाऊँगा ॥ ३४ ॥

नो चेत्तेऽपि न वक्ष्यामि प्रमाणं तत्र सैव मे ।
तस्मात्कुरुष्व शपथं यदि शुश्रूषसे प्रिये ॥ ३५ ॥

यदि ऐसा नहीं है तो मैं तुमको नहीं बतलाऊँगा । इस विषय में वह (महाविद्या) ही प्रमाण है । इसलिये हे प्रिये! यदि सुनना चाहती तो शपथ लो ॥ ३५ ॥

देव्युवाच—

शपे त्वच्चरणाब्जाभ्यां हिमाद्रिशिरसा शपे ।
शपे स्कन्दैकदन्ताभ्यां यद्येनामन्यतो ब्रुवे ॥ ३६ ॥

देवी ने कहा—(हे देव!) मैं तुम्हारे चरणकमलों की शपथ लेती हूँ । (अपने पूज्य पिता) हिमालय के शिर (मस्तक) की शपथ लेती हूँ । (अपने प्रिय पुत्रों) गणेश और स्कन्द की शपथ लेती हूँ कि मैं इस (महाविद्या) को अन्यत्र किसी को भी नहीं बतलाऊँगी ॥ ३६ ॥

शपेऽथवा तया देव्या यां मे त्वं कथयिष्यसि ।
प्रकाशयामि यद्येतां सैव मे विमुखी भवेत् ॥ ३७ ॥

अथवा उसी देवी की शपथ लेती हूँ जिसे तुम मुझे बतलाओगे । यदि मैं इसे (अन्यत्र) प्रकाशित करूँ तो वही मुझसे विमुख हो जाय ॥ ३७ ॥

[सम्पूर्णग्रन्थस्य विषयाणां समष्ट्याभिधानम्]

महाकाल उवाच—

साधु साधु महाभागे प्रतीतिर्मेऽधुना त्वयि ।
अकार्षीः शपथं यस्मात्तस्माद् वक्ष्याम्यसंशयम् ॥ ३८ ॥
समाहिता सावधाना भव देवि वराङ्गने ।
विधेहि चित्तमेकाग्रं बध्यतामञ्जलिस्तथा ॥ ३९ ॥

ग्रन्थ के सम्पूर्ण विषयों का साकल्येन निर्वचन—महाकाल ने कहा—हे महाभागे ! धन्यवाद, अब मुझे तुम्हारे ऊपर पूर्ण विश्वास हो गया है । चूँकि तुमने शपथ ली इसलिये निःसन्देह अब मैं इसे तुमको बतलाऊँगा । हे देवि! हे वराङ्गने ! तुम समाहित और सावधान हो जाओ । अब अपने चित्त को एकाग्र करो और हाथ जोड़ लो ॥ ३८-३९ ॥

कालीं कामकलापूर्वां शृणुष्वावहिता मम ।
मन्त्रं ध्यानं तथा पूजां कवचं च निशामय॥ ४० ॥
सहस्रनामस्तोत्रं च प्रयोगान् विविधानपि ।
सर्वं तेऽहं प्रवक्ष्यामि यद्यज्जानामि पार्वति ॥ ४१ ॥

ध्यान देकर मुझसे कामकलाकाली को सुनो । उसके मन्त्र ध्यान पूजा और कवच को सुनो । काली सहस्रनामस्तोत्र उसके अनेक प्रकार के प्रयोग जो-जो मुझे ज्ञात है, हे पार्वति! वह सब मैं तुमको बतलाऊँगा ॥ ४०-४१ ॥

काली नवविधा प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
आद्या दक्षिणकाली सा भद्रकाली तथापरा ॥ ४२ ॥
अन्या श्मशानकाली च कालकाली चतुर्थिका।
पञ्चमी गुह्यकाली च पूर्वं या कथिता मया ॥ ४३ ॥
षष्ठी कामकलाकाली सप्तमी धनकालिका ।
अष्टमी सिद्धिकाली च नवमी चण्डकालिका ॥ ४४ ॥

समस्त तन्त्रों में गोपित काली नव प्रकार की कही गयी है—१. दक्षिणकाली, २. भद्रकाली, ३. श्मशानकाली, ४. कालकाली, ५. गुह्यकाली जो कि मेरे द्वारा पहले ही बतलायी जा चुकी है, ६. कामकलाकाली, ७. धनकाली, ८. सिद्धिकाली और ९. चण्डकाली ॥ ४२-४४ ॥

तत्राद्या दक्षिणा काली पुरैव कथिता त्वयि ।
भद्रकाली च कथिता समन्त्रध्यानपूजना ॥ ४५ ॥
श्मशानकाल्या भेदास्तु डामरे प्रतिपादिताः ।
भीमातन्त्रे कालकालीमनुरुक्तो मया तव ॥ ४६ ॥
शास्त्रेऽस्मिन्नेव कथितो गुह्यकालीमहामनुः ।
या गुह्यकाली सैवेयं काली कामकलाभिधा॥ ४७ ॥

उनमें से प्रथम दक्षिण काली को मैंने तुमको पहले ही बतला दिया है। भद्रकाली को भी मन्त्र ध्यान और पूजा के सहित बतलाया। श्मशानकाली के भेद डामरतन्त्र में प्रतिपादित हैं। कालकाली का मन्त्र मैंने तुमको भीमातन्त्र में बतलाया। गुह्यकाली का महामन्त्र इसी शास्त्र में कहा गया। जो गुह्यकाली है वही कामकला नामक काली है ॥ ४५-४७ ॥

मन्त्रभेदाद् ध्यानभेदाद् भवेत् कामकलात्मिका।
प्रयोगभेदतश्चापि पूजाया भेदतस्तथा ॥ ४८ ॥
यथा त्रिभेदा तारा स्यात्सुन्दरी सप्तसप्ततिः।
दक्षिणा पञ्चभेदा स्यात्तथेयं गुह्यकालिका ॥ ४९ ॥
सप्तधा ध्यानमन्त्राभ्यां भिन्नाभ्यां भिन्नरूपिणी।
यथा पञ्चाक्षरो मन्त्रो देवी चैकजटा स्मृता ॥ ५० ॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो देवी दक्षिणकालिका।
तथान्येष्वपि भेदेषु तिष्ठत्सु बहुषु प्रिये ॥ ५१ ॥
देवी कामकलाकाली मनुरष्टादशाक्षरः।
षोडशार्णा यथा मुख्या सर्वश्रीचक्रमध्यगा ॥ ५२ ॥
तथेयं नवकालीषु सदा मुख्यतमा स्मृता।

[आगामिपटलस्थविषयसंसूचनम्]

त्रैलोक्याकर्षणो नाम मन्त्रोऽस्याः परिकीर्त्तितः॥ ५३ ॥

आगामि पटलों के विषय का निरूपण—मन्त्रभेद, ध्यानभेद, पूजाभेद और प्रयोग के भेद से यह कामकला हो जाती है। जैसे तारा के तीन भेद हैं; त्रिपुरसुन्दरी (=षोडशी) के सतहत्तर भेद हैं; दक्षिण काली पाँच भेदों वाली है, उसी प्रकार यह गुह्यकाली भी भिन्न ध्यान और भिन्न मन्त्र के कारण भिन्न रूप से सात प्रकार की बतलाई गई है। जैसे कि जो पाँच अक्षरों वाला मन्त्र है उसकी देवी एकजटा कही गयी है। जो बाईस अक्षरों वाला मन्त्र है उसकी देवी दक्षिणकालिका है। हे प्रिये! इसी प्रकार वह अन्य बहुत भेदों वाली है। कामकला काली का मन्त्र अट्ठारह अक्षरों वाला बतलाया गया है। जैसे सम्पूर्ण श्रीचक्र के रहने वाली देवी सोलह वर्णों की है और यही मुख्य है उसी प्रकार नवकालियों में यह (कामकला काली) मुख्यतम मानी गयी है। इसके मन्त्र का नाम त्रैलोक्याकर्षण कहा गया है ॥ ४८-५३ ॥

तस्योद्धारं प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन पार्वति।
श्रुत्वा च धारयस्वैनं सर्वकल्याणहेतवे ॥ ५४ ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां
विषयप्रवर्त्तननाम प्रथमः पटलः ॥ १ ॥

...❧❦❧...

हे पार्वति ! उस (मन्त्र) का उद्धार बतला रहा हूँ । यत्नपूर्वक सुनो और सुनकर इसे लोककल्याण के लिये (हृदय में) धारण करो ॥ ५४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकालसंहिता के कामकलाकाली खण्ड के मन्त्रमाहात्म्यादि नामक प्रथम पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १ ॥

द्वितीयः पटलः

[कामकलाकाल्यास्त्रैलोक्याकर्षणमन्त्रोद्धारः]

महाकाल उवाच—

आद्यवर्गाद्यवर्णोऽक्ष्णा वामेन परिशीलितः ।
मूर्ध्नि मूर्धा यतृतीययुगधः परिकीर्तितः ॥ १ ॥

कामकलाकाली के त्रैलोक्याकर्षण मन्त्र का उद्धार—महाकाल ने कहा—आद्यवर्ग (=कवर्ग) का आदि वर्ण (=क) उसे बायीं आँख (=ई) से युक्त करे । शिरपर मूर्धा (=अनुस्वार) और नीचे यतृतीय (=ल) से युक्त करे (इस प्रकार 'क्लीं' बनेगा) ॥ १ ॥

बिन्दुवामाक्षिसम्पृक्तो वह्निसर्वाद्यमस्तकः ।
वामश्रुत्यर्द्धचन्द्रेण तृतीयं सपरो भवेत् ॥ २ ॥

(फिर वही क) बिन्दु (=अनुस्वार) और वामनेत्र से युक्त होकर वह्नि (=र) के साथ युक्त होगा (=इस प्रकार 'क्रीं' बनेगा) स के बाद वाला (=ह) वामश्रुति (=ऊ) तथा अर्धचन्द्र (अनुस्वार) से युक्त हो तो ('हूँ' बनेगा) ॥ २ ॥

दक्षस्कन्धोद्ध्र्वदन्ताभ्यां चाधो रो बिन्दुमस्तकः।
ओष्ठवर्गद्वितीयो हपूर्वाधरोष्ठबिन्दुयुक् ॥ ३ ॥

दक्षस्कन्ध (=क) और ऊर्ध्वदन्त (=ए/ओ) से नीचे 'र्' को जोड़ें और मस्तक पर बिन्दु रखें (इस प्रकार 'क्रों' बनेगा) ओष्ठवर्ग का द्वितीय (=फ्) ह पूर्व (=स्) तथा अधरोष्ठ (=ए) एवं बिन्दु तथा 'र' से युक्त हो (तब 'स्फ्रें' बनेगा) ॥ ३ ॥

षडक्षराणि सम्बोध्य यथानामस्थितिक्रमात्।
प्रतिलोमेन चोद्धृत्य तानि बीजानि पञ्च वै ॥ ४ ॥
भूतबीजाद्यमारभ्य मारबीजान्तमेव हि ।
वैश्वानरवधूयुक्तो मन्त्रो ह्यष्टादशाक्षरः ॥ ५ ॥

इसके बाद नाम के क्रम से छह अक्षरों (=कामकला काली) का सम्बोधन करे (=कामकलाकालि) । इसके पश्चात् भूतबीज (=स्फ्रें) से लेकर काम बीज (=क्लीं) तक उन पाँच बीजों का उल्टे क्रम से उद्धार करे (=स्फ्रें, क्रों, हूँ, क्रीं क्लीं) (अन्त में) वैश्वानरवधू (=स्वाहा) से युक्त यह मन्त्र अट्ठारह अक्षरों वाला बनता है । (इसका स्वरूप इस प्रकार होगा—क्लीं क्रीं हूँ क्रों स्फ्रें कामकलाकालि स्फ्रें क्रों हूँ क्रीं क्लीं स्वाहा) ॥ ४-५ ॥

[उद्धृतमन्त्रमहिम्नः कीर्तनम्]

अस्य स्मरणमात्रेण यावत्यः सन्ति सिद्धयः।
स्वयमायान्ति पुरतो जपादीनां तु का कथा ॥ ६ ॥

उक्त मन्त्र की महिमा का वर्णन—इस (मन्त्र) के स्मरणमात्र से जितनी सिद्धियाँ हैं (वे साधक के) समक्ष स्वयं आ जाती हैं फिर जप आदि की क्या बात (अर्थात् जप आदि से वे निश्चित रूप से आ जाती हैं) ॥ ६ ॥

सप्त कामकलाकाल्याः मनवः सन्ति गोपिताः।
तेषु सर्वेषु मन्त्रेषु मुख्योऽयं परिनिष्ठितः ॥ ७ ॥

कामकला काली के सात मन्त्र गुप्त रखे गये हैं । उन सभी मन्त्रों में यह (मन्त्र) मुख्य और परिपूर्ण है ॥ ७ ॥

स्मरणादस्य मन्त्रस्य मूर्च्छिताः सर्वदेवताः ।
स्तम्भिता वेपमानाश्च उत्तिष्ठन्त्यतिविह्वलाः ॥ ८ ॥
निदेशवर्तिनो भूत्वा वर्तन्ते चेटका इव ।
किं बहूक्तेन देवेशि सत्यपूर्वं ब्रवीम्यहम् ॥ ९ ॥

इस मन्त्र के स्मरण से मूर्च्छित एवं स्तम्भित समस्त देवतायें काँपती हुई तथा अत्यन्त विह्वल होकर उठ खड़ी होती हैं । (वे साधक) की आज्ञानुसारिणी बनकर चेटी के समान व्यवहार करती हैं । हे देवेशि! अधिक कहने से क्या लाभ । मैं सत्य कह रहा हूँ ॥ ८-९ ॥

सहस्रवदनेनापि लक्षकोट्याननेन वा ।
महिमा वर्णितुं शक्यो नास्य वर्षायुतैर्मया ॥ १० ॥
सामान्यतो विजानीहि यद्यदिच्छति साधकः ।
तत्तत्करोति सकलं प्रजापतिरिवापरः ॥ ११ ॥
त्रैलोक्याकर्षणो नाम मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।

मैं अपने हजार, लाख, करोड़ मुखों से भी दशहजार वर्षों तक इसकी महिमा का वर्णन नहीं कर सकता । सामान्य रूप से यह समझ लो कि साधक जो-जो इच्छा करता है दूसरे प्रजापति की भाँति वह सब प्राप्त कर लेता है । त्रैलोक्याकर्षण नामक यह मन्त्र समस्त प्रयोजनों का साधक है ॥ १०-१२ ॥

[मन्त्रस्यास्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अतः परं प्रवक्ष्यामि छन्दश्चर्षिं च बीजकम् ॥ १२ ॥
अस्य कामकलाकालीमन्त्रस्याहमृषिर्मतः ।
छन्दश्च बृहती ख्यातं देवी चेयं प्रकीर्तिता ॥ १३ ॥
आद्यं बीजं तु बीजं स्यात् क्रोधार्णं शक्तिरेव च ।
विनियोगोऽस्य सर्वत्र सर्वदा सर्वसिद्धये ॥ १४ ॥

इस मन्त्र के ऋषि आदि का निर्देश—इसके बाद (मैं इस मन्त्र के) ऋषि छन्द और बीज को बतलाऊँगा । इस कामकलाकाली मन्त्र का मैं (महाकाल) ऋषि माना गया हूँ । छन्द वृहती और देवी यह (=कामकला काली) कही गयी है । आद्य बीज (=क्लीं) इसका बीज और क्रोधवर्ण (=हूँ) शक्ति है । सर्वत्र सर्वदा समस्त सिद्धियों के लिये इसका यही विनियोग है । (विनियोग के समय इस प्रकार कहना होगा—अस्य कामकलाकालीमन्त्रस्य महाकाल ऋषि: बृहती छन्द: कामकलाकाली देवता क्लीं बीजं हूँ शक्ति: सर्वदा सर्वसिद्धये जपे विनियोग:) ॥ १२-१४ ॥

[अस्य मन्त्रस्य षडङ्गन्यासविधि:]

षडङ्गं पञ्चबीजैस्तैर्नाम्नाप्येकं च कारयेत् ।
नामाक्षराणि प्रत्येकं तत्र देयानि पार्वति ॥ १५ ॥

इस मन्त्र की षडङ्गन्यास विधि—इसके षडङ्ग न्यास को पाँच बीज और एक इस (देवी) के नाम से करना चाहिये। हे पार्वति! प्रत्येक के साथ नाम का एक-एक अक्षर भी देना चाहिये (इस प्रकार न्यास का स्वरूप होगा—क्लीं का हृदयाय नम: । क्रीं म शिरसे स्वाहा । हूँ क शिखायै वषट् । क्रों ला नेत्रत्रयाय वौषट् । स्फ्रें का कवचाय हूम्। कामकलाकाली ली अस्त्राय फट्) ॥ १५ ॥

[कामकलाकाल्या: ध्यानम्]

ध्यानमस्या: प्रवक्ष्यामि कुरु चित्तैकतानताम् ।
उद्यद्घनाघनाश्लिष्यज्जवाकुसुमसन्निभाम् ॥ १६ ॥
मत्तकोकिलनेत्राभां पक्वजम्बूफलप्रभाम् ।
सुदीर्घप्रपदालम्बिविस्त्रस्तघनमूर्द्धजाम् ॥ १७ ॥
ज्वलदङ्गारवच्छोणनेत्रत्रितयभूषिताम् ।
उद्यच्छारदसम्पूर्णचन्द्रकोकनदाननाम् ॥ १८ ॥
दीर्घदंष्ट्रायुगोदञ्चद्विकरालमुखाम्बुजाम् ।
वितस्तिमात्रनिष्क्रान्तललज्जिह्वाभयानकाम् ॥ १९ ॥
व्यात्ताननतया दृश्यद्द्वात्रिंशद्दन्तमण्डलाम् ।
निरन्तरं वेपमानोत्तमाङ्गां घोररूपिणीम् ॥ २० ॥
अंसासक्तनृमुण्डासृक् पिबन्तीं वक्रकन्धराम् ।
सृक्कद्वन्द्वस्त्रवद्रक्तस्नापितोरोजयुग्मकाम् ॥ २१ ॥
उरोजाभोगसंसक्तसम्पतद्रुधिरोच्चयाम् ।
सशीत्कृतिधयन्तीं तल्लेलिहानरसज्ञया ॥ २२ ॥

कामकलाकाली का ध्यान—अब मैं इसके ध्यान को बतलाऊँगा । चित्त को एकतान करो । यह देवी उगते हुए (सूर्य के साथ संश्लिष्ट रक्तवर्ण वाले) बादल के समान, सघन परस्परसंश्लिष्ट जवाकुसुम के समान, मत्त कोकिल के नेत्र के समान,

पके हुए जामुन के फल की कान्तिवाली है । इसके बाल लम्बे, पैरों तक लटकने वाले विखरे हुए तथा सघन हैं । जलते हुए अङ्गार के समान लाल रंग के तीन नेत्रों से यह विभूषित है । इसका मुख उगते हुए शारदीय पूर्णचन्द्र तथा लाल कमल के समान है । दो लम्बे दाँत बाहर ऊपर की ओर निकलने से विकराल मुखकमल वाली बतलायी गयी हैं । एक बीत्ता बाहर निकली हुई लपलपाती जीभ के कारण यह भयानक है । मुख के खोल देने के कारण बत्तीसो दाँत दिखलायी दे रहे हैं । इसका शिर निरन्तर काँप रहा है अतएव घोर रूप वाली है । गले में लटके हुए नरमुण्ड से निकलने वाले रक्त को पीती हुई अतएव वक्रकन्धे वाली कही गयी हैं । इसके दोनों स्तन दोनों जबड़ों से स्रवित होने वाले रक्त से उपलिप्त हैं । उसके विस्तृत स्तनों से लिपट कर रक्त की धारा गिर रही है । उस रक्त को लेलिहान जिह्वा से सीत्कार के साथ वह पी रही है ॥ १६-२२ ॥

ललाटे घननारासृग्विहितारुणचित्रकाम् ।
सद्यश्छिन्नगलद्रक्तनृमुण्डकृतकुण्डलाम् ॥ २३ ॥
श्रुतिनद्धकचालम्बिवतंसलसदंसकाम् ।
स्रवदस्रौघया शश्वन्मानव्या मुण्डमालया ॥ २४ ॥
आकण्ठगुल्फलम्बिन्यालङ्कृतां केशबद्धया ।
श्वेतास्थिगुलिकाहारग्रैवेयकमहोज्ज्वलाम् ॥ २५ ॥
शवदीर्घाङ्गुलीपङ्क्तिमण्डितोरःस्थलस्थिराम् ।
कठोरपीवरोत्तुङ्गवक्षोजयुगलान्विताम् ॥ २६ ॥
महामारकतग्राववेदिश्रोणिपरिष्कृताम् ।
विशालजघनाभोगामतिक्षीणकटिस्थलाम् ॥ २७ ॥
अन्त्रनद्धार्भकशिरोवलत्किङ्किणिमण्डिताम् ।
सुपीनषोडशभुजां महाशङ्खाङ्गदङ्गकाम् ॥ २८ ॥
शवानां धमनीपुञ्जैर्वेष्टितैः कृतकङ्कणाम् ।
ग्रथितैः शवकेशस्रग्दामभिः कटिसूत्रिणीम् ॥ २९ ॥
शवपोतकरश्रेणीग्रथनैः कृतमेखलाम् ।
शोभमानाङ्गुलीं मांसमेदोमज्जाङ्गुलीयकैः ॥ ३० ॥

ललाट पर मनुष्य के सघन रक्त से लालरंग का चित्र बनायी हुई हैं । तत्काल कटे हुए अतएव गिरते हुए रक्त वाले नरमुण्ड का उसने कुण्डल धारण किया है । कानों में बँधे हुए बालों से लटकने वाला अवतंस (=अङ्गूठी के आकार वाला कर्णाभूषण) कन्धे तक लटक रहा है । (शिर के) बालों से परस्पर बँधे हुए नरमुण्डों की माला, जिससे कि निरन्तर रक्त टपक रहा है, कण्ठ से लेकर गुल्फ तक लटक रही है । इस माला से वे अलङ्कृत हैं । श्वेतवर्ण की हड्डी की गोली से बने हुए हार एवं ग्रैवेयक (धारण करने के कारण वे) अत्यन्त उज्ज्वल हैं । शव की लम्बी

अङ्गुलियों की माला से उनका दृढ़ उरस्थल अलङ्कृत है । वे कठोर विशाल और ऊँचे दो स्तनों वाली हैं । इनके उत्तम नितम्ब महा मरकत पत्थर से निर्मित वेदी के समान (चिकने, कठोर और समतल) हैं । उनके जघन का विस्तार अत्यधिक है और कटि अत्यन्त क्षीण है । आँतों से बँधे हुए बच्चों के शिररूपी किङ्किणी (=करधनी) से वे मण्डित हैं । वे लम्बी सोलह भुजा वाली हैं । मनुष्य के कपाल उनके अङ्गों में शोभामान है । शवों की धमनियों को हाथ में लपेट कर कङ्कण बना लिया है । शव के गूँथे बालों की रस्सी से उनका कटिसूत्र रचा गया है । मृत शिशु के हाथों को गूँथ कर उन्होंने करधनी बनायी है । अङ्गुलियों में मांस, मेदा, मज्जा की अङ्गूठियाँ पहन रखी हैं ॥ २३-३० ॥

असिं त्रिशूलं चक्रं च शरमङ्कुशमेव च ।
लालनं च तथा कर्त्रीमक्षमालां च दक्षिणे ॥ ३१ ॥
पाशं च परशुं नागं चापं मुद्गरमेव च ।
शिवापोतं खर्परं च वसासृङमेदसान्वितम् ॥ ३२ ॥
लम्बत्कचं नृमुण्डं च धारयन्तीं स्ववामतः ।
विलसन्नूपुरां देवीं ग्रथितैः शवपञ्जरैः ॥ ३३ ॥

(वे अपने) दायें हाथों में खड्ग, त्रिशूल, चक्र, बाण, अङ्कुश, लालन (=मूषक की आकृतिवाला विषधर जन्तु), कैंची और अक्षमाला तथा अपने बायें हाथों में पाश, परशु, नाग, धनुष, मुद्गर, सियार का बच्चा तथा वसा रक्त और मेदा से भरा कपाल ली हुई हैं । गूँथे हुए शवपञ्जरों के नूपुर से शोभायमान हैं ॥ ३१-३३ ॥

श्मशानप्रज्वलद्घोरचिताग्निज्वालमध्यगाम्।
अधोमुखमहादीर्घप्रसुप्तशवपृष्ठगाम् ॥ ३४ ॥
वमन्मुखानलज्वालाजालव्याप्तदिगन्तराम् ।
प्रोत्थायैव हि तिष्ठन्तीं प्रत्यालीढपदक्रमाम्॥ ३५ ॥

श्मशान में जलती हुई घोर चिताग्नि की ज्वाला के मध्य में स्थित, औंधे मुँह सोये हुए विशाल शव की पीठ पर खड़ी हैं । उनके मुख से उगली हुई अग्नि की ज्वालायें दिग् दिगन्तर में फैली हुई हैं । एक पैर पर खड़ी होकर दूसरे को उठाकर आगे रखने की स्थिति में वर्त्तमान हैं ॥ ३४-३५ ॥

वामदक्षिणसंस्थाभ्यां नदन्तीभ्यां मुहुर्मुहुः ।
शिवाभ्यां घोररूपाभ्यां वमन्तीभ्यां महानलम्॥ ३६ ॥
विद्युदङ्गारवर्णाभ्यां वेष्टितां परमेश्वरीम् ।
सर्वदैवानुलग्नाभ्यां पश्यन्तीभ्यां महेश्वरीम् ॥ ३७ ॥
अतीव भषमाणाभ्यां शिवाभ्यां शोभितां मुहुः ।
कपालसंस्थं मस्तिष्कं ददतीं च तयोर्द्वयोः ॥ ३८ ॥

उनके बायें और दायें भयङ्कर रूपों वाली दो सियारिने खड़ी हैं जो अपने मुख से आग उगल रही हैं । विद्युत और अङ्गार के वर्ण वाली ये दोनों सियारिने कामकला-काली को घेरे हुए हैं । वे सदा उनके सन्निकट रहकर उनको देखती रहती हैं । वह देवी कपाल में स्थित मस्तिष्क को उन दोनों को देती रहती हैं और वे शिवायें उसको निरन्तर खाती रहती हैं ॥ ३६-३८ ॥

दिगम्बरां मुक्तकेशीमट्टहासां भयानकाम् ।
सप्तधा नद्धनारान्त्रयोगपट्टविभूषिताम् ॥ ३९ ॥
संहारभैरवेणैव सार्द्धं सम्भोगमिच्छतीम् ।
अतिकामातुरां कालीं हसन्तीं खर्वविग्रहाम् ॥ ४० ॥
कोटिकालानलज्वालान्यक्कारोद्यत्कलेवराम् ।
महाप्रलयकोट्यर्कविद्युदर्बुदसन्निभाम् ॥ ४१ ॥
कल्पान्तकारिणीं कालीं महाभैरवरूपिणीम् ।
महाभीमां दुर्निरीक्ष्यां सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ४२ ॥
शत्रुपक्षक्षयकरीं दैत्यदानवसूदनीम् ।
चिन्तयेदीदृशीं देवीं काली कामकलाभिधाम्॥ ४३ ॥

यह देवी नग्न, खुले बालों वाली, अट्टहास करती हुई और भयानक हैं । सात बार ग्रथित नर की आँत के योगपट्ट से विभूषित हैं । वह काली संहारभैरव के साथ निरन्तर सम्भोग चाहती हैं । अत्यन्त कामातुर वह नाटे कद की हैं तथा हँसती रहती हैं । उनका शरीर करोड़ों कालानल को तिरस्कृत करने वाला है तथा महाप्रलय के समय दीप्यमान करोड़ों सूर्य और अरबों विद्युत् के समान है । यह काली कल्प का अन्त करने वाली, महाभैरवरूपिणी, महाभयङ्करी, इन्द्र के सहित सुरों और असुरों के द्वारा दुर्निरीक्ष्य हैं । शत्रुपक्ष का नाश करने वाली, दैत्यदानव का संहार करने वाली कामकला नामक काली का ध्यान करना चाहिये ॥ ३९-४३ ॥

[कामकलाकाल्याः सपरिवाराया अर्चाविधिः]

ततो निःसार्य्य हृत्पद्मात्पीठे श्रीकाममोहने ।
यजेतावाह्य तां देवीं परिवारायुधैः सह ॥ ४४ ॥

कामकलाकाली की सपरिवार अर्चनविधि—ध्यान करने के बाद हृदयकमल से निकाल कर आवाहन कर श्रीकाममोहन पीठ पर परिवार और आयुधों के साथ उस देवी की पूजा करनी चाहिये ॥ ४४ ॥

[कामकलाकाल्याः यन्त्रस्य स्वरूपाभिधानम्]

यन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि तत्र धेहि मनः प्रिये ।
भूपुरे वसुवज्राढ्ये पद्ममष्टदलान्वितम् ॥ ४५ ॥
केसराणि प्रकल्प्यानि तत्रान्तश्चापि कर्णिका ।

कर्णिकान्तस्त्रिकोणस्य त्रितयं पृथगेव हि ॥ ४६ ॥
बहिस्त्रिकोणकोणेषु लिखेद् बीजत्रयं शुभम् ।
मायाबीजं तु वामे स्यात् क्रोधबीजं च दक्षिणे ॥ ४७ ॥
अधः पाशं विनिर्दिश्य कन्दर्पार्णं तु मध्यतः ।
तदन्तः स्थायिनी देवी तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ४८ ॥
एतद् यन्त्रं महादेवि सर्वकामफलप्रदम् ।
एतस्य सर्वयन्त्राणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ४९ ॥

कामकलाकाली के यन्त्रस्वरूप का वर्णन—हे प्रिये! (अब मैं) इसके यन्त्र को बतलाऊँगा । उसमें मन लगाओ । रत्नों और हीरों से अलङ्कृत भूपुर में अष्टदल कमल बनाये । उसमें केसर और केसरों के बीच कर्णिका की रचना करे । कर्णिका के भीतर पृथक्-पृथक् तीन त्रिकोण बनाये । बाह्य त्रिकोण के कोणों में तीन शुभ बीज लिखे । बायें कोण में माया बीज (=ह्रीं) दायें कोण में क्रोधबीज (=हूं) नीचे (के कोण) में पाश (=आं) और मध्य में कन्दर्पबीज (=क्लीं) लिखे । उसके भीतर देवी रहती है और उसमें सब प्रतिष्ठित है । हे महादेवि! यह यन्त्र सर्वकामफलप्रद है। अन्य यन्त्र इसकी सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं है ॥ ४५-४९ ॥

[पूजाविधिनिरूपणम्]

भूतशुद्धिं विधायादौ पूर्ववत्कथितां प्रिये ।
मातृकान्यासपीठादिन्यासं कुर्यात्पुरोक्तवत् ॥ ५० ॥
क्वचिच्च गुह्यकालीवत् क्वचिद् दक्षिणकालिवत्।
न्यासपूजादिकं सर्वं विशेषः कुत्रचित् प्रिये ॥ ५१ ॥
सामान्यं च विशेषं च स्थापयेदर्घ्ययुग्मकम् ।
चतुरः पूजयेद् देवान् गणार्काच्युतशूलिनः ॥ ५२ ॥
कुर्याच्च मानसीं पूजामुपचारैश्च पार्थिवः ।
ततो मुख्यां यजेताद्यां कालीं कामकलाभिधाम् ॥ ५३ ॥

कामकलाकाली की पूजाविधि—हे प्रिये ! सर्वप्रथम पहले कही गयी की भाँति भूतशुद्धि करने के बाद मातृकान्यास पीठ आदि न्यास को पूर्वोक्त की भाँति करना चाहिये । हे प्रिये! कहीं गुह्यकाली की भाँति कहीं दक्षिणकाली की भाँति न्यास पूजा आदि (करणीय होते हैं) । कहीं विशेष (भी करना पड़ता है)। सामान्य और विशेष दोनों प्रकार के अर्घ्य की स्थापना करनी चाहिये । तत्पश्चात् गणेश सूर्य, विष्णु और शिव इन चार देवताओं की पूजा करे । उसके बाद मुख्य कामकला नामक आद्या काली का यजन करे ॥ ५०-५३ ॥

[कामकलाकाल्या आवाहनमन्त्रः]

आवाहयेदनेनैव मन्त्रेण शृणु पार्वति ।

तारं मायां स्मरं पाशमुच्चार्यार्णचतुष्टयम् ॥ ५४ ॥
षडक्षराणि सम्बोध्य देवीनाम यथार्थवत् ।
आगच्छ द्वितयं तिष्ठ युगलं तदनु क्षिपेत् ॥ ५५ ॥
पूजां गृहाणेति युगं वह्निजायान्तमेव हि ।
आवाहयेदनेनैव मन्त्रेण परमेश्वरीम् ॥ ५६ ॥
मूलमन्त्रेण वै कार्यमन्यत्सर्वं शुचिस्मिते ।

कामकलाकाली का आवाहन मन्त्र—हे पार्वति! सुनो निम्नलिखित मन्त्र से आवाहन करना चाहिये—तार (=ऊँ) माया (=ह्रीं) स्मर (=क्लीं) पाश (=आं) इन चारों वर्णों का उच्चारण कर छह अक्षरों का सम्बोधन कर (=कामकलाकालि) देवी नाम (=देवी) 'आगच्छ' को दो बार फिर 'तिष्ठ' को दो बार पढ़ने के बाद 'पूजां गृहाण' को दो बार पढ़कर अन्त में वह्निजाया (=स्वाहा) पढ़ना चाहिये । (इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप होगा—ॐ ह्रीं क्लीं आं कामकलाकालि देवी आगच्छ आगच्छ तिष्ठ तिष्ठ पूजां गृहाण गृहाण स्वाहा) । हे शुचिस्मिते! इस मन्त्र से आवाहन करना चाहिये । अन्य सब कार्य मूलमन्त्र से करना चाहिये ॥ ५४-५७ ॥

[उपचारार्पणस्य सामान्यमन्त्रः]

ङेऽन्तं तन्नाम चोच्चार्य कामबीजाद्यमग्रतः ॥ ५७ ॥
सर्वेष्वेवोपचारेषु मन्त्रोऽसौ परिकीर्तितः ।
विशेषमन्त्रो नो यत्र तत्रासौ मनुरिष्यते ॥ ५८ ॥
यत्र यत्र विशेषोऽस्ति तत्प्रवक्ष्ये न संशयः ।

उपचारार्पण मन्त्र—पहले काम बीज फिर उसका ङेऽन्त नाम उच्चारण करे । (जैसे—क्लीं कामकलाकाल्यै—इसके बाद 'नमः' जोड़ें) । यह मन्त्र समस्त उपचारों के विषय में (प्रयोज्य) कहा गया है । जहाँ विशेष मन्त्र (का कथन) नहीं है वहाँ यही मन्त्र वाञ्छित है । जहाँ विशेष है उसे निःसन्देह मैं कहूँगा ॥ ५७-५९ ॥

[अर्घ्यदानमन्त्रः]

अर्घ्यदाने विशेषोऽस्ति तदपि व्याहरामि ते ॥ ५९ ॥
प्रणवं पाशरोषौ च लज्जां भौतं च बीजकम् ।
श्मशानवासिनीं ङेऽन्तां ङेऽन्तं नाम तथोच्चरेत् ॥ ६० ॥
एषोऽर्घो नम इत्युक्त्वा दद्यादर्घं सुकल्पितम् ।

अर्घ्यदानमन्त्र—अर्घ्यदान के विषय में विशेष मन्त्र है । वह मैं तुमको बतला रहा हूँ । प्रणव, पाश, रोष, लज्जा, भूत बीज, ङे अन्त वाले श्मशानवासिनी पद के बाद ङेऽन्त नाम का उच्चारण करे । तत्पश्चात् 'एषोऽर्घो नमः' कहकर सुकल्पित अर्घ्यदान करे । (मन्त्र का स्वरूप होगा—'ॐ आं हूँ ह्रीं स्फ्रें श्मशानवासिन्यै कामकलाकाल्यै एषोऽर्घो नमः') ॥ ५९-६१ ॥

मूलमन्त्रेण नाम्ना च ह्युपचारांश्च षोडश ॥ ६१ ॥
निवेदयेन्महाकाल्यै यद्यदुक्तं प्रपूजने ।
न गन्धदाने मन्त्रोऽस्ति न वा पुष्पसमर्पणे ॥ ६२ ॥
तयोरेव विशेषोऽस्ति कथयिष्यामि तच्छृणु ।

मूलमन्त्र से षोडशोपचारार्पण—पूजन के विषय में जो-जो कहा गया मूलमन्त्र और (कामकलाकाली के) नाम से सोलह उपचारों का महाकाली के लिये निवेदन करना चाहिये । न गन्धदान के और न ही पुष्पसमर्पण के विषय में किसी मन्त्र का विधान है । उन्हीं दोनों में जो विशेष है उसे बतला रहा हूँ सुनो ॥ ६१-६३ ॥

[अनङ्गगन्धपरिचयः]

यदष्टादशवार्षिक्या न्यूनाया अपि वा भवेत् ॥ ६३ ॥
आर्त्तवं मासिकं यत्स्यादाद्याहोजातशोणितम् ।
अनङ्गगन्धस्तन्नाम नाधिकायाः कदाचन ॥ ६४ ॥
तद्दानफलबाहुल्यं वक्तुमेव न शक्यते ।
स्वयमागत्य देवी सा गृह्णाति शिरसार्पितम् ॥ ६५ ॥
तस्माद् घृणां न कुर्वीत तद्दाने प्रयतेत वै ।

अनङ्गगन्ध का परिचय—अट्ठारह अथवा उससे कम वय की (कन्या का) जो मासिक आर्त्तव (=रज) होता है उसमें प्रथम दिन का जो रक्त होता है वह अनङ्गगन्ध होता है । (अट्ठारह वर्ष से) अधिक का (रज) कभी भी (अनङ्गगन्ध) नहीं होता । (देवी के लिये) उसके अर्पणफल का माहात्म्य कहा नहीं जा सकता । शिर से (अर्थात् भक्तिपूर्वक) अर्पित उसको देवी स्वयं आकर ग्रहण कर लेती है । इसलिये (रज से) कभी घृणा नहीं करनी चाहिये बल्कि उसके दान के विषय में प्रयत्न करना चाहिये ॥ ६३-६६ ॥

[अनङ्गगन्धदानमन्त्रः]

अनङ्गगन्धदानस्य मन्त्रमाकर्णय प्रिये ॥ ६६ ॥
तारं वाग्भवबीजं च प्रासादं कमलार्णकम् ।
क्रोधमारपिशाचार्णं मायां पाशमुदीर्य च ॥ ६७ ॥
ङेऽन्तं रतिप्रियाशब्दं प्रोच्चरेन्नवबीजतः ।
ङेऽन्तं तन्नाम चोच्चार्य एष तन्नाम चोद्धरेत् ॥ ६८ ॥
हार्दमन्त्रं समुच्चार्य गन्धं दद्याच्च साधकः ।

अनङ्गगन्धदान का मन्त्र—हे प्रिये! अनङ्गगन्धदान का मन्त्र सुनो । तार (=ॐ) वाग्भवबीज (=ऐं) प्रासाद (=हौं) कमलार्णक (=श्रीं) क्रोध (=हूं) मार (=क्लीं) पिशाच (=ठः) माया (=ह्रीं) पाश (=आं) का उच्चारण कर रतिप्रिया शब्द के चतुर्थ्यन्त का उच्चारण करे । उक्त नव बीजाक्षरों के बाद ङेन्त उसका नाम उच्चारित

कर 'एष:' और उस गन्ध का नाम कहे। तत्पश्चात् साधक हृदय मन्त्र (=नम:) का उच्चारण कर गन्ध दे। (उक्त मन्त्र का स्वरूप होगा—ॐ, ऐं ह्रौं श्रीं हूँ क्लीं ठ: ह्रीं आं रतिप्रियायै कामकलाकाल्यै एष अनङ्गगन्धो नम:) ॥ ६६-६९ ॥

[स्वयम्भूकुसुमपरिचय:]

जाताद्यरजसो नार्यायदाद्यदिनसम्भवम् ॥ ६९ ॥
पुष्पं स्वयम्भूपुष्पं तत्तदानन्दाय कल्पते।
न सौवर्णेन पुष्पेण न मुक्तामणिभिस्तथा ॥ ७० ॥
न दीपैर्नापि नैवेद्यैर्नापि पूजादिसम्भरै:।
न होमैर्न जपैर्नापि तर्पणै: प्रीयते शिवा ॥ ७१ ॥
यथा स्वयम्भूपुष्पेण प्रीयते जगदम्बिका।
तत्रापि परयोषाया इत्यागमसुगोपितम् ॥ ७२ ॥

स्वयम्भू कुसुम परिचय—पहले पहल रजोधर्मवती नारी का पहले दिन का पुष्प (=रज) स्वयम्भूपुष्प (कहलाता) है। वह आनन्द के लिये होता है। न सुवर्णरचित पुष्पों न मुक्तामणियों से और न दीप नैवेद्य आदि पूजा सामग्रियों तथा होम जप तर्पण से शिवा उतना प्रसन्न होती है जितना कि इस स्वयम्भूपुष्प से जगदम्बा प्रसन्न होती है। उसमें भी यदि दूसरे की स्त्री का हो (तो अति उत्तम) ऐसा आगमों में गोपनीय ढंग से वर्णित है ॥ ६९-७२ ॥

[स्वयम्भूकुसुमार्पणमन्त्र:]

अधुना कथ्यते तस्य दानमन्त्रो वराङ्गने।
प्रणवादी त्रपारत्यौ ङेऽन्तं नाम ततो वदेत् ॥ ७३ ॥
क्रोधं पाशं समुच्चार्य ङेऽन्ता च भगमालिनी।
वाग्भवं च वधूबीजं ङेऽन्ता चापि भगप्रिया ॥ ७४ ॥
पैशाचं कामलं बीजं ङेऽन्ता च मदनातुरा।
एतत्पुष्पस्य नामापि नम इत्यक्षरद्वयम् ॥ ७५ ॥
प्रोच्चार्य दद्यात्तद्देव्यै सर्वकामार्थसिद्धये।
परमाभीष्टमाप्नोति दत्वैतत्पुष्पमुत्तमम् ॥ ७६ ॥
धूपे दीपे च नैवेद्ये मूलमन्त्र: प्रकीर्तित:।
चामरच्छत्रदाने च स एव परिकीर्तित: ॥ ७७ ॥

स्वयम्भू पुष्प के अर्पण का मन्त्र—हे वराङ्गने! अब उसके अर्पण का मन्त्र कहा जा रहा है—पहले प्रणव फिर त्रपा (=ह्रीं) फिर प्रणव के बाद रति (=क्लीं) फिर ङेऽन्त नाम का उच्चारण करे। क्रोध और पाश का उच्चारण कर 'भगमालिनी' शब्द के चतुर्थ्यन्त का उच्चारण करे। वाग्भव, वधूबीज (=स्त्री) के बाद भगप्रिया का चतुर्थ्यन्त उच्चारण कर पैशाच (=ठ:) तथा कमला बीज (=श्रीं) का उच्चारण कर

ङेन्त मदनातुरा का उच्चारण करे । इस पुष्प का नाम और 'नमः' का उच्चारण कर सर्वकामार्थसिद्धि के लिये उसे देवी के लिये अर्पण करे (मन्त्र का स्वरूप—ॐ ह्रीं ॐ क्लूं कामकलाकाल्यै हूं आं भगमालिन्यै ऐं स्त्रीं भगप्रियायै ठः श्रीं मदनातुरायै इदं स्वयम्भूकुसमं नमः) । इस उत्तम पुष्प को देकर साधक परम अभीष्ट को प्राप्त करता है । धूप दीप नैवेद्य के विषय में मूलमन्त्र (का उच्चारण) कहा गया है चामर और छत्र के दान में भी उसी मन्त्र (के उच्चारण का विधान) वर्णित है ॥ ७३-७७ ॥

[पूजायां बल्यर्पणमन्त्रः]

पूजायां बलिदानस्य मन्त्रमाकर्णय प्रिये ।
एकं तारं समुद्धृत्य मारमायारुषोऽर्णकान् ॥ ७८ ॥
त्रिस्त्रिः प्रोच्चार्य ह्रां ह्रीं हूमेतत्त्रितयमुद्धरेत् ।
भगप्रिये त्विति पदं भगमालिनि चेति च ॥ ७९ ॥
महाबलिमिति स्मृत्वा गृह्णेति च पदद्वयम् ।
भक्षयेति पदद्वन्द्वं मम शत्रूनथापि च ॥ ८० ॥
नाशयोच्चाटय हन त्रुट छिन्धि पचापि च ।
मथ विध्वंसय तथा मारय द्रावयापि च ॥ ८१ ॥
युगं युगं दश भवेन्मायाग्निवनितायुतः ।
बलिदाने महामन्त्रः सर्वकामफलप्रदः ॥ ८२ ॥

पूजा में बलि के अर्पण का मन्त्र—हे प्रिये! पूजा में बलिदान का मन्त्र सुनो । एक बार प्रणव का उच्चारण कर काम माया और क्रोध बीजों का तीन-तीन बार उच्चारण कर ह्रां ह्रीं हूँ इन तीन वर्णों का उच्चारण करना चाहिये । इसके बाद 'भगप्रिये' 'भगमालिनि महाबलिम्' को कहकर 'गृह्ण' और 'भक्षय' पदों को दो-दो बार उच्चारित करे । इसके बाद 'मम शत्रून्' कहने के बाद 'नाशय उच्चाटय हन त्रुट छिन्धि पच मथ विध्वंसय मारय द्रावय' इन दश पदों को दो-दो बार कहकर माया तथा अग्निवनिता (=स्वाहा) कहे । (इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप होगा—ॐ क्लीं क्लीं क्लीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं हूं ह्रां ह्रीं हूं भगप्रिये भगमालिनि महाबलिं गृह्ण गृह्ण भक्षय भक्षय मम शत्रून् नाशय नाशय उच्चाटय उच्चाटय हन हन त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि पच पच मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय मारय मारय द्रावय द्रावय ह्रीं स्वाहा) । बलिदान के विषय में यह महामन्त्र सर्वकामफलप्रद है ॥ ७८-८२ ॥

[भोजने बल्यर्पणस्य पृथङ् मन्त्रः]

भोजने बलिदानस्य मन्त्रोऽन्योऽस्ति वरानने ।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य लज्जां हूं युग्मयुग्मकम् ॥ ८३ ॥
क्षौं क्षौं भूतार्णयुगलं पाशयुग्मं स्मरद्वयम् ।
नाम सम्बोध्य देव्यास्तु महाकामातुरेऽपि च ॥ ८४ ॥

महाकालप्रिये चापि ममानिष्टं ततो वदेत् ।
निवारय पदद्वन्द्वं शत्रूनिति पदं ततः ॥ ८५ ॥
स्तम्भयेति पदद्वन्द्वं मारयेति तथैव च ।
दम युग्मं मर्द्दययुगं शोषयेति युगं ततः॥ ८६ ॥
इमं बलिं गृह्ण गृह्ण तत एतावदुच्चरेत् ।
खादयेति पदद्वन्द्वं क्रोधाग्निवनितायुतः ॥ ८७ ॥

भोजन में बलि के अर्पण का मन्त्र—हे वरानने! भोजन के विषय में बलिदान का मन्त्र दूसरा है । पहले प्रणव फिर लज्जा और हं का दो-दो बार, फिर क्षौं क्षौं, फिर भूतवर्ण दो बार, दो पाश, दो स्मर तत्पश्चात् देवी के नाम का सम्बोधन, 'महाकालप्रिये' कहने के बाद 'ममानिष्टं' कहे । फिर 'निवारय' को दो बार । पुनः 'शत्रून्' कहने के बाद 'स्तम्भय' को दो बार, 'मारय' को भी दो बार, दम मर्दय शोषय को दो-दो बार कहने के पश्चात् 'इमं बलिं गृह्ण गृह्ण' कहे । फिर 'खादय' को दो बार कह कर क्रोध और अग्निवनिता का उच्चारण करे । (इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप होगा—ॐ ह्रीं ह्रीं हं हं क्षौं क्षौं स्फ्रें स्फ्रें आं आं क्लीं क्लीं कामकलाकालि महाकामातुरे महाकालप्रिये ममानिष्टं निवारय निवारय शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय मारय मारय दम दम मर्दय मर्दय शोषय शोषय इमं बलिं गृह्ण गृह्ण खादय खादय हूं स्वाहा) ॥ ८३-८७ ॥

भोजनादौ महामन्त्रो बलिदाने प्रकीर्तितः ।
एवं निर्वर्त्य देव्यास्तु पूजां सर्वोपचारिकाम् ॥ ८८ ॥
सप्तावरणपूजां तामारभेत ततः क्रमात् ॥ ८९ ॥

॥ इति श्रीमदादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥

...✿...

भोजन आदि एवं बलिदान में महामन्त्र का वर्णन किया गया । देवी की इस प्रकार सर्वोपचार वाली पूजा करने के बाद साधक को क्रम से सप्तावरण पूजा का प्रारम्भ करना चाहिये ॥ ८८-८९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकाल-संहिता के कामकलाकाली खण्ड के मन्त्रोद्धार आदि वर्णन नामक द्वितीय पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ २ ॥

...✿...

तृतीयः पटलः

[सप्तावरणपूजाविधिः]

[यन्त्रे कोणस्थदेवीनां पूजाविधिः]

महाकाल उवाच—

पूर्वं यत्कथितं यन्त्रं त्रित्रिकोणपरिष्कृतम् ।
बहिस्त्रिकोणे तस्यैव तयोर्मध्ये च षड् यजेत् ॥ १ ॥
संहारिणी भीषणा च मोहिनी कोणगा इमाः ।
कोणमध्यस्थितास्तिस्रः कुरुकुल्ला कपालिनी ॥ २ ॥
विप्रचित्ता क्रमेणैव पूज्याः षट् प्रथमावृतौ ।

सप्तावरणपूजान्तर्गत यन्त्रस्थदेवीपूजा—तीन त्रिकोणों से परिष्कृत जिस यन्त्र का मैने पहले वर्णन किया उसी के बाहर त्रिकोण में (पूर्वापर) दो कोणों तथा मध्य कोण में छह (देवियों) की पूजा करनी चाहिये । (वे छह देवियाँ हैं—) संहारिणी भीषणा और मोहिनी ये कोण के बाहर स्थित हैं तथा कुरुकुल्ला कपालिनी और विप्रचित्ता ये तीन कोण के मध्य में स्थित हैं । प्रथम आवरण में ये क्रम से पूजनीय हैं । (ये एक त्रिकोण के बाहर और अन्दर स्थित छह देवियाँ हैं) ॥ १-३ ॥

मध्यत्रिकोणेऽपि तथा कोणकोणान्तरस्थिताः ॥ ३ ॥
उग्रा चोग्रप्रभा दीप्ता त्रिकोणाग्रे व्यवस्थिताः ।
नीला घना वलाका च तयोरन्तरगोचराः ॥ ४ ॥
पूजनीयाः प्रयत्नेन द्वितीयावरणे प्रिये ।

मध्य त्रिकोण में उसी प्रकार बाह्य कोण में एवं कोण के भीतर, (पूजा करनी चाहिये) उग्रा उग्रप्रभा और दीप्ता त्रिकोण के बाहर स्थित हैं, नीला घना और बलाका उन दोनों के बीच रहती हैं । हे प्रिये ! द्वितीय आवरण में (इन छह देवियों की) प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये ॥ ३-५ ॥

सर्वान्तःस्थे त्रिकोणे तु त्रिस्त्रिरेकत्र पूजयेत् ॥ ५ ॥
ब्राह्मी नारायणी चैव सव्ये माहेश्वरी तथा ।
चामुण्डा चापि कौमारी तथा चैवापराजिता ॥ ६ ॥
दक्षिणे पूजयेत्तिस्रस्तिस्रः पश्चिमगा अपि ।
वाराही नारसिंही च तथेन्द्राणी प्रकीर्तिता ॥ ७ ॥

सबके अन्दर स्थित त्रिकोण में एक-एक जगह तीन-तीन की पूजा करनी चाहिये । बाँयी ओर ब्राह्मी-नारायणी-माहेश्वरी की तथा दायीं ओर चामुण्डा-कौमारी

तथा अपराजिता की पूजा करनी चाहिये । पश्चिम में भी वाराही-नारसिंही तथा इन्द्राणी (पूजनीय) कही गयी हैं ॥ ५-७ ॥

सर्वाः श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः ।
कपालं तर्ज्जनं चैव धारयन्त्यः सुसम्मदाः ॥ ८ ॥
सर्वासामपि वै देयो बलिः पूजा तथैव च ।
अनुलेपनकं चापि विभवेनोपकल्पितम् ॥ ९ ॥
त्रिस्त्रिः पूजा प्रकर्तव्या सर्वासामपि सर्वदा ।

सभी देवियाँ साँवले रंग की तथा हाथ में खड्ग ली हुई हैं । मुण्डमाला से विभूषित ये मदमत्त देवियाँ (हाथों में) कपाल और तर्जन (=तर्जनी ऊँगली को ऊपर उठाकर तर्जन मुद्रा) धारण की हैं । सभी के लिये बलि और पूजा प्रदान करनी चाहिये । अपने सामर्थ्य के अनुसार बनाया गया अनुलेप (=शरीर में लेप के लिये सुगन्धित द्रव्य) भी देना चाहिये । समस्त देवियों की सर्वदा तीन-तीन बार पूजा करनी चाहिये ॥ ८-१० ॥

[अष्टभैरवपूजा]

दलेषु पूजयेदष्टौ भैरवा ये प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥
असिताङ्गो रुरुश्चैव चण्ड उन्मत्तसञ्ज्ञकः ।
क्रोधस्तथैव कापाली तथा भीषणनामकः ॥ ११ ॥
सम्मोहनस्तथा सर्वे कर्त्तृखर्प्परधारिणः ।
कालाञ्जनचयप्रख्या द्विभुजा रौद्ररूपिणः ॥ १२ ॥

अष्टभैरव-पूजा—जो आठ भैरव बतलाये गये हैं उनकी अष्टदलों में पूजा करनी चाहिये । असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, उन्मत्त, क्रोध, कापाली, भीषण तथा सम्मोहन (ये आठ भैरव कहे गये हैं) । सब के सब दो भुजावाले, कालाञ्जनसमूह के समान (काले) भयङ्कर रूपवाले, कैंची तथा खप्पर धारण किये हुए हैं (ये चतुर्थ आवरण में पूज्य कहे गये हैं) ॥ १०-१२ ॥

[अष्टक्षेत्रपालानां पूजा]

एतान् सम्पूज्य विधिवत् क्षेत्रपालान् प्रपूजयेत् ।
एकपादो विरूपाक्षो भीमः सङ्कर्षणस्तथा ॥ १३ ॥
चण्डघण्टो मेघनादो वेगमाली प्रकम्पनः ।
एते चाष्टौ क्षेत्रपाला दलयोरन्तरे स्थिताः ॥ १४ ॥
विकृतास्या भीमरूपा गदापरिघपाणयः ।
दलयोरन्तरे पूज्याः पञ्चमावरणे प्रिये ॥ १५ ॥

अष्टक्षेत्रपाल-पूजा—उपर्युक्त भैरवों की विधिवत् पूजा करने के बाद क्षेत्रपालों की पूजा करनी चाहिये । (इनके नाम हैं—) एकपाद, विरूपाक्ष, भीम, सङ्कर्षण,

चण्डघण्ट, मेघनाद, वेगमाली तथा प्रकम्पन । ये आठ क्षेत्रपाल दो-दो दलों के भीतर स्थित हैं । विकृत मुख और भयङ्कर रूप वाले ये हाथ में गदा और परिघ लिये हैं । हे प्रिये! पञ्चम आवरण में इनकी दो दलों के बीच पूजा करनी चाहिये ॥ १३-१५ ॥

[अष्टयोगिनीनां पूजा]

षष्ठे चावरणे देव्या योगिनीरष्ट पूजयेत् ।
उल्कामुखी कोटराक्षी विद्युज्जिह्वा करालिनी ॥ १६ ॥
वज्रोदरी तापिनी च ज्वाला जालन्धरी तथा ।
व्यात्तानना घोररावा जिह्वाललनभीषणाः ॥ १७ ॥
वसासृङ्मांससम्पूर्णकपालासिकराः स्मृताः ।
एता दलाग्रे सम्पूज्याः षष्ठावरणके क्रमात् ॥ १८ ॥

अष्टयोगिनी-पूजा—देवी के षष्ठ आवरण में आठ योगिनियों की पूजा करनी चाहिये । वे इस प्रकार हैं—उल्कामुखी, कोटराक्षी, विद्युज्जिह्वा, करालिनी, वज्रोदरी, तापिनी, ज्वाला और जालन्धरी । ये सब खुले मुँह वाली, भयङ्कर शब्द करने वाली, लपलपाती हुई जिह्वा से भीषण तथा हाथों में वसा-रक्त-मांस से पूर्ण कपाल तथा खड्ग धारण की हुई हैं । छठें आवरण में इनकी पूजा कमलदलों के अग्रभाग में की जानी चाहिये ॥ १६-१८ ॥

[लोकपालानां पूजा]

लोकपालाश्च सम्पूज्या बहिर्दशसु दिक्ष्वपि ।
स्वस्वायुधासक्तकराः स्वस्ववाहनसंयुताः ॥ १९ ॥
सप्तावरणमेतत्ते कथितं भक्तितत्परे ।
देव्याः कामकलाकाल्याः समन्त्रध्यानपूर्वकम् ॥ २० ॥

लोकपाल-पूजा—(सबसे) बाहर (स्थित सप्तम आवरण) में दशो दिशाओं में लोकपालों (=दश दिक्पालों) की पूजा करनी चाहिये । ये अपने हाथों में अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र लिये हुए अपने-अपने वाहनों के साथ हैं । हे भक्ति में तत्पर रहने वाली! देवी कामकलाकाली का मन्त्र और ध्यान के साथ यह सात आवरण तुमको बतलाया गया ॥ १९-२० ॥

एवं पूर्वोक्तरूपां तां सम्पूज्य परमेश्वरीम् ।
योगिनीचक्रसहितां भैरवेण समन्विताम् ॥ २१ ॥
ततश्च यत्नतः कान्ते बलिं सम्प्रतिपादयेत् ।
बलिमुत्सार्य नैवेद्यं नैर्ऋत्यां दिशि चोत्सृजेत् ॥ २२ ॥
हृदये चैव देवीं तां संस्थाप्य विधिवत्पुनः ।
निर्माल्यं च शुचौ देशे धारणीयं शिरस्यपि ॥ २३ ॥

हे कान्ते! इस प्रकार योगिनीचक्र के सहित भैरव से युक्त पूर्वोक्त रूप वाली उस

परमेश्वरी की पूजा करने के बाद प्रयत्नपूर्वक उसके लिये बलि प्रदान करनी चाहिये । बलि प्रदान करने के बाद नैर्ऋत्य दिशा में उसके लिये नैवेद्य दे । पुनः देवी को हृदय में विधिवत् धारण कर माला को शिर पर भी धारण करे तथा पवित्र स्थान में त्याग दे ॥ २१-२३ ॥

[कामकलाकाल्याः पुरश्चरणविधिवर्णनम्]

अतः परं प्रवक्ष्यामि पौरश्चरणिकं विधिम् ।
एकस्मिन् यत्र विहिते सिद्धिस्तात्कालिकी भवेत् ॥ २४ ॥
भूमिशुद्धिर्द्रव्यशुद्धिः पुरैव कथिता मया ।
यमाश्च नियमा ये स्युः पुरश्चरणकर्मणि ॥ २५ ॥
सर्वानेव प्रयुञ्जीत सततं भक्तितत्परः ।

कामकलाकाली-पुरश्चरण—इसके बाद मैं पुरश्चरण विधि को बतलाऊँगा जिसका एक बार अनुष्ठान करने पर तत्काल सिद्धि मिलती है । भूमिशुद्धि और द्रव्यशुद्धि को मैंने पहले ही बतला दिया है । पुरश्चरण कर्म में जो यम और नियम हैं भक्तितत्पर साधक उन सबका निरन्तर प्रयोग करे ॥ २४-२६ ॥

कृतनित्यक्रियः प्रातः कृतपूजाविधिः शुचिः ॥ २६ ॥
नारास्थि निखनेद् भूमावमुं मन्त्रमुदीरयन् ।
तारक्रोधार्णह्रीपाशस्मरभूतान् समुद्धरन् ॥ २७ ॥
सिद्धिमुच्चार्य देहीति युग्मं बह्न्यङ्गनां वदेत् ।
तदुपर्येव चास्तीर्य स्वासनं सुष्ठु कल्पितम् ॥ २८ ॥
नृमुण्डमग्रतः कृत्वा नरास्थिजपमालया ।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्री हविष्याशी दिवा शुचिः ॥ २९ ॥
अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकं तथैव च ।
दशांशं · होमयेन्मन्त्री तर्पयेदभिषेचयेत् ॥ ३० ॥

(यजमान) प्रातःकाल नित्यक्रिया के बाद पूजा को सम्पन्न कर, पवित्र होकर; निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करता हुआ, भूमि के अन्दर मनुष्य की हड्डी को गाड़े—तार क्रोधवर्ण, लज्जा, पाश, काम और भूतबीज का उच्चारण करता हुआ सिद्धि का नाम लेकर 'देहि देहि' कहकर वह्नि की स्त्री का उच्चारण करे । (मन्त्र का स्वरूप हुआ—ॐ हूं ह्रीं आं क्लीं स्फ्रें अमुकीं सिद्धिं देहि देहि स्वाहा) । उस (गड़ी हुई हड्डी) के ऊपर भली-भाँति बनाये गये अपने आसन को बिछाकर अपने सामने नरमुण्ड को रखकर नरअस्थि की जपमाला से मन्त्री एक लाख जप करे । दिन में हविष्यान्न खाय और पवित्र रहे । रात्रि में अशुचि हो कर एक लाख उसी प्रकार जप करे । (जप का) दशांश होम । (होम का दशांश) तर्पण (और तर्पण का दशांश मार्जन) या अभिषेक करे ॥ २६-३० ॥

होमे सन्तर्पणे चैव पूजावत्कथितो विधिः ।
पूजायां वा प्रयोगे वा होमे वा तर्पणेऽथ वा ॥ ३१ ॥
गुह्यकालीविधानेन सर्वं कार्यं शुचिस्मिते ।
अत्रानुक्तं विधानं यत्तत्रत्यं तत्प्रकल्पयेत् ॥ ३२ ॥
तत्राप्यनुक्तं यत्किञ्चित्तत्रोक्तो दक्षिणाविधिः ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं समासेन वरानने ॥ ३३ ॥
देव्याः कामकलाकाल्याः पूजाविधिरनुत्तमः ।

होम और तर्पण में पूजा के समान विधि कही गयी है । हे शुचिस्मिते! पूजा अनुष्ठान होम अथवा तर्पण समस्त कार्य गुह्यकाली विधान के अनुसार करना चाहिये । यहाँ जिस विधान का उल्लेख नहीं हुआ उसे वहाँ (=गुह्यकाली प्रकरण में वर्णित विधान) के अनुसार करना चाहिये । वहाँ भी जो नहीं कहा गया उसको (अनुष्ठान के सन्दर्भ में) दक्षिणकाली विधान (के अनुसार करना चाहिये) हे वरानने! यह सब मैंने तुमको संक्षेप में बतलाया । देवी कामकलाकाली की पूजाविधि सबसे उत्कृष्ट है ॥ ३१-३४ ॥

[कामकलाकाल्याः प्रयोगविधिः—प्रथमः प्रयोगः]

अतः परं प्रयोगांस्तान् वक्ष्यामि प्रयता शृणु ॥ ३४ ॥
स्नातः शुक्लाम्बरधरः कृतनित्यक्रियो दिवा।
रात्रौ नग्नः शयानश्च मैथुने च व्यवस्थितः ॥ ३५ ॥
अथवा मुक्तकेशश्च प्रजपेदयुतं नरः ।
भवन्ति तत्क्षणाद् देवि तेन सर्वार्थसिद्धयः ॥ ३६ ॥
स्तम्भनं मोहनं वापि वशीकारो विशेषतः ।
यद्यदिच्छति तत्सर्वं साधयेदविचारयन् ॥ ३७ ॥

कामकलाकाली के प्रयोग—प्रथम प्रयोग—इसके बाद मैं उन प्रयोगों को बतलाऊँगा । पवित्र होकर सुनो (मन्त्री) स्नान कर दिन में श्वेत वस्त्र पहने । सन्ध्या वन्दन कर चुका हो । रात्रि में नग्न होकर सोये । मैथुन में लगा रहे । (यदि नग्न न हो सके) तो बालों को खुला रखकर और मैथुन में आसक्त होकर दश हजार जप करे । हे देवि! उससे तत्क्षण समस्त सिद्धियाँ मिलती है । विशेषतया स्तम्भन, सम्मोहन, वशीकरण अथवा मनुष्य जो-जो चाहता है उस सबको विना विचारे सिद्ध कर लेता है ॥ ३४-३७ ॥

[द्वितीयः प्रयोगः]

नग्नां परस्त्रियं वीक्ष्य प्रजपेदयुतं सुधीः ।
स भवेत्सर्वविद्यानां पारगः सर्वदैव हि ॥ ३८ ॥
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभा मताः ।

गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते ॥ ३९ ॥

द्वितीय प्रयोग—बुद्धिमान साधक नग्न परस्त्री को देखता हुआ मन्त्र का दश हजार जप करे तो वह सदा समस्त विद्याओं का पारगामी होता है । उसके दर्शनमात्र से ही शत्रु निष्प्रभ हो जाते हैं । सभा के मध्य उसके मुख से गद्य-पद्यमयी वाणी निकलती है ॥ ३८-३९ ॥

[तृतीयः प्रयोगः]

अथ वा मुक्तकेशोऽसौ हविष्यं भक्षयन्नरः ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा भगमामन्त्र्य यत्नतः ॥ ४० ॥
मैथुनं यः प्रकुर्वीत धनधान्यसमन्वितः ।
सर्वविद्यावतां श्रेष्ठः स भवेन्नात्र संशयः ॥ ४१ ॥

तृतीय प्रयोग—अथवा मुक्तकेश यह मनुष्य दिन में हविष्य खाये । प्रयत्नपूर्वक भग को आमन्त्रित कर मैथुन करता हुआ १०८ बार जप करे तो वह साधक धनधान्य से समृद्ध हो जाता है । समस्त विद्वानों में वह श्रेष्ठ हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं ॥ ४०-४१ ॥

[चतुर्थः प्रयोगः]

ऋतुमत्या भगं पश्यन्प्रजपेदयुतं नरः ।
अनर्थितापि तद्वाणी गद्यपद्यमयी भवेत् ॥ ४२ ॥
छन्दोबद्धा परं तस्य वाणी वक्त्रात्प्रजायते ।

चतुर्थ प्रयोग—जो मनुष्य रजोवती स्त्री के भग को देखता हुआ दश हजार जप करता है बिना चाहे उसकी वाणी गद्यपद्यमयी हो जाती है । उसके मुख से छन्दोबद्ध वाणी निकलती है ॥ ४२-४३ ॥

[पञ्चमः प्रयोगः]

सुरतेषु च जप्तव्यं महापातकमुक्तये ॥ ४३ ॥
धनागमाय च तथा परयोषासमागमे ।

पञ्चम प्रयोग—महापातक से मुक्ति के लिये सुरति से संसक्त होकर जप करना चाहिये । धनप्राप्ति के लिये परायी स्त्री के साथ सम्भोग करते हुए जप करना चाहिये ॥ ४३-४४ ॥

[षष्ठः प्रयोगः]

यदि नो योषितः सङ्गस्तदा रेतः प्रयत्नतः ॥ ४४ ॥
समुत्सार्य जपं कुर्यात्सर्वकामार्थसिद्धये ।
तत्रैव रतिमारभ्य यो जपेन्मन्त्रवित्तमः ॥ ४५ ॥

अयुतं मैथुनीभूत्वा मन्त्रजापपरायणः ।
स याति परमां सिद्धिं देवेनापि सुदुर्लभाम् ॥ ४६ ॥

षष्ठ प्रयोग—यदि स्त्री का सङ्ग न मिले तो प्रयत्नपूर्वक अपने वीर्य को निकाल कर समस्त इच्छाओं की पूर्त्ति के लिये जप करना चाहिये । उसी (=वीर्य) में रति का प्रारम्भ कर जो मन्त्रज्ञानी जप करता है; मैथुनी होकर दश हजार जप में निरत रहता है वह देवदुर्लभ सिद्धि को प्राप्त करता है ॥ ४४-४६ ॥

आकर्षणवशीकारौ मारणोच्चाटने तथा ।
स्तम्भनं मोहनं चैव बुद्धेः सन्त्रासनं तथा ॥ ४७ ॥
करोति तत्क्षणादेव नात्र कार्या विचारणा।
वाग्मित्वं च धनित्वं च बहुपुत्रत्वमेव च ॥ ४८ ॥
न जरा न च रोगो वा न च मृत्युर्न वा भयम् ।
न च त्रासो मनुष्येभ्यो न च वाक्कायपातनम् ॥ ४९ ॥
अथवा स भवेन्नित्यं चतुर्विंशतिसिद्धिभाक् ।

(वह मन्त्रवेत्ता) आकर्षण, वशीकरण, मारण, उच्चाटन, स्तम्भन, सम्मोहन और बुद्धि का सन्त्रास तत्क्षण (=मन्त्रजपकाल में) ही प्राप्त करता है । वह वाग्मी धनी और बहुपुत्रवाला हो जाता है । उसे रोग, जरा, मृत्यु, भय, मनुष्यों से त्रास नहीं मिलता तथा उसके वाणी और शरीर का नाश नहीं होता । अथवा वह नित्य चौबीस सिद्धियों वाला हो जाता है ॥ ४७-५० ॥

[सप्तमः प्रयोगः]

स्वदेहरुधिराक्तैश्च बिल्वपत्रैः सहस्त्रशः ॥ ५० ॥
श्मशानेऽभ्यर्चयेद् देवीं वागीशसमतां व्रजेत् ।
रेतोयुक्तजपापुष्पैः करवीरस्य वा प्रिये ॥ ५१ ॥
श्मशानेऽभ्यर्चयेद् देवीं सर्वसिद्धिं स विन्दति ।
धनवान् बलवान् वाग्मी सर्वयोषित्प्रियो भवेत् ॥ ५२ ॥
सुखी स्यान्नात्र सन्देहो महाकालवचो यथा ।

सप्तम प्रयोग—(जो मन्त्री) अपने देह के रक्त से लिप्त एक हजार विल्वपत्रों से श्मशान में देवी की पूजा करता है वह वृहस्पतितुल्य हो जाता है । अपने वीर्य से युक्त जवाकुसुम अथवा कनेर पुष्प से जो श्मशान में देवी की पूजा करता है वह सब सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है । वह धनवान्, बलवान्, वक्ता और सभी स्त्रियों का प्रिय हो जाता है । सुखी हो जाता है । इस (कथन) में उसी प्रकार सन्देह नहीं है जैसे महाकाल के वचन में ॥ ५०-५३ ॥

[अष्टमः प्रयोगः]

श्मशाने योषितं बीजैर्मध्येऽभ्यर्च्य सहस्त्रशः ॥ ५३ ॥

रक्तचन्दनदिग्धाङ्गीं रक्तपुष्पैरलङ्कृताम् ।
पूजयित्वा भगं वीक्ष्य ततो ध्यायेत कालिकाम्॥ ५४ ॥
सद्यो हि लभते राज्यं यदि सा न भयायते।
मेषमाहिषमांसेन वाग्मित्वं तस्य जायते ॥ ५५ ॥

अष्टम प्रयोग—श्मशान के मध्य में रक्त, चन्दन से लिप्त अङ्गोंवाली तथा लालफूलों से अलङ्कृत स्त्री की बीजों[1] से एक हजार बार पूजा कर उसके भग को देखता हुआ जो काली का ध्यान करता है, यदि वह स्त्री भयभीत नहीं होती तो उस साधक को उसी दिन या शीघ्र राज्यलाभ होता है । मेष अथवा महिष के मांस से (पूजा करने पर साधक) वाग्मी हो जाता है ॥ ५३-५५ ॥

[नवमः प्रयोगः]

श्मशाने शयने चैव शवासनगतः पुमान् ।
असकृच्च जपेन्मन्त्रं सर्वसिद्धिफलप्रदम् ॥ ५६ ॥
तर्पयेत्तां श्मशाने तु रक्तमांसादिभिस्त्रिधा ।
त्रिस्त्रिर्मनुमुदीर्यैव सर्वसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ ५७ ॥

नवम प्रयोग—श्मशान में और (साधक के अपने) शयन में (अथवा श्मशान में या शयनकक्ष में) शव के ऊपर आसन (अथवा शवासन) लगाकर बैठा हुआ पुरुष देवी मन्त्र का बार-बार जप करे तो समस्त सिद्धि मिलती है । श्मशान में तीन-तीन बार मन्त्र का उच्चारण कर रक्त-मांस आदि से तीन बार तर्पण करे तो निश्चितरूप से सब सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ५६-५७ ॥

[दशमः प्रयोगः]

रेतोभिश्च तथा तद्वत् स्वकीयेन वरानने ।
मैथुनायितयोषाया भगप्रक्षालनोदकैः ॥ ५८ ॥
मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि ।
उन्दुरोलूकरक्तेन वाग्मिता तस्य जायते ॥ ५९ ॥
धनित्वं जायते तस्य सर्वसिद्धिः प्रजायते।
वचसा स भवेज्जीवो धनेन च धनाधिपः ॥ ६० ॥
आज्ञया देवराजोऽसौ रूपेण च मनोभवः ।
बलेन पवनो ह्येष सर्वतश्चार्थसाधकः ॥ ६१ ॥
पक्वापक्वे हि यन्मांसे सास्थि दद्यात्सदा बलिम् ।
मूषमार्जारमांसं च मेषमाहिषसम्भवम्॥ ६२ ॥
सर्वं सास्थि प्रदातव्यं सदा लोमसमन्वितम् ।

---

१. यहाँ पूजा में सम्भवतः लाल अनार के लाल बीजों का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि रक्त चन्दन, रक्तपुष्प के वर्णन से रक्त बीज का ही संकेत होता है ।

दशम प्रयोग—हे वरानने! उसी प्रकार अपने वीर्य, मैथुन के बाद स्त्री के भगप्रक्षालन के जल, मेष एवं महिष के रक्त, नर-रक्त, उन्दुर (=चूहा) और उल्लू के रक्त से (देवी का तर्पण करने से) उस (साधक) को वाग्मित्व प्राप्त होता है । वह धनी हो जाता है । उसे समस्त सिद्धि मिलती है । वाणी से वह वृहस्पति, धन से कुबेर, आज्ञा से देवराज इन्द्र, रूप से कामदेव बल से पवन हो जाता है । सब प्रकार से वह अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेता है । पके एवं कच्चे दोनों प्रकार के मांस की अस्थि के साथ बलि देनी चाहिये । मूस मार्जार मेष भैंसा सबके मांस को अस्थि और लोम के साथ समर्पित करना चाहिये ॥ ५८-६३ ॥

[एकादशतमः प्रयोगः]

स्ववीर्य स्वनखं छिन्नं केशं सम्मार्जनागतम् ॥ ६३ ॥
निवेदयेत् श्मशाने तत्सर्वसिद्धिं स विन्दति ।

एकादश प्रयोग—अपना वीर्य, कटा हुआ अपना नख और कंघी करने से (टूट कर हाथों में) आया हुआ बाल (इन सबको यदि) श्मशान में (देवी को) अर्पित करे तो वह (साधक) समस्त सिद्धियों को प्राप्त करता है ॥ ६३-६४ ॥

[द्वादशतमः प्रयोगः]

नारीरजोऽन्वितं कृत्वा पर्णानां शतमुत्तमम् ॥ ६४ ॥
प्रत्येकं प्रजपेन्मन्त्रं ततस्तद्धोमयेद् बुधः ।
युगानामयुतं तेन मान्मथी पूजिता भवेत् ॥ ६५ ॥
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य वाग्मी धीरश्च जायते ।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्पृथिव्यां जातु विद्यते ॥ ६६ ॥

द्वादश प्रयोग—पलाश के एक सौ पत्ते को स्त्री के रज से सम्मिश्रित करे । प्रत्येक के पहले मन्त्र का जप कर विद्वान्, उसका (अग्नि में) होम करे । इससे कामकलाकाली की दश हजार युगों की पूजा हो जाती है । (इस पूजा से) उस साधक को सब सिद्धि मिलती है । वह वाग्मी और धीर बन जाता है । उसके लिये पृथिवी में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥ ६४-६६ ॥

[त्रयोदशतमः प्रयोगः]

योनिरूपं हि कुण्डं वै कृत्वा वैतस्तिमानतः ।
हस्तविस्तारतः कृत्वा हस्तं चापि तथा अधः ॥ ६७ ॥
तत्र कार्या हि मन्त्रेण वह्निस्थापनिकाः क्रियाः ।
संहारभैरवायादौ दद्यात्प्रथममाहुतिम् ॥ ६८ ॥
रुरुमांसेन साज्येन भक्तेन रुधिरेण च ।
कृष्णपुष्पेण साज्येन सरक्तेन विशेषतः ॥ ६९ ॥

आमिषादिभिरप्येवं श्मशाने जुहुयात्सुधीः ।
स्नातः शुक्लाम्बरधरः शुचिः प्रयतमानसः ॥ ७० ॥
दिवा चैव प्रकर्तव्यं सर्वकामार्थसिद्धये ।
रात्रौ नग्नो मुक्तकेशो मैथुने च व्यवस्थितः ॥ ७१ ॥
प्रकर्त्तव्यं प्रयत्नेन सर्वकामार्थसिद्धये ।
किं बहूक्तेन देवेशि सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ७२ ॥
द्विजादीनां तु सर्वेषां दिवाविधिरिहोच्यते ।
शूद्राणां तु तथा प्रोक्तं रात्रिदृष्टं महामतम् ॥ ७३ ॥
यद्यत्कामयते चित्ते तत्तदाप्नोति नित्यशः ।

त्रयोदश प्रयोग—एक वितस्ति (=१२ अङ्गुल) चौड़ा एक हाथ लम्बा और एक हाथ गहरा कुण्ड बना कर (साधक) उसमें अग्निस्थापन की क्रियायें करे । तत्पश्चात् पहले संहारभैरव के लिये प्रथम आहुति दे । (यह आहुति) रुरुमृग के मांस, घृतयुक्त भात, रुधिर, घृताक्त काला फूल, विशेष रूप से रक्ताक्त पुष्प से दी जानी चाहिये । बुद्धिमान् साधक श्मशान में अन्य प्रकार के मांस आदि से भी आहुति दे । स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र धारण कर स्वच्छ और पवित्र मन वाला (मन्त्री उक्त होम को) दिन में समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिये करे । रात्रि में नग्न तथा मुक्तकेश एवं मैथुनासक्त होकर सर्वकामार्थसिद्धि के लिये (आहुति दे) । हे देवेशि! अधिक कहने से क्या लाभ । (इस अनुष्ठान से साधक) निःसन्देह सब कुछ प्राप्त कर लेता है । समस्त द्विजातियों के लिये यहाँ दिवाविधि का विधान है । शूद्रों के लिये यह महा अनुष्ठान रात्रि में विधेय है । (साधक) मन में जो-जो कामना करता है वह-वह नित्य प्राप्त करता है ॥ ६७-७४ ॥

[उत्तमसिद्धिलाभाय हवनविधिवर्णनम्]

भैरवं तं यजेदादौ पश्चाद् देवीं प्रयत्नतः ॥ ७४ ॥
द्विधा विभज्य वस्तूनि यत्नात्साधकसत्तमः ।
मांसं रक्तं तिलं केशं नखं भक्तं च पायसम् ॥ ७५ ॥
आज्यं चेति प्रयत्नेन होतव्यं सर्वसिद्धये ।
एवं कृत्वा विधानं हि लभते सिद्धिमुत्तमाम् ॥ ७६ ॥
यद्यत्प्रार्थयते चित्ते तत्तदाप्नोति सर्वथा ।
देवत्वं दानवत्वं च सिद्धचारणतां तथा ॥ ७७ ॥
दत्वा सम्पूज्य चाप्नोति सर्वमेवमतन्द्रितः ।
किं बहूक्तेन देवेशि सत्यं कृत्वा त्वयि ब्रुवे ॥ ७८ ॥
ब्रह्माण्डगोलके सिद्धिर्या काचिज्जगतीतले ।
करामलकवत् सिद्धिस्तस्य स्यान्नात्र संशयः ॥ ७९ ॥
एते सामान्यतः प्रोक्ताः प्रयोगाः मन्त्रसिद्धये ।

उत्तम सिद्धि के लिये हवन—उत्तम साधक (होतव्य) वस्तुओं को दो भागों में बाँट कर (उनके द्वारा) पहले भैरव की और बाद में देवी का यजन करे। मांस, रक्त, तिल, केश, नख, भात, खीर और घी का होम प्रयत्नपूर्वक सर्वसिद्धि के लिये करना चाहिये। इस प्रकार अनुष्ठान कर साधक उत्तम सिद्धि प्राप्त करता है। देवत्व, दानवत्व, सिद्धत्व, चारणत्व आदि जिस-जिस की कामना (साधक) करता है अतन्द्रित होकर हवन करने से सर्वथा उस-उस को प्राप्त करता है। हे देवेशि! अधिक कहने से क्या (लाभ); तुमसे मैं सत्य कह रहा हूँ। ब्रह्माण्डगोलक में अथवा इस भूतल पर जो कोई सिद्धियाँ हैं साधक के लिये वह सिद्धि हाथ में स्थित आमलक की तरह होती है। इसमें सन्देह नहीं। मन्त्र की सिद्धि के लिये ये सामान्य प्रयोग कहे गये ॥ ७४-८० ॥

[आगामिपटलविषयसंसूचनम्]

विशेषतस्तु तानेव कथयिष्याम्यतः परम् ॥ ८० ॥

आगामीपटल के विषय का संकेत—इसके बाद मैं विशेषतया उन्हीं को बतलाऊँगा ॥ ८० ॥

एवं देवीं कलुषदहनीं पूजयित्वा यथावद्
हुत्वा दत्वा बलिमिति तथा तर्पयित्वाभिषिच्य ।
यं यं कामं रचयति मनस्याहितं संहितं वा
तं तं प्राप्य श्रयति पदवीं योगिभिः प्रार्थनीयाम् ॥ ८१ ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां सप्तावरणसामान्यप्रयोगो नाम तृतीयः पटलः ॥ ३ ॥

इस प्रकार (साधक) कलुषदहनी देवी का विधिवत् पूजन कर होम कर बलि देकर तर्पण और अभिषेक कर मन में जो-जो अनिष्टकारी या मङ्गलकारी कामना करता है उस-उस को प्राप्त कर (अन्त में) योगियों के द्वारा प्रार्थनीय पदवी को प्राप्त करता है ॥ ८१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकाल-संहिता के कामकलाकाली खण्ड के सप्तावरण प्रयोग नामक तृतीय पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ३ ॥

चतुर्थः पटलः

[विशेषप्रयोगवर्णनम्]

महाकाल उवाच—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रयोगानतिगोपितान् ।
सकृद्विधानतो येषां सर्वसिद्धिः करे स्थिता ॥ १ ॥
कामराजादयो भेदास्त्रिपुराया यथा प्रिये ।
तथा कामकलाकाल्या भेदाश्चाष्टौ पुरोदिताः ॥ २ ॥
एषैव प्रकृतिर्ज्ञेया सर्वा विकृतयोऽपराः ।
मन्त्रे ध्याने विशेषोऽस्ति न प्रयोगे कदाचन ॥ ३ ॥

विशेष-प्रयोग का वर्णन—महाकाल ने कहा—इसके बाद अब (मैं) अत्यन्त गोपनीय प्रयोगों को बतलाऊँगा जिनके एक बार के अनुष्ठान से समस्त सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं । हे प्रिये! जैसे त्रिपुरा देवी के कामराज आदि भेद हैं उसी प्रकार कामकलाकाली के आठ भेद पहले कहे गये । इसी को प्रकृति (=मूल कारण) जानना चाहिये । अन्य सब विकृतियाँ (=परिणाम, कार्य) हैं । इनके मन्त्र एवं ध्यान अलग-अलग हैं किन्तु प्रयोग एक जैसा है ॥ १-३ ॥

या गुह्यकाली कथिता समन्त्रध्यानपूजना ।
वक्ष्यमाणप्रयोगेण सैव कामकला भवेत् ॥ ४ ॥
पुरश्चरणमेकं हि कृत्वा देवि वरानने ।
तत एते प्रकर्त्तव्याः प्रयोगा मन्त्रसिद्धये ॥ ५ ॥

मन्त्र, ध्यान और पूजन के साथ जो गुह्यकाली कही गयी, वक्ष्यमाण प्रयोग (की दृष्टि) से वही कामकला है । हे देवि! हे वरानने! मन्त्र का एक पुरश्चरण करने के बाद मन्त्र की सिद्धि के लिये इन प्रयोगों को करना चाहिये ॥ ४-५ ॥

[शिवाप्रयोगविधिः]

शिवाप्रयोगं वक्ष्यामि तत्राप्यादौ वरानने ।
सदा कृष्णचतुर्दश्यां कृतनित्यक्रियो दिवा ॥ ६ ॥
चतुर्विधान्नसामग्रीं रात्रौ निष्पादयेत्सुधीः ।
पायसापूपसंयावशष्कुलीमोदकान्विताम् ॥ ७ ॥
नानाविधौदनयुतां नानाव्यञ्जनपूरिताम् ।
नानाविधमहामत्स्यमांससम्भारसम्भृताम् ॥ ८ ॥
अन्यैश्च विविधैर्भक्ष्यैः षड्रसैः परिपूरिताम् ।

हैमे वा राजते ताम्रे मृण्मये भाजनेऽथ वा ॥ ९ ॥
पलाशपुटके वापि मधूकस्य दलेऽथ वा ।
एकीकुर्यात्ततः सर्वं पृथक् पृथगुदारधीः ॥ १० ॥

शिवा-प्रयोग विधि—हे वरानने! उन प्रयोगों में सबसे पहले (मैं) शिवाप्रयोग को बतलाऊँगा । कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को दिन में समस्त नित्यक्रियायें करने के बाद विद्वान् साधक रात्रि में खीर, मालपुआ, जौ के आँटे की पूड़ी और मोदक से युक्त चार प्रकार की अन्नसामग्री का सङ्ग्रह करे । अनेक प्रकार के चावल वाली अनेकविध व्यञ्जनों से समन्वित, विविध भाँति के मत्स्यमांस के समूह से पूरित, छह रसों वाले विविध भक्ष्य से परिपूरित (अन्न सामग्री) को सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टी के पात्रों में अथवा पलाश के दोना या महुए के पत्ते पर सबको पृथक्-पृथक् एक जगह रखे ॥ ६-१० ॥

अथान्यभाजने तद्वद्भिन्नभिन्नतया प्रिये ।
स्थापयेद्वक्ष्यमाणानि शुचिमांसानि भागशः ॥ ११ ॥
पुटके पुटके कुर्यादेकीभावं न कारयेत् ।
एकीभावान्महान् दोषः फलसिद्धिश्च नो भवेत् ॥ १२ ॥

हे प्रिये! इसके बाद वक्ष्यमाण पवित्र मांसों को अन्य पात्र में उसी प्रकार अलग-अलग रखे । प्रत्येक को एक-एक दोना में रखे । एक में न मिलाये । मिला देने से महान् दोष होता है और फल की सिद्धि नहीं होती ॥ ११-१२ ॥

आमान्यद्य(त)नानीह तथापर्युषितानि च ।
अनुत्तप्तानि मेध्यानि पार्ष्ठा(न्त्र)रहितानि च ॥ १३ ॥
अपूतिगन्धीनि तथा क्रव्याद्भिरहतानि च ।
रक्तवन्ति च रक्तानि रसवन्ति तथैव च ॥ १४ ॥

कच्चे, आज एकत्रित किये गये (अर्थात् ताजे), बासी नहीं, पकाये गये, अर्पण के योग्य पृष्ठ और आँतों से लिपटे नहीं, दुर्गन्धरहित, मांसभक्षी जीवों का जूठा नहीं, रक्तयुक्त, लालरंग वाले, सरस (मांस का अर्पण करना चाहिये) ॥ १३-१४ ॥

वाराहमार्क्षं कापेयं खाड्गं माहिषमेव च ।
गौधं शाल्यं तथा मार्गं कार्ष्णसारं च राङ्कवम् ॥ १५ ॥
गावयं च तथा शाशमाजमौरणमेव च ।
नाक्रं च कामठं ग्राहं बाभ्रवं सर्वकामदम् ॥ १६ ॥
अष्टादशापि मांसानि कुर्यादेकत्र साधकः ।
स्थलजान्यपि वार्जानि ग्रामजारण्यजान्यपि ॥ १७ ॥

सुअर, भालू, बन्दर, गैंडा, भैंसा, गोधा, शल्लकी (=साही जिसकी पीठ पर काँटे होते हैं), मृग, कृष्णसार मृग, रङ्कु (=एक प्रकार का मृग), नीलगाय अथवा

गाय, शशक, बकरा, भेंड़, नक्र, कछुआ, घड़ियाल, बभ्रु (=नेवला) का मांस समस्त कामनाओं की सिद्धि करता है। साधक स्थल-जल-ग्राम और अरण्य से प्राप्त उक्त अट्ठारह प्रकार का मांस एकत्रित करे ॥ १५-१७ ॥

[षट्त्रिंशद्विधपक्षिमांसवर्णनम्]

अथापराणि खागानि षट्त्रिंशत्पललान्यपि ।
कुर्यादिकत्र विधिवत्साहसी साधकोत्तमः ॥ १८ ॥
वार्ध्रीनसं च कापोतं पारावतमथापि च ।
औलूकं च तथा श्यैनं खाञ्जनं चाषमेव च ॥ १९ ॥
काकं च कौररं पैकं कौक्कुटं चाटकं तथा ।
कालिङ्गं कारटं चापि दात्यूहं चातकं तथा ॥ २० ॥
गार्ध्रं चैल्लं च कैरं च क्रौञ्चं वाकं तथैव च ।
मायूरं तैत्तिरं चापि हांसं चाक्रं च सारसम् ॥ २१ ॥
चाकोरं टैट्टिभं चापि लावं हारीतमेव च ।
कारण्डवं च वार्ताकं शतपत्रं च माद्गवम् ॥ २२ ॥
कौयष्टिकं भरद्वाजं सर्वं षट्त्रिंशदीरितम् ।
कर्त्तव्यानि तथैतानि पूर्वोक्तगुणवन्ति च ॥ २३ ॥

छत्तीस प्रकार के पक्षीमांस का वर्णन—इसके बाद साहसी उत्तम साधक छत्तीस पक्षियों के अतिरिक्त मांस को एकत्र करे। वे पक्षी हैं—काली गर्दन, लाल शिर और सफेद पङ्खों वाला एक पक्षी, कपोत, पारावत, उल्लू, बाज, खञ्जन, चाष (=नीलकण्ठ), कौआ, कुररी, कोकिल, मुर्गा, गौरैया, कलिङ्ग (=मस्तकचूड पक्षी) कारट (=एक प्रकार का कौआ) दात्यूह (=काला कौआ), पपीहा, गृध्र, चील्ह, शुक्र, क्रौञ्च, बगुला, मोर, तित्तिर, हंस, चक्रवाक, सारस, चकोर, टिटिहरी, लवा, हारीत (=एक प्रकार का कबूतर), कारण्डव, बत्तक, कठफोड़वा, पनडुब्बी, कुयष्टिक और भरद्वाज (=भादूल) नामक छत्तीस पक्षियों के। ये सभी पूर्ववर्णित गुणों से युक्त होने चाहिये ॥ १८-२३ ॥

एतानि मांसान्यादाय सर्वाण्येव शुचिस्मिते ।
पुटके पुटके कुर्यात्पृथक् पृथगमायया ॥ २४ ॥
तदन्नं तानि मांसानि गृहीत्वा कुसुमादि च ।
ततोऽर्धरात्रे चोत्थाय श्मशानाभिमुखो व्रजेत् ॥ २५ ॥
अथवा विपिनं घोरं निर्जनं भूतसङ्कुलम् ।
उत्तराभिमुखो भूत्वा साधको वीतभीः शुचिः ॥ २६ ॥
प्रेतचेलासनं कृत्वा कृत्वा चाम्बुजमासनम् ।
उपविश्यार्चयेद् देवीं कालीं कामकलाभिधाम् ॥ २७ ॥
गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च दीपैर्नैवेद्यसञ्चयैः ।

हे शुचिस्मिते! इन सभी मांसों को लेकर अलग-अलग एक-एक दोने में अनासक्त होकर रखे। उस अन्न उस मांस और पुष्प आदि को आधीरात को उठाकर श्मशान में जाना चाहिये। (यदि श्मशान न मिल सके तो) निर्जन, भूतों से व्याप्त जङ्गल में जाना चाहिये। वहाँ जाकर साधक पवित्र और निर्भय होकर प्रेतवस्त्र (कफ़न) और कमल का आसन बनाकर उस पर बैठ जाय। तत्पश्चात् कामकला नामक काली की गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य से पूजा करे ॥ २४-२८ ॥

[शिवाबल्यर्पणार्थमनुज्ञायाचनमन्त्रः]

जप्त्वा स्तुत्वा नमस्कृत्य ततोऽनुज्ञां हि याचयेत् ॥ २८ ॥
अनेनैव तु मन्त्रेण वक्ष्यमाणेन पार्वति।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा धरातलमिलच्छिराः ॥ २९ ॥
देवि कामकलाकालि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि।
अनुज्ञां देहि मे देवि करिष्येऽहं शिवाबलिम् ॥ ३० ॥
इत्यनुज्ञां समादाय निर्भीः प्रयतमानसः।

शिवाबलि के अर्पण की अनुज्ञा का मन्त्र—हे पार्वति! (मन्त्र का) जप, स्तुति और नमस्कार करने के बाद योगी साधक वक्ष्यमाणमन्त्र से भगवती से आज्ञा प्राप्त करे। हाथ जोड़कर शिर को पृथिवी से लगाकर (मन्त्र का उच्चारण करे—चौबीस अक्षरों वाला मन्त्र है—देवि! कामकलाकालि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि अनुज्ञां देहि मे देवि), हे देवि! कामकलाकालि! सृष्टिस्थितिविनाशकारिणि! मुझे आज्ञा दीजिये। मैं शिवाबलि करूँगा ॥ २८-३१ ॥

[शिवाया आवाहनविधिः]

उल्कामुखीर्घोररूपाः शिवा आवाहयेच्छनैः ॥ ३१ ॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण त्रिरुच्चार्य विशेषतः।
बद्धाञ्जलिर्मुक्तकेशो मालावान्नग्न उत्थितः ॥ ३२ ॥

शिवा-आवाहन विधि—इस प्रकार आज्ञा लेकर निर्भीक साधक पवित्र मन वाला होकर उल्कामुखी घोररूपा शिवाओं का वक्ष्यमाण मन्त्र से तीन बार उच्चारण कर धीरे-धीरे आवाहन करे। (साधक उस समय) मुक्तकेश मालाधारी नग्न खड़ा होकर हाथ जोड़े हुए रहे ॥ ३१-३२ ॥

तारवाग्भवह्रीरोषप्रासादानङ्गभौतकम्।
मुखवामेक्षणौष्ठाधो रदाधोयुग्धकारकः॥ ३३ ॥
योगश्च बलयोर्द्विर्द्विः कामलं च ततः प्रिये।
बीजमुद्धृत्य षड्वर्णं नाम सम्बोधयेत्ततः ॥ ३४ ॥
घोररावे इति पदं ततोऽनन्तरमुच्चरेत्।
महाकापालि च तथा विकटदंष्ट्रे तथैव च ॥ ३५ ॥

सम्मोहिनी शोषिणी च सम्बोधनतया वदेत्।
करालवदने चेति तत उच्चारयेत्सुधीः ॥ ३६ ॥

मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—तार, वाग्भव (=ऐं), लज्जा, क्रोध, प्रासाद (=हौं) काम, भूत (बीजों का उच्चारण करने के बाद) बल दोनों को मुख (=मुखज = आ) वाम ईक्षण (=ई) ओष्ठ (=ऊ) अधरोष्ठ (=ऐ) अधोदन्त (=औ) के साथ जोड़कर उसके बाद, हे प्रिये! छह वर्णों वाला कामल बीज (=कामकलाकाली) को सम्बोधन में रखना चाहिए । इसके बाद 'घोररावे माहाकालि विकटदंष्ट्रे' कहे । सम्मोहिनी शोषिणी को सम्बोधन में कहे । इसके बाद सुधी साधक 'करालवदने' का उच्चारण करे ॥ ३३-३६ ॥

मदनोन्मादिनि पादं ज्वालामालिनि चेति च ।
शिवारूपिणि चोद्धृत्य ततो भगवतीति च ॥ ३७ ॥
आगच्छ द्वन्द्वमुल्लिख्य मम सिद्धिमितीति च ।
देहि युग्मं मामिति च रक्ष रक्षेति चोद्धरेत् ॥ ३८ ॥
ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ततः प्रोक्त्वा क्षां क्षीं क्षूं क्षौं विनिर्दिशेत्।
क्रोधयुग्मं चास्त्रयुगं वह्निजायान्तगो मनुः ॥ ३९ ॥
त्रिरुच्चार्य शनैरित्थं प्रतीक्षेत शिवापथम् ।

इसके बाद 'मदनोन्मादिनि ज्वालामालिनि शिवारूपिणि' कहकर 'भगवति' कहे । 'आगच्छ' को दो बार कहने के पश्चात् 'मम सिद्धिं' कहे । 'देहि' को दो बार कहने पर 'रक्ष रक्ष' कहे । इसके बाद ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं क्षां क्षीं क्षूं क्षौं कहे । दो क्रोध. दो अस्त्र बीज कहने के बाद अन्त में वह्निजाया कहने पर मन्त्र बनता है—

ॐ ऐं ह्रीं हूं हौं क्लीं स्फ्रें ब्लां ब्लीं ब्लूं ब्लैं ब्लौं श्रीं कामकलाकालि घोररावे महाकापालि विकटद्रंष्ट्रे सम्मोहिनि शोषिणि करालवदने मदनोन्मादिनि शिवारूपिणि भगवति आगच्छ आगच्छ मम सिद्धिं देहि देहि मां रक्ष रक्ष ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं क्षां क्षीं क्षूं क्षौं हूं हूं फट् फट् स्वाहा । इस मन्त्र का धीरे-धीरे तीन बार उच्चारण कर शिवा के रास्ते (पर उनके आगमन) की प्रतीक्षा करे ॥ ३७-४० ॥

[शिवापूजाविधिः]

कालीरूपधराः सर्वा यद्यागच्छन्ति तत्क्षणात् ॥ ४० ॥
तदा सिद्धिं विजानीयाद्विपरीते तु सान्यथा ।
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रं पूर्वोक्तं भक्तितत्परः ॥ ४१ ॥
अर्द्धप्रहरपर्यन्तं पश्येत्तन्मार्गमादरात् ।
आगताभ्यो नमस्कुर्याद् दूरेणैव तु साधकः ॥ ४२ ॥
पूजयेद् दूरतः स्थित्वा भक्तिभावेन भाविनि ।
पाद्यार्घाचमनीयैश्च स्नानीयैर्गन्धपुष्पकैः ॥ ४३ ॥

धूपैर्दीपैश्च नैवद्यैरन्यद्यद्यच्च सम्भवेत् ।
सर्वोपचारैः सम्पूज्य भक्तिनम्रः प्रसन्नधीः ॥ ४४ ॥
तदन्नमग्रतः कृत्वा ततो दद्याच्छिवाबलिम् ।
वैहङ्गमानि मांसानि पङ्क्तिशः स्थापयेदपि॥ ४५ ॥

शिवा-पूजा विधि—कालीरूपधारिणी वे यदि तत्क्षण आ जायें तो अनुष्ठान की सिद्धि समझनी चाहिये । विपरीत स्थिति में वह (=सिद्धि) अन्यथा समझनी चाहिये । (साधक भक्तितत्पर होकर उनके आने के लिये) मन्त्र का धीरे-धीरे उच्चारण करे । उनके मार्ग को आधे प्रहर तक देखे । जब वे आ जायं तो साधक दूर से ही इन्हें नमस्कार करे। हे भामिनि! दूर से ही भक्तिपूर्वक उनकी पाद्य-अर्घ्य आचमन, स्नानीय द्रव्य, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और जो-जो सम्भव हो समस्त उपचारों से पूजा कर भक्ति से नम्र हो प्रसन्न मन से उस अन्न को आगे कर शिवाबलि को दे। पक्षियों के मांस को पङ्क्तिबद्ध कर रखे ॥ ४०-४५ ॥

[शिवाबलौ वैहङ्गममांसार्पणमन्त्रः]

सर्वमेकत्र संस्थाप्य गृहीत्वा पाणिना जलम् ।
उत्सृजेन्मनुनानेन गदतो मे निशामय ॥ ४६ ॥
प्रणवं च त्रपाक्रोधौ ङेऽन्तं नाम समुच्चरेत् ।
ङेऽन्तं महाघोररावा भगमालिनि चेति च ॥ ४७ ॥
तद्वच्छिवारूपिणी च ज्वालामालिनि ङेऽन्तवत् ।
इमं बलिमिति स्थाप्य प्रयच्छामि सकृद्वदेत् ॥ ४८ ॥
गृह्ण द्वन्द्वं खाद युगं मम सिद्धिमितीति च ।
कुरु युग्मं समुद्धृत्य मम शत्रूनथोच्चरेत् ॥ ४९ ॥
नाशयेति युगं प्रोच्य मारयेति तथैव च ।
स्तम्भयोच्चाटय हन विध्वंसय मथापि च ॥ ५० ॥
विद्रावय पच च्छिन्धि शोषय त्रासय त्रुट ।
मोहयोन्मूलय तथा भस्मीकुरु तथैव च ॥ ५१ ॥
जृम्भय स्फोटय तथा मथ विद्रावयेति च ।
हर विक्षोभय तुरु दम मर्दय पातय ॥ ५२ ॥
चतुर्विंशतिकस्यास्य युगं युगमुदीरयेत् ।
तत उच्चारयेदेतत्सर्वभूतभयङ्करि ॥ ५३ ॥
ततः सर्वजनेत्युक्त्वा मनोहारिणि चोद्धरेत् ।
सर्वशत्रुक्षयं प्रोच्य करिशब्दं विनिर्दिशेत् ॥ ५४ ॥
ज्वलयुग्मं प्रज्वलयुगं शिवारूपधरेति च ।
काली कपाली सम्बोध्या महाकापालि चेति च॥ ५५ ॥
ह्रीं युग्मं ह्रं च युगलं प्रासादयुगलं तथा ।

राज्यं मे समनूद्धृत्य देहि युग्ममथो वदेत् ॥ ५६ ॥

शिवाबलि में पक्षीमांसार्पण का मन्त्र—समस्त (पक्षीमांस) को एकत्र रखकर साधक अपने हाथ में जल लेकर निम्नलिखित मन्त्र से उत्सर्जन करे । अब (उस मन्त्र को) मुझसे सुनो—

प्रणव, लज्जा, क्रोध, ङेऽन्त नाम (=कामकलाकाल्यै) महाघोररावा, भगमालिनी, शिवारूपिणी, ज्वालामालिनी का ङेऽन्त उच्चारण कर 'इमं बलिं स्थाप्य प्रयच्छामि' एक बार उच्चारण करे । 'गृह्ण' और 'रवाद' को दो-दो बार कहकर 'मम सिद्धिं' एक बार कहे । फिर 'कुरु' को दो बार कहकर 'मम शत्रून्' कहने के बाद 'नाशय' और 'मारय' को दो-दो बार उच्चारित करे । फिर 'स्तम्भय उच्चाटय हन विध्वंसय मथ विद्रावय पच छिन्धि शोषय त्रासय त्रुट मोहय उन्मूलय भस्मीकुरु जृम्भय स्फोटय मथ विद्रावय हर विक्षोभय तुरु दम मर्दय पातय' इन चौबीस शब्दों को दो-दो बार उच्चारित करे । तत्पश्चात् 'सर्वभूतभयङ्करि सर्वजनमनोहारिणि सर्वशत्रुक्षयङ्करि' का उच्चारण कर 'ज्वल' और 'प्रज्वल' को दो-दो बार कहकर 'शिवारूपधरे कालि कपालि महाकपालि' कहे । इसके बाद 'ह्रीं हूं आं' को दो-दो बार कहकर 'राज्यं मे' कहने के बाद 'देहि' को दो बार कहे ॥ ४६-५६ ॥

किलियुग्माच्च चामुण्डे यमघण्ट(ण्टे) हिलेर्युगात् ।
मम सर्वाभीष्टपदं ततो वै साधयद्वयम् ॥ ५७ ॥
संहारिणिपदं दत्वा सम्मोहिनिपदं ततः ।
कुरुकुल्लेति सम्बोध्य ततः किरियुगं पठेत् ॥ ५८ ॥
क्रोधयुग्मास्त्रयुग्मं च शिरोऽन्तो मनुरीरितः ।
त्रिरुच्चार्योत्सृजेदन्नं पललं शाकुनं च यत् ॥ ५९ ॥
कालीरूपास्तु ता ध्यायेदेवमेव न संशयः ।
ततोऽपसृत्य तत्स्थानात्किञ्चिद् दूरे व्रजेत वै ॥ ६० ॥
यथागच्छन्ति ताः सर्वा न बिभ्यति तथाचरेत् ।

उसके बाद 'किलि' को दो बार कहे । 'चामुण्डे यमघण्टे' के बाद 'हिलि' दो बार, 'संहारिणि सम्मोहिनि कुरुकुल्ले' कहे । पुनः 'किरि' को दो बार पढ़े । इसके बाद अन्त में दो क्रोध दो अस्त्र और अन्त में शिर (=स्वाहा) कहे । इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप होगा—

ॐ ह्रीं हूं कामकलाकाल्यै महाघोररावायै भगमालिन्यै शिवारूपिण्यै ज्वालामालिन्यै इमं बलिं प्रयच्छामि गृह्ण गृह्ण रवाद रवाद मम सिद्धिं कुरु कुरु मम शत्रून् नाशय नाशय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय उच्चाटय उच्चाटय हन हन विध्वंसय विध्वंसय मथ मथ विद्रावय विद्रावय पच पच छिन्धि छिन्धि शोषय शोषय त्रासय त्रासय त्रुट त्रुट मोहय मोहय उन्मूलय उन्मूलय भस्मीकुरु भस्मीकुरु जृम्भय जृम्भय

स्फोटय स्फोटय मथ मथ विद्रावय विद्रावय हर हर विक्षोभय विक्षोभय तुरु तुरु दम दम मर्दय मर्दय पातय पातय सर्वभूतभयङ्करि सर्वजनमनोहारिणि सर्वशत्रुक्षयङ्करि ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल शिवारूपधरे कालि कपालि महाकापालि ह्रीं ह्रीं ह्रं ह्रं ह्रौं ह्रौं राज्यं मे देहि देहि किलि किलि चामुण्डे यमघण्टे हिलि हिलि मम सर्वाभीष्टं साधय साधय संहारिणि सम्मोहिनि कुरुकुल्ले किरि किरि हूं हूं फट् स्वाहा ।

इस मन्त्र का तीन बार उच्चारण कर पक्षीमांस और अन्न का उत्सर्जन कर दे । उन (शृगालियों) का कालीरूप में ध्यान करे । इसके बाद उस स्थान से किञ्चिद् दूर जाकर रुक जाय ताकि वे सब आने के बाद डरें नहीं ॥ ५७-६१ ॥

[शिवाबलिफलनिर्धारणम्]

दूरे स्थित्वा निरीक्षेत किमादौ भक्षयन्ति ताः ॥ ६१ ॥
सर्वा आगत्य चेत्सर्वमश्नन्ति दयिते तदा ।
सर्वसिद्धिं विजानीयाद्राज्यलाभं तथैव च ॥ ६२ ॥
यद्यच्च भक्षयन्त्येतास्तत्तत्फलमवाप्नुयात् ।
यद्यच्च नैव खादन्ति तत्तन्नैव फलं भवेत् ॥ ६३ ॥
विशेषं च प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा तदवधारय ।
अन्नेन धनलाभः स्यात्पायसैर्वाग्मिता भवेत् ॥ ६४ ॥
घृतेनायुरवाप्नोति पूपैः पुण्यमवाप्नुयात् ।
शष्कुलीमोदकैः कीर्तिं वाहनं कृशरैरपि ॥ ६५ ॥
तेमनैः पुत्रलाभः स्यान्मत्स्यैराप्नोति कामिनीम् ।

बलिफल का निर्धारण—साधक दूर में खड़ा होकर देखे कि वे पहले क्या खा रही हैं । सब (शिवायें) आकर सब बलि खा जाँय तब हे दयिते! सर्वसिद्धि एवं राज्यलाभ जाने । जिस-जिस द्रव्य का वे भक्षण करती हैं साधक तत्तत् फल की प्राप्ति करता है । जिस-जिस का वे भक्षण नहीं करती उस-उस का फल नहीं मिलता । अब मैं विशेष बतला रहा हूँ । सुनकर उसे समझो । यदि अन्न खा जाँये तो धन-लाभ, पायस खाने से वाग्मिता, घृत से आयु, अपूप से पुण्य, शष्कुली और मोदक से कीर्त्ति, खिचड़ी से वाहन, तेमन (=चटनी) से पुत्र-लाभ और मछली खाने से कामिनी की प्राप्ति होती है ॥ ६१-६६ ॥

[अष्टादशविधाममांसार्पणफलम्]

साममांसाच्च या सिद्धिस्तदपि व्याहरामि ते ॥ ६६ ॥
वाराहेणार्थलाभः स्याद् भाल्लूकेन गृहस्य च ।
प्लावङ्गमेन विद्या स्यात्खाड्गकैर्विजयं रणे ॥ ६७ ॥
माहिषेणैव मांसेन राज्यप्राप्तिर्भवेद् ध्रुवम् ।
गौधेनापत्यमाप्नोति शाल्यैः सौन्दर्यमुत्तमम् ॥ ६८ ॥

आरोग्यं हारिणेनाशु कार्ष्णसारैर्बलोन्नतिम् ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं राङ्कवैश्च गावयै राजमान्यताम् ॥ ६९ ॥
शाशैर्मेधावितां गच्छेदाजैरजरतां व्रजेत् ।
आवेयेन तु मांसेन सर्वकल्याणमाप्नुयात् ॥ ७० ॥
बह्वन्नं चापि नाक्रेण भूमिप्राप्तिस्तु कामठैः ।
ग्राहेणाभेद्यतनुतां नाकुलैर्महतीं श्रियम् ॥ ७१ ॥
अष्टादशानां मांसानां फलं ते कथितं मया ।

आममांसार्पण का फल—आम (=कच्चा) मांस (के अर्पण) से जो सिद्धि मिलती है उसे भी मैं तुमको बतला रहा हूँ । वराह (के मांस) से अर्थलाभ, भाल्लूक से गृहलाभ, प्लावङ्गम से विद्या, गैंडा के मांस से युद्ध में विजय, महिषमांस से राज्यलाभ, गोधा के मांस से सन्तान, शाल्लकी से सौन्दर्य, हारिण से आरोग्य, कृष्णसार के मांस से बलवृद्धि, राङ्कव से जातिसम्मान, गवय से राजसम्मान, शश के मांस से मेधा, बकरे के मांस से अजरता प्राप्त होती है । भेंड़ के मांस से सर्वकल्याण, नाक से अन्नाधिक्य, कछुआ से भूमिलाभ, घड़ियाल से शरीरदृढ़ता, नाकुल से महाश्रीलाभ मिलता है । मैंने अट्ठारह प्रकार (के मांसार्पण) का फल तुमको बतलाया ॥ ६६-७२ ॥

[पक्षिमांसार्पणस्य फलश्रुतिः]

अतः परं प्रवक्ष्यामि पक्षिमांसफलं महत् ॥ ७२ ॥
वार्ध्रीनसे राज्यफलं कापोते मोक्षमव्ययम् ।
पारावते राजकन्यामौलूके रिपुसङ्क्षयम् ॥ ७३ ॥
शत्रुवाक्स्तम्भनं श्यैने खाञ्जनेऽदृश्यरूपताम् ।
चाषेऽणिमपदप्राप्तिः काके खेचरतां व्रजेत् ॥ ७४ ॥
कौररे वशकारित्वं पैके चाकर्षणं भवेत् ।
कौक्कुटे द्रावणं सिद्ध्येच्चाटके मोहनं तथा॥ ७५ ॥
कालिङ्गे स्तम्भनं विन्देदुच्चाटं काकमांसके।
दात्यूहे मारणं गच्छेच्चातके द्वेषणं तथा ॥ ७६ ॥
शोषणं जायते गार्ध्रे चैल्ले मूर्च्छनमेव च ।
शौके च क्षोभणं दिश्येत्क्रौञ्चे चोन्मादमेव च ॥ ७७ ॥
वाके चाञ्जनलाभः स्यात्खड्गसिद्धिश्च बार्हिणे।

पक्षिमांसार्पण का फल—इसके बाद मैं पक्षीमांस के अर्पण का फल बतलाऊँगा । वार्ध्रीनस का अर्पण होने पर राज्यफल, कापोत में अव्यय मोक्ष, पारावत से राजकन्या, उल्लू से शत्रुनाश, वाज से शत्रुवाक्स्तम्भन, खाञ्जन से अदृश्यरूपता, नीलकण्ठ से अणिमालाभ, काक से आकाशचारित्व, कुररी से वशीकरण, पिक से आकर्षण, कुक्कुट से द्रावण, चटका से मोहन, कालिङ्ग से

स्तम्भन, काकमांस से उच्चाटन, दात्यूह से मारण, चातक से विद्वेषण, गृध्र से उच्छोषण, चील्ह से मूर्च्छा, शुकमांस से क्षोभण, क्रौञ्च से उन्माद, बकुला से अञ्जनलाभ, मोर से खड्गसिद्धि होती है ॥ ७२-७८ ॥

भूताः प्रेताः पिशाचाश्च वेताला गुह्यकास्तथा॥ ७८ ॥
विनायकाः क्षेत्रपाला यक्षा राक्षसजातयः ।
गन्धर्वाश्च तथा नागा डाकिन्यो घोणका अपि ॥ ७९ ॥
विद्याधराश्च सर्पाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ।
सर्वे भवन्ति वशगास्तैत्तिरे पलले प्रिये ॥ ८० ॥

हे प्रिये ! तित्तिर के मांस का अर्पण करने से भूत, प्रेत, पिशाच, वेताल, गुह्यक, विनायक, क्षेत्रपाल, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, नाग, डाकिनी, घोणक, विद्याधर, सर्प, अप्सरायें सबके सब वश में होते हैं ॥ ७८-८० ॥

हांसे तु पादुकासिद्धिर्यक्षिण्यश्चाक्रवाकके ।
सारसे धातुवादः स्याच्चाकोरे गुटिका प्रिये ॥ ८१ ॥
टैट्टिभे चिरजीवित्वं लावेऽन्तर्द्धानमाप्नुयात् ।
हारीते कामरूपित्वं सत्यं प्राप्नोति भामिनि ॥ ८२ ॥
कारण्डवे जलस्तम्भं वह्निस्तम्भं च वर्त्तके ।
शातपत्रे स्वर्गगतिं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥ ८३ ॥
शापानुग्रहसामर्थ्यं माद्गवेनैव विन्दति ।
भारद्वाजेन मांसेन चक्रवर्त्तित्वमाप्नुयात् ॥ ८४ ॥

हंस के मांसार्पण से पादुकासिद्धि, चक्रवाक से यक्षिणीसिद्धि, सारस से धातुवाद, चकोर से गुटिकासिद्धि, टिट्टिभ से दीर्घजीवन, लवा से अन्तर्धान, हारीत से कामरूपता प्राप्त होती है । कारण्डव से जलस्तम्भन, बत्तक से अग्निस्तम्भन, शतपत्र से साधक निःसन्देह स्वर्गारोहण करता है । मद्गु के मांस से साधक शापानुग्रह और भारद्वाज के मांस से चक्रवर्त्तित्व प्राप्त करता है ॥ ८१-८४ ॥

[ब्राह्मणस्य कृते नरमांसार्पणनिषेधः]

नारं मांस न दातव्यं ब्राह्मणेन कदाचन ।
शूद्रेणैव प्रदातव्यं सप्तत्रिंशत्तमं हि तत् ॥ ८५ ॥
तस्य प्रदानाद् देवेशि साधकः षष्टिसिद्धिभाक् ।
तवैतत्कथितं कान्ते मांसदानफलं महत् ॥ ८६ ॥

ब्राह्मण के लिये नरमांस का निषेध—ब्राह्मण को कभी भी नरमांस का अर्पण नहीं करना चाहिये । शूद्र के द्वारा दिया जाना चाहिये । यह सैंतीसवें प्रकार का मांस है । हे देवेशि ! उसके प्रदान से साधक साठ सिद्धियों का स्वामी हो जाता है । हे कान्ते! मैंने तुम्हें मांसदान का यह महाफल बतलाया ॥ ८५-८६ ॥

[शिवाया देवस्वरूपताभिधानम्]

शिवास्तु नावमन्तव्यां देवीरूपा हि ता यतः ।
फेरुरूपं हि धृत्वा सा स्वयमायाति कालिका ॥ ८७ ॥
कालीभावेन ता ध्येयाः सत्यं सत्यं हि भामिनि।

शिवा का देवस्वरूपत्व—शृगालियों का अपमान नहीं करना चाहिये क्योंकि कालिका स्वयं शृगाली का रूप धारण कर आती है । हे भामिनि! उनका कालीभाव से ध्यान करना चाहिये—यह सत्य है ॥ ८७-८८ ॥

[शिवाया अनागमनस्य विघ्नसूचकताभिधानम्]

यदि नायान्ति ताः सर्वास्तदा विघ्नः प्रजायते॥ ८८ ॥
भक्षयन्ति न चेत्तास्तु तदैव मरणं भवेत्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूर्वमेव परीक्षयेत् ॥ ८९ ॥
आयान्ति वाथ नायान्ति श्मशाने वाथ निर्जने ।

शिवाऽऽगमनाभावस्य विघ्नसूचकत्वम्—यदि वे सब नहीं आती हैं तो (लक्ष्यप्राप्ति में) विघ्न पड़ता है । यदि वे (बलि का) भक्षण नहीं करती हैं तो साधक (के परिवार में किसी व्यक्ति की या स्वयं साधक) की मृत्यु हो जाती है । इसलिये पूर्ण प्रयास करके पहले ही परीक्षा कर लेनी चाहिये कि वे श्मशान में अथवा निर्जन स्थान में आती हैं या नहीं आती हैं ॥ ८८-९० ॥

[शिवाबल्यङ्गतया भूतादिबलिविधानाभिधानम्]

शिवासु भक्षयन्तीषु भूतेभ्यो बलिमाहरेत् ॥ ९० ॥
संहारभैरवायापि क्षेत्रपालेभ्य एव च ।
डाकिनीभ्यश्च सर्वाभ्यो बलिं दद्याच्च साधकः ॥ ९१ ॥
महदैश्वर्यमाप्नोति निःशेषं भक्षयन्ति चेत् ।
अर्धे तु स्वल्पसिद्धिः स्यादभोज्ये तु विपद् भवेत् ॥ ९२ ॥
अनागमे तु मरणं तस्माद् यत्नेन साधयेत् ।
प्रत्यष्टम्यां चतुर्दश्यामेवं कुर्वीत साधकः ॥ ९३ ॥
सार्द्धाब्दमध्ये सिध्येत वारे षट्त्रिंशके प्रिये ।

शिवाबलि के अङ्गरूप भूतादिबलि का विधान—शिवायें जब भक्षण कर रही हों तो भूतों के लिये बलिदान करना चाहिये । साधक को चाहिये कि संहारभैरव क्षेत्रपालों डाकिनियों को बलि दे । यदि वे सम्पूर्ण पदार्थ का भक्षण कर लेती हैं तो साधक महा ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है । आधा पदार्थ खाने पर (लक्ष्य की) स्वल्पसिद्धि ही होती है । नहीं खाने पर (साधक के ऊपर) विपत्ति आ जाती है । यदि वे आँयें भी नहीं तो मरण होता है । इसलिये प्रयत्नपूर्वक (सही दिशा में) अनुष्ठान करना चाहिये। यदि साधक प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को इस प्रकार

(का अनुष्ठान) करता है तो हे प्रिये! छह महीने के अन्दर छत्तीसवें दिन सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ९०-९४ ॥

[शिवाबलिमाहात्म्याभिधानम्]

शिवाबलिरयं प्रोक्तो महाफलमहोदयः ॥ ९४ ॥
एतस्य फलबाहुल्यं कथितुं नैव शक्यते ।
विद्यावान् बलवान् वाग्मी चिरजीवी निरामयः ॥ ९५ ॥
धार्मिको विजयी दक्षो यशस्वी भूपवल्लभः ।
ज्ञातिश्रेष्ठः पुत्रवांश्च सर्वयोषित्प्रियः सुखी ॥ ९६ ॥
रूपवान् बलवान् धीरो विक्रान्तो विश्वपूजितः ।
स धन्यः सर्वविच्चैव भवत्यत्र न संशयः ॥ ९७ ॥

शिवाबलि का माहात्म्य—यह शिवाबलि महाफल और महा अभ्युदय देने वाली है । इसके फलाधिक्य का वर्णन नहीं किया जा सकता । वह (साधक) धार्मिक, विजयी, दक्ष, यशस्वी, राजप्रिय, जातिबान्धवों में श्रेष्ठ, पुत्रवान्, सर्वस्त्री-प्रिय, सुखी, रूपवान्, बलवान्, धीर, विक्रमशाली, विश्व में आदरणीय, धन्य और सर्ववेत्ता हो जाता है । इसमें सन्देह नहीं ॥ ९४-९७ ॥

सौन्दर्ये मन्मथः साक्षाद् बलेऽपि स्यात्समीरणः।
रामार्जुनसमो युद्धे विद्यायां गीष्पतिर्यथा ॥ ९८ ॥
धने कुबेरसदृशो चिरायुर्व्याससरामवत् ।
क्षमायां पृथिवीतुल्यो गाम्भीर्ये सागरो यथा ॥ ९९ ॥
मेरुकैलासवद्धैर्ये प्रभुत्वे वासवोपमः ।
लावण्ये चन्द्रतुल्योऽसौ प्रतापे भास्करोपमः ॥ १०० ॥
तडिद्वद् दुर्निरीक्ष्योऽसौ भवेद् देव्याः प्रसादतः।
यावत्यः सिद्धयः सन्ति समस्तजगतीतले ॥ १०१ ॥
करामलकवत्सर्वा भवन्त्येव न संशयः ।
अन्या अपि प्रसिद्ध्यन्ति सिद्धयः साधकस्य तु ॥ १०२ ॥

देवी के प्रसाद से वह सौन्दर्य में साक्षात् कामदेव, बल में वायु, युद्ध में राम और अर्जुन के समान, विद्या में वृहस्पतितुल्य, धन में कुबेरसदृश, व्यास और राम की भाँति दीर्घायु, क्षमा में पृथिवी के समान, गम्भीरता में सागरसदृश, धैर्य में सुमेरु और कैलास के तुल्य, प्रभुत्व में इन्द्रवत्, लावण्य में चन्द्रमा जैसा, प्रताप में सूर्य के समान तथा विद्युत् के समान दुर्निरीक्ष्य होता है । इस भूमण्डल पर जितनी सिद्धियाँ हैं वे सब (उस साधक के) करामलकवत् हो जाती हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं । इसके अतिरिक्त साधक को अन्य सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं ॥ ९८-१०२ ॥

अणिमा खेचरत्वं च कामरूपित्वमिच्छया ।

शापानुग्रहसामर्थ्यं त्रैलोक्यवशता तथा ॥ १०३ ॥
कृपाणाञ्जनसिद्धिश्च वेतालगुटिकादि च ।
यक्षिणी धातुवादश्च स्तम्भोऽनलखगाम्बुनाम् ॥ १०४ ॥
अव्याहतगतित्वं च सर्वाकर्षणमोहनम् ।
मेरुमन्दरकैलासस्वर्गादिगमनं तथा ॥ १०५ ॥
सर्वं साधयति क्षिप्रं शिवाबलिविधानतः ।
आरोग्यं मनसः सौख्यं विजयोऽबाधता तथा॥ १०६ ॥
अविघ्नता दुःखनाशः पुत्रलाभः सुखोन्नतिः ।
सर्वकल्याणवाञ्छाप्तिर्भयनाशो महोदयः ॥ १०७ ॥
नानारोगादिनाशश्च बलिदानात्प्रजायते ।
बलिदानस्य माहात्म्यं कथयिष्ये कियत्तव ॥ १०८ ॥
स्वल्पमेव मया प्रोक्तं बहु वक्तुं न शक्यते ।
इतोऽपि फलबाहुल्यं सत्यं सत्यं हि पार्वति ॥ १०९ ॥
दण्डवत्प्रणमेत्तास्तु ततो वै देवताधिया ।
स्तुतिं कुर्यात्स्तवैरेतैः कवचैश्च विशेषतः ॥ ११० ॥

शिवाबलि के विधान से साधक अणिमा, खेचरत्व, कामरूपित्व, शाप को दूर करने का सामर्थ्य, त्रैलोक्यवशता, कृपाणसिद्धि, अञ्जनसिद्धि, वेतालसिद्धि, गुटिका आदि की सिद्धि, यक्षिणीसिद्धि, धातुवाद, अग्नि-जल-पक्षी का स्तम्भन, सर्वत्र अव्याहतगति, सर्वाकर्षण, सर्वसम्मोहन, मेरु-मन्दर-कैलास-स्वर्ग आदि को गमन अर्थात् सब कुछ सिद्ध कर लेता है । बलिदान के द्वारा आरोग्य, मन का सुख, विजय, बाधा का अभाव, विघ्नध्वंस या विघ्नाभाव, दुःखनाश, पुत्रलाभ, सुख, उन्नति, सर्वकल्याणकर्तृत्व, भयनाश, महाअभ्युदय, नानारोग आदि का नाश होता है ।

तुम्हें बलिदान का कितना महत्त्व बतलाऊँ । यह मैंने थोड़ा सा कह दिया । बहुत कहना सम्भव नहीं । हे पार्वति! इससे भी अधिक फल मिलता है यह बात सत्य है । साधक उन (शिवाओं) को दण्डवत् प्रणाम करे और देवताबुद्धि से उनकी निम्नलिखित स्तवनो एवं कवचों से स्तुति करे ॥ १०३-११० ॥

[शिवास्तोत्रम्]

शिवारूपधरे देवि कामकालि नमोऽस्तु ते ।
उल्कामुखि ललज्जिह्वे घोररावे शृगालिनि ॥ १११ ॥
श्मशानवासिनि प्रेते शवमांसप्रियेऽनघे ।
अरण्यचारिणि शिवे फेरो जम्बूकरूपिणि ॥ ११२ ॥
नमोऽस्तु ते महामाये जगत्तारिणि कालिके ।
मातङ्गि कुक्कुटे रौद्रि कालकालि नमोऽस्तु ते॥ ११३ ॥

शिवास्तोत्र—शिवारूप को धारण करने वाली कामकाली देवि उल्कामुखि, ललत् जिह्वावाली, घोरशब्द करने वाली शृगालिनि! तुमको नमस्कार है । श्मशानवासिनि प्रेते शवमांसप्रिये अनघे अरण्यचारिणि शिवे फेरो जम्बूकरूपिणि महामाये जगत्तारिणि कालिके! तुमको नमस्कार है । मातङ्गि कुक्कुटे रौद्रि कालकालि! तुम्हें नमस्कार है ॥ १११-११३ ॥

सर्वसिद्धिप्रदे देवि भयङ्करि भयावहे ।
प्रसन्ना भव देवेशि मम भक्तस्य कालिके ॥ ११४ ॥

सर्वसिद्धिप्रदे भयङ्करि भयावहे देवेशि कालिके! आप मेरे भक्त के ऊपर प्रसन्न हो जाओ ॥ ११४ ॥

संसारतारिणि जये जय सर्वशुभङ्करि ।
विस्रस्तचिकुरे चण्डे चामुण्डे मुण्डमालिनि ॥ ११५ ॥
संहारकारिणि क्रुद्धे सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे ।
दुर्गे किराति शबरि प्रेतासनगतेऽभये ॥ ११६ ॥
अनुग्रहं कुरु सदा कृपया मां विलोकय ।
राज्यं प्रयच्छ विकटे वित्तमायुः सुतान् स्त्रियम् ॥ ११७ ॥
शिवाबलिविधानेन प्रसन्ना भव फेरवे ।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमो नमः ॥ ११८ ॥
इत्येतैरष्टभिः श्लोकैः शिवास्तोत्रमुदीरयेत् ।

संसारतारिणि, जयशीले, सब प्रकार का शुभ करने वाली, खुले बिखरे केशों वाली, चण्डे, चामुण्डे, मुण्डमाला धारण करने वाली, संहारकारिणि, क्रुद्धे मुझे सर्वसिद्धि दो । हे दुर्गे, किराति, शबरि प्रेतासन पर आरूढ़, अभये मेरे ऊपर कृपा करो । कृपापूर्वक मुझे देखो । हे विकटे! मुझे राज्य धन आयु पुत्र और स्त्री दो । शिवाबलि के विधान से प्रसन्न हो जाओ । फेरुरूपिणी तुम्हें नमस्कार है बार-बार नमस्कार है । साधक इन आठ श्लोकों से शिवास्तोत्र का पाठ करे ॥ ११५-११९॥

[शिवाबल्यवशिष्टान्नविनियोगविधिः]

ततस्तच्छेषमन्नं यद् भाजनं वान्यदेव वा ॥ ११९ ॥
सर्वं हि निखनेद् भूमौ प्रयत्नेनैव पार्वति ।
यदि काका मृगाः श्वानो ये चान्येऽरण्यवासिनः ॥ १२० ॥
भक्षयन्ति तदुच्छिष्टं तदा विघ्नः प्रजायते ।
स्वयं तदवशिष्टं यत्प्रसादमुपयोजयेत् ॥ १२१ ॥
गन्धं माल्यं च नैवेद्यं यद्यद् देव्यै प्रकल्पितम् ।
रात्रावेव समागच्छेत् प्रयतः प्रेतमन्दिरात् ॥ १२२ ॥

शिवाबलि से अवशिष्ट अन्न का विनियोग—हे पार्वति! इसके बाद इस

(=शिवाबलि) से अवशिष्ट अन्न पात्र अथवा अन्य जो कुछ है उसको प्रयत्नपूर्वक धरती में गाड़ दे। यदि कौआ, मृग, कुत्ता या अन्य जंगली जानवर उस उच्छिष्ट को खाते हैं तो विघ्न उत्पन्न होता है। उस अवशिष्ट प्रसाद का स्वयं उपयोग करे। देवी के लिये जो गन्ध माला नैवेद्य आदि एकत्रित किया गया है (उसे देवी के अर्पण के बाद) रात्रि में ही पवित्र होकर प्रेतगृह से बाहर चला जाय ॥ ११९-१२२ ॥

[गुह्यकालिकामकलाकाल्योस्तुलनायां कामकलाकाल्याः श्रेष्ठताभिधानम्]

एष मुख्यः प्रयोगस्तु गुह्यकाल्या वरानने ।
एतत्प्रयोगादेषैव काली कामकला भवेत् ॥ १२३ ॥
न भेदस्त्वनयोः सत्यं प्रयोगे मन्त्रसिद्धये ।
अन्येऽपि भेदाः सन्त्यस्याः कथयिष्यामि तानहम् ॥ १२४ ॥

गुह्यकाली की अपेक्षा कामकलाकालि श्रेष्ठ है—हे वरानने! यह गुह्यकाली का मुख्य प्रयोग है। इस प्रयोग के कारण यही (गुह्य) काली कामकला हो जाती है। इन दोनों में (मूलतः) कोई भेद नहीं है। मन्त्रसिद्धि के लिये प्रयोग में भेद होता है। इस (काली) के अन्य भी भेद हैं। उन्हें मैं तुमको बतलाऊँगा ॥ १२३-१२४ ॥

योऽसावुक्तो मनुर्देव्याः पूर्वमष्टादशाक्षरः ।
श्रेष्ठः स सर्वमन्त्राणां सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ॥ १२५ ॥
एष कामकलाकाल्या मन्त्रः प्रकृतिरुच्यते ।
विकृतिर्गुह्यकाल्यास्तु मन्त्रो यः षोडशाक्षरः ॥ १२६ ॥
स्थितायां प्रकृतौ देवि विकृतिर्न बलीयसी ।
सप्तानामपि मन्त्राणामयमेवाग्रणीः प्रिये ॥ १२७ ॥

देवी का अट्ठारह अक्षरों वाला जो मन्त्र पहले बतलाया गया, वह सभी मन्त्रों में श्रेष्ठ और सब मन्त्रों में उत्तमोत्तम कहा गया है। कामकलाकालि का यह मन्त्र प्रकृति (=मूल मुख्य) कहा जाता है। गुह्यकाली का जो सोलहअक्षरों वाला मन्त्र है वह विकृति है। हे देवि! प्रकृति के वर्त्तमान रहने पर विकृति बलीयसी नहीं होती। इसलिये हे प्रिये! (काली के) सात प्रकार के मन्त्रों में यही (=अष्टादशाक्षर मन्त्र) अग्रणी है ॥ १२५-१२७ ॥

त्रैलोक्याकर्षणो मन्त्रो यदि भाग्येन लभ्यते ।
तदा शिवाविधाने तु स एव परिनिष्ठितः ॥ १२८ ॥
अभावे तस्य मन्त्रस्य गुह्यकाल्या मनुर्मतः ।
विनोपदेशं यः कुर्यात् प्रयोगं कामकालिकम् ॥ १२९ ॥
सद्यः स मृत्युमाप्नोति भक्षितो योगिनीगणैः ।
ग्राह्यस्तस्मात्प्रयत्नेन मनुरष्टादशाक्षरः ॥ १३० ॥

यह त्रैलोक्याकर्षण मन्त्र यदि भाग्य से मिल जाता है तो शिवा के विधान में यह

(अकेला) समर्थ है । इस मन्त्र के अभाव में गुह्यकाली मन्त्र का ग्रहण कहा गया है । गुरूपदेश के अभाव में जो व्यक्ति कामकलाकालि का प्रयोग करता है वह सद्यः मृत्यु को प्राप्त होता है और योगिनियाँ उसका भक्षण कर जाती हैं । इसलिये प्रयत्नपूर्वक अष्टादशाक्षर मन्त्र का (गुरु से) ग्रहण करना चाहिये ॥ १२८-१३० ॥

राज्यदानैः प्राणदानैरुपदेशो गुरोः प्रिये ।
आत्मनः क्षेममन्विच्छेद् यदि साधकसत्तमः ॥ १३१ ॥
न तु वा गुह्यकाल्यास्तु मनुनैवाखिलं भवेत् ।
गुरूपदिष्टमार्गेण प्रयोगेण वरानने ॥ १३२ ॥
इत्येष कथितो यत्नाच्छिवाबलिविधिस्तव ।
कथयस्व महागौरि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १३३ ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्त्र्यां महाकालसंहितायां शिवाबलिप्रयोगो नाम चतुर्थः पटलः ॥ ४ ॥

...✿...

यदि साधक अपना कल्याण चाहता है तो वह राज्य देकर प्राण देकर भी गुरु के उपदेश का ग्रहण करे । केवल गुह्यकाली के मन्त्र से ही सर्वसिद्धि नहीं होती । हे वरानने! गुरूपदिष्ट मार्ग का अनुसरण करने से सिद्धि मिलती है । यह शिवाबलिविधि मैंने तुमको प्रयत्नपूर्वक बतलायी है । हे महागौरि! बोलो आप और क्या सुनना चाहती हो ॥ १३१-१३३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकालसंहिता के कामकलाकाली खण्ड के शिवाबलिप्रयोग नामक चतुर्थ पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ४ ॥

...✿...

पञ्चमः पटलः

[कामकालिकप्रयोगः]

देव्युवाच—

विश्वोपकारक विभो शम्भो संसारतारक ।
त्वत्तः श्रुतमिदं सर्वं श्रुत्वा चैवावधारितम् ॥ १ ॥
केन कामकलानाम प्राप्तवत्यम्बिका परा ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो योगिजनप्रिय ॥ २ ॥
प्रयोगेणार्च्चया वापि ध्यानेनाथ स्तवेन वा ।
प्रोच्यते सा परा शक्तिः काली कामकलाह्वया ॥ ३ ॥
शृण्वन्ती ते मुखाम्भोजान्न तृप्तिमधियाम्यहम् ।
कथयस्व महादेव प्रयोगं कामकालिकम् ॥ ४ ॥

कामकलाकाली-प्रयोग—देवी ने कहा—हे विश्वकल्याणकृत् व्यापक संसार-तारक शम्भो ! मैंने यह सब आपसे सुना और सुनकर समझ लिया । हे योगिजनों के प्रिय ! अम्बिका ने किस कारण ने कामकला नाम प्राप्त किया । वह मैं आपसे सुनना चाहती हूँ । प्रयोग पूजा ध्यान स्तुति किसके कारण वह पराशक्ति कामकला काली कही जाती है । आपके मुखकमल से सुनने में मैं तृप्त नहीं होती । हे महादेव ! कामकलाकाली के प्रयोग को बतलाइये ॥ १-४ ॥

महाकाल उवाच—

अतिगुह्यतमं देवि प्रयोगं पृष्टवत्यसि ।
नाख्यातो योऽद्यपर्यन्तं कस्मा अपि वरानने ॥ ५ ॥
तमहं कथयिष्यामि यतो भक्तासि पार्वति ।
सङ्गोपनीयो यत्नेन न वाच्यो यस्य कस्यचित्॥ ६ ॥
चिकीर्षयापि यस्यास्य सिद्धिं विन्दति साधकः ।
किं पुनः करणेनेह भविष्यति शुचिस्मिते ॥ ७ ॥

महाकाल ने कहा—हे देवि ! तुमने अत्यन्त गुह्य प्रयोग को पूछा है । हे वरानने ! यह प्रयोग आज तक मैंने किसी को नहीं बतलाया । उसको मैं तुमको बतलाऊँगा; क्योंकि हे पार्वति ! तुम मेरी भक्त हो । किन्तु इसे भली-भाँति छिपाकर रखना; जिस किसी को मत बतलाना । हे शुचिस्मिते! इस प्रयोग के करने की इच्छा मात्र से साधक सिद्धि को प्राप्त कर लेता है फिर करने से क्या होगा (यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है) ॥ ५-७ ॥

प्राणात्ययेनापि पुनर्न वाच्यं यत्र कुत्रचित् ।
स्मरणादस्य योगस्य प्रसन्ना कालिका भवेत्॥ ८ ॥
किं बहूक्तेन देवेशि धन्यावावां जगत्त्रये ।
यतः पृच्छसि वक्तास्मि प्रयोगं कामकालिकम्॥ ९ ॥
नैवास्ति त्वय्यकथ्यं मे गुह्याद् गुह्यतरं हि यत् ।
शृणुष्व तं योगवरं भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ १० ॥

प्राण देकर भी इसे जिस किसी को नहीं बतलाना चाहिये । इस प्रयोग के स्मरणमात्र से कालिका प्रसन्न हो जाती है । हे देवेशि! अधिक कहने से क्या, हम दोनों इस त्रिलोक में धन्य हैं जो कि तुम पूछने वाली हो और मैं कामकलाकाली प्रयोग को बतलाने वाला हूँ । जो गुह्य से भी गुह्यतर है वह भी मेरे द्वारा तुम्हारे लिये अकथनीय नहीं है । इसलिये उस श्रेष्ठयोग को भक्तिपूर्ण मन से सुनो ॥ ८-१० ॥

अवहेला न कर्तव्या न जुगुप्सा कदाचन ।
न निन्दा न परीवादो न द्वेषो नैव धिक्कृतिः॥ ११ ॥
कृते तु सर्वनाशः स्यान्मरणं रोगपूर्णता ।
दारिद्र्यं पुत्रनाशश्च बन्धनं निगडादिभिः ॥ १२ ॥
तस्मान्निन्दा न कर्तव्या यदीच्छेदात्मनः शुभम् ।
स्वभाव एव देव्यास्तु प्रीतिरेतत्प्रयोगतः ॥ १३ ॥
राजाज्ञेवाप्रणोद्येयं सैव ब्रूते सनातनी ।
प्रयोगस्त्रिविधोऽयं च शक्याशक्यनिबन्धनः ॥ १४ ॥
राजपूर्वो मध्यपूर्वो लघुपूर्वस्तथैव च ।

(इस प्रयोग के विषय में) उपेक्षा जुगुप्सा निन्दा कलह द्वेष और धिक्कार नहीं करना चाहिये । ऐसा करने पर सर्वनाश, मरण, रोग, दरिद्रता, पुत्रनाश, कारागार आदि कुछ भी हो सकता है । इसलिये यदि साधक अपना कल्याण चाहता है तो उसे निन्दा नहीं करनी चाहिये । ऐसा देवी का स्वभाव है कि इस प्रयोग से वह प्रसन्न हो जाती है । उसी सनातनी (महाकाली) का यह कथन है कि राजाज्ञा के समान यह प्रयोग अनुपेक्ष्य है । यह प्रयोग तीन प्रकार का होता है । यह प्रकार सामर्थ्य और असामर्थ्य के कारण है । वे प्रकार हैं—राजपूर्व, मध्यपूर्व और लघुपूर्व ॥ ११-१५ ॥

[राजपूर्वस्य कामकलाख्यप्रयोगस्याभिधानम्]

योगः कामकलाख्योऽयं तत्रादिं व्याहरामि ते ॥ १५ ॥
रामाः षोडशवर्षीया रूपयौवनगर्विताः ।
विशाललोचनाः श्यामाः शारदेन्दुनिभाननाः ॥ १६ ॥
घनकुन्तलभारिण्यः पीनोत्तुङ्गकुचोन्नताः ।
विशालजघनाभोगा अतिक्षीणकटिस्थलाः ॥ १७ ॥

बृहन्नितम्बदृषदो　　जातरूपतनुश्रियः ।
पीनोरवः　कान्तिमत्यः　सर्वाभरणभूषिताः ॥ १८ ॥
भिन्नजातीयकाः　सर्वा　नारीराकारयेत्सुधीः ।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा दासी नटी तथा ॥ १९ ॥
मालाकारिणिका चापि कुम्भकारिणिका तथा।
शौचिकी च कुविन्दी च तन्तुवाय्यसिमार्जिका ॥ २० ॥
रजकी　चर्मकारस्त्री　तथायःकारिका　प्रिये ।
शौण्डिकी नापिती त्वाष्ट्री कलादी काम्बरी तथा ॥ २१ ॥
कैवर्ती　सौल्विकी तैलकारिणी मागधी तथा ।
वेश्या कुमारी　च तथा तथाभीरा च पुंश्चली ॥ २२ ॥
सैरिन्ध्री　दूतिका　रण्डा　प्रतिवेशनिकापि च ।
स्वजाया　जीवनी　चैव　चतुस्त्रिंशच्च वारुडी ॥ २३ ॥
चाण्डाली राजकन्या च षट्त्रिंशदिति ताः स्मृताः ।
पुष्पवासिततैलेन　　समभ्यक्ता　　वराननाः ॥ २४ ॥
प्रसाधिताः　स्नापयेत्तास्तोयैः　कर्पूरवासितैः ।
उच्चरन्मन्त्रमेतं　　हि　　सकृत्सकृदुदारधीः ॥ २५ ॥

राजपूर्व प्रयोग—यह (तीनों योग) कामकला नामक योग है । उनमें से प्रथम योग को मैं बतला रहा हूँ । विद्वान् साधक रूप एवं यौवन से मदमस्त, विशाल नेत्रों वाली, श्यामा (=यौवनमध्यस्था) शारदीय चन्द्र के समान मुखों वाली, घने बालों, बड़े ऊँचे स्तनों, विशाल जाँघों, अतिक्षीणकटिस्थलों, वृहत् नितम्बों वाली, जातरूप (=सुवर्ण) के समान शरीरशोभायुक्त, पीनवक्षस्थलवाली, कान्तिमती, सर्वाभरणभूषित, भिन्न जातीय समस्त सुन्दरी स्त्रियों को बुलाये । ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा, दासी, रंगमञ्चकलावाली, मालिन, कुम्हारिन, जमादारिन, जुलाहिन, बुनकरी, असिमार्जिका (=तलवार पर शाण रखने वाली), धोबिन, चर्मकारिणी, लोहारिन, शौण्डिकी (=शराब बेंचने वाली), नाइन, बढ़इन, सुनारिन, रंगरेजिन, मल्लाहिन, कसेरिन, तेलिन, भाँटिन, वेश्या, कुमारी, आभीरी, पुंश्चली, शिल्पकारिणी, दूती, राँड़, परोसिन, अपनी पत्नी और जीवन (=वैद्या स्त्री)—इन चौंतीस तथा इनके अतिरिक्त चाण्डाली और राजकन्या इस प्रकार कुल छत्तीस को ले आये । इनको पुष्पवासित तैल से उपलिप्त करे । प्रसाधित करने के बाद कर्पूरवासित जल से स्नान कराये । उदार चेता साधक उक्त संस्कारों को करते समय धीरे-धीरे उक्त मन्त्र का उच्चारण करता जाय ॥ १५-२५ ॥

[सुन्दरीणामिह स्नापनमन्त्रः]

प्रणवं　च　त्रपाकामौ ततो भगवति स्मरेत् ।
महामाये　पदं　प्रोच्य　ततेऽनङ्गपदं　वदेत् ॥ २६ ॥

वेगसाहसिनि स्मृत्वा मनो सर्वजनात् परम् ।
हारिणीति समुद्धृत्य ततः सर्ववशङ्करि ॥ २७ ॥
मोदयेति पदद्वन्द्वं प्रमोदय ततस्तथा ।
एह्यागच्छेति नामापि सम्बोध्य प्रवदेत् सुधीः ॥ २८ ॥
सान्निध्यं च कुरु द्वन्द्वं युगं च कवचास्त्रयोः ।
स्वाहान्तोऽयं महामन्त्रः प्रशस्तः स्नापने प्रिये॥ २९ ॥
ततः प्रदद्याद्वसनं सर्वाभ्यश्च पृथक् पृथक् ।
भिन्नो भिन्नो मनुः प्रोक्तः सर्वस्मिन्नपि कर्मणि ॥ ३० ॥
वस्त्रदानस्य मन्त्रं च गदतो मे निशामय ।

सुन्दरी स्नापन मन्त्र—प्रणव लज्जा काम बीजों के बाद 'भगवति महामाये' पदों को कहकर 'अनङ्गवेगसाहसिनि सर्वजनमनोहारिणि' कहे । इसके बाद 'सर्ववशङ्करि' कहे फिर 'मोदय' और 'प्रमोदय' पदों को दो-दो बार कहे । 'एहि' 'आगच्छ' दो बार कहने के बाद नाम का सम्बोधन प्रयोग करे । 'सान्निध्यं' कहने के बाद 'कुरु' को दो बार फिर कवच और अस्त्र बीजों को दो-दो बार कहने के बाद 'स्वाहा' कहे । (इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप होगा—'ॐ ह्रीं क्लीं भगवति महामाये अनङ्गवेगसाहसिनि सर्वजनमनोहारिणि सर्ववशङ्करि मोदय मोदय प्रमोदय प्रमोदय एह्येह्यागच्छागच्छ कामकलाकालि सान्निध्यं कुरु कुरु हूं हूं फट् फट् स्वाहा ।')

हे प्रिये! यह मन्त्र स्नान कराने में प्रशस्त है । इसके बाद सभी सुन्दरियों के लिये अलग-अलग वस्त्र दे । सभी कर्मों के लिये अलग-अलग मन्त्र कहा गया है । वस्त्रदान का मन्त्र बतला रहा हूँ, सुनो ॥ २६-३१ ॥

[सुन्दरीणामिह वस्त्रार्पणमन्त्रः]

लज्जाकामवधूनां च युगं युगमनुस्मरेत् ॥ ३१ ॥
त्रैलोक्याकर्षणीत्युक्त्वा वस्त्रं गृह्ण युगं वदेत्।
फडन्ते वह्निजाया च प्रोक्तो वस्त्रार्पणे मनुः ॥ ३२ ॥

वस्त्रदान-मन्त्र—लज्जा काम वधू बीजों को दो-दो बार कहे । फिर 'त्रैलोक्याकर्षणि' कहकर 'वस्त्रं गृह्ण' को दो बार कहे । 'फट्' कहने के बाद वह्निजाया का उच्चारण करे । (मन्त्र का स्वरूप होगा—'ह्रीं ह्रीं क्लीं क्लीं स्त्रीं स्त्रीं त्रैलोक्याकर्षणि वस्त्रं गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।') वस्त्र के अर्पण में यह मन्त्र कहा गया है ॥ ३१-३२ ॥

[सुन्दर्या अर्पणीयवस्त्राभिधानम्]

साटी क्षौमदुकूलादि पट्टवस्त्रं विशेषतः ।
अन्यद् यद् यच्च भवति महामूल्यवदंशुकम् ॥ ३३ ॥

अर्पणीयवस्त्र वर्णन—साड़ी रेशमी दुपट्टा पट्टवस्त्र और अन्य जो-जो मूल्यवान् वस्त्र हो देना चाहिये ॥ ३३ ॥

[समन्त्रः कज्जलार्पणविधिः]

ततोऽर्पयेत् कज्जलं च वक्ष्यमाणमनुं वदन् ।
तारं क्रोधं समुद्धृत्य महाघोरतरे वदेत् ॥ ३४ ॥
फेत्काररावविणीत्युक्त्वा महामांसप्रियेति च ।
हिलियुग्मं मिलिद्वन्द्वं ततः कज्जलमित्यपि ॥ ३५ ॥
गृह्ण गृह्णेति सम्भाष्य ठद्वयान्तो मनुर्मतः ।
निवेदयेच्च सर्वाभ्यः कज्जलं मन्त्रमुच्चरन् ॥ ३६ ॥

कज्जलार्पणमन्त्र—इसके बाद वक्ष्यमाण मन्त्र का उच्चारण करते हुए कज्जल प्रदान करना चाहिये । मन्त्र—'तारक्रोध बीज', महाघोरतरे' कहे. 'फेत्काररावविणि' कहकर 'महामांसप्रिये' कहे । फिर 'हिलि' 'मिलि' को दो-दो बार कहे । तत्पश्चात् 'कज्जलं' कहकर 'गृह्ण' को दो बार कहने के अनन्तर अन्त में दो बार 'ठः' कहे । (मन्त्र का स्वरूप होगा—ओऽम् हूं महाघोरतरे फेत्कारविणि महामांसप्रिये! हिलि हिलि मिलि मिलि कज्जलं गृह्ण गृह्ण ठः ठः ॥ ३४-३६ ॥

[समन्त्रः सिन्दूरार्पणविधिः]

सिन्दूरं च ततो दद्यादनेन मनुना प्रिये ।
प्रणवास्यवधूकाममायारुट्कमलार्णकान् ॥ ३७ ॥
समनूद्धृत्य सञ्जल्पेत् सर्वभूतपदं ततः ।
पिशाचराक्षसानुक्त्वा ग्रसयुग्मं समुच्चरेत् ॥ ३८ ॥
मम जाड्यमिति प्रोच्य च्छेदय त्रितयं तथा ।
वेदसङ्ख्यं ततो भौतं प्रासादमिथुनं ततः ॥ ३९ ॥
शत्रून्पूर्वं समुद्धृत्य ममशब्दं दहद्वयम् ।
उच्छादय स्तम्भयापि विध्वंसय युगं युगम् ॥ ४० ॥
सर्वग्रहेभ्य इत्युक्त्वा शान्तिं कुरु ततो वदेत् ।
रक्षां कुरु तथा चोक्त्वा वाग्भवं त्रितयं स्मरेत्॥ ४१ ॥
फडन्ते ठद्वयं चापि सिन्दूरार्पणको मनुः ।

सिन्दूरार्पणमन्त्र—हे प्रिये! इसके बाद निम्नलिखित मन्त्र से सिन्दूरार्पण करे—प्रणव, आस्य (=आं) वधू काम माया रोष (=हूं) कमला बीजाक्षरों को कहकर 'सर्वभूतपिशाचराक्षस' कहे । फिर 'ग्रस' को दो बार उच्चारित कर 'मम जाड्यम्' कहने के बाद 'च्छेदय' को तीन बार तथा भूतबीज (=स्फ्रें) को चार बार कहने के बाद प्रसादबीज (=हौं) को दो बार कहे । फिर 'मम शत्रून्' कहने के बाद 'दह' को दो बार कहे । 'उच्छादय स्तम्भय विध्वंसय' को दो-दो बार कहने पर 'सर्वग्रहेभ्यः शान्तिं कुरु' रक्षां कुरु कहने के बाद वाग्भवबीज को तीन बार उच्चारित कर अन्त में 'फट् ठः ठः' कहे । (इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप होगा—

'ॐ आं स्त्रीं क्लीं ह्रीं हूं श्रीं सर्वभूतपिशाचराक्षसान् ग्रस ग्रस मम जाड्यं च्छेदय च्छेदय च्छेदय स्फ्रें स्फ्रें स्फ्रें स्फ्रें हौं हौं मम शत्रून् दह दह उच्छादयोच्छादय स्तम्भय स्तम्भय विध्वंसय विध्वंसय सर्वग्रहेभ्यः शान्तिं कुरु रक्षां कुरु ऐं ऐं ऐं फट् स्वाहा ।') यह सिन्दूरार्पण मन्त्र है ॥ ३७-४२ ॥

[समन्त्र-अलक्तकार्पणविधिः]

अलक्तकार्पणं मन्त्रं प्रयत्नेनाशु मे शृणु ॥ ४२ ॥
मारयुग्मं पुरः प्रोच्य नवकोटिपदं वदेत् ।
योगिनीति ततः पश्चाद् ङेऽन्तं परिवृता तथा ॥ ४३ ॥
रोषद्वयान्नाम ङेऽन्तं ततोऽनङ्गपदं प्रिये ।
वेगमालाकुला ङेऽन्ता मायायुग्मं ततः परम् ॥ ४४ ॥
ङेऽन्तं ततो वदेत्कान्ते स्वयम्भूकुसुमप्रिया ।
इमं पूर्वमलक्तं च त्रपाप्रासादयोर्युगम् ॥ ४५ ॥
सुवासिनीति ङेऽन्तवन्निवेदयामि चेत्यपि ।
नमः शिरोङेऽन्तमुच्चकैरयं मनुः प्रकीर्तितः ॥ ४६ ॥

अलक्तकार्पण मन्त्र—अब मुझसे अलक्तक के अर्पण का मन्त्र सुनो—सबसे पहले कामबीज को कहकर 'नवकोटियोगिनीपरिवृता' को चतुर्थ्यन्त कहे । फिर क्रोध बीज को दो बार कहकर नाम का ङेऽन्त उच्चारण करे । पश्चात् 'अनङ्गवेगमालाकुला' का चतुर्थ्यन्त उच्चारण कर मायाबीज को दो बार कहे । ततः स्वयम्भूकुसुमप्रिया का ङेऽन्त उच्चारण करे । पुनः 'इममलक्तम्' कहने के बाद त्रपा प्रासाद बीजों का दो-दो बार उच्चारण करे । 'सुवासिनी' का ङेऽन्त उच्चारण कर 'निवेदयामि नमः' कहकर शिरो बीज का उच्चारण करे । मन्त्र का स्वरूप होगा—

क्लीं नवकोटियोगिनीपरिवृतायै हूं हूं कामकलाकाल्यै अनङ्गवेगमालाकुलायै ह्रीं ह्रीं स्वयम्भूकुसुमप्रियायै इममलक्तं ह्रीं ह्रीं हौं हौं सुवासिन्यै निवेदयामि नमः स्वाहा ।' यह मन्त्र कहा गया ॥ ४२-४६ ॥

[मण्डलारचनविध्यभिधानम्]

समर्हणैकमन्दिरे विरच्य तत्र मण्डलम् ।
सितं हि पूर्वदिग्गतं तथारुणं च वह्निगम् ॥ ४७ ॥
परेतगं च मेचकं सुपीतवच्च नैर्ऋतम् ।
प्रचेतसं च पाटलं समीरगं च हारितम् ॥ ४८ ॥
कुबेरगं च पिङ्गलं गिरीशगं हि धूमलम् ।
विधाय हीदृशं प्रिये दिगष्टशोभि मण्डलम् ॥ ४९ ॥
युगाख्यनिर्गमान्वितं तदीयपालसंयुतम् ।
विभिन्नरूपमण्डले निवेशयेत्तु ताः क्रमात् ॥ ५० ॥

ऋषित्रिसङ्ख्यमण्डलक्रमेण दीर्घपङ्क्तिगम् ।
ततोऽष्टसोमसङ्ख्यकैर्निवेश्य मण्डले स्त्रियः ॥ ५१ ॥
नवेन्दुसङ्ख्यके प्रिये विरच्य मूलमण्डलम् ।
पुरोक्तयन्त्रमुत्तमं निवेश्य पूजनं चरेत् ॥ ५२ ॥
ततोऽनु तत्र कामिनीस्तदोपवेशयेत् क्रमात् ।

मण्डलरचना-विधि—सम्यक् पूजा के योग्य एक मन्दिर में मण्डलों की रचना करे । पूर्वदिशा में श्वेत, अग्निकोण में रक्त, दक्षिण में काला, नैर्ऋत्य कोण में पीत पश्चिमदिशा में पाटल (नारंगी रंग) वायव्य कोण मे हरित, उत्तरदिशा में पिङ्गल और ईशानकोण में धूमके रंग का मण्डल बनाये । हे प्रिये! आठ दिशाओं को शोभान्वित करने वाले मण्डल को बनाकर चार द्वार बनाये जिस पर द्वारपाल नियुक्त हों । विभिन्न रूपों वाले मण्डल में उन (सुन्दरियों) का प्रवेश कराये । सैतीस सङ्ख्या वाले मण्डल के क्रम से दीर्घपङ्क्ति हो । फिर अट्ठारह की सङ्ख्या में स्त्रियों का मण्डल में प्रवेश कराये । हे प्रिये! उन्नीस की सङ्ख्या में मूल मण्डल की रचना करे । तत्पश्चात् पूर्वोक्त यन्त्र को रखकर उसका पूजन करे । उसके बाद उनके ऊपर सुन्दरियों को क्रम से बैठाये ॥ ४७-५३ ॥

[यन्त्रोपरि सुन्दरीणामुपवेशनार्थ मन्त्रः]

सरोषह्रीरमास्मरैः सवाग्भवैश्च मण्डले ॥ ५३ ॥
उपानुगं विशोच्चरेत् पुनस्तथैव चोद्धरेत् ।
सुसन्निधिं कुरु त्विदं भवेच्च वारयुग्मकम् ॥ ५४ ॥
ततोऽनलाङ्गनायुतो मनुः सदोपवेशने ।
गजेन्द्रतः परात् प्रिये स्मृतं हि काममण्डलम् ॥ ५५ ॥
तदेव कामकालिकं सदैव मुख्यमुच्यते ।

उपवेशन मन्त्र—क्रोध, लज्जा, लक्ष्मी, काम और वाग्भव बीजों का उच्चारण कर फिर 'मण्डले उपविश' कहना चाहिये । 'उपविश' को पुनः कहना चाहिये । तत्पश्चात् 'सुसन्निधिं कुरु' को कहकर 'कुरु' को पुनः कहना चाहिये । इसके बाद अग्नि की स्त्री को जोड़े । उपवेशन में यह मन्त्र सदा प्रयोज्य है । गज (=८) और इन्द्र (=१०) इस प्रकार (८+१० = १८) के मण्डल के बाद काममण्डल कहा गया है । वही कामकला काली का तथा मुख्य मण्डल है ॥ ५३-५६ ॥

[कामकलाख्ययन्त्रे मूलदेव्याः समन्त्र आवाहनविधिः]

तत्र कामकलानाम्नि मण्डले जगदम्बिकाम् ॥ ५६ ॥
आवाहयेज्जगद्धात्रीं वक्ष्यमाणमनुं वदन् ।
प्रणवं नारसिंहस्य पञ्चकं समनूच्चरेत् ॥ ५७ ॥
एह्येहीति पदं न्यस्य परमात्तत्त्वमुच्चरेत् ।

रूपिणीत्यपि चोद्धृत्य ततो भगवति स्मरेत् ॥ ५८ ॥
सम्बोधनतया नाम ततो भूतार्णपञ्चकम् ।
सन्निधिं च कुरुद्वन्द्वं क्रोधद्वन्द्वं ततोऽप्यनु ॥ ५९ ॥
अस्त्रद्वयादनु स्वाहा प्रोक्तो ह्यावाहने मनुः ।
इत्यावाह्य महापीठे सान्निध्यं परिकल्प्य च ॥ ६० ॥

यन्त्र पर मूलदेवी का आवाहन—उस कामकला नामक मण्डल में जगद्धात्री जगदम्बा का आवाहन वक्ष्यमाण मन्त्र का उच्चारण करते हुए करे। (मन्त्र का वर्णन करते हैं—) प्रणव, नरसिंहबीज (=क्षौं) को पाँच बार कहे फिर 'एहि एहि परमतत्त्वरूपिणि' के बाद 'भगवति' कहकर पाँच बार भूतबीज कहे। उसके बाद 'सन्निधिं' कह कर 'कुरु' को दो बार क्रोध बीज को दो बार कहने के अनन्तर दो बार अस्त्र कहे फिर 'स्वाहा' कहे। यह आवाहन मन्त्र है। (जिसका स्वरूप निम्नलिखित है—ॐ क्षौं क्षौं क्षौं क्षौं क्षौं एहिएहि परमतत्त्वरूपिणि भगवति कामकलाकालि स्फ्रें, स्फ्रें स्फ्रें स्फ्रें स्फ्रें सन्निधिं कुरु कुरु हूं हूं फट् फट् स्वाहा)

इस मन्त्र से आवाहन कर महापीठ पर देवी के सान्निध्य की कल्पना करनी चाहिये ॥ ५६-६० ॥

[कामकालिकप्रयोगार्थं देव्या अनुज्ञाप्रार्थना]

ततोऽनुज्ञां प्रार्थयीत सर्वासामपि पूजने ।
कलातीते नादबिन्दुशक्तिरूपिणि चिन्मये ॥ ६१ ॥
पराकुण्डलिनीरूपे शिवशक्तिस्वरूपिणि ।
देवि कामकलाकालि जगदुत्पत्तिकारिणि ॥ ६२ ॥
स्थितिकारिणि कल्पान्ते पुनः संहारकारिणि।
परामृतरसास्वादपरमानन्दलोलुपे ॥ ६३ ॥
सदाशिवमहत्तत्त्वसामरस्यस्वरूपिणि ।
देवि कामकलाकालि सर्वसिद्धिप्रदेऽनघे ॥ ६४ ॥
अनुज्ञां देहि मे देवि प्रयोगे कामकालिके ।

प्रयोगार्थ अनुज्ञा के लिये प्रार्थना—इसके बाद सभी के पूजन के लिये (देवी से) अनुज्ञा की प्रार्थना करे। (अनुज्ञा प्रार्थना का स्वरूप मूल ग्रन्थ में 'कलातीते.... कामकालिके' तक है जिसका अर्थ है—)

हे कलातीते! नाद बिन्दु और शक्तिरूपिणि, चिन्मयि पराकुण्डलिनी रूपे शिवशक्ति स्वरूपिणि देवि, कामकलाकालि, संसार को उत्पन्न करने वाली, (संसार को) स्थित रखने वाली, कल्पान्त में पुनः संहार करने वाली परम अमृत के रसास्वाद से उत्पन्न परम आनन्द की लोलुप सदाशिव से लेकर महत् तत्त्व तक के सामरस्य रूप, देवि। कामकलाकालि, समस्त सिद्धियों को देने वाली, निष्कलुष कामकालिके देवि प्रयोग के विषय में मुझे आज्ञा दो ॥ ६१-६५ ॥

[मण्डलोपविष्टसुन्दरीणां सोपचारपूजाविधिः]

इत्यनुज्ञां ततो लब्ध्वा क्रमात्पूर्वादितः सुधीः ॥ ६५ ॥
पूजयेन्मण्डलस्थास्ता उपचारैर्यथोदितैः ।
जातिहीना इति ज्ञात्वा नावमान्या कथञ्चन ॥ ६६ ॥
देवीधिया प्रपश्येत्ता इत्यागमविदो विदुः ।
पाद्यार्घाचमनीयाद्यैः गन्धपुष्पादिभिस्तथा ॥ ६७ ॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैरन्यद् यच्चोपकल्पितम् ।
पूर्वोक्तेन विधानेन मन्त्रैरपि च तैः प्रिये ॥ ६८ ॥
कर्तव्या विधिवत्पूजा यथा तास्तोषमाप्नुयुः ।
ऊनविंशे मण्डले तु यजेद् देवीं प्रसन्नधीः ॥ ६९ ॥
नित्यपूजोक्तविधिना सर्वसम्भारसञ्चयैः ।

मण्डलोपविष्टसुन्दरी-पूजा—इस प्रकार आज्ञा लेकर विद्वान् (साधक) क्रमशः पूर्व से लेकर (ईशान तक) मण्डलस्थ उन सुन्दरियों की यथोदित उपचार से पूजा करे । (ये सुन्दरियाँ) निम्न जाति की हैं—ऐसा समझ कर उनका अपमान नहीं करना चाहिये । उनको देवी के रूप में देखना चाहिये ऐसा आगमवेत्ता मानते हैं । पाद्य अर्घ आचमन आदि गन्ध, पुष्प आदि धूप, दीप, नैवेद्य और अन्य जो कुछ एकत्रित किया गया है उन सबसे पूर्वोक्तविधान और उन पूर्वोक्त मन्त्रों से हे प्रिये! उनकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये जिससे कि वे सन्तुष्ट हो जायँ । प्रसन्न मन वाला साधक उन्नीसवें मण्डल में नित्यपूजा में कही गयी विधि के अनुसार समस्त पदार्थों से देवी का यजन करे ॥ ६५-७० ॥

[पीठन्यासविधिः]

षडङ्गानि प्रविन्यस्य पीठन्यासं समाचरेत् ॥ ७० ॥
महामण्डूककालाग्निरुद्रं च कच्छपं तथा ।
आधारे लिङ्गनाभौ च क्रमेणोपन्यसेत्सुधीः ॥ ७१ ॥
एवं विचिन्त्य विधिवद्धर्मादीन् विन्यसेत्ततः ।
अंसोरुयुग्मयोर्विद्वान् प्रादक्षिण्येन देशिकः ॥ ७२ ॥
धर्मज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्य्यं विन्यसेत्क्रमात् ।
मुखपार्श्वनाभिपार्श्वेष्वधर्मादीन्प्रकल्पयेत् ॥ ७३ ॥
अनन्तं हृदये पद्मेऽस्मिन् सूर्येन्दुपावकान् ।
एषु स्वस्वकला न्यसेन्नामाद्यक्षरपूर्विकाः ॥ ७४ ॥
सत्त्वादींस्त्रीन् गुणान् न्यस्येत्तथैवात्र गुरूत्तमः ।
आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमेव च ॥ ७५ ॥
ज्ञानात्मानं प्रविन्यस्य न्यसेत्पीठमनुं ततः ।

पीठन्यास—षडङ्गन्यास करने के बाद पीठन्यास करना चाहिये । विद्वान् मूलाधार लिङ्ग और नाभि में क्रमशः महामण्डूक कालाग्निरुद्र तथा कच्छप का न्यास करे । इसके बाद विचारपूर्वक धर्म आदि का न्यास करे । दोनों कन्धों और दोनों जांघों में क्रमशः धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य का न्यास करे । मुख के दोनों पार्श्वों और नाभि के दोनों पार्श्वों में अधर्म अज्ञान अवैराग्य और अनैश्वर्य का न्यास करे । अनन्त का हृदय में न्यास करे । उसी (हृदय) कमल में सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि का उनकी अपनी-अपनी कलाओं का आद्य अक्षर पूर्वक न्यास करे । उसी प्रकार उत्तम गुरु सत्त्व आदि तीन गुणों, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्मा का पीठ में न्यास कर मन्त्र का न्यास करे ॥ ७०-७६ ॥

[आत्मनि इष्टदेवताध्यानमानसपूजाविधिः]

एवं देहमये पीठे चिन्तयेदिष्टदेवताम् ॥ ७६ ॥
पूर्वोक्तेन विधानेन मनसा परिपूजयेत् ।

इष्टदेवता का ध्यान और मानसपूजा—इस प्रकार देहमय पीठ में इष्ट देवता का ध्यान करे और पूर्वोक्त विधान से उनका मानसिक पूजन करे ॥ ७६-७७ ॥

[इष्टदेवतायाः बाह्यपूजोपकरणसङ्ग्रहः]

मुद्रां प्रदर्श्य विधिना शङ्खस्थापनमाचरेत् ॥ ७७ ॥
शङ्खमस्त्रेण सम्प्रोक्ष्य वामतो वह्निमण्डले ।
साधारं स्थापयेद् विद्वान् व्युत्क्रमार्णैर्जलं क्षिपेत् ॥ ७८ ॥
पूजयेद्वह्निसूर्येन्दून् बीजैस्तत्तत्कलान्वितैः ।
तत्तत्कला तु सङ्ख्याता दशद्वादशषोडशैः ॥ ७९ ॥
तीर्थावाहनमन्त्रैश्च तीर्थान्यावाह्य पूजयेत् ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपाद्यैरभिपूजिते ॥ ८० ॥
शङ्खे पाणितलं दत्वा चाष्टधा प्रजपेन्मनुम् ।
चिन्मयं चिन्तयेत्तीर्थमानीयाङ्कुशमुद्रया ॥ ८१ ॥
अस्त्रमन्त्रेण रक्षित्वा कवचेनावगुण्ठ्य च ।
धेनुमुद्रां समासाद्य बोधयेत्तत्त्वमुद्रया ॥ ८२ ॥

इष्टदेवता की बाह्यपूजा—(साधक) विधिपूर्वक मुद्रा का प्रदर्शन कर [१]शङ्खस्थापन करे । अस्त्र, मन्त्र के द्वारा शङ्ख का प्रोक्षण कर विद्वान् अग्निमण्डल के वामभाग में आधार रखकर उसको स्थापित करे । (मन्त्र के) वर्णों का विपरीत क्रम से (='क्षं' से लेकर 'अं' तक) उच्चारण करते हुए उसमें जल छोड़े । तत्तत् कलाओं से युक्त अग्नि सूर्य और चन्द्र बीजाक्षरों के द्वारा (उसका) पूजन करे । (उक्त तीनों की पूजा का मन्त्र इस प्रकार होगा)—

---

१. कहीं-कहीं शङ्ख शब्द का अर्थ महाशङ्ख अर्थात् नरकपाल होता है ।

अं वह्निमण्डलाय धूम्रादिदशकलात्मने नमः ।
उं सूर्यमण्डलाय तपिन्यादिद्वादशकलात्मने नमः।
मं सोममण्डलाय अमृतादिषोडशकलात्मने नमः॥

(अग्नि सूर्य और चन्द्रमा की) तत्तत् कलाओं की सङ्ख्या क्रमशः दश बारह और सोलह कही गयी हैं । तीर्थावाहन मन्त्रों के द्वारा तीर्थों का आवाहन कर उनकी पूजा करे । आवाहनमन्त्र—

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

(साधक) गन्ध-पुष्प-अक्षत-धूप-दीप आदि के द्वारा पूजित शङ्ख के ऊपर करतल को रखकर मन्त्र का आठ बार जप करे । तत्पश्चात् तीर्थ का चिन्मयध्यान करे । अङ्कुश मुद्रा के द्वारा तीर्थ का आकर्षण कर अस्त्रमन्त्र (=अस्त्राय फट्) से रक्षा और कवच (=कवचाय हुम्) से अवगुण्ठन कर धेनुमुद्रा का बन्धन कर तत्त्वमुद्रा से उद्बोधन करे ॥ ७७-८२ ॥

दक्षिणे प्रोक्षिणीपात्रमाधायाद्भिः प्रपूरयेत् ।
किञ्चिदर्घ्याम्बु सङ्गृह्य प्रोक्षण्यम्भसि योजयेत् ॥ ८३ ॥
अर्घस्योत्तरतः कार्यं पाद्यमाचमनीयकम् ।
परमीकृत्य तं शङ्खं पावनं परिचिन्तयेत् ॥ ८४ ॥
देवस्य मूर्ध्नि तत्किञ्चित् पूजाद्रव्येषु चात्मनः ।
अवेक्षणं प्रोक्षणं च वीक्षणं ताडनं तथा ॥ ८५ ॥
अर्चनं चैव सर्वेषां पावनं सम्प्रकल्पयेत् ।
अर्घपात्रे प्रदातव्या गन्धपुष्पयवाक्षताः ॥ ८६ ॥
कुशाग्रतिलदूर्वाश्च सर्षपाश्चार्थसिद्धये ।
पाद्यपात्रे प्रदातव्यं श्यामाकं कूर्चमेव च ॥ ८७ ॥
अब्जं च विष्णुक्रान्तां च पाद्यसिद्ध्यै प्रकल्पयेत् ।
तथाचमनपात्रे च दद्याज्जातीफलं पुनः ॥ ८८ ॥
लवङ्गमपि कक्कोलं शस्तमाचमनीयकम् ।

(अग्निमण्डल के) दक्षिण में प्रोक्षणी पात्र को रखकर जल से उसको पूरित करे । थोड़ा सा अर्घ्यजल लेकर उसे प्रोक्षणी के जल में मिलाये । अर्घ्य के बाद पाद्य और आचमन देना चाहिये । तत्पश्चात् परमीकरण करे और उस शङ्ख को पवित्र हुआ समझे । इष्टदेवता के शिर पर पूजा द्रव्यों के ऊपर तथा अपने ऊपर कुछ-कुछ अवेक्षण प्रोक्षण वीक्षण ताड़न अर्चन कर सबको पवित्र हुआ समझे । तत्पश्चात् लक्ष्यपूर्ति के लिये अर्घपात्र में गन्ध-पुष्प-यव और अक्षत-कुशाग्र-तिल-दूर्वा-सरसों

डाले । पाद्यपात्र में पाद्य की सिद्धि श्यामाक (=साँवा), कूर्च (=एक मुट्ठी कुश), कमल और विष्णुक्रान्ता (=अपराजिता) डाले । उसी प्रकार आचमन के पात्र में जायफल डाले । लवङ्ग और कङ्कोल भी उत्तम आचमनीय हैं ॥ ८३-८९ ॥

[मधुपर्कपरिचयः]

दध्ना च मधुसर्पिर्भ्यां मधुपर्को भविष्यति ॥ ८९ ॥

मधुपर्क परिचय—दधि, मधु और घृत मिलाकर मधुपर्क बनता है ॥ ८९ ॥

[इष्टदेवताया बाह्यपूजाविधिः]

बाह्यपूजां ततो कुर्य्यादैहिकाभ्युदयाय वै ।
पूर्वमेवोदितं देवि मण्डलस्य प्रकल्पनम् ॥ ९० ॥
तथापि फलबाहुल्यात् प्रसङ्गादुच्यते पुनः ।
गोमयैर्लिप्तदेशे च मण्डलं तत्र कारयेत् ॥ ९१ ॥
शालितण्डुलचूर्णैश्च नीलपीतसितासितैः ।
लिखेदष्टदलं पद्मं चतुरस्रसमावृतम् ॥ ९२ ॥
नवकोणं कर्णिकायां कोणाग्रं बीजभूषितम् ।
कूर्मं च बृहदाकारं महामण्डूकमेव च ॥ ९३ ॥
कालाग्निसञ्ज्ञकं रुद्रं तस्मिन्पीठे प्रपूजयेत्।
तन्मध्ये साध्यमालिख्य कालीबीजानि संलिखेत्॥ ९४ ॥
सर्वतो मण्डलं चापि गायत्र्या परिवेष्टयेत् ।
गायत्रीं च प्रवक्ष्यामि यथावदवधारय ॥ ९५ ॥
जपादस्याश्च दयिते राजसूयफलं लभेत ।

इष्टदेवता की बाह्यपूजा विधि—इसके बाद सांसारिक अभ्युदय के लिये बाह्यपूजा करे । हे देवि! मण्डल की रचना यद्यपि पहले ही कही जा चुकी है तथापि 'अधिकस्य अधिकं फलम्' के अनुसार प्रसङ्गवश पुनः कही जा रही है । गोबर से लिपे हुए स्थान में मण्डल बनाना चाहिये । नील, पीत, श्वेत एवं कृष्ण रंग के शाली के चावल से अष्टदल कमल बनाये । (अष्टदल कमलरूपी) पीठ पर बड़ा आकार के कच्छप एवं मेढक बनाये तथा उनकी और कालाग्नि नामक रुद्र की पूजा करे । उसके बीच में साध्य का नाम लिखकर काली के बीजाक्षरों को लिखे । उस मण्डल को सब ओर से गायत्री मन्त्र के द्वारा परिवेष्टित कर दे । (अब मैं) गायत्री को बतलाऊँगा । जैसा बतलाता हूँ, वैसा धारण करो । हे दयिते! इसके जप से (जापक) राजसूययज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥ ९०-९६ ॥

[कामकलाकाल्यास्तान्त्रिकगायत्रीमन्त्रः]

अनङ्गाकुलायै विद्महे मदनातुरायै धीमहि ॥ ९६ ॥
तन्नः कामकलाकाली प्रचोदयात् ।

कामकलाकाली की गायत्री—अनङ्गाकुलायै विद्महे मदनातुरायै धीमहि तन्नः कामकलाकाली प्रचोदयात् ॥ ९६-९७ ॥

[बाह्यपूजायाः क्रमस्य विधेश्चाभिधानम्]

गुरुपङ्क्तिं नमेद्वामे गणेशादीन् परे तथा ॥ ९७ ॥
मध्ये त्वाधारशक्तिं च पङ्कजद्वयधारिणीम् ।
कूर्मं च बृहदाकारं महामण्डूकमेव च ॥ ९८ ॥
कालाग्निसञ्ज्ञकं रुद्रं तस्मिन् पीठे प्रपूजयेत् ।
अभ्यर्चयेद् वसुमतीं स्फुरत्सागरमेखलाम् ॥ ९९ ॥
तत्र रत्नमयं द्वीपं तस्मिंस्तु मणिमण्डपम् ।
यजेत् कल्पतरुं तस्मिन् साधकोऽभीष्टसिद्धये ॥ १०० ॥
अधस्तात्पूजयेत्तस्य वेदिकां मण्डलोज्वलाम् ।
पश्चादभ्यर्चयेत्तस्यां पीठे धर्मादिभिः पुनः ॥ १०१ ॥
रक्तश्यामहरिच्छुक्लनीलाभां नादरूपिणीम् ।
बृषकेशरिभूतेभरूपान् धर्मादिकान् यजेत् ॥ १०२ ॥
अग्न्यादिषु विदिक्ष्वेवं धर्मादीन् पूजयेत् सदा ।
अधर्मादीन् यजेत् पश्चात् पूर्वादिदिक्चतुष्टये ॥ १०३ ॥

बाह्यपूजा का क्रम और विधि—(पीठ के) बायीं ओर गुरुपङ्क्ति की, दूसरी (अर्थात् दायीं) ओर गणेश आदि की, मध्य में दो कमलों को धारण करने वाली आधारशक्ति की पूजा करनी चाहिये । बृहदाकार कूर्म, महामण्डूक और कालाग्नि रुद्र की उस पीठ पर पूजा करे । उछलते हुए सागररूपी मेखलावाली धरती की पूजा करे। उस (=पृथिवी) पर रत्नमय द्वीप, उस (=द्वीप) में मणिरचितमण्डप, उसमें साधक अभीष्ट की सिद्धि के लिये, कल्पवृक्ष की पूजा करे । उस (=कल्पतरु) के नीचे उज्ज्वल मण्डल वाली वेदी की पूजा करे । उस वेदी पर पीठ के ऊपर धर्म आदि के साथ नादरूपिणी (पीठशक्ति) का यजन करे । धर्म आदि का स्वरूप क्रमशः वृष-सिंह-भूत और हाथी है । पहले अग्नि आदि चार कोणों में धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की पूजा करे । बाद में पूर्व आदि चारों दिशाओं में अधर्म आदि (=अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य) की अर्चना करे ॥ ९७-१०३ ॥

आनन्दकन्दं प्रथमं संविन्नालमनन्तरम् ।
मन्त्री प्रकृतिपत्राणि विकारमयकेशरान् ॥ १०४ ॥
पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यां कर्णिकां पूजयेत्ततः ।
कलाभिः पूजयेत्सार्द्धं तस्मिन्सूर्येन्दुपावकान् ॥ १०५ ॥
प्रणवस्य त्रिभिर्वर्णैरथ सत्त्वादिकान् गुणान् ।
आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमेव च ॥ १०६ ॥
ज्ञानात्मानं च विविधं पीठशक्तिं यजेत् पुनः ।

तत्र पीठमनुं प्रोक्त्वा तत्र सिंहासनं न्यसेत् ॥ १०७ ॥

मन्त्र का साधक सबसे पहले आनन्द नामक कन्द, उसके बाद संविद् नामक नाल प्रकृति नामक पत्र और (प्रवृत्ति के) विकार नामक केशरों (की पूजा करने के बाद 'अ' से लेकर 'क्ष' तक के) पचास वर्णों वाली कर्णिका की उसकी कलाओं के साथ पूजा करे। उस (कर्णिका) में प्रणव के तीनों वर्णों (=अ उ म्) के द्वारा सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि की पूजा करे। इसके बाद सत्त्व आदि तीन गुणों आत्मा अन्तरात्मा परमात्मा ज्ञानात्मा की (पूजा कर) पुनः विविध पीठशक्ति का पूजन करे। वहाँ पर पीठमन्त्र का उच्चारण कर उस पर सिंहासन रखे ॥ १०४-१०७ ॥

उच्चरन्मूलमन्त्रं हि देवीं हृदि विचिन्तयन् ।
करकच्छपिकारूपमुद्रया पुष्पमुत्तमम् ॥ १०८ ॥
गृहीत्वा चिन्तयेद् देवीं तत्तन्मन्त्रानुसारतः ।
तन्मध्ये चिन्तयेद् देव्या वाहनं शवमेव च ॥ १०९ ॥
श्मशानं चिन्तयेत्तत्र शिवागणविराजितम् ।
मुण्डाट्टहाससंयुक्तं शिवाशतनिनादितम् ॥ ११० ॥

(तत्पश्चात् साधक) मूल मन्त्र का उच्चारण करता हुआ देवी का हृदय में ध्यान करे और करकच्छपिकामुद्रा[1] के द्वारा उत्तम पुष्प लेकर तत्तत् मन्त्र के अनुसार देवी का ध्यान करे। उस (मुद्रा) के बीच देवी के वाहन और शव[2] का भी ध्यान करे। उस (मुद्रा) में शृगालिनों से व्याप्त ऐसे श्मशान का ध्यान करे जिसमें नरमुण्ड अट्टहास कर रहे हों और सैकड़ों शृगालिने चिल्ला रही हों ॥ १०८-११० ॥

शिवाभिर्वहुमांसास्थिमोदमानाभिरन्विताम् ।
सुरासुरमुनीन्द्रैश्च योगिवृन्दैर्निषेविताम् ॥ १११ ॥
ध्यायेत्तत्र स्थितां देवीं कालीं कामकलाभिधाम् ।
ध्यात्वा पूर्वोक्तविधिना चित्ते चानीय सुन्दरि ॥ ११२ ॥
अञ्जल्यावाहयेत्तत्र देवीं साधकसत्तमः ।
स्वागतादि ततः प्रश्नं प्रत्युत्तरसमन्विताम् ॥ ११३ ॥

साधक को उस (श्मशान) में स्थित कामकला नामक काली का ध्यान करना चाहिये जो कि बहुत अधिक मांस अस्थि (का उपभोग करने से) प्रसन्न शृगालिनों से परिवृत तथा सुर-असुर और मुनीद्र-योगीन्द्र के समूहों से सेवित हो रही हैं। हे सुन्दरि! पूर्वोक्त विधि से उनका ध्यान कर और चित्त में धारण कर उत्तम साधक अञ्जलि के द्वारा वहाँ उनका आवाहन करे। इसके बाद प्रश्न और उत्तर से युक्त

१. इसमें दोनों हाथों की अञ्जलियों को कच्छप के समान बनाकर अङ्गूठे को ऊपर उठा देते हैं।
२. शव पाँच हैं—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव। इन्हीं के ऊपर भगवती काली विराजमान रहती हैं।

स्वागत आदि करे ॥ १११-११३ ॥

ततश्च आसनं दत्वा पाद्यमर्घ्यं प्रकल्पयेत् ।
तत आचमनीयं च स्नानोद्वर्तनमेव च ॥ ११४ ॥
स्नानीयं च जलं दद्यात् स्वाहामन्त्रैः प्रयत्नतः ।
दिव्यवस्त्रं ततो दत्वा दद्यादाभरणानि च ॥ ११५ ॥
नमः पाद्यं तथा चार्घ्यं स्वाहान्ते दीयते ततः ।
आचमनं स्वधान्ते च स्वाहान्ते च तथा मधु ॥ ११६ ॥
गन्धं नानाविधं रम्यं रक्तचन्दनमेव च ।
सिन्दूरं कुङ्कुमं चैव पुष्पदाम तथा पुनः ॥ ११७ ॥
परिवारं ततो देव्याः पूजयेत्साधकोत्तमः ।
ततो गुग्गुलजं धूपं दद्यान्मन्त्रं समुच्चरन् ॥ ११८ ॥
तद्वद् दीपः प्रदातव्यो मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ।
ततः पाद्यादिकं दत्वा नैवेद्यादीन् प्रकल्पयेत् ॥ ११९ ॥

इसके बाद (कामकला काली के लिये) आसन देकर पाद्य अर्घ्य आचमनीय स्नानीय जल, उद्वर्त्तन देकर पुनः स्नानीय जल देना चाहिये । यह सब स्वाहान्त मन्त्र से देना चाहिये । उदाहरण के लिये—

ॐ एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि-स्वाहा-पादयोःपाद्यं समर्पयामि ॥

उसके बाद दिव्य वस्त्र एवं आभरण को 'नमः' अन्त वाले मन्त्र से देना चाहिये । इसके बाद पुनः स्वाहान्त मन्त्र से पाद्य अर्घ्य तथा स्वधान्त मन्त्र से आचमन; स्वाहान्तमन्त्र से मधु दिया जाता है । अनेक प्रकार की रमणीय गन्ध, रक्तचन्दन, सिन्दूर, कुङ्कुम, पुष्पमाला देनी चाहिये । इसके बाद साधकोत्तम देवी के परिवार की पूजा करे । पश्चात् मन्त्र का उच्चारण करता हुआ गुग्गुलु का धूप दे । ततः मन्त्रोच्चारणपूर्वक दीपदान करे । इसके बार पाद्य आदि देकर नैवेद्य आदि का निवेदन करना चाहिये ॥ ११४-११९ ॥

[देव्याः प्रीतिकरनैवेद्याद्यभिधानम्]

अन्नं पानं च नैवेद्यं बलिदानं तथैव च ।
रक्तं मांसं मनोरम्यमामं पक्वं पृथक्पृथक् ॥ १२० ॥
क्रमेण सम्प्रवक्ष्यामि देव्याः प्रीतिकरं परम् ।
पञ्चामृतं तथा खण्डं शाल्यन्नं पिष्टकं तथा ॥ १२१ ॥
यवगोधूमजैर्मुद्गैः पक्वान्नं परिकल्पयेत् ।
व्यञ्जनं षड्रसोपेतं घृताक्तं सुमनोहरम् ॥ १२२ ॥
फलं नानाविधं रम्यं परमान्नं तथैव च ।

देवी के प्रीतिकर नैवेद्य—अन्न, पान, नैवेद्य, बलिदान, मन के लिये रुचिकर कच्चा तथा पकाया गया रक्त, मांस अलग-अलग देना चाहिये । आगे देवी के परमप्रीतिकर नैवेद्य का क्रम से वर्णन करूँगा । पञ्चामृत, खाँड़, शाली का अन्न, पीठी तथा यव गेहूँ मूँग से पक्वान का व्यञ्जन बनाये । यह व्यञ्जन छह रसों वाला तथा घृत से संलिप्त हो । अनेक प्रकार के रमणीय फल एवं परमान्न (=खीर, देवी के प्रिय नैवेद्य हैं) ॥ १२०-१२३ ॥

[ब्राह्मणस्य सात्त्विकद्रव्यार्पणनिर्देशः]

द्रव्येण सात्त्विकेनैव ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम् ॥ १२३ ॥

[क्षत्रियस्य तद्योग्यार्पणीयवस्तुनिर्देशः]

शाल्यन्नमामिषं चैव सुरां माक्षिकसम्भवाम् ।
तालीं च विविधां गौडीं खार्जूरीं पुष्पसम्भवाम् ॥ १२४ ॥
एवं दद्यात् क्षत्रियोऽपि पैष्टिकीं न कदाचन ।
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रे गव्यं तथा मधु ॥ १२५ ॥
राजन्यवैश्ययोर्दानं न द्विजस्य कदाचन ।
एवं प्रदानमात्रेण हीनायुर्ब्राह्मणो भवेत् ॥ १२६ ॥

[शूद्रस्य तद्योग्यार्पणीयवस्तुनिर्देशः]

शूद्रस्य पैष्टिकीदानं नापरस्य विधीयते ।

ब्राह्मण आदि के द्वारा द्रव्य का अर्पण—ब्राह्मण सात्त्विक द्रव्यों से काली का पूजन करे । क्षत्रिय साठी का अन्न, मांस, मधु, ताड, गुड, खजूर और अन्य पुष्पों से बनी हुई सुरा का अर्पण करे । किन्तु षैष्टी (=अनाज को सड़ा कर बनायी गयी) सुरा न दे । कांस्य पात्र में नारियल का पानी, ताम्रपात्र में गाय का दूध-दही आदि तथा मधु क्षत्रियों एवं वैश्यों के द्वारा देय हैं ब्राह्मण के द्वारा नहीं । इस प्रकार का दान करने वाले ब्राह्मण की आयु क्षीण हो जाती है । शूद्र के लिये पैष्टिकी सुरादान का विधान है दूसरे के लिये नहीं ॥ १२३-१२७ ॥

[अर्पणीयपशुनिर्देशः]

कृष्णसारं तथा छागं मृगान् नानाविधानपि ॥ १२७ ॥
मेषं च महिषं घृष्टिं तथा पञ्चनखानपि ।
कपोतं टिट्टिभं हंसं चक्रवाकं च लावकम् ॥ १२८ ॥
शरालिं तित्तिरिं मत्स्यान् कलविङ्कं चकोरकम् ।
अनुक्तं नैव दातव्यं द्विजवर्य्यैः कदाचन ॥ १२९ ॥

अर्पणीय पशु-पक्षी—कृष्णसार (=एक प्रकार का कालामृग), बकरा, अनेक प्रकार के जंगली जानवर, भेंड़, भैंसा, घृष्टि (=सूअर) पञ्चनख (=खरगोश, साही,

गोधा आदि), कबूतर, टिटिहरी, हंस, चक्रवाक, लवा, शरालि (=एक विशेष प्रकार का पक्षी) तित्तिर, मछली (=मत्स्य), कलविङ्क (=पक्षी विशेष) और चकोर (ये अर्पणीय पशु-पक्षी हैं) । जिनका वर्णन यहाँ नहीं किया गया द्विज लोग उसका दान कभी भी न करें ॥ १२७-१२९ ॥

[क्षत्रियस्य विशेषार्पणीयपशुनिर्देशः]

सिंहं व्याघ्रं नरं तद्वत् क्षत्रियः परिकल्पयेत् ।
विहाय कृष्णसारं च क्षत्रियादेर्भवेद् बलिः ॥ १३० ॥

क्षत्रिय हेतु विशेष अर्पणीय पशु—क्षत्रिय सिंह, व्याघ्र और मनुष्य की बलि दे (सकता है) । कृष्णसार को छोड़ कर क्षत्रिय आदि (अन्य मृगों की भी) बलि (दे सकते हैं) ॥ १३० ॥

[साधकस्य जात्यनुरूपनिषिद्धार्पणीयपशुविवरणम्]

सिंहं व्याघ्रं नरं हत्वा ब्राह्मणो ब्रह्महा भवेत् ।
मूषं मार्जारकं चाषं शूद्रो दत्वा पतत्यधः ॥ १३१ ॥

निषिद्ध पशु—ब्राह्मण यदि सिंह व्याघ्र अथवा मनुष्य की बलि देता है तो ब्रह्महत्या का भागी होता है । शूद्र मूषक बिडाल चाष की बलि देने से पतित हो जाता है ॥ १३१ ॥

[बलिकृत्यसम्पादनविधिनिर्देशः]

चन्द्रहासेन खड्गेन हन्यादेकप्रहारतः ।
उत्थाय हननं कुर्यान्नोपविश्य कदाचन ॥ १३२ ॥
स्वहस्तेन पशुं हत्वा पशुयोनिमवाप्नुयात् ।

बलिसम्पादन की विधि—चन्द्रहास खड्ग के द्वारा एक प्रहार से बलि देनी चाहिये । यह बलि खड़ा होकर देनी चाहिये बैठकर कदापि नहीं । अपने हाथ से पशु की हत्या कर साधक पशुयोनि को प्राप्त करता है ॥ १३२-१३३ ॥

[निषिद्धबलिनिर्देशः]

विं च त्रिपक्षतो न्यूनं महिषादींस्त्रिवर्षतः ॥ १३३ ॥
अन्यं त्रिमासतो न्यूनं न दद्याच्च कदाचन ।
वृद्धं वा विकृताङ्गं वा न कुर्याद् बलिकर्मणि ॥ १३४ ॥
स्वगात्ररुधिरं दातुं क्षत्रियादेर्भवेद् बलिः ।
सात्त्विको जीवहत्यां हि कदाचिदपि नो चरेत् ॥ १३५ ॥

निषिद्ध बलि—तीन पक्ष से कम अवस्था वाले पक्षी, तीन वर्ष से कम उम्र वाले महिष आदि और अन्य की तीन मास से कम वय होने पर कभी भी बलि नहीं

देनी चाहिये । वृद्ध और विकलाङ्ग जीवों की बलि नहीं देनी चाहिये । क्षत्रिय साधक अपने शरीर के रक्त की बलि प्रदान कर सकता है । सात्त्विक व्यक्ति कभी भी जीव-हत्या न करे ॥ १३३-१३५ ॥

[अर्पणीयपश्वनुकल्पनिर्देशः]

इक्षुदण्डं च कूष्माण्डं तथा वन्यफलादिकम् ।
क्षीरपिण्डैः शालिचूर्णैः पशुं कृत्वा चरेद् बलिम् ॥ १३६ ॥
तत्तत्फलविशेषेण तत्तत्पशुमुपानयेत् ।
कूष्माण्डं महिषत्वेन छागत्वेन च कर्क्कटीम् ॥ १३७ ॥

अर्पणीय पशु के अनुकल्प—ईख, कुष्माण्ड तथा जंगली फल आदि, दूध में पकाकर पिण्ड बनाया गया साठी के चावल (अथवा पिण्डीकृत दूध और शाली के चूर्ण) को पशु मानकर बलिदान करे । तत्तत् फल की तत्तत् पशु के रूप में बलि दे। कुष्माण्ड की महिष के रूप में ककड़ी की छाग के रूप बलि दे ॥१३६-१३७॥

[ताम्बूलार्पणमन्त्रः]

जातीकोषफलैलात्वग्लवङ्गमृगनाभियुक् ।
कर्पूरशकलोन्मिश्रं ताम्बूलं कल्पयेत्ततः ॥ १३८ ॥
पातालतलसम्भूतं सर्वोपस्करसंयुतम् ।
देवि कामकलाकालि त्वं ताम्बूलं गृहाण मे ॥ १३९ ॥

ताम्बूलार्पण मन्त्र—जायफल इलायची लवंग कस्तूरी कपूर के साथ ताम्बूल दे। (ताम्बूल अर्पण का मन्त्र है—) ॐ पातालतलसम्भूतं सर्वोपस्करसंयुतम् । देवि कामकलाकालि त्वं ताम्बूलं गृहाण मे ॥ १३८-१३९ ॥

इति मन्त्रेण सततं ताम्बूलं विनिवेदयेत् ।
ततस्तद्विधिना सम्यक् जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥ १४० ॥
सन्तोष्य युवतीं रम्यां प्रजपेत्साधकोत्तमः ।

उक्त मन्त्र से ताम्बूल समर्पित करे । इसके बाद साधक अनन्य चित्त होकर विधिपूर्वक (मूलमन्त्र का) जप करे । उत्तम साधक सुन्दरी युवती को सन्तुष्ट कर जप करे ॥ १४०-१४१ ॥

[ब्राह्मणस्य कृते एतत्प्रयोगस्य निषेधः]

स्वयोषां परयोषां वा नैवाकृष्य द्विजो जपेत् ॥ १४१ ॥
लोभाद् यदि चरेदेवमधो याति द्विजस्तदा ।
इहामुत्र फलं नास्ति हीनायुरपि जायते ॥ १४२ ॥
देवत्यागान्मद्यपानाच्छूद्रभार्याप्रयोगतः ।
तत्क्षणाज्जायते वामो ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥ १४३ ॥

स्वकीयां परकीयां वा सामान्यवनितां तथा ।
जपेयुस्तां समाकृष्य क्षत्रविट् शूद्रजातयः ॥ १४४ ॥

ब्राह्मण के लिये निषेध—ब्राह्मण अपनी अथवा परायी किसी भी स्त्री का आकर्षण कदापि न करे । यदि लोभ के कारण वह (किसी स्त्री का आकर्षण करने हेतु) जप करता है, तो पतित हो जाता है । उसे ऐहिक और आमुष्मिक दोनों ही फल नहीं मिलते तथा वह अल्पायु हो जाता है । देवत्याग, मद्यपान, शूद्रभार्या समागम करने पर ब्राह्मण तत्क्षण पतित हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं । केवल क्षत्रिय. वैश्य और शूद्र अपनी, दूसरे की अथवा किसी सामान्य स्त्री को आकृष्ट कर जप कर सकते हैं ॥ १४१-१४४ ॥

[अत्र कासाञ्चन सुन्दरीणां निषेधः]

ऋषिकन्यां न चाकर्षेन्मद्यपानां च कन्यकाम् ।
अन्त्यजानां स्त्रियं वापि व्रतस्थानां स्त्रियं तथा ॥ १४५ ॥
गुर्वङ्गनां गुरोः पत्नीं सगोत्रां शरणागताम् ।
शिष्ययोषां न चाकर्षेत् पापिनां वनितां तथा ॥ १४६ ॥
नापुष्पितां गुर्विणीं वा बालापत्यां तथा पुनः ।

कतिपय निषिद्ध सुन्दरियाँ—ऋषिकन्या, मद्यपान करने वाली, अन्त्यज की स्त्री, व्रताचरण करने वाली, गुरुकुल की स्त्रियाँ, गुरु की पत्नी, सगोत्रा, शरणागता, शिष्य की पत्नी, पापियों की स्त्री, जो रजस्वला न हुई हो, गर्भिणी और छोटे बच्चे वाली स्त्री का आकर्षण नहीं करना चाहिये ॥ १४५-१४७ ॥

[कीदृशी सुन्दरी ग्राह्येति विचारः]

साधुशीलां सुभव्यां च समाकृष्यार्चनं चरेत् ॥ १४७ ॥
पूजाकाले च देवेशि विकारं वर्जयेत् सदा ।
विकारात्सिद्धिहानिः स्यात्साधकस्य न संशयः ॥ १४८ ॥

ग्राह्य सुन्दरी—साधु स्वभाववाली सुन्दर स्त्री का आकर्षण कर साधक को उसकी पूजा करनी चाहिये । हे देवेशि! पूजा के समय कामविकार नहीं आना चाहिये । विकार के कारण साधक को सिद्धि प्राप्त नहीं होती (तथा मिली हुई सिद्धि भी नष्ट हो जाती है) ॥ १४७-१४८ ॥

[प्रयोगागतसुन्दरीणां विसर्जनविधिः]

जपं समर्पयेत्तस्यै मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ।
पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा प्रदक्षिणमथो चरेत् ॥ १४९ ॥
ततश्च स्तोत्रपाठादि कुर्यात्साधकसत्तमः ।
सहस्रनामस्तोत्रं च कवचं चान्वहं पठेत् ॥ १५० ॥

प्राणायामं षडङ्गं च विधाय तदनन्तरम् ।
आत्मानं देवतारूपं विचिन्त्यैनां विसर्जयेत् ॥ १५१ ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां कामकलाप्रयोगो नाम पञ्चमः पटलः ॥ ५ ॥

...❀...

सुन्दरी विसर्जन—(साधक) मन्त्रोच्चारपूर्वक जप कर उसके लिये समर्पण करे । तत्पश्चात् तीन बार पुष्पाञ्जलि देकर उसकी प्रदक्षिणा करे । इसके बाद साधक स्तोत्र-पाठ आदि करे । कालीसहस्रनाम कालीस्तोत्र कालीकवच का पाठ प्रतिदिन करना चाहिये । प्राणायाम षडङ्गन्यास करने के बाद अपने का देवता के रूप में ध्यान कर इस स्त्री को विदा करे ॥ १४९-१५१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकाल-संहिता के कामकलाकाली खण्ड के कामकलाप्रयोग नामक पञ्चम पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ५ ॥

...❀...

षष्ठः पटलः

[सामान्यप्रयोगविधेरवतरणम्]

[कामकालिकप्रयोगस्य मध्यमाधमकोट्योः मध्यपूर्वलघुपूर्वाभिधानाभ्यां निर्देशः]

महाकाल उवाच—

अथ देवेशि सामान्यप्रयोगान् व्याहरामि ते ।
चिकीर्षयापि येषां हि राज्यं विद्या च हस्तगा ॥ १ ॥
चतुर्विंशतिभिश्चासां मध्यपूर्वो भवेद् विधिः ।
पूजामन्त्रप्रकारस्तु स एवं परिकीर्तितः ॥ २ ॥
आसां द्वादशभिर्ज्ञेयो लघुपूर्वविधिः प्रिये ।

सामान्य प्रयोग विधि—महाकाल ने कहा—हे देवेशि! अब मैं तुमको सामान्य प्रयोगों को बतलाऊँगा जिनके करने की इच्छामात्र से राज्य और विद्या हस्तगत हो जाती हैं । इन (शक्तियों) में से चौबीस (शक्तियों) के द्वारा मध्यपूर्वविधि होती है । पूजा और मन्त्र का प्रकार वही (=पञ्चम पटल में उक्त) कहा गया है । हे प्रिये! इनमें से बारह (शक्तियों) के द्वारा लघुपूर्व विधि होती है ॥ १-३ ॥

[कामकालिकप्रयोगेऽधिकारिनिर्देशः]

राज्ञामेतत् प्रशस्तं हि न द्विजस्य कदाचन ॥ ३ ॥

[अधिकारिणां कर्तव्यनिर्देशः]

यथोक्तविधिना चीर्णपौरश्चरणिकक्रमः ।
एतान् प्रयोगान् वीक्षेत नाजपित्वा कदाचन ॥ ४ ॥
पर्वते वा नदीकूले शून्यागारे शिवालये ।
पीठे चतुःपथे कुर्यात् पुरश्चरणमुत्तमम् ॥ ५ ॥
नियमास्तत्र भूयांसः प्रकर्तव्याः प्रयत्नतः ।
अवैधकरणात् सिद्धिहानिः स्यान्नात्र संशयः ॥ ६ ॥
त्रिकालमाचरेत् स्नानं हविष्यं भक्षयेन्निशि ।

प्रयोग के अधिकारी और उनका कर्त्तव्य—यह अनुष्ठान राजाओं के लिये श्रेयस्कर है ब्राह्मणों के लिये नहीं । (साधक) यथोक्त विधि के अनुसार पुरश्चरण का अनुष्ठान कर इन प्रयोगों को करे । (पुरश्चरण) जप के बिना कभी भी नहीं करना चाहिये । पर्वत, नदी का किनारा, शून्यगृह, शिवालय, सिद्धपीठ और चौराहे पर उत्तमपुरश्चरण करना चाहिये । उस (पुरश्चरण अनुष्ठान के) समय प्रयत्नपूर्वक नियमों

का पालन करना चाहिये । विधि के विपरीत (आचरण) करने से सिद्धि की हानि होती है । इसमें सन्देह नहीं । (पुरश्चरण के अनुष्ठान में) त्रिकाल स्नान (और सन्ध्या) करनी चाहिये । रात्रि में हविष्य खाना चाहिये ॥ ३-७ ॥

[तत्र मन्त्रजपमालयोर्गोपनीयताभिधानम्]

स्वमन्त्रं चाक्षसूत्रं च गुरोरपि न दर्शयेत् ॥ ७ ॥
त्यजेद् दुष्टप्रवादं च परीवादं च वर्जयेत् ।
तथा दुर्जनसंसर्गं स्त्रीशूद्रालापनं तथा ॥ ८ ॥

मन्त्र-जपमाला-आसन—अपने मन्त्र को गुरु को भी नहीं बतलाना चाहिये । अक्षमाला को गुरु को भी नहीं दिखानी चाहिये । झगड़ा और परनिन्दा नहीं करनी चाहिये । दुर्जन का साथ और स्त्री एवं शूद्र से वार्त्तालाप नहीं करना चाहिये ॥७-८॥

[आसनप्रकारा:]

वस्त्रं कुशासनं व्याघ्रचर्म चापि नृमुण्डकम् ।
आसनेषु महादेवि प्रशस्तं चोत्तरोत्तरम् ॥ ९ ॥

[जपमालाप्रकार:]

फलस्फटिकरुद्राक्षमुक्तान्नस्थिविनिर्मिताम् ।
जपमालां शुभां विद्धि प्रशस्तामुत्तरोत्तराम् ॥ १० ॥
अनेनोक्तविधानेन लक्ष्यसङ्ख्यं जपेन् मनुम् ।
होमं दशांशत: कुर्यात् तर्पणं चाभिषेचनम् ॥ ११ ॥
तत: सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत् प्रिये ।

हे महादेवि! आसनों में वस्त्र, कुश, बाघम्बर, नरमुण्ड के आसन उत्तरोत्तर प्रशस्य हैं । फल (कमलगट्टा आदि) स्फटिक, रुद्राक्ष, मोती, नरास्थि से विनिर्मित जपमाला को शुभ समझो । इनमें उत्तरोत्तर प्रशस्त हैं । इस पूर्वोक्त विधान से मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये । (जप का) दशांश होम (होम का) दशांश तर्पण और (तर्पण का) दशांश अभिषेक (=मार्जन) करना चाहिये । इसके बाद मन्त्र के सिद्ध होने से मन्त्रप्रयोगों को करे ॥ ९-१२ ॥

[प्रथमप्रयोगाभिधानम्]

शताभिजप्तमन्त्रेण रोचनातिलके कृते ॥ १२ ॥
दासा इव महीपाला: स्वयमायान्ति सन्निधौ ।
प्रमदा अपि तं दृष्ट्वा भवेयुर्गलिताम्बरा: ॥ १३ ॥

वशीकरण—(मूल मन्त्र का) एक सौ आठ बार जप करता हुआ यदि गोरोचन को अभिमन्त्रित कर उससे तिलक करे तो राजालोग भी (साधक के) पास दास की भाँति आ जाते हैं । प्रमदायें भी उसको देखकर (कामोद्दीपित होने से) निर्वस्त्र हो जाती हैं ॥ १२-१३ ॥

[द्वितीयप्रयोगाभिधानम्]

काकोलूकनरास्थीनि गृहीत्वा भौमवासरे ।
रात्रौ कृष्णचतुर्दश्यां सम्वेष्ट्यारक्ततन्तुना ॥ १४ ॥
शताभिमन्त्रितं कृत्वा निक्षिपेच्छत्रुमन्दिरे ।
सप्ताहाभ्यन्तरे तेषां महदुच्चाटनं भवेत् ॥ १५ ॥

उच्चाटन—कृष्णपक्ष की चतुर्दशी से युक्त मङ्गलवार की रात्रि को कौआ, उल्लू और आदमी की हड्डी लेकर रात्रि में लालधागे से वेष्टित करे । मूलमन्त्र से एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित कर शत्रु के घर में रख दे । एक सप्ताह के भीतर उन (शत्रुओं) का महा उच्चाटन हो जाता है ॥ १४-१५ ॥

[तृतीयप्रयोगाभिधानम्]

उदयात् पूर्वमारभ्य जपेदस्तङ्गमावधि ।
एकविंशदिनं यावदर्धरात्रे बलिं क्षिपेत् ॥ १६ ॥
नग्नो नग्नां स्त्रियं गच्छेत् मूलमन्त्रं जपन् शतम् ।
एवं कृते प्रिये सद्यः सर्वज्ञः साधको भवेत् ॥ १७ ॥

सर्वज्ञता-प्राप्ति—सूर्योदय के पहले से लेकर सूर्यास्त तक इक्कीस दिनों तक (मूल मन्त्र का) जप करे । आधी रात को बलि दे । साधक नग्न होकर मूलमन्त्र का जप करते हुए नग्न स्त्री के पास जाय । हे प्रिये! ऐसा करने पर साधक सर्वज्ञ हो जाता है ॥ १६-१७ ॥

[चतुर्थप्रयोगाभिधानम्]

नरास्थि निखनेद् भूमौ स्वमूत्रप्लावितं निशि ।
शतं च प्रजपेन्मन्त्रं रिपुर्ज्वरयुतो भवेत् ॥ १८ ॥

ज्वराक्रान्ति—रात्रि में अपने मूत्र से धुली हुई नर अस्थि को भूमि के अन्दर गाड़ दे । एक सौ बार मूलमन्त्र का जप करे तो शत्रु ज्वराक्रान्त हो जाता है ॥ १८॥

[पञ्चमप्रयोगाभिधानम्]

काकपक्षैः शिवासृग्भिः नरास्थिनि लिखेदिदम् ।
तारं क्रोधत्रयं साध्यं द्वितीयान्तं बलिं वदेत् ॥ १९ ॥
गृह्णद्वयं भक्षयुगं मारय द्वितयं ततः ।
वह्निजायान्तगं मन्त्रं मूलमन्त्रस्य साधकः ॥ २० ॥
सहस्रं परिजप्याथ निशायां वैरिमन्दिरे ।
क्षिपेद् देवीं हृदि ध्यात्वा मृत्युस्तस्य त्रिमासतः ॥ २१ ॥

मारण—कौवे के पङ्ख और शृगालिन के रक्त से मनुष्य की अस्थि के ऊपर इस मन्त्र को लिखे—दो तार (=ॐ ॐ) तीन क्रोध, फिर साध्य का द्वितीयान्त नाम,

तत्पश्चात् 'बलि' फिर 'गृह्ण' को दो बार 'भक्ष' और 'मारय' को दो-दो बार और अन्त में वह्निजाया को कहे । (इस प्रकार मूलमन्त्र का स्वरूप होगा—ॐ ॐ, हूँ हूँ हूँ अमुकं बलिं गृह्ण गृह्ण भक्ष भक्ष मारय मारय स्वाहा) साधक इस मन्त्र का एक हजार जप कर रात्रि के समय देवी का ध्यान कर शत्रु के घर में फेंक दे तो तीन मास मे उसकी मृत्यु हो जाती है ॥ १९-२१ ॥

[धारणीयाख्ययन्त्रस्य निर्देशः]

पद्ममष्टदलं भूर्जे योनियुग्मसमन्विते ।
लाक्षागोरोचनाचन्द्रकाश्मीरमृगनाभिभिः ॥ २२ ॥
वक्ष्यमाणक्रमेणैव लिखेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
योनिमध्ये लिखेन्मूलमन्त्रमष्टादशाक्षरम् ॥ २३ ॥
वक्ष्यमाणानि बीजानि लिखेदष्टदलेष्वपि ।
आमृतं प्रथमं बीजं गारुडं तदनन्तरम् ॥ २४ ॥
महाक्रोधं क्षेत्रपालं प्रेतबीजं च पञ्चमम् ।
प्रासादं चण्डबीजं च कालीबीजमथाष्टमम् ॥ २५ ॥
दलयोरन्तरे लेख्यं तारं वाग्भवमेव च ।
मायाबीजं वधूबीजं बीजं कामलकामयोः ॥ २६ ॥
रतिबीजं मेघबीजं लिखित्वा तदनन्तरम् ।
पाशाङ्कुशक्रोधभूतबीजानि द्वारि संलिखेत् ॥ २७ ॥

धारणीय यन्त्र की रचना—साधक एकाग्रचित्त होकर दो योनि (=षट्कोण) बने हुए भोजपत्र पर लाक्षा, गोरोचन, कपूर, केसर और कस्तूरी से अष्टदल कमल बनाये। उस यन्त्र के बनाने का क्रम यह है—योनि के मध्य में अट्ठारह अक्षरों वाला मूलमन्त्र (=त्रैलोक्याकर्षण मन्त्र) लिखे । कमल के आठ दलों पर वक्ष्यमाण बीजों को लिखे । पहला बीज अमृत (=ग्लूं अं) दूसरा गारुड (=क्रों खं) इसके बाद महाक्रोध (=क्ष्रूं कूं) क्षेत्रपाल (=क्षौं क्ष्रूं) प्रेत (=ह्सौं) प्रासाद (=हौं) चण्ड (=औं) तथा काली बीज (=क्रीं) को लिखना चाहिये । दो दलों के मध्य में तार (=ॐ) वाग्भव (=ऐं) माया (=ह्रीं) वधू (=स्त्रीं) लक्ष्मी (=श्रीं) काम (=क्लीं) रति (=ईं) और मेघबीज (=क्लौं) को लिखना चाहिये । द्वारों पर पाश (=आं) अङ्कुश (=क्रों) क्रोध (=हूं) और भूत बीज (=स्फें) लिखना चाहिये ॥ २२-२७ ॥

अकारादिक्षकारान्तैर्वर्णैर्बिन्दुसमन्वितैः ।
वेष्टयेद् वसुवज्राढ्यं यन्त्रं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ २८ ॥
वेष्टितं रक्तवस्त्रेण जतुभिर्वेष्टयेत् ततः ।
बध्नीयात् पट्टवस्त्रेण बाहौ कण्ठेऽथ वा नृणाम् ॥ २९ ॥
स्त्रीणां वामकरे बद्धमन्येषां दक्षिणे करे ।
सर्वं सम्पादयेत् सद्यो नात्र कार्या विचारणा ॥ ३० ॥

आठ वज्रों से सुसज्जित इस यन्त्र को बिन्दुयुक्त आदि क्षान्त (पचास) वर्णों से वेष्टित कर बाद में रक्तवस्त्र और फिर लाख से वेष्टित करना चाहिये । तत्पश्चात् पट्टवस्त्र के द्वारा मनुष्यों की बाँह या उनके कण्ठ में बाँधना चाहिये । स्त्रियों की बायीं भुजा और अन्य की दायीं भुजा में बाँधना चाहिये । (ऐसा करने वाला साधक) शीघ्र ही समस्त लक्ष्य प्राप्त कर लेता है । इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ २८-३० ॥

[रक्षायन्त्रस्य माहात्म्यवर्णनं फलश्रुत्यभिधानं च]

इयं रक्षा पुरा बद्धा सिद्ध्यर्थं साधकोत्तमैः ।
शक्रेण नमुचेर्युद्धे विष्णुना तारकामये ॥ ३१ ॥
हरेणान्धकसङ्ग्रामे गरुडेनेन्द्रसंयुगे ।
वायुना माहिषे युद्धे कुबेरेणामृताहवे ॥ ३२ ॥
स्कन्देन तारकानीके पाशिना सुरभीरणे ।
यमेन रावणस्याजौ चन्द्रेण त्रिदशाजिरे ॥ ३३ ॥

रक्षा-यन्त्र का माहात्म्य और फलश्रुति-विधान—प्राचीन काल में यह रक्षायन्त्र उत्तम साधकों के द्वारा बाँधा गया था । नमुचि के साथ युद्ध करने में इन्द्र ने, तारकासुर के साथ युद्ध में विष्णु ने, अन्धकसङ्ग्राम में शिव, इन्द्रसङ्ग्राम में गरुड, महिषासुर के युद्ध में वायु, अमृत के लिये युद्ध में कुबेर, तारक के युद्ध में स्कन्द, सुरभियुद्ध में वरुण, रावणयुद्ध में यम, देवताओं के युद्ध में चन्द्रमा ने इस यन्त्र को धारण किया था ॥ ३१-३३ ॥

तथा कृतयुगादौ च राजानो ये महाबलाः ।
तैश्चापि विधृतं यन्त्रं सर्वापत्तिनिवारणम् ॥ ३४ ॥
मान्धाता जामदग्न्यश्च नहुषः शिविरेव च ।
रामः पृथुः कार्तवीर्यः पुरुकुत्सौ रघुर्नलः ॥ ३५ ॥
भरतः शशबिन्दुश्च ययातिर्वसुकोऽर्जुनः ।
पूरुः पुरूरवा भीमो जरासन्धो विदूरथः ॥ ३६ ॥
एभिश्चान्यैश्च भूपालैरेतद् यन्त्रं धृतं पुरा ।
एतस्यान्यानि यन्त्राणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३७ ॥

इसी प्रकार सत्ययुग आदि में जो महाबली राजा हुए उन्होंने भी सर्वापत्तिनिवारण इस यन्त्र का धारण किया । मान्धाता, परशुराम, नहुष, शिवि, राम, पृथु, सहस्रार्जुन, पुरु, कुत्स, रघु, नल, भरत, शशबिन्दु, ययाति, वासुदेव, अर्जुन, पूरु, पुरूरवा, भीम, जरासन्ध, विदूरथ, एवं अन्य राजाओं ने इस यन्त्र का धारण किया । अन्य यन्त्र इसकी सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं हैं ॥ ३४-३७ ॥

य एतं यन्त्रराजं हि धारयत्यप्रमादतः ।
स श्रिया विष्णुसदृशः प्रभया सूर्यसन्निभः ॥ ३८ ॥
कान्त्या चन्द्रमसा तुल्यो यक्षाधिपसमो धने ।

बलेन वायुना तुल्यो विद्यया गुरुणा समः ॥ ३९ ॥
सौन्दर्ये मन्मथप्रायो वैभवेनेन्द्रसन्निभः ।
तेजसा वह्निसदृशो रामार्जुनसमो रणे ॥ ४० ॥

जो मनुष्य इस यन्त्र को सावधानी के साथ धारण करता है वह शोभा में विष्णु के समान, प्रभा में सूर्य, कान्ति में चन्द्रमा, धन में कुबेर, बल में वायु, विद्या में वृहस्पति, सौन्दर्य में कामदेव, वैभव में इन्द्र, तेज में अग्नि, युद्ध में राम और अर्जुन के समान होता है ॥ ३८-४० ॥

अथ किं बहुनोक्तेन शृणु पार्वति निश्चितम् ।
न कोऽपि भविता कश्चित् तत्तुल्यः पृथिवीतले ॥ ४१ ॥
स सर्वसिद्धिमाप्नोति सुराणामपि दुर्लभाम् ।
रिपुसैन्यं महाघोरं स्तम्भयत्यचिरात् प्रिये ॥ ४२ ॥
बन्ध्यापि लभते पुत्रं निर्धनो धनवान् भवेत् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां कन्यार्थी कन्यकामपि ॥ ४३ ॥
यं यं कामं हृदि ध्यात्वा यन्त्रमेतत् प्रधारयेत् ।
तं तं काममवाप्नोति महाकालवचो यथा ॥ ४४ ॥

हे पार्वति ! बहुत कहने से क्या लाभ । निश्चित रूप से समझो कि उसके समान इस पृथ्वी पर कोई नहीं होता । वह सुरों के लिये भी दुर्लभ समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है । हे प्रिये! वह शत्रु की सेना को शीघ्र ही स्तम्भित कर देता है । (इस यन्त्र का धारण करने से) वन्ध्या पुत्र प्राप्त करती है । निर्धन धनवान् हो जाता है । विद्यार्थी विद्या और कन्यार्थी कन्या प्राप्त करता है । (मनुष्य) जिस-जिस इच्छा को मन में रखकर इस यन्त्र का धारण करता है उस-उस इच्छा की पूर्त्ति होती है । ऐसा महाकाल का वचन है ॥ ४१-४४ ॥

[रक्षायन्त्रस्य प्रकारान्तरेण प्रयोगनिर्देशः]

अपरं च प्रवक्ष्यामि प्रयोगं सिद्धिदायकम् ।
आनीय कामिनीमेकां नवयौवनशालिनीम् ॥ ४५ ॥
असतीं सुन्दरीं भीत्या परिहीनां महानिशि ।
वस्त्रालङ्कारकनकं दत्वा तस्यै यथाविधि ॥ ४६ ॥
नग्नो नग्नां मुक्तकेशो मुक्तकेशीं जपन्मनुम् ।
मैथुनेनोपगच्छेत तस्याः सन्तोषपूर्वकम् ॥ ४७ ॥
योनिं स्वरेतसा लिप्त्वा तत्रेदं यन्त्रमालिखेत् ।
जिह्वया तल्लिहेत् सर्वं सत्कृत्यैवमकुत्सयन् ॥ ४८ ॥

रक्षायन्त्र का अन्यविध प्रयोग—अब मैं सिद्धिदायक दूसरा प्रयोग बतलाऊँगा । नवयौवनशालिनी पुंश्चली सुन्दरी भयरहित एक कामिनी को आधी रात को ले आकर वस्त्र, अलङ्कार, स्वर्णाभरण आदि विधिवत् उसको देकर सन्तुष्ट करे । स्वयं मुक्तकेश

और नग्न होकर उस कामिनी को भी खुले बालों वाली तथा नग्न कर दे । मन्त्र का जप करता हुआ उसके साथ मैथुन कर उसको तृप्त करे । तत्पश्चात् उसकी योनि को अपने वीर्य से उपलिप्त कर उस पर इस यन्त्र को लिखे । उस यन्त्र को आदरपूर्वक बिना घृणा के पूर्णतया जीभ से चाट जाय ॥ ४५-४८ ॥

[उक्तप्रयोगस्य फलश्रुतिः]

ततश्चराचरं सर्वं ज्ञात्वा सर्वज्ञतां लभेत् ।
मूकांश्च वादयेत् सत्सु कवित्वं चापि कारयेत् ॥ ४९ ॥
अतीतानागतं वेत्ति वर्तमानं च पश्यति ।
कुर्याच्च वादिनो मूकान् सभायां पण्डितानपि ॥ ५० ॥
विवादे जयमाप्नोति पूजां सर्वत्र विन्दते ।
किमन्येन प्रकारेण नराणां मन्त्रसिद्धये ॥ ५१ ॥
अनेन विधिना विद्यां लक्ष्मीमपि सदाप्नुयात् ।
द्वादशाब्दं चरन्नेवं सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥
विद्याधरत्वमाप्नोति खेचरत्वं तथैव च ।
पातालतलचारित्वं तथा वाक्सिद्धिमेव च ॥ ५३ ॥
तस्य दर्शनमात्रेण मार्तण्डसमतेजसः ।
पिशाचयक्षोरक्षांसि पलायन्ते दिशो दश ॥ ५४ ॥

उक्त प्रयोग का फल—उसके फलस्वरूप वह समस्त चराचर को जानकर सर्वज्ञता प्राप्त कर लेता है । गूँगे को वाणी प्रदान करता और सज्जनों में कविता का सञ्चार कर देता है । अतीत और अनागत को जान लेता तथा वर्त्तमान का साक्षात् करता है । (अभियोग में) वादियों को और सभा में पण्डितों को मूक बना देता है । विवाद में विजयी होता और सर्वत्र पूजा प्राप्त करता है । मन्त्रसिद्धि के लिये मनुष्यों को दूसरे प्रकार की आवश्यकता नहीं होती । इस विधि से विद्या और लक्ष्मी दोनों प्राप्त करता है । वह विद्याधर और खेचर हो जाता है । उसे पातालतलचारिता तथा वाक्सिद्धि प्राप्त हो जाती है । सूर्य के समान तेजस्वी उस व्यक्ति के दर्शनमात्र से पिशाच यक्ष राक्षस दशो दिशाओं में पलायित हो जाते हैं ॥ ४९-५४ ॥

[आकर्षणप्रयोगविधिः]

ताम्बूलपत्रे मधुना साध्यनाम लिखेत् सुधीः ।
मूलमन्त्रेण सम्वेष्ट्य मुक्तवासाः दिगम्बरः ॥ ५५ ॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण भक्षयेदविचारयन् ।
प्रणवं च त्रपाबीजं कामबीजमनन्तरम् ॥ ५६ ॥
साध्यनाम द्वितीयान्तं क्लेदय द्वितयं वदेत् ।
आकर्षय युगं चापि मथ द्वन्द्वं वदेत्ततः ॥ ५७ ॥

युगं युगं वदेद् देवि पच द्रावय शब्दयोः ।
आनय द्वितयं प्रोच्य मम सन्निधिमुच्चरेत् ॥ ५८ ॥
क्रोधवाग्भवलक्ष्मीणां युगं युगमुदीरयेत् ।
वह्निजायान्तगो मन्त्रः सर्वाकर्षणकारकः ॥ ५९ ॥

आकर्षण प्रयोग-विधि (१)—विद्वान् वस्त्र उतार नग्न होकर पान के पत्ते पर साध्य का नाम लिखे । (कामकला के अष्टादशाक्षर) मूलमन्त्र से उसको वेष्टित कर नि:शङ्क होकर वक्ष्यमाण मन्त्र से भक्षण करे । (मन्त्र का स्वरूप निम्नलिखित है—) प्रणव लज्जाबीज तत्पश्चात् कामबीज उसके बाद द्वितीयान्त साध्यनाम फिर 'क्लेदय' को दो बार कहना चाहिये । 'आकर्षय' और 'मथ' को दो-दो बार कहे । तत्पश्चात् 'पच' और 'द्रावय' को दो-दो बार कहे । 'आनय' को दो बार कहकर 'मम सन्निधिं' का उच्चारण करे । क्रोध वाग्भव और लक्ष्मी बीजों का दो-दो बार उच्चारण करे । अन्त में वह्निजाया का उच्चारण करने पर यह सर्वाकर्षण-कारक मन्त्र होता है । (इसका स्वरूप इस प्रकार होगा—'ॐ ह्रीं क्लीं अमुकीं क्लेदय क्लेदय आकर्षय आकर्षय मथ मथ पच पच द्रावय द्रावय मम सन्निधिं आनय आनय हूं हूं ऐं ऐं श्रीं श्रीं स्वाहा) ॥ ५५-५९ ॥

अनेन विधिनाकर्षेद् यां यामिच्छति साधकः ।
तथाप्यागच्छति क्षिप्रं यदि भूपस्य वल्लभा ॥ ६० ॥
सहस्त्रजनगुप्तापि यद्यन्तःपुरवासिनी ।
यदि साक्षात् स्वयं देवी यदि वा स्यादरुन्धती ॥ ६१ ॥
तथापि तस्याः सामर्थ्यं न स्यात् स्थातुं सुरेश्वरि ।
स्वयमायान्ति निर्लज्जा इतरासां तु का कथा ॥ ६२ ॥

साधक जिस-जिस स्त्री को चाहता है इस विधि से आकृष्ट कर लेता है । (यदि वह स्त्री) राजा की भी प्रियतमा हो, हजारों लोगों से सुरक्षित हो, अन्त:पुर में रहती हो तो भी शीघ्र ही (साधक के पास) आ जाती है । यदि साक्षात् स्वयं देवी हो या अरुन्धती हो तो भी हे सुरेश्वरि ! वह रुक नहीं सकती एवं लज्जा का त्याग कर स्वयं आ जाती है; फिर अन्य स्त्रियों की क्या बात ॥ ६०-६२ ॥

पत्युरङ्कं समुत्सृज्य सुतमङ्कान्निरस्य च ।
पितरं चावमन्यापि बन्धून् धिक्कृत्य सर्वतः ॥ ६३ ॥
गृहीता इव भूतेन स्वयमायान्ति योषितः ।
तस्मान्निरीक्ष्य कर्तव्यः प्रयोगोऽयं शुचिस्मिते ॥ ६४ ॥

(इस प्रयोग के बल से) स्त्रियाँ पति की गोद छोड़कर, बच्चे को गोद से हटाकर, पिता-माता को अनादृत कर, बन्धुजनों को तिरस्कृत कर मानो भूत से गृहीत होकर स्वयं आ जाती हैं । इसलिये हे शुचिस्मिते! इस प्रयोग को सोच-समझ कर करना चाहिये ॥ ६३-६४ ॥

[आकर्षणस्य प्रयोगान्तरविधिः]

प्रणवं रतिकामौ च मायाक्रोधाङ्कुशश्रियः ।
पाशं वाग्भवमुच्चार्य कालीबीजमथोच्चरेत् ॥ ६५ ॥
वदेत् कामकलाकालि सर्वाकर्षिणि चेत्यपि ।
साध्यमाकर्षयेत्युक्त्वा वह्निजायामुदीरयेत् ॥ ६६ ॥

आकर्षण प्रयोग-विधि (२)—प्रणव, रतिबीज (=क्लूं), कामबीज, माया, क्रोध, अङ्कुश, लक्ष्मी, पाश और वाग्भव बीजों का उच्चारण कर बाद में कालीबीज का उच्चारण करना चाहिए। फिर 'कामकलाकालि सर्वाकर्षिणि' कहकर 'साध्यमाकर्षय' कहने के बाद वह्निजाया का उच्चारण करे । (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होगा—ॐ क्लूं क्लीं ह्रीं हूं क्रों श्रीं आं ऐं क्रीं कामकलाकालि सर्वाकर्षिणि अमुकीं आकर्षय स्वाहा) ॥ ६५-६६ ॥

मन्त्रेणानेनाभिमन्त्र्य तोयं वामेन पाणिना ।
पिबेत् प्रक्षालयेत्तेन मुखमात्मन एव च ॥ ६७ ॥
या याः पश्यन्ति तं नार्यो यदि साध्व्योऽपि भामिनि ।
तास्ता मुह्यन्ति निर्धूतधर्मभर्तृकुलत्रपाः ॥ ६८ ॥
आविष्टा इव निर्लज्जास्तिष्ठेयुः साधकाग्रतः ।
दास्यो भवाम इत्येवं वादिन्यस्ताः कुलाङ्गनाः ॥ ६९ ॥

इस मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित कर बायें हाथ से पीये और उससे अपना मुख भी धोये । हे भामिनि! जो-जो स्त्रियाँ उसको देखती हैं वे वे उससे मुग्ध हो जाती हैं। धर्म पति कुल और लज्जा का त्याग कर निर्लज्ज हुई मानो (भूत से) आविष्ट होकर साधक के आगे आकर खड़ी हो जाती हैं और वे कुलाङ्गनायें कहती हैं कि हम आपकी दासी हैं ॥ ६७-६९ ॥

[पादुकासिद्धिविधिः]

पलाशकाष्ठसम्भूतपादुकायुग्ममाहरेत् ।
श्मशानाङ्गारमादाय तत्र मन्त्रं लिखेदमुम् ॥ ७० ॥
तारं वाग्वादिनीबीजं कालीयं कामलार्णकम् ।
लज्जां क्रोधं समुद्धृत्य देव्याः सम्बोधनं लिखेत् ॥ ७१ ॥
गन्तव्यभूमिमुल्लिख्य खण्डय च्छेदय द्वयम् ।
त्रुटयुग्मं छिन्धियुगं भूतपाशाङ्कुशार्णकम् ॥ ७२ ॥
सिद्धिं देहीति सम्प्रोच्य दापयेति पदं ततः ।
अस्त्रत्रितयमालिख्य वह्निजायायुतो मनुः ॥ ७३ ॥

पादुका-सिद्धि—(साधक) पलाश के काष्ठ की बनी हुई दो पादुकायें (=खड़ाऊँ) ले आये । श्मशान के कोयले से उस पर निम्नलिखित मन्त्र लिखे । तार

वाग्भवबीज, कालीबीज, लक्ष्मीबीज, लज्जा और क्रोधबीज लिखकर देवी का सम्बोधन लिखे । गन्तव्य स्थल का नाम लिखकर 'खण्डय' 'छेदय' को दो-दो बार 'त्रुट' और 'छिन्धि' को दो बार लिखकर भूत पाश और अङ्कुश बीजों को लिखकर 'सिद्धिं देहि दापय' लिखने के बाद अस्त्र मन्त्र को तीन बार लिखकर वह्निजाया लिखे। (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होगा—ॐ ऐं क्रीं श्रीं ह्रीं हूं कामकलाकालि गन्तव्यभूमिं खण्डय खण्डय छेदय छेदय त्रुट त्रुट छिन्धि छिन्धि स्फ्रें आं क्रों सिद्धिं देहि दापय फट् फट् फट् स्वाहा) ॥ ७०-७३ ॥

लेपयित्वा स्नुहीदुग्धं पादयोः साधकोत्तमः ।
इच्छागामी भवेद् देवि नात्र कार्या विचारणा ॥ ७४ ॥
पूर्वस्यां दिशि गच्छेत् स योजनानां शतद्वयम् ।
याम्यायां त्रिशतं विद्धि वारुण्यां च चतुःशतम् ॥ ७५ ॥
उत्तरस्यां पञ्चशतं विदिक्षु शतमेव च ।
व्रजेदलक्षितो भूत्वा यथेच्छं साधकाग्रणीः ॥ ७६ ॥
परावृत्य समायाति तावदेव वरानने ।

हे देवि ! उत्तम साधक दोनों पैरों में स्नुही (=सेहुँड़) के दूध का लेप कर (पादुका पहन कर) इच्छागामी हो जाता है । इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये । पूर्व दिशा में वह दो सौ योजन, दक्षिण में तीन सौ, पश्चिम में चार सौ, उत्तर दिशा में पाँच सौ योजन और विदिशाओं में एक सौ योजन जा सकता है । हे वरानने! साधकाग्रणी वह अलक्षित होकर यथेच्छ जा सकता है और लौटकर उतना ही आ सकता है ॥ ७४-७७ ॥

[खेचरीसिद्धिविधिः]

अतश्च खेचरीसिद्धिं शृणु सावहिता मम ॥ ७७ ॥
स्वर्णक्षीरीलतामूलं ग्राह्यं चन्द्रग्रहे सति ।
रजःस्वलाभगे स्थाप्यं दिवसं त्रितयं प्रिये ॥ ७८ ॥
ततो धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैस्तत् प्रपूजयेत् ।
तावद् यत्नेन संस्थाप्यं यावत् सूर्यग्रहो भवेत् ॥ ७९ ॥
सूर्यग्रहे तु सम्प्राप्ते खञ्जरीटासृजा प्रिये ।
सञ्चूर्ण्य गुटिका कार्या यवत्रितयसम्मिता ॥ ८० ॥
भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां बलिं दत्वा च कुक्कुटम् ।
धारयीत शिखामूले मनुमेनमुदीरयन् ॥ ८१ ॥

[निरुक्तलतामूलस्य शिखायां धारणस्य समन्त्रो विधिः]

निगमादिं वाग्भवं च मायां कामार्णमुच्चरेत् ।
पाशाङ्कुशक्रोधभूतलक्ष्मीबीजानि चोच्चरेत् ॥ ८२ ॥

नाम देव्याश्च सम्बोध्य रतिमोहिनि चोल्लिखेत् ।
वसामांसपदं चोक्त्वा रक्तप्रिय इतीरयेत् ॥ ८३ ॥
खेचरं मामिति प्रोच्य कुरु युग्मं विनिर्दिशेत् ।
रक्षोभूतपिशाचेति पदमुच्चारयेत् ततः ॥ ८४ ॥
ततश्च विन्यसेद् देवि सिद्धविद्याधरोरगान् ।
समुच्चरेत् कुरुद्वन्द्वमुक्त्वा मम वशं पदम् ॥ ८५ ॥
ह्रां ह्रीं क्षां क्षूं विनिर्दिश्य क्रां क्रीं क्लां क्लूं समालिखेत् ।
खेचरीसिद्धिशब्दाच्च दायिनीति पदं लिखेत् ॥ ८६ ॥
त्वरयुग्मं समाहृत्य कहयुग्मं ततो वदेत् ।
कालि कापालि सम्बोध्य क्रोधत्रितयमुल्लिखेत्॥ ८७ ॥
अस्त्रत्रितयमुच्चार्य्य स्वाहान्तो मनुरीरितः ।

खेचरी-सिद्धि—इसके बाद ध्यान देकर मुझसे खेचरी-सिद्धि को सुनो । चन्द्रग्रहण के समय स्वर्णक्षीरी (=मकोय) लता की जड़ ले आये । हे प्रिये! उसे रजस्वला स्त्री के भग में तीन दिनों तक रखे । इसके बाद (उसे भग में से निकाल कर) धूप दीप नैवेद्य से उसकी पूजा करे । प्रयत्नपूर्वक उसे तब तक सुरक्षित रखे जब तक कि सूर्यग्रहण न लगे । सूर्यग्रहण लगने पर हे प्रिये! चूर्ण बनाकर खञ्जन के रक्त से उसकी गोली बनाये । यह गोली तीन जव के बराबर हो । भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशी को मुर्गा की बलि दे । उसके बाद निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ता हुआ उसे शिखा में धारण करे । (मन्त्र इस प्रकार है—) निगम का आदि, वाग्भव, माया, काम, पाश, अङ्कुश, क्रोध, भूत और लक्ष्मी बीजों का उच्चारण करे । फिर देवी के नाम का सम्बोधन कर 'रतिमोहिनि वसामांसरक्तप्रिये' कहना चाहिये । तत्पश्चात् 'खेचरं माम्' कहकर 'कुरु' को दो बार कहे । पुनः 'रक्षोभूतपिशाच' पद का उच्चारण करने के बाद 'सिद्धविद्याधर उरगान्' कहकर 'मम वशं' कहने के बाद 'कुरु' का दो बार उच्चारण करे । तत्पश्चात् 'ह्रां ह्रीं क्षां क्षूं क्रां क्रीं क्लां क्लूं' कहना चाहिए । इसके बाद 'खेचरीसिद्धियिनि' को कहकर 'त्वर' और 'कह' को दो-दो बार कहे । पुनः 'कालिकापालि' सम्बोधन कर क्रोधबीज का तीन बार उल्लेख करना चाहिए । अन्त में अस्त्रमन्त्र का तीन बार कथन कर 'स्वाहा' कहे । (इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप होगा—ॐ ऐं ह्रीं क्लीं आं क्रों हूं स्फ्रों श्रीं कामकलाकालि रतिमोहिनि वसामांसरक्तप्रिये खेचरं मां कुरु कुरु रक्षोभूतपिशाचसिद्धविद्याधरोरगान् मम वशं कुरु कुरु ह्रां ह्रीं क्षां क्षूं क्रां क्लां क्लूं खेचरीसिद्धिदायिनि त्वर त्वर कह कह कालि कापालि हूं हूं हूं फट् फट् फट् स्वाहा) ॥ ७७-८८ ॥

[खेचरीसिद्धिफलम्]

ततः स खेचरो भूत्वा यादृच्छिकगतिर्भवेत् ॥ ८८ ॥
सिद्धैस्साध्यैरप्सरोभिर्देवैश्च सह मोदते ।

मेरुमन्दरकैलासहेमकूटहिमालयान् ॥ ८९ ॥
अद्रीनारोहते सर्वान् प्रयोगस्यास्य शक्तितः ।
इन्द्राग्नियमयक्षेशवरुणानिलरक्षसाम् ॥ ९० ॥
ईशस्यापि पुरं गच्छेदन्यत्रैव च का कथा ।
न गतिस्तस्य हन्येत पातालेऽपि कदाचन ॥ ९१ ॥
सर्वेषामप्यधृष्यः स्याद् भूपातालखचारिणाम् ।
सिद्धैः साध्यैश्च देवैश्च यक्षै रक्षोभिरेव च ॥ ९२ ॥
नागैश्च दानवैर्भूतैः सह सम्भाषणं चरेत् ।
वज्रकायः स्वयं भूत्वा विचरत्यवनीतले ॥ ९३ ॥
न तस्याभिभवं कर्तुं शक्यते त्रिदशैरपि ।

फलश्रुति—इसके बाद वह (साधक) खेचर होकर इच्छानुसार गति वाला हो जाता है । सिद्ध साध्य अप्सराओं और देवों के साथ आनन्द करता है । इस प्रयोग की शक्ति से वह मेरु मन्दर कैलास हेमकूट हिमालय आदि समस्त पर्वतों पर चढ़ जाता है । वह इन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर, वरुण, वायु, निर्ऋति और ईशान के भुवनों में जा सकता है । अन्यत्र की क्या बात । पाताल में भी उसकी गति कभी बाधित नहीं होती । पृथिवी पाताल और आकाशचारी समस्त जीवों के द्वारा वह अधृष्य होता है । सिद्ध, साध्य, देवता, यक्ष, राक्षस, नाग, दानव, भूत के साथ वह सम्भाषण करता है । स्वयं वज्रवत् शरीरवाला होकर वह पृथिवीतल पर विचरण करता है । देवता भी उसका अभिभव नहीं कर सकते ॥ ८८-९४ ॥

[खड्गसिद्धिविधिः]

अथापरं प्रयोगं च वदतो मेऽवधारय ॥ ९४ ॥
काम्बोजदेशसम्भूतं पलषोडशसम्मितम् ।
लौहमानीय देवेशि सङ्क्रान्तौ मकरस्य च ॥ ९५ ॥
तावत्सम्पूजयेद् यत्नाद् यावत् कर्कटसङ्क्रमः ।
ततो व्योकारमाहूय स्वगृहे कारयेदसिम् ॥ ९६ ॥
शुचिर्दिगम्बरो मुक्तचिकुरो लोहकारकः ।
कृष्णाष्टम्यामाश्विनस्य प्रारभेतासिमुत्तमम् ॥ ९७ ॥
कुर्य्याच्छनैः शनैस्तावद् यावन्मकरसङ्क्रमः ।
तत आनीय तं रात्रौ कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ॥ ९८ ॥
पूजां विधाय विधिवत् स्थापयेत् कालिकाग्रतः ।
आर्तवेन युवत्यास्तं लेपयेदविचारयन् ॥ ९९ ॥
नेवैद्यधूपदीपाद्यैर्जवापुष्पैश्च पूजयेत् ।
स्नुहीवटार्कदुग्धेन विलिम्पेन्मुष्टिमेव च ॥ १०० ॥

खड्ग सिद्धि—अब दूसरा प्रयोग कहते हुए मुझसे सुनो । हे देवेशि! मकर

सङ्क्रान्ति के दिन काम्बोज (=हिन्दुकुश पर्वत पर स्थित वह प्रदेश जो तिब्बत और लद्दाख तक फैला हुआ है) में उत्पन्न सोलह पल[1] के परिमाण का लोहा ले आकर प्रयत्नपूर्वक तब तक उसकी पूजा करनी चाहिये जब तक कि कर्क की सङ्क्रान्ति न हो जाय। इसके बाद लोहार को बुलाकर अपने घर में उसकी तलवार बनवाये। वह लोहार पवित्र खुले बालों वाला तथा नग्न होकर अश्विन मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को तलवार बनाना प्रारम्भ करे। यह तलवार धीरे-धीरे तब तक बनाता रहे जब तक कि मकर की सङ्क्रान्ति न हो जाय। उसके बाद कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में उस खड्ग को लाकर उसकी विधिवत् पूजा करे और काली के आगे रख दे। बिना किसी सन्देह के युवती के आर्त्तव (=रजोरक्त) से उस पर लेप करे। नैवेद्य धूप दीप आदि और जवाकुसुम से उसकी पूजा करे। सेंहुड़ बरगद और मदार के दूध का उसकी मुठिया में लेप करे ॥ ९४-१०० ॥

[देव्यै खड्गसमर्पणमन्त्रः]

वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण दैव्यै खड्गं समर्पयेत् ।
वेदादिवाग्भवक्रोधमेघविद्युद्रमार्णकान् ॥ १०१ ॥
उच्चार्य घोरनादे च दंष्ट्राविकट इत्यपि ।
मुखमण्डन उच्चार्य महाघोर इतीरयेत् ॥ १०२ ॥
तथा घोरतरे चैव महाशब्दाद् भयङ्करे ।
श्मशानवासिनीत्युक्त्वा योगिनीडाकिनीपदम् ॥ १०३ ॥
ततः परिवृते प्रोच्य कल्पान्तेति पदं लिखेत् ।
कालानल निगद्यैव विकराल इतीरयेत् ॥ १०४ ॥
दुर्निरीक्ष्य ततो रूपे दशानां युगकं वदेत् ।
गर्ज विध्वंसय च्छिन्धि दम मर्दय पातय ॥ १०५ ॥
उच्छादय क्षोभय च मारय द्रावयेत्यपि ।
ततो वदेदिमं खड्गं देहि मेऽग्न्यङ्गनायुतः ॥ १०६ ॥

खड्गसमर्पण-मन्त्र—वक्ष्यमाण मन्त्र से देवी को वह खड्ग समर्पित करे। (मन्त्र इस प्रकार है—) वेदादि, वाग्भव, क्रोध, मेघ, (=क्लौं), विद्युत् (=ब्लौं), रमा बीजों का उच्चारण कर 'घोरनादे दंष्ट्राविकटे मुखमण्डने' का उच्चारण कर 'महाघोरे' कहना चाहिये। उसी प्रकार 'घोरतरे महाभयङ्करे श्मशानवासिनि' कहकर 'योगिनीडाकिनीपरिवृते' कहे। उसके बाद 'कल्पान्तकालानलविकराले' का कथन करना चाहिये। ततः 'दुर्निरीक्ष्यरूपे' कहने के बाद 'गर्ज विध्वंसय छिन्धि दम मर्दय पातय उच्छादय क्षोभय मारय द्रावय' इन दशपदों का दो-दो बार उच्चारण करे। इसके बाद 'इमं खड्गं देहि मे' कहने के साथ अग्न्यङ्गना कहे। (इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप यह होगा—ॐ ऐं हूं क्लौं ब्लौं श्रीं घोरनादे दंष्ट्राविकटे मुखमण्डने महाघोरे

---

१. एक पल लगभग अट्ठारह ग्राम का होता है।

घोरतरे महाभयङ्करे श्मशानवासिनि योगिनीडाकिनीपरिवृते कल्पान्तकालानलविकराले दुर्निरीक्ष्यरूपे गर्ज गर्ज विध्वंसय विध्वंसय छिन्धि छिन्धि दम दम मर्दय मर्दय पातय पातय उच्छादय उच्छादय क्षोभय क्षोभय मारय मारय द्रावय द्रावय इमं खड्गं देहि मे स्वाहा) ॥ १०१-१०६ ॥

[खड्गस्य बलिदानविधिः]

ततः स्वगात्ररुधिरं देव्यै दद्यान्नृपो बलिम् ।
ततो दद्यान्नरबलिमभावे महिषायुतम् ॥ १०७ ॥

[खड्गस्य कृते देव्या अनुज्ञाप्रार्थनम्]

देवि कामकलाकालि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि ।
देहि खड्गं भगवति त्रिलोकीविजयाय मे ॥ १०८ ॥
एवं गृहीत्वानुज्ञां वै हस्ते संलाप्य यत्नतः ।
अङ्कोलीतैलमुच्चण्डं गृह्णीयान्मन्त्रमुच्चरन् ॥ १०९ ॥

बलिदान एवं अनुज्ञा—इसके बाद राजा अपने शरीर के रक्त की बलि दे । इसके बाद नरबलि दे । (नरबलि के) अभाव में महिष की बलि दे । (बलिदान के बाद अनुज्ञा के लिये कहे कि—) हे भगवति! त्रैलोक्य के विजय के लिये खड्ग प्रदान करो । इस प्रकार अनुज्ञा प्राप्त कर अपने हाथ में अङ्कोल के तेल का अधिक से अधिक लेप कर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करता हुआ साधक खड्ग को ग्रहण करे ॥ १०७-१०९ ॥

[खड्गमुष्टौत्सरुनिवेशनमन्त्रः]

करवाल महाराज सर्वदेवधृत प्रभो ।
कालनेमिवधे त्वं हि विष्णुना विधृतः पुरा ॥ ११० ॥
नन्दकेति ततः सञ्ज्ञां सम्प्राप्तस्त्वं जगत्प्रभो ।
इन्द्रेण जम्भसङ्ग्रामे धृतस्त्वं क्रथनोऽभवः ॥ १११ ॥
दुर्गया दुर्गसङ्ग्रामे यदा त्वं विधृतो ह्यभूः ।
विद्युत्पातेति सञ्ज्ञां त्वमवाप्तस्तत्क्षणे विभो ॥ ११२ ॥
सर्वैर्देवगणैः सार्धं जायमाने महाहवे ।
रावणेन धृतः पूर्वं चन्द्रहासस्त्वमप्यभूः ॥ ११३ ॥
त्रैलोक्यविजयार्थं हि त्वमिदानीं मया धृतः ।
वज्रघात इतीयं ते सञ्ज्ञा देव मया कृता ॥ ११४ ॥
एवं मन्त्रं समुच्चार्य त्सरुं मुष्टौ निवेशयेत् ।
स नग्न एव तिष्ठेद्धि यावदिच्छं महात्मनः ॥ ११५ ॥

उच्चारणीय मन्त्र—'हे करवाल महाराज ! समस्त देवताओं के द्वारा धारण किये जाने वाले भगवन् ! प्राचीनकाल में कालनेमि के वध के समय विष्णु ने आपका

धारण किया था । हे जगत्प्रभो! उस समय आपने नन्दक नाम प्राप्त किया । जम्भासुर के साथ सङ्ग्राम के समय इन्द्र ने तुमको धारण किया और तुम क्रथन (नाम वाले) हो गये । दुर्गासुर के सङ्ग्राम में जब तुम्हारा धारण दुर्गा ने किया तो तुम विद्युत्पात की सञ्ज्ञा प्राप्त किये । देवताओं के साथ होने वाले महायुद्ध में रावण ने धारण किया तो तुम चन्द्रहास हो गये । इस समय मैंने त्रैलोक्यविजय के लिये तुम्हारा धारण किया है । हे देव ! मैंने तुम्हारा नाम वज्रघात रखा है ।'

इस प्रकार मन्त्र का उच्चारण कर साधक को उसकी मुठिया अपनी मुट्ठी में लेनी चाहिये । योगी साधक जब तक चाहे (खड्ग को नङ्गा रखे और स्वयं भी) नग्न पड़ा रहे ॥ ११०-११५ ॥

[अस्य खड्गस्य फलश्रुतिः]

एवं खड्गमुपादाय यत्र युद्धे व्रजत्यसौ ।
जयस्तत्र भवेदस्य नात्र कार्या विचारणा ॥ ११६ ॥
साधकेन तु कर्तव्या केवलं चालनक्रिया ।
स्वयमेव कृपाणोऽयं शातयत्याशु वैरिणः ॥ ११७ ॥
यत्र यत्रैव पतति वज्रघातोऽसिपुङ्गवः ।
केवलं तत्र तत्रैव पतत्यशनिरेव हि ॥ ११८ ॥
एकतो वज्रघातोऽयमेकतो वीरकोटयः ।
द्रष्टुमेव न शक्तास्ते किं पुनर्योद्धुमाहवे ॥ ११९ ॥
तत्कृपाणकरं ये ये पश्यन्ति रणमध्यगाः ।
ते ते चक्षुर्मुद्रयित्वा तत्रैव निपतन्त्यधः ॥ १२० ॥
वज्रघातप्रभावोऽयं वर्णितुं नैव शक्यते ।
तथापि किञ्चिच्चापल्यात् कथितं देवि तेऽग्रतः ॥ १२१ ॥

खड्गसिद्धिफल—इस प्रकार के खड्ग को लेकर वह (=युयुत्सु साधक) जिस युद्ध में जाता है उसमें उसकी विजय होती है । इसमें विचार नहीं करना चाहिये । साधक खड्ग का केवल चालन करे । यह कृपाण स्वयं शत्रुओं को शीघ्र काट डालता है । यह वज्रघात नामक श्रेष्ठ खड्ग जहाँ-जहाँ गिरता है वहाँ-वहाँ वज्रपात ही होता है । एक और यह वज्रघात और एक ओर करोड़ों वीर । वे इस खड्ग को देख भी नहीं सकते ओर रणक्षेत्र में युद्ध करने की क्या बात । जो-जो रणबाँकुरे उस कृपाण को देखते हैं वे आँख बन्द कर उसी युद्ध क्षेत्र में नीचे गिर पड़ते हैं । वज्रघात के इस प्रभाव का वर्णन करना सम्भव नहीं फिर भी हे देवि! चञ्चलता के कारण तुम्हारे आगे कुछ कह दिया गया ॥ ११६-१२१ ॥

निशुम्भशुम्भसङ्ग्रामे देव्या चायं धृतः पुरा ।
ततो देवासुरे युद्धे बलिना बलिना धृतः ॥ १२२ ॥

रक्षोवानरसङ्ग्रामे ततो रावणिना धृतः।
निवातकवचाख्याना: कालकेयाभिधास्तथा ॥ १२३ ॥
देवानामप्यवध्या ये हिरण्यपुरवासिनः ।
नवत्यर्बुदषट्खर्वनिखर्वशतसम्मिताः ॥ १२४ ॥
वज्रघातप्रसादेन तेऽर्जुनेन जिताः पुरा ।
वीरभद्रं समाराध्य सौप्तिकानीकचारिणा ॥ १२५ ॥
द्रौणिना निशि धृत्वैनमवशिष्टा निपातिताः ।

प्राचीनकाल में शुम्भ-निशुम्भ के सङ्ग्राम में देवी ने इसको धारण किया था । इसके बाद देवासुरसङ्ग्राम में बलवान् बलि ने भी इसको धारण किया था । राक्षसों और वानरों के सङ्ग्राम में मेघनाद ने इसे धारण किया । निवातकवच और कालकेय नाम वाले राक्षस जो कि हिरण्यपुर में निवास करते थे और देवताओं के भी अवध्य थे, जिनकी सङ्ख्या ९० अर्बुद ६ खर्व और १०० निखर्व थी, वज्रघात की कृपा से अर्जुन के द्वारा जीत लिये गये । सौप्तिक सेना में सञ्चरण करने वाले महारथी अश्वत्थामा ने वीरभद्र की आराधना कर रात्रि में इसको धारण किया और शेष शत्रुओं का नाश कर दिया ॥ १२२-१२६ ॥

यावच्छत्रुबलं सर्वं न निःशेषं भवेत् प्रिये ॥ १२६ ॥
तावन्मुष्टिर्न्न च्यवति कराग्रादिति निश्चितम् ।
खड्गसिद्धिमिमां श्रुत्वा समरे विजयो भवेत् ॥ १२७ ॥

हे प्रिये! जब तक समस्त शत्रुबल निःशेषता के चरणों में नहीं लोटने लगता तब तक इसकी मुठिया हाथ से नहीं छूटती यह निश्चित है । (मनुष्य) इस खड्ग-सिद्धि को सुनकर समर में विजयी होता है ॥ १२६-१२७ ॥

[अञ्जनप्रयोगविधिः]

अथाञ्जनप्रयोगं ते प्रवक्ष्यामि वरानने ।
येनाञ्जितो निधिं पश्येदेनं कश्चन नेक्षते ॥ १२८ ॥
भौमवाराप्तपञ्चत्वसूतिकाबालखर्परम् ।
समानीय श्मशाने तु कज्जलं तत्र पातयेत् ॥ १२९ ॥
नवनीतं भक्षयित्वा कृष्णमार्जारकं सदा ।
तद्वान्तं तत्समादाय राजीवार्कस्य तन्तुना ॥ १३० ॥
खञ्जरीटस्य गरुता सार्द्धं वर्त्ति प्रकल्पयेत् ।
ततस्तत्कज्जलं नीत्वा शनिवारे निमन्त्रयेत् ॥ १३१ ॥
प्रातर्देव्यै समर्प्याथ मन्त्रेणानेन चाञ्जयेत् ।

अञ्जन-प्रयोग—हे वरानने ! अब तुमको अञ्जन-प्रयोग बतलाऊँगा । इस अञ्जन को आँख में लगाने वाला (व्यक्ति भूमि के अन्दर निहित) खजाने को देख लेता है

किन्तु इस (व्यक्ति) को कोई भी नहीं देख पाता । मङ्गलवार को किसी प्रसूता के मरे हुए बालक की खोपड़ी को श्मशान भूमि में ले जाकर उसमें कज्जल बनाये । काली बिल्ली मक्खन (=नवनीत) को खाने के बाद वमन कर दे तो उस वान्त की राजीवाक (=राया मछली) के तन्तु (=नस) और खञ्जरीट के गरुत् (=पङ्ख) को मिलाकर बत्ती बनाये । इसके बाद उस कज्जल को शनिवार के दिन अभिमन्त्रित करे । प्रातःकाल देवी को समर्पित कर साधक निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ते हुए उसे आँख में आँजे ॥ १२८-१३२ ॥

[अञ्जनसिद्ध्यर्थं मन्त्रजपविधिः]

वाग्भवं कामलं क्रोधं भूतबीजमथोच्चरेत् ॥ १३२ ॥
निगद्य सर्वसिद्धीति दायिनीति पदं वदेत् ।
मा मां पश्यन्तु चोद्धृत्य सर्वाभूतानि चोच्चरेत् ॥ १३३ ॥
स्वाहान्तं मन्त्रमुल्लिख्याञ्जयेन्नेत्रेऽविचारयन् ।

मन्त्र—वाग्भव कमला क्रोध भूत बीजों का उच्चारण करे । इसको कहकर 'सर्वसिद्धिदायिनि मा मां पश्यन्तु' कहकर 'सर्वभूतानि' कहे । अन्त में 'स्वाहा' कहे (मन्त्र का स्वरूप—ऐं श्रीं हूं स्फ्रें सर्वसिद्धिदायिनि मा मां पश्यन्तु सर्वभूतानि स्वाहा) इस मन्त्र को कहकर नेत्रों में बिना किसी सन्देह के अञ्जन लगाये ॥ १३२-१३४ ॥

[अञ्जनसिद्धिफलश्रुतिः]

नैनं पश्यन्ति भूतानि नैनं पश्यन्ति मानुषाः ॥ १३४ ॥
नैनं पश्यन्ति गीर्वाणा न नागा नासुराः खगाः ।
अयं पश्यति भूतानि परमाणुसमान्यपि ॥ १३५ ॥
निधिं भूमितलगतं सर्वं पश्यति साधकः ।
व्यवधानगतं चापि दूरदेशगतं तथा ॥ १३६ ॥
तिरश्चां विरुतं वेत्ति वेत्ति चैषां च चेष्टितम् ।
आकाशचारिणः सर्वान् पश्यत्येव न संशयः ॥ १३७ ॥
सुभगः सर्वनारीणां भवेत् काम इवापरः ।
सर्वत्रैवाप्रतिहतो विचरेत महीतले ॥ १३८ ॥

अञ्जनसिद्धि का फल—इसको न तो भूत, न मनुष्य, न देवता, न नाग, न असुर और न ही पक्षी देख पाते हैं । और यह परमाणु के समान (सूक्ष्मतम) प्राणियों को भी देख लेता है । यह साधक पृथिवी के अन्दर गड़ी हुई व्यवधानयुक्त और दूरदेश में स्थित भी समस्त निधि को देख लेता है । पक्षियों की बातों और उनकी चेष्टाओं को जान लेता है । समस्त आकाशचारियों को अवश्य देखता है इसमें कोई संशय नहीं है । दूसरे कामदेव के समान समस्त स्त्रियों के लिये वह सुभग होता है । इस पृथ्वीतल पर सर्वत्र निर्बाध विचरण करता है ॥ १३४-१३८ ॥

[गुटिकासिद्धिविधिः]

अथ ते गुटिकासिद्धिं प्रवदामि समासतः ।
यत्सिद्धौ सर्वसिद्धिः स्यादेकसिद्ध्या न संशयः ॥ १३९ ॥
रेखायुतं स्थूलपीतं शुचिदेशगतं प्रिये ।
पुष्करिण्युदपानस्थं भेकमेकमुपाहरेत् ॥ १४० ॥
एकस्मिन् मार्त्तिके कुम्भे नूतने तं निधापयेत् ।
पलमेकं शुद्धमूतं तन्मध्ये निक्षिपेत् प्रिये ॥ १४१ ॥
मुखमाच्छादयेत्तस्य सरावेण प्रयत्नतः ।
बहुना जतुना तच्च मुद्रयेद् वारपञ्चकम् ॥ १४२ ॥
तथाचरेत् प्रयत्नेन विशेन्नाम्भो यथाण्वपि ।
ततो लिखेदमुं मन्त्रं कुम्भे साधकसत्तमः ॥ १४३ ॥

गुटिका-सिद्धि—अब तुम्हें संक्षेप में उस गुटिका-सिद्धि को बतलाऊँगा जिस एक सिद्धि से निःसन्देह समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं । हे प्रिये! कमल वाले तालाब में रहने वाले रेखायुक्त अत्यन्त पीले रंग वाले तथा पवित्र स्थान में स्थित मेढ़क को ले आये । मिट्टी के नये घड़े में उसे रखे । उस घड़े के मध्य एक पल शुद्ध ऊत (=पारद) डाल दे । उसके बाद कसोरे से उस घट के मुख को प्रयत्नपूर्वक बन्द कर दे । प्रचुर जतु के द्वारा उस घट को पाँच बार मुद्रित करे । ऐसा कर दे ताकि उस (घट) में पानी का एक कण भी प्रवेश न कर सके । इसके बाद साधक निम्नलिखित मन्त्र को घट के ऊपर लिखे ॥ १३९-१४३ ॥

[कुम्भे लेखनीयमन्त्रनिर्देशः]

तारवाग्भवकन्दर्पवधूलज्जारमारुषः ।
पाशप्रासादफेत्कारीभूतप्रेतामृतान्यपि ॥ १४४ ॥
महाक्रोधं क्षेत्रपालं चण्डकालीयगारुडान् ।
कालविद्युन्मेघनागरतिबीजानि चालिखेत् ॥ १४५ ॥
चतुर्विंशतिबीजानि खेचरीसहितानि च ।
उक्त्वा कामकलाकालि रक्ष रक्षेति चोच्चरेत् ॥ १४६ ॥
आकाशबीजत्रितयं महीबीजद्वयं ततः ।
वारुणं बीजमेकं हि प्रोच्चरेत्तदनन्तरम् ॥ १४७ ॥
अस्त्रत्रितयसंयुक्तः स्वाहान्तो मनुरीरितः ।

मन्त्र—तार वाग्भव कन्दर्प वधू लज्जा रमा क्रोध पाश प्रासाद (=हौं) फेत्कारी (=हस्ख्फ्रें) भूत (=स्फ्रों) प्रेत (=स्हौः) अमृत (=ग्लूं) महाक्रोध (=क्ष्रूं) क्षेत्रपाल (=क्षौं) चण्ड (=फ्रौं) काली गरुड (=क्रैं) काल (=जूं) विद्युत् (=ब्लौं) मेघ (=क्लौं) नाग (=ब्रीं) रति बीजों को लिखे । खेचरी (=ख्रौं) सहित चौबीस बीजों को कहकर 'कामकलाकालि रक्ष रक्ष' कहे । फिर आकाश बीज (=हं) को तीन बार पृथिवी बीज

(=लं) को दो और वारुण बीज (=वं) को एक बार कहे । तीन बार अस्त्र मन्त्र को बोल कर 'स्वाहा' कहे । (इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप होगा—ॐ ऐं क्लीं स्त्रीं ह्रीं श्रीं हूं आं हौं ह्स्ख्फ्रें स्फ्रों स्हौः ग्लूं क्षूं क्षौं फ्रौं क्रीं क्रैं जूं ब्लौं क्लौं ब्रीं क्लूं खौं कामकलाकालि रक्ष रक्ष हं हं हं लं लं वं फट् फट् फट् स्वाहा) ॥ १४४-१४८ ॥

चलत्तोयप्रवाहायाः कुल्याया हस्तमात्रतः ॥ १४८ ॥
भूमेः खनित्वा तत्राधो घटं संस्थापयेदमुम् ।
उपरिष्टात् प्रदेयानि शर्कराशकलानि च ॥ १४९ ॥
यथोपरि प्रवाहस्तु गच्छेत् कुर्यात्तथाविधिम् ।
तत्र षण्मासपर्य्यन्तं स्थापयेद् यत्नतो घटम् ॥ १५० ॥
अन्वहं भक्षयेत् तत्स्थमूतं भेकः क्षुधान्वितः ।

जिस छोटी नदी में पानी निरन्तर बह रहा हो उसमें एक हाथ नीचे भूमि में गड्ढा खोदकर इस घट को रख दे । ऊपर से बालू या पत्थर के कण से ढँक दे ताकि उसके ऊपर पानी बहता रहे । उस घट को वहाँ छः महीने तक रहने दे । उसमें स्थित मेढक भूख लगने पर वह पारा खाता रहेगा ॥ १४८-१५१ ॥

[अत्र बलिदानविधिः]

बलिस्तत्र प्रयत्नेन देयः प्रतिचतुर्दशि ॥ १५१ ॥
भेकरूपेण सा देवी स्वयमेवात्ति तं यतः ।
तस्मात्तत्रार्च्चनं कार्यं देवीबुद्ध्या न संशयः ॥ १५२ ॥
सूतस्तदुदरे बद्धो भवतीति सुनिश्चितम् ।
षण्मासानन्तरं देवि तत उत्थापयेत्सुधीः ॥ १५३ ॥
गृहकोणे ततः स्थाप्यमन्धकारे रहस्यपि ।
एकं हि विवरं कार्यं कुम्भे तत्र शनैः शनैः ॥ १५४ ॥
सम्पिष्टहिङ्गुलीतोयं पलमात्रं विनिःक्षिपेत् ।
तेन छिद्रपथा देवि मासि मास्येवमाचरेत् ॥ १५५ ॥
तत्तोयं षट्पलमितं षट्सु मासेषु दापयेत् ।
ततः संवत्सरे पूर्णे बहिर्निष्कासयेच्छनैः ॥ १५६ ॥
ततोऽन्तरीक्षे तत्स्थाप्यं प्रयत्नेन विचक्षणः ।
तत्र विघ्नकराः सर्वे देवदानवराक्षसाः ॥ १५७ ॥
सावधानो भवेत्तस्मात् प्रतिक्षणमनन्यधीः ।

बलिदान—प्रत्येक चतुर्दशी को वहाँ बलि देनी चाहिये । क्योंकि मेढक के रूप में देवी ही उस (पारद) को खाती है । इसलिये सन्देहरहित होकर वहाँ देवी की बुद्धि से पूजा करनी चाहिये । वह पारद उस (मेढक) के पेट में बद्ध हो जाता है । हे देवि ! छह महीने के बाद विद्वान् साधक उस घड़े को वहाँ से उठा ले । उसे घर के कोने में अन्धकार में एकान्त में रख दे । उस कुम्भ में धीरे-धीरे एक बिल बनाये ।

पिसी हुई हिङ्गुली (=काँटेदार जंगली भण्टा) एक पल की मात्रा में उस (घट) में फेंक दे । प्रत्येक मास उस छिद्र से यह कार्य करता जाय । इस प्रकार छह महीने में छह पल पानी उसमें चला जायगा । एक वर्ष पूर्ण होने पर धीरे से उस घट को बाहर ले आये और खुले आसमान के नीचे उसे रख दे । (ऐसी स्थिति में) वहाँ देवता दानव राक्षस विघ्न करते हैं । इसलिये एकचित्त साधक प्रतिक्षण इस विषय में सावधान रहे ॥ १५१-१५८ ॥

[घटरक्षामन्त्रनिर्देशः]

तत्र रक्षा प्रकर्त्तव्या मन्त्रेणानेन पार्वति ॥ १५८ ॥
क्रोधबीजत्रयं प्रोच्य देव्याः सम्बोधनं वदेत् ।
यक्षराक्षसभूतेति पिशाचप्रेत इत्यपि ॥ १५९ ॥
कूष्माण्डजम्भकेत्येव योगिनी डाकिनीति च ।
स्कन्दवेताल उच्चार्य क्षेत्रपाल विनायक ॥ १६० ॥
ततो घोणक उल्लिख्य गुह्यकेति पदं वदेत् ।
विनायकेभ्य इत्युक्त्वा इमं घटमुदीरयेत् ॥ १६१ ॥
रक्ष रक्षेति चोद्धृत्य स्वाहान्तो मन्त्र उत्तमः ।

घटरक्षा-मन्त्र—हे पार्वति ! निम्नलिखित मन्त्र से उसकी रक्षा करनी चाहिये—क्रोध बीज का तीन बार उच्चारण कर देवी का सम्बोधन कहे । फिर 'यक्ष राक्षस भूत पिशाच प्रेत कूष्माण्ड जम्भक योगिनी डाकिनी स्कन्द वेताल' कहकर 'क्षेत्रपाल विनायक घोणक गुह्यक' कहे । 'विनायकेभ्य:' कहकर 'इमं घटं रक्ष रक्ष स्वाहा' कहे। (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होगा—हूं हूं हूं कामकलाकालि यक्षराक्षसभूत-पिशाचप्रेतकूष्माण्डजम्भकयोगिनीडाकिनीस्कन्दवेतालक्षेत्रपालविनायकघोणकगुह्यकविनायकेभ्य इमं घटं रक्ष रक्ष स्वाहा) ॥ १५८-१६२ ॥

मन्त्रेणानेनावगुण्ठ्य कुर्यादेवं ततः परम् ॥ १६२ ॥
कृष्णधुत्तुरवृक्षस्य पलमात्रं द्रवं शुचि ।
दद्याच्च प्रथमे मासि तेन च्छिद्रेण साधकः ॥ १६३ ॥
द्वितीये मासि तुलसी तृतीये श्रेयसीरसम् ।
चतुर्थे मार्कवीं दद्यात् पञ्चमे लक्ष्मणारसम् ॥ १६४ ॥
षष्ठे हैमवतीपत्रद्रवदानं विधीयते ।
पूर्णे ह्यष्टादशे मासि प्रदद्यान्माहिषं बलिम् ॥ १६५ ॥
ततो निष्कासयेद् भेकं सिन्दूरारुणसन्निभम् ।
वस्त्रैः करं वेष्टयित्वा ततस्तमवनामयेत् ॥ १६६ ॥
शनैः शनैर्धूनयेच्च यावद्वमति दर्दुरः ।
ततः सा गुटिका देवि सिन्दूरारुणसन्निभा ॥ १६७ ॥
इन्द्रगोपादपि तथा माणिक्यशकलादपि ।

महाशोणा भवेद् देवि तां प्रगृह्य विचक्षणः ॥ १६८ ॥
प्राणप्रतिष्ठामापाद्य पूजयित्वा यथाविधि ।
देव्यनुज्ञां समासाद्य मन्त्रेणानेन धारयेत् ॥ १६९ ॥

इस मन्त्र से अवगुठन कर साधक काले धतूर (के पत्ते) का एक पल रस प्रथम मास में उसी छिद्र से घट में डाल दे । दूसरे मास में तुलसी तीसरे मास में श्रेयसी (=पान) चतुर्थ में मार्कव (=भृङ्गराज) पाँचवें में लक्ष्मणा और छठें मास में हैमवती (=हर्रें) के पत्ते का द्रव देने का विधान है । अट्ठारह महीना पूरा होने पर भैंसा की बलि दे । उसके बाद (घट में से) सिन्दूर के समान अरुण मेढक को निकाल ले । अपने हाथों में वस्त्र लपेट कर मेढ़क को पेट के बल लिटा दे । धीरे-धीरे ऊपर से तब तक ठोंके जब तक कि मेढक उस गुटिका को उगल न दे । हे देवि! वह गोली लाल सिन्दूर इन्द्रगोप (=वीरबहूटी नामक लाल कीड़ा) और माणिक्य के टुकड़े से भी अधिक अरुण होती है । विद्वान् उसको लेकर उसमें प्राणप्रतिष्ठा करे । तत्पश्चात् विधिवत् पूजन कर देवी की आज्ञा लेकर निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ते हुए उसका धारण करे ॥ १६२-१६९ ॥

[गुटिकाधारणमन्त्रनिर्देशः]

प्रणवं शाम्भवं बीजं मायाकामाङ्कुशामृतम् ।
सर्वसिद्धिमथोच्चार्य देहि देहीति सङ्गृणेत् ॥ १७० ॥
ततः स्वाहा पदं चोक्त्वा शिखायां बन्धयेत्ततः ।

मन्त्र—प्रणव शाम्भव (=ङं) माया काम अङ्कुश अमृत बीज का उच्चारण कर 'सर्वसिद्धिं' कहकर 'देहि देहि' कहना चाहिये । उसके बाद 'स्वाहा' पद का उच्चारण करे (मन्त्र का स्वरूप यह है—ॐ ङं ह्रीं क्लीं क्रों वं सर्वसिद्धिं देहि देहि स्वाहा) ॥ १७०-१७१ ॥

[गुटिकायाः फलश्रुतिः]

अव्याहतगतिर्भूत्वा यत्रेच्छा तत्र गच्छतु ॥ १७१ ॥
अनेनैव शरीरेण देवत्वं प्राप्नुयान्नरः ।
खेचरो जायते देवि तथैवादृश्यतां व्रजेत् ॥ १७२ ॥
लीयते वायुभूतोऽयं वायुमध्ये न संशयः ।
तेजो भूत्वा निविशते तेजस्येव स साधकः ॥ १७३ ॥
जले प्रविष्टो भवति जलरूपो वरानने ।
स आकाशतनुर्भूत्वाकाश एव विलीयते ॥ १७४ ॥

गुटिकासिद्धि का फल—उस गुटिका को शिखा में बाँधने के बाद साधक जहाँ इच्छा होती है जा सकता है । मनुष्य इसी शरीर से देवत्व प्राप्त करता है । हे देवि! वह खेचर हो जाता है और उसी प्रकार अदृश्य भी हो जाता है । वायु के मध्य वायु

बनकर लीन हो जाता है । वह साधक तेज बनकर तेज में लीन हो जाता है । हे वरानने! जल में प्रवेश करने पर वह जलरूप हो जाता है । आकाशवाला शरीर धारण कर वह आकाश में विलीन हो जाता है ॥ १७१-१७४ ॥

सुमेरुशतसङ्काशो गरिम्णा स भवत्यपि ।
परमाणुसमो भूयादणिम्ना स क्षणान्तरम् ॥ १७५ ॥
पिबत्यब्धिचतुष्कं स यदि देवि पिपासति ।
चन्द्रसूर्यग्रहर्क्षाणि साधकश्चेद् दिधीर्षति ॥ १७६ ॥
ध्रियते तत्क्षणादेव कराभ्यां स्थित एव सः ।
शापानुग्रहसामर्थ्यं भवति क्षिप्रमेव हि ॥ १७७ ॥
लोकपालैः समं तस्य संवादो जायते मिथः।
तेषां पुराणि व्रजति सखा चैषां भवेदसौ ॥ १७८ ॥

गुरुता में वह एक सौ सुमेरु पर्वत के समान और एक क्षण में अणिमा में परमाणुवत् हो जाता है । यदि उसे प्यास लगे तो चारो समुद्रों को पी जाता है। यदि चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र को पकड़ना चाहता है तो बैठे-बैठे हाथों से उनको पकड़ लेता है । उसके अन्दर शाप देने और शापमुक्त करने का सामर्थ्य आ जाता है । लोकपालों से उसका पारस्परिक संवाद होता है । वह उनके नगरों में जाता और उनका मित्र बन जाता है ॥ १७५-१७८ ॥

नागाङ्गना देवकन्या यक्षिण्योऽप्सरसस्तथा ।
तस्याग्रतः समायान्ति स्वयं मदनविह्वलाः ॥ १७९ ॥
जीवेत् स साधकश्रेष्ठो यावदाचन्द्रतारकम् ।
न शक्यते समाख्यातुं महिमा मादृ(शैः) प्रिये॥ १८० ॥
अथवा किं बहूक्तेन सत्यं सत्यं वचो मम ।
स साक्षाद् रुद्र एवेति मन्तव्यो नात्र संशयः ॥ १८१ ॥

नागों की स्त्रियाँ देव कन्यायें यक्षिणियाँ अप्सरायें कामविह्वल होकर स्वयं उसके आगे आ जाती हैं । वह साधकश्रेष्ठ जब तक चन्द्रमा और ताराओं की सत्ता है तब तक जीवित रहता है । हे प्रिये! मेरे जैसे लोग उसकी महिमा का व्याख्यान नहीं कर सकते । अधिक कहने से क्या लाभ मेरा वचन सत्य ही है। उसे निःसन्देह साक्षात् रुद्र समझना चाहिये ॥ १७९-१८१ ॥

रौप्यताम्राहिवङ्गायोराशीन् पर्वतसन्निभान् ।
यद्येष स्पृशति क्षिप्रं सुवर्णं निश्चितं भवेत् ॥ १८२ ॥
यस्मात्कामकलाकालीरूपेयं गुटिका प्रिये ।
तस्मान्नैव प्रयोक्तव्या ह्यन्यासु क्षुद्रसिद्धिषु ॥ १८३ ॥
केवलं देवतात्वैककारिणीं गुटिकामिमाम् ।
धारयेत् कालिकारूपामप्रमत्तेन चेतसा ॥ १८४ ॥

चाँदी-ताँबा नाग बङ्ग लोहे की पर्वतसदृश राशि का यदि यह स्पर्श करता है तो शीघ्र ही वह निश्चितरूप से सुवर्ण हो जाती है। हे प्रिये! चूँकि यह गुटिका कामकलाकाली रूप है इसलिये क्षुद्र सिद्धियों के लिये इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। केवल देवत्व देने वाली कालीरूपा इस गुटिका का सावधानी के साथ धारण करना चाहिये ॥ १८२-१८४ ॥

अथापरं प्रयोगं च शृणु वक्ष्यामि कञ्चन।
कोऽपि वीरो महायुद्धे सम्मुखे पतितो हि यः ॥ १८५ ॥
सशिरस्कं समादाय स्थापयेत् पितृकानने।
अथ स्वयं शुचिः स्नातः कृतनित्याह्निकक्रियः ॥ १८६ ॥
रात्रौ कृष्णाचतुर्दश्यामभीतः साधकः सुधीः।
वध्यमेकं नरं चौरं समादाय व्रजेन्नृपः ॥ १८७ ॥
आरुह्य तं शवं तत्र जपेन्मन्त्रमभीः शुचिः।
साहस्रे वा द्विसाहस्रे जपे पूर्णे कपालिनी ॥ १८८ ॥
प्रविश्य तत्र कुणपं आवेशं विदधीत वै।
ततो नरबलिं दद्याद् देव्यै साधकसत्तमः ॥ १८९ ॥

तालवेताल-सिद्धि—अब तुमको कोई दूसरा प्रयोग बतलाऊँगा, सुनो। यदि महायुद्ध में कोई वीर अपने सामने मर जाय तो शिरसहित उसको श्मशान में ले आकर रख देना चाहिये। इसके बाद स्वयं पवित्र हो स्नान-सन्ध्या-वन्दन आदि कर सुधी साधक राजा कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में निर्भय होकर एक वध्य पुरुष चोर को ले आये। फिर उस शव पर आरूढ़ होकर पवित्र और निर्भय वह मन्त्र का जप करे। एक हजार या दो हजार जप के पूर्ण होने पर कपालिनी उस शव में प्रवेश कर आवेश उत्पन्न करती है। इसके बाद उत्तम साधक (उस कपालिनी के लिये) नरबलि दे ॥ १८५-१८९ ॥

[नरबलिदानमन्त्रनिर्देशः]

तारवाग्भवकन्दर्पप्रेतभूतामृतैः सह।
प्रासादाङ्कुशफेत्कारीगारुडक्षेत्रपालकैः ॥ १९० ॥
सम्बोध्य देव्या नामापि बलिं गृह्ण मुहुर्मुहुः।
सिद्धिं मे देहि सम्भाष्य दापयेति ततः परम् ॥ १९१ ॥
स्वाहान्तं मन्त्रमुल्लिख्य दद्यादेतेन साधकः।
भवेतां तालवेतालौ नामानौ सेवकोत्तमौ ॥ १९२ ॥

बलिमन्त्र—तार, वाग्भव, कन्दर्प, प्रेत, भूत, अमृत, प्रासाद, अङ्कुश, फेत्कारी, गरुड, क्षेत्रपाल बीजों के साथ देवी के नाम का सम्बोधन कर 'बलिं गृह्ण गृह्ण' कहे। पुनः 'सिद्धिं मे देहि दापय स्वाहा' कहे। (मन्त्र का स्वरूप निम्नलिखित होगा—ॐ ऐं क्लीं स्हौः स्फ्रों ग्लूं हौं क्रों हसखफ्रें क्रौं क्षौं कामकलाकालि बलिं गृह्ण गृह्ण सिद्धिं

मे देहि दापय स्वाहा ।) इस मन्त्र से बलि दे (इसके फलस्वरूप) ताल और वेताल उसके उत्तम सेवक हो जाते हैं ॥ १९०-१९२ ॥

[तालवेतालसिद्धिफलश्रुतिः]

तावारुह्य व्रजेद् देवि भूर्भुवःस्वःपुरत्रयम् ।
तलं रसातलं चैव पातालसुतलातलान् ॥ १९३ ॥
मेरुशैलादिकांश्चैव व्रजेदेवं न संशयः ।
अन्तः समुद्रे विशति जले तेजसि लीयते ॥ १९४ ॥
आकाशे पर्वतादींश्च भिनत्ति स्वेन तेजसा ।
त्रैलोक्यान्तरगं स्थानं तादृशं नास्ति पार्वति ॥ १९५ ॥
यत्रायं नैव गच्छेत् स इत्येवं निश्चयो मम ।
अन्ये च बहवो देवि प्रयोगाः सन्ति भूरिशः ॥ १९६ ॥
ते सर्वेऽन्वेषणीयाश्च ह्यन्यकालीविधिष्वपि ।
इत्येते कथिता देवि प्रयोगाः सर्वसिद्धिदाः ॥ १९७ ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां सामान्यविशेषप्रयोगो नाम षष्ठः पटलः ॥ ६ ॥

...❀...

फलश्रुति—हे देवि ! उन दोनों पर आरुढ़ होकर राजा भूर्भुवः स्वः तीनो लोको में जाता है। तल रसातल पाताल सुतल अतल सुमेरु आदि पर्वतों पर निःसन्देह जाता है । समुद्र के भीतर प्रवेश करता और तेज तथा आकाश में विलीन हो जाता है । अपने तेज से पर्वत आदि को तोड़ देता है । हे पार्वति! त्रैलोक्य के भीतर कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ यह न जा सके यह मेरा निश्चय है । हे देवि! अन्य भी बहुत से प्रयोग हैं, अन्य कालीविधियों में उनका अन्वेषण करना चाहिये । हे देवि ! इस प्रकार ये सब सिद्धिदायक प्रयोग तुमको बतलाये गये ॥ १९३-१९७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकाल-संहिता के कामकलाकाली खण्ड के सामान्यविशेषप्रयोग नामक षष्ठ पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ६ ॥

...❀...

सप्तमः पटलः

[अवतरणम्]

देव्युवाच—

कर्त्तव्यं केन रूपेण स्थापनं जातवेदसः ।
देवेश तन्मे कथय महाकाल जगत्पते ॥ १ ॥

देवी ने कहा—हे जगत् के स्वामी! हे महाकाल! हे देवेश! अग्नि की स्थापना किस प्रकार की जाती है उसे मुझको बतलाइये ॥ १ ॥

[वह्निस्थापनविधिः]

महाकाल उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि वह्नेः स्थापनमुत्तमम् ।
जायते सर्वथा येन साधकस्येप्सितं वरम् ॥ २ ॥
पूर्व्वोत्तरप्लवं रम्यमादौ मण्डलमाचरेत् ।
ततस्त्रिकोणं षट्कोणं नवकोणमथापि च ॥ ३ ॥
तत्तत्कार्यानुसारेण विदधीत विचक्षणः ।

अग्निस्थापन-विधि—महाकाल ने कहा—हे देवि! अग्नि की उत्तम स्थापन-विधि को मैं बतलाऊँगा, सुनो । इस स्थापना के द्वारा साधक का श्रेष्ठ ईप्सित सिद्ध हो जाता है । सबसे पहले पूर्व और उत्तर की ओर ढालू एक मण्डल बनाना चाहिये । उसके बाद विद्वान् तत्तत् कार्य (अर्थात् लक्ष्य) के अनुसार (उस मण्डल के ऊपर) त्रिकोण षट्कोण अथवा नवकोण बनाये ॥ २-४ ॥

[कामनाभेदेनाहवनीयद्रव्यकाष्ठयोर्भेदाभिधानम्]

वाञ्छाभेदाद् द्रव्यभेदाः काष्ठभेदाः भवन्ति हि॥ ४ ॥
फलं फलानामन्यत् स्यादन्यदन्नस्य पार्वति ।
तथान्यदेव पुष्पाणामन्यदेवान्यवस्तुनः ॥ ५ ॥
अन्यामन्यां होमकर्मकामनां मन्त्रविच्चरेत् ।
ध्यायन् देवीं चरेद्धोमं समिद्भिः सर्पिषा सह ॥ ६ ॥
ततो जपं प्रकुर्वीत होमान्ते सर्वथा प्रिये ।
ततः सजपहोमाद्धि जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥ ७ ॥

इच्छा के भेद से हवनीय द्रव्य और काष्ठ के भेद—इच्छा के भेद से द्रव्य

और काष्ठ भिन्न-भिन्न होते हैं । हे पार्वति! फलों (के हवन) का फल दूसरा और अन्न (के हवन) का फल दूसरा होता है । इसी प्रकार पुष्पों (की आहुति) का भिन्न और अन्य वस्तुओं (की आहुति) का फल भिन्न होता है । मन्त्रवेत्ता को चाहिये कि वह होमकर्म की भिन्न-भिन्न कामना करे । देवी का ध्यान करता हुआ वह समिधा और घी के साथ होम करे । हे प्रिये! सब प्रकार के होम के अन्त में जप करना चाहिये । जप के सहित होम से समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥ ४-७ ॥

[होमविध्यभिधानम्]

अथ होमविधिं वक्ष्ये (यः) शास्त्रे विहितः सदा ।
यस्य सम्यग् विधानेन सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥ ८ ॥
पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा कोणं चापि यथाविधि ।
तत्राचरेच्छुचिर्भूत्वा स्थापनं जातवेदसः ॥ ९ ॥
न्यासं कराङ्गयोः कृत्वा ध्यात्वा देवीं हृदि स्थिताम् ।
मण्डले कोण ऐशान्यां होमकर्मारभेत वै ॥ १० ॥
विधाय विधिवत्पूजां होमकर्मणि मण्डले ।
अग्न आयाहि मन्त्रेण वह्नेरावाहनं चरेत् ॥ ११ ॥
अग्नये रोचमानायेति मन्त्रैः स्थापनं ततः ।
होमं पश्चात् प्रकुर्वीत समिद्भिः कुसुमैरपि ॥ १२ ॥
फलैः पत्रैर्व्रीहिभिश्च तथान्यैरपि वस्तुभिः ।
शतमष्टोत्तरं चापि सहस्रं चायुतं तथा ॥ १३ ॥
लक्षं चापि प्रकर्त्तव्यं लक्षोपरि न विद्यते ।
कामनागौरवादेव होमो गौरवमिच्छति ॥ १४ ॥
सर्वत्रैव तु होमान्ते जपं कुर्यादनन्यधीः ।

होम-विधि—अब मैं तुमको उस होम विधि को बतलाऊँगा जिसका सदा शास्त्रों में विधान है एवं जिसके सम्यक् विधान से सर्वसिद्धि प्राप्त होती है । (साधक) पूर्व की भाँति मण्डल और कोण की विधिवत् रचना कर पवित्र हुआ उस पर अग्नि की स्थापना करे । हाथ और अङ्गों का न्यास कर हृदय में स्थित देवी का ध्यान करे । ततः मण्डल और कोण के ऊपर ईशान दिशा में होमकर्म का प्रारम्भ करे । होमकर्म में मण्डल में विधिवत् पूजन कर 'अग्न आयाहि'[1] मन्त्र से अग्नि का आवाहन करे । इसके बाद 'अग्नये रोचमानाय'[2] मन्त्र से स्थापन करे । तत्पश्चात् समित् के साथ पुष्प फल पत्र धान तथा अन्य वस्तुओं के द्वारा भी एक सौ आठ, एक हजार आठ अथवा दश हजार आठ बार हवन करे । एक लाख आठ बार भी हवन किया जा सकता है किन्तु एक लाख के ऊपर नहीं । कामना की गुरुता के अनुसार होम की

१. अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि । ऋ.वे. ६।१६।१०
२. द्रष्टव्य एवं तुलनीय 'अग्नये .... । आप.गृ.सू. ८।२२।७

गुरुता (=होम की अधिकता) बतलायी गयी है। सब प्रकार के होम के अन्त में एकचित्त साधक को जप करना चाहिये ॥ ८-१५ ॥

[होमे कथं फलवैविध्यमित्यभिधानम्]

एकेन केवलेनैव द्रव्येणान्यत् फलं भवेत् ॥ १५ ॥
अन्यदेव विमिश्रेण फलं देवि विधीयते ।

हे देवि! केवल एक ही वस्तु से हवन करने का फल भिन्न होता है और कई द्रव्यों के मिश्रण से किये जाने वाले हवन का फल अन्य होता है ॥ १५-१६ ॥

[कुसुमाहुतिफलकथनम्]

कुसुमानां फलं सर्वमादौ मत्तोऽवधारय ॥ १६ ॥
समिद्घृतमधून्मिश्रा मालतीकुसुमाहुतिः ।
बृहस्पतेरप्यधिका वागीशत्वप्रदायिका ॥ १७ ॥
वशगाः स्युर्महीपाला जातीपुष्पैकहोमतः ।
मेधावृद्धिर्यूथिकाभिर्नृपत्वं नागकेशरैः ॥ १८ ॥
माधवीभिर्महीलाभो हेमलाभश्च चम्पकैः ।
अतिमुक्तैर्बुद्धिवृद्धिर्मल्लिकाभिर्धनागमः ॥ १९ ॥
कुन्दैः कीर्त्तिमवाप्नोति बन्धूकैर्बान्धवप्रियः ।
जवापुष्पेण रिपवः सङ्क्षयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ २० ॥

पुष्पहोम का फल—पहले मुझसे फूलों (के हवन) का फल जानो। समिध् घी मधु से मिश्रित मालती के पुष्पों की आहुति बृहस्पति से भी अधिक वागीशत्व प्रदान करती है। जूही के फूलों के होम से राजा लोग वश में होते हैं। नागकेशर के साथ यूथिका (=जूही) (के फूलों का हवन करने) से मेधावृद्धि एवं राजत्व प्राप्त होता है। माधवी (के फूलों के होम) से पृथ्वीप्राप्ति, चम्पा के फूलों से स्वर्णलाभ, अतिमुक्तक (=आम के वृक्ष से लिपटी हुई लता के फूलों) से बुद्धि की वृद्धि, मल्लिका से धनागम और कुन्द से (होता) कीर्त्ति प्राप्त करता है। बन्धूक से बन्धु-बान्धवों का प्रिय होता है और जवापुष्प से शत्रु तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं ॥ १६-२० ॥

पद्मैरायुरवाप्नोति कुमुदैः कविता भवेत् ।
कदम्बैर्व्याधिनाशः स्यादम्लानैर्वृद्धिभाग्भवेत् ॥ २१ ॥
जयप्राप्तिर्मरुवकैर्जयलाभः कुरुण्टकैः ।
झिण्टीभिर्हयलाभः स्यान्नौलाभो मुनिपुष्पकैः ॥ २२ ॥
तथापराजितापुष्पैर्भवेत् सर्वाङ्गसुन्दरः ।
शेफालिकाप्रसूनेन सुतलाभः प्रदिश्यते ॥ २३ ॥
शोकहानिरशोकेन वकुलैः कुलमान्यता ।
दूर्वया धनधान्यानि शाल्मल्या शात्रवक्षयः ॥ २४ ॥

कमल के फूलों से (होता) आयु (की वृद्धि) प्राप्त करता है; कुमुद के फूलों से कवि हो जाता है । कदम्ब से व्याधि का नाश और अम्लान (=भटकटैया) से वृद्धि होती हे । मरुबक (=मयनफल) से जयप्राप्ति, कुरुण्टक (=पीली झिण्डी) से जयलाभ, झिण्डी से घोड़ा और मुनिपुष्पक (=आम के फूल अर्थात् बौर) से नौकालाभ होता है । अपराजिता के पुष्पों से (होता) सर्वाङ्गसुन्दर हो जाता है । शेफालिका (=म्यौड़ी या न्यौड़ी) से पुत्रलाभ कहा गया है । अशोक से शोक का नाश और मौलसिरी से कुल में सम्मानलाभ होता है । दूर्वा से धन-धान्य और सेमर (के फूल) से शत्रुनाश होता है ॥ २१-२४ ॥

द्रोणपुष्पेणार्थलाभो वकपुष्पैर्धनागमः ।
राज्यलाभश्च पुन्नागैः कर्णिकारैर्बहून्नतिः ॥ २५ ॥
दीर्घायुष्ट्वं पाटलेन तगरैः सर्वमान्यता ।
पलाशकुसुमैर्होमो बहुगोऽजाविकारकः ॥ २६ ॥
शिरीषपुष्पैः प्रमदा जयन्त्या च जयश्रियः ।
विद्वेषणं प्रमदा जयन्त्या च जयश्रियः ।
विद्वेषणं चार्कपुष्पैर्धुत्तूरै रिपुमारणम् ॥ २७ ॥
कोविदारैर्बलावाप्तिः पारिजातैर्जयोच्छ्रयः ।
अन्येषामपि पुष्पाणामन्यदन्यत् फलं भवेत् ॥ २८ ॥

द्रोणपुष्प से अर्थलाभ, वकपुष्पों से धनागम, पुन्नाग (=नागकेश) से राज्यलाभ, कनेर से अधिक उन्नति, पाटल से दीर्घायु, तगर से सर्वमान्यता मिलती है । पलाशपुष्प से होम अधिक गाय बकरी-भेड़ दिलाता है । शिरीषपुष्प से प्रमदा, जयन्ती से जयलक्ष्मी, मदार के पुष्प से विद्वेषण, धतूर से रिपुमारण, कोविदार (=कचनार) से बलप्राप्ति, पारिजात से जय और उन्नति मिलती है । इसी प्रकार अन्य पुष्पों (के होम) का अन्य फल होता है ॥ २५-२८ ॥

[फलाहुतीनां फलाभिधानम्]

फलहोमस्यापि फलं कथयामि वरानने ।
श्रीफलैः श्रीफलावाप्तिः क्रमुकैर्भोगसञ्चयः ॥ २९ ॥
नागरङ्गेण सौन्दर्यं पनसैः कान्तिमान् भवेत् ।
वशित्वं नारिकेलेन जम्बीरैः शत्रुसङ्क्षयः ॥ ३० ॥
आम्रेण राज्यलाभः स्यात् स्तम्भनं जाम्बवैः फलैः ।
रम्भाफलेन देवेशि सर्वसिद्धिरवाप्यते ॥ ३१ ॥
रिपूच्चाटः कपित्थेन वदर्य्या बलवान् रणे ।
क्षीरीफलेन तनयो द्राक्षाभिर्मोक्षमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥

फलहोम का फल—हे वरानने! अब फलहोम का फल बतला रहा हूँ । श्रीफल (=बेल) से लक्ष्मी की प्राप्ति क्रमुक (=तूत) से भोगसञ्चय, नागरङ्ग (=नारङ्गी) से

सौन्दर्य मिलता है । कटहल से (होता) कान्तिमान् होता है । नारियल से वशित्व और नीबू से शत्रुनाश होता है । आम से राज्यलाभ, जामुन से स्तम्भन और केला से हे देवेशि! सर्वसिद्धि प्राप्त होती है । कपित्थ (=कैथ) से शत्रु का उच्चाटन और बेर के फल से युद्ध में बलवान् होता है । खिरनी से पुत्रलाभ और द्राक्षा (=मुनक्का या अङ्गूर) से मोक्ष मिलता है ॥ २९-३२ ॥

उदुम्बरेण धर्माप्तिर्वटेनापत्यपूर्णता ।
जातीफलस्य होमेन वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥ ३३ ॥
कूष्माण्डैर्ग्रहशान्तिः स्याद् वृद्धिर्धात्रीफलैस्तथा ।
बीजपूरेणार्थपूरो मारणं च विभीतकैः ॥ ३४ ॥
मोक्षः स्यादेव रुद्राक्षैर्हरीतक्या(ह्य)घक्षतिः ।
लकुचैर्युवतिप्राप्तिस्तालैरुन्मादयेद् रिपून् ॥ ३५ ॥
मधूकैर्महती लक्ष्मीः करमर्दैर्बलोन्नतिः ।
अन्येषां च फलानां हि भूयांसि हि फलानि च ॥ ३६ ॥

गूलर से धर्म प्राप्ति, वट से सन्तानपूर्त्ति मिलती है । जायफल के होम से होता तीनो लोकों को वश में कर लेता है । कूष्माण्ड से ग्रहशान्ति, आँवले से वृद्धि, जम्भीरी नीबू से प्रभूत धन, बहेड़ा से मारण होता है । रुद्राक्ष से मोक्ष, हर्रे से पापनाश, लकुच (=बड़हर) युवति की प्राप्ति, ताल से शत्रुओं को पागल बनाया जाता है । महुआ से अधिक लक्ष्मी और करमर्द (=करौना/करौंदा) से बल की उन्नति मिलती है । अन्य फलों (के होम) के अन्य बहुत फल हैं ॥ ३३-३६ ॥

[अन्नाहुतिफलाभिधानम्]

महदायुर्यवैर्होमे मुद्गैरन्नप्रपूर्णता ।
शालिभिस्तण्डुलैर्वापि सम्पत्तिर्भूयसी भवेत् ॥ ३७ ॥
सर्वसिद्धिस्तिलैर्होमे माषैर्मासे रिपुक्षयः ।
श्यामाकैस्तपसो लाभो नीवारैस्तेज उत्तमम् ॥ ३८ ॥
सर्वाकृष्टिः कोद्रवेण कुल्माषैरामयक्षयः ।
सिद्धार्थकैस्सर्षपैश्च सर्वसिद्धिः करे स्थिता ॥ ३९ ॥

अन्नहोम का फल—यव से होम करने पर दीर्घायु, मूंग से अन्नपूर्णता, धान या चावल से (होम करने पर) अधिक सम्पत्ति होती है । तिल के होम से सर्वसिद्धि, उड़द (के होम) से एक मास में शत्रुनाश, साँवाँ से तपस्या का लाभ, नीवार (=तिन्नी) से उत्तम तेज, कोदव से सर्वाकर्षण, कुल्माष (=कुलथी) से रोगनाश, पीली सरसो और अन्य सरसों से सर्वसिद्धि हस्तगत हो जाती है ॥ ३७-३९ ॥

[रसाहुतिफलम्]

दुग्धेन नृपवश्यत्वं दध्ना नृपसुतास्तथा ।

इक्षुभिश्च गुडैर्वापि वशीभूताः स्त्रियोऽखिलाः॥ ४० ॥
सर्वानिवाज्यहोमेन वशीकुर्यान्न संशयः ।
मधुना भोगभूयस्त्वं शर्क्कराभिर्महोदयः ॥ ४१ ॥

रसहोम का फल—दूध से नृपवश्यता, दही से राजपुत्रवश्यता, ईख और गुड़ से समस्त स्त्री का वशीकरण होता है । घी के होम से होता निःसन्देह सबको वश में कर लेता है । मधु से भोगाधिक्य और शर्करा से महा अभ्युदय होता है ॥४०-४१॥

[विविधवस्त्वाहुतिफलकथनम्]

राज्यावाप्तिः पट्टवस्त्रैः कर्प्पूरै कीर्त्तिरुत्तमा ।
विद्याधरत्वं देवत्वं सिद्धत्वं मृगनाभिना ॥ ४२ ॥
कुङ्कुमै रूपशालित्वं चन्दनैर्वाग्मिता भवेत् ।
सिद्ध्यष्टकं चागुरुणा जयो रोचनया भवेत् ॥ ४३ ॥
मुक्तया शिवसायुज्यं माणिक्येनार्क्कपूःस्थितिः।
वैदूर्य्यान्नागलोकाप्तिर्वज्रैर्वज्रिपुरे स्थितिः ॥ ४४ ॥
इन्द्रनीलेन मणिना गन्धर्वत्वमवाप्यते ।
गोमेदैः किन्नरत्वं च पुष्परागेण यक्षता ॥ ४५ ॥
गारुत्मतैः प्रबालैश्च तथा मरकतेन च ।
सप्तद्वीपेश्वरत्वं हि जायते नात्र संशयः ॥ ४६ ॥
कनकेन भवेत् कान्तिर्दुर्वर्णेन यशो भवेत् ।
ताम्रेण भूमिलाभः स्याद्रीत्या हि कलहे जयम् ॥ ४७ ॥
नागेन विषहानित्वं लोहैर्मारणमादिशेत् ।
लाक्षारसमयो होमः सर्वापत्तिनिवारणः ॥ ४८ ॥

विविधवस्तु की आहुति का फल—पट्टवस्त्र (=रेशमी/रंगीन वस्त्र) से राज्यलाभ, कपूर से उत्तम कीर्त्ति, कस्तूरी से विद्याधरत्व देवत्व और सिद्धत्व प्राप्त होता है । कुङ्कुम से रूपवत्ता और चन्दन से वाग्मिता मिलती है । अगुरु से अष्टसिद्धि और गोरोचन से विजय प्राप्त होती है । मुक्ता से शिवसायुज्य और माणिक्य से सूर्यलोक में स्थिति होती है । वैदूर्य से नागलोक की प्राप्ति, हीरे से इन्द्रलोक मे स्थिति होती है । नीलम से गन्धर्वत्व प्राप्त होता है । गोमेद से किन्नरता और पुष्पराग से यक्षता मिलती है । गारुत्मत् (=पन्ना) मूँगा और मरकत से सात द्वीपों का स्वामित्व प्राप्त होता है । कनक से कान्ति और दुर्वर्ण (=चाँदी) से यश मिलता है । ताँबा से भूमिलाभ, रीति (=पीतल) से झगड़े में विजय मिलती है । नाग (=शीशा) से विषहानि और लोहा से मारण जानना चाहिये । लाक्षारस से किया गया होम सर्वापत्तिनिवारक होता है ॥ ४२-४८ ॥

कज्जलैरपधृष्यत्वं सिन्दूरैर्मोहनं भवेत् ।
बिल्वपत्रैर्नागवल्लीदलैर्लक्ष्मीरवाप्यते ॥ ४९ ॥

यावत्यः सिद्धयः सन्ति तावत्यः पायसैर्भवेत्।
अपूपैः शष्कुलीभिश्च लक्ष्मीविद्याप्तिरेव च ॥ ५० ॥
कटुत्रयेण शत्रूणामुच्चाटनमुदीर्यते ।
लवणेन भवेद् द्वेषः केशैर्मरणमादिशेत् ॥ ५१ ॥
रजस्वलानां नारीणामार्त्तवेन धनागमः ।
रेतसा स्तम्भनं देवि मोहनं स्वमलैरपि ॥ ५२ ॥
स्वीयेनोद्वर्त्तनेनैव त्रैलौक्यं वशमानयेत् ।
उलूककाकयोः पक्षैर्महद् विद्वेषणं भवेत् ॥ ५३ ॥
कटुतैलस्य होमेन वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ।
धाना लाजाश्च पक्वान्नमोदनं सर्वकामदम् ॥ ५४ ॥
कृशरान्नैर्मोदकैश्च सर्वसिद्धिर्भवत्यसौ ।

कज्जल से अपधर्ष, सिन्दूर से मोहन, बिल्वपत्र और नागवल्ली (=पान) के पत्ते से लक्ष्मी मिलती है । दूध से बने पदार्थ खीर आदि से जितनी सिद्धियाँ हैं सब मिलती हैं । मालपुआ और पूड़ी से क्रमशः लक्ष्मी और विद्या का लाभ होता है । त्रिकटु (=सोंठ, पीपर, मिर्च) से शत्रुओं का उच्चाटन कहा जाता है। नमक से द्वेष और बालों (के होम) से मरण जानना चाहिये । रजस्वला स्त्रियों के आर्त्तव से धनागम, हे देवि! वीर्य से स्तम्भन तथा अपने मल (=मूत्र, विष्ठा, थूक आदि) से सम्मोहन होता है । अपने उद्वर्त्तन (=उबटन के हवन) से साधक त्रैलोक्य को वश में कर लेता है । उल्लू और कौवे के पङ्ख से महाविद्वेषण होता है । सरसो के तेल से हवन के द्वारा (होता) तीनों लोक को वश में कर लेता है । धान, लावा पकाया गया अन्न और चावल सर्वकामप्रद है । खिचड़ी और लड्डू से होता सर्वसिद्धि वाला हो जाता है ॥ ४९-५५ ॥

[होमे समिधां भेदेन फलभेदाभिधानम्]

कश्चिद्विशेषं ते वक्ष्ये समिधां देवि तच्छृणु ॥ ५५ ॥
पालाश्याः समिधः शुद्धाः प्रशस्ताः सर्वकर्मणि ।
महद्धनाप्तिर्बिल्वेन खादिरेण नृपो वशः ॥ ५६ ॥
वाटेन कामिनीप्राप्तिर्विद्याप्तिः पैप्पलैन च ।
औदुम्बर्या च समिधा खेचरत्वं प्रजायते ॥ ५७ ॥
सर्वज्ञत्वमपामार्गैरामलक्या महीपता ।
धुत्तूरेणारिनिधनं मुनिवृक्षैः स्थिरा मतिः ॥ ५८ ॥
शाखिभिर्यज्ञियैर्मेध्यैर्भिन्नं भिन्नं फलं भवेत् ।

समिधा के भेद से फलभेद—हे देवि! तुम्हें कुछ विशेष बतला रहा हूँ । इस विशेष के नाम पर समिधा को सुनो । पलाश की समिधा शुद्ध और सब कार्यों में श्रेष्ठ मानी गयी है । बेल की समिधा से धनलाभ और खैर की समिधा से राजा वश

में होता है। बरगद की समिधा से कामिनी की प्राप्ति, पीपल से विद्यालाभ एवं गूलर की समिधा से खेचरत्व प्राप्त होता है। चिचिड़ा से सर्वज्ञता, आँवले से राजत्व, धतूर से शत्रु की मृत्यु, मुनिवृक्ष (=आम के वृक्ष) से स्थिर बुद्धि मिलती है। यज्ञीय मेध्य भिन्न-भिन्न वृक्षों से भिन्न-भिन्न फल मिलता है ॥ ५५-५९ ॥

[मांसाहुतिफलकथनम्]

निशामयाथ देवेशि मांसहोमफलं महत् ॥ ५९ ॥
छागमांसेनार्थलाभो विद्या मेषेण लभ्यते ।
कृष्णसारस्य मांसेन भवेयुर्वशगा नृपाः ॥ ६० ॥
रुरुमांसेन साज्येन कृत्वा होमं वरानने ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति देवानामपि दुर्लभाम् ॥ ६१ ॥
स्तम्भयत्यरिसैन्यानि माहिषं पललं प्रिये ।
अतीतानागतज्ञानं वाराहेण च लभ्यते ॥ ६२ ॥
शत्रुवाक्स्तम्भनं कुर्यादार्क्षमांसाहुतिं चरेत् ।
कापेयपललेनैव रणेऽधृष्यः प्रजायते ॥ ६३ ॥
खाड्गेनाभेद्यकवचो भूत्वा भ्रमति मेदिनीम् ।
गोधामांसस्य होमेन निधिं पश्यति भूतले ॥ ६४ ॥
सामान्यमृगमांसेन वायुतुल्यबलो भवेत् ।
राङ्कवामिषहोमेन वशे स्युर्नृपयोषितः ॥ ६५ ॥

मांसहोम का फल—हे देवेशि ! अब मांस-होम के फल को सुनो। छाग के मांस (के होम) से धनलाभ, भेंड़ से विद्यालाभ एवं कृष्णसार के मांस से राजा वश में होते हैं। हे वरानने! घी से उपलिप्त रुरु मृग के मांस से होम कर (होता) देवदुर्लभ सर्वसिद्धि को प्राप्त करता है। हे प्रिये! भैंसा के मांस से शत्रुसैन्य को स्तम्भित कर देता है। वाराह से अतीत और अनागत का ज्ञान होता है। यदि भालू के मांस की आहुति दे (तो साधक) शत्रुवाक् का स्तम्भन कर देता है। बन्दर के मांस से (होता) युद्धक्षेत्र में अपराजेय होता है। गैंडा के मांसहोम से पृथिवी पर अभेद्य कवच वाला होकर घूमता है। गोह मांस के होम से धरती के अन्दर खजाने को देख लेता है। साधारण मृग के मांस से साधक वायुतुल्य बल वाला हो जाता है। राङ्कव (=कृष्णसार के) मांस से राजरानियाँ वश में होती हैं ॥ ५९-६५ ॥

शल्लकीपललाहुत्या कविः कविसमो भवेत् ।
गावयामिषहोमेन दीर्घमायुरवाप्यते ॥ ६६ ॥
गोमांसं मधुनालोड्य वामहस्तेन होमयेत् ।
अपि देवा वशं यान्ति किं पुनः क्षुद्रमानुषाः ॥ ६७ ॥
शाशेनादृश्यतां गच्छेत् कच्छपेनाप्नुयाद्धनम् ।
नाक्रमांसस्य होमेन विषं न लगति क्वचित् ॥ ६८ ॥

नाकुलं पललं हुत्वा वाक्सिद्धिर्भवति क्षणात् ।
मार्ज्जारमांसहोमेन कुबेरसदृशो भवेत् ॥ ६९ ॥
सिंहमांसस्य होमेन साक्षाद् विद्याधरो भवेत् ।
राज्यावाप्तिर्व्याघ्रमांसहोमेन भवति ध्रुवम् ॥ ७० ॥
तुरगामिषहोमेन सर्वपृथ्वीपतिर्भवेत् ।
दुःस्वप्नहानिरौष्ट्रेन हस्तिमांसैर्महीपतिः ॥ ७१ ॥

साही के मांस की आहुति से (होता) शुक्राचार्य के समान कवि होता है । नीलगाय के होम से दीर्घायु मिलती है । गाय का मांस मधु में मिलाकर बायें हाथ से होम करे तो देवता भी वश में हो जाते हैं क्षुद्र मनुष्यों की क्या बात । खरगोश (के मांस) से अदृश्यता और कच्छपमांस (के होम) से धनप्राप्ति होती है । नक्रमांस के होम से कहीं भी कभी भी विष का प्रभाव नहीं होता । नेवले के मांस का होम कर एक क्षण में वाक्सिद्धि होती है । बिल्ली के मांस के होम से (होता) कुबेर के समान (धनवान्) हो जाता है । सिंहमांस के होम से विद्याधर और व्याघ्रमांस के होम से राज्यलाभ होता है । घोड़ा के मांसहोम से समस्त पृथिवी का राजा होता है । ऊँट के मांस से दुःस्वप्न का नाश और हाथी के मांस से महीपति होता है ॥ ६६-७१ ॥

गोमायुमांसहोमेन धनदेन समो भवेत् ।
विवादे जयलाभः स्याद् राज्यलाभोऽपि जायते॥ ७२ ॥
स्तम्भयत्यरिसैन्यं च स्त्रीणां प्रियतमो भवेत् ।
अपि सर्वे महीपालास्तस्य दासा न संशयः ॥ ७३ ॥
महामांसस्य होमेन किं तद् यन्न फलं भवेत् ।
गुरुणा सदृशी विद्या कुबेरादधिकं धनम् ॥ ७४ ॥
ब्रह्मणोऽप्यधिकं दीर्घमायुरस्य तु निश्चितम् ।
ऐश्वर्ये शक्रसदृशः कान्त्या चन्द्र इवापरः ॥ ७५ ॥
तेजसा रवितुल्योऽयं दुःस्पृश्योऽप्यग्निना सह ।
क्रोधे यमेन सदृशः सर्वसिद्ध्याकरो भवेत् ॥ ७६ ॥
वचसा बहुना किं स्यादेतदेवावधारय ।
स देवीपुत्र एव स्यात् सिद्धादीनां तु का कथा ॥ ७७ ॥

शृगाल के मांस का होम करने से कुबेर के समान (धनवान्) हो जाता है । साथ ही मुकदमे में जीत से राज्यलाभ होता है । (यह होता) शत्रुओं को स्तम्भित करता और स्त्रियों का प्रियतम होता है । समस्त राजा लोग उसके दास हो जाते हैं । इसमें सन्देह नहीं है । महामांस (=मुर्दा का मांस) के होम से ऐसा कौन सा फल है जो नहीं प्राप्त होता । वृहस्पति के समान विद्या, कुबेर से अधिक धन, ब्रह्मा से अधिक इसकी आयु निश्चित रूप से होती है । ऐश्वर्य में वह इन्द्र के समान, कान्ति में दूसरे चन्द्रमा के समान, तेज सूर्यसदृश, अग्नि के समान दुःस्पृश्य, क्रोध में यम के

समान तथा समस्त सिद्धियों का आकर हो जाता है । बहुत कहने से क्या लाभ यही समझ लो वह देवीपुत्र ही हो जाता है सिद्ध आदि होने की क्या बात ॥ ७२-७७ ॥

[द्विजातेर्नरमांसहोमेऽनधिकारः]

किं तु न स्याद् द्विजातीनामेष धर्मो वरानने ।
नृपस्य वाथ शूद्रस्य भवेत्तत्रापि पाक्षिकः ॥ ७८ ॥
न तद्वधाद् भवेन्मांसं वधो वै घोरपापकृत् ।
घोरपापान्न सिद्धिः स्यादिति बुद्ध्या समाचरेत् ॥ ७९ ॥

नरमांस के होम में द्विजातियों का अधिकार नहीं—हे वरानने! किन्तु यह धर्म द्विजातियों (=ब्राह्मण और वैश्य) के लिये नहीं है । क्षत्रिय (=राजा) अथवा शूद्र का ही उसमें (=नरमांस होम में) अधिकार है । उसमें भी (वह अधिकार) पाक्षिक है (अर्थात् वे नरमांस का होम कर भी सकते हैं और नहीं भी । उसके बदले अनुकल्प का प्रयोग कर सकते हैं) । उस (=राजा अथवा शूद्र) के वध से मांस (हवनीय) नहीं होता । प्रत्युत वह वध घोर पाप का कारण बनता है । घोर पाप होने से सिद्धि नहीं मिलती इस बुद्धि से (होम का अनुष्ठान) करना चाहिये ॥ ७८-७९ ॥

[पक्षिमांसहोमफलाभिधानम्]

इदानीं पक्षिपललहोमजन्यं फलं शृणु ।
वार्ध्रीनसामिषाहुत्या जायते धर्मभाजनम् ॥ ८० ॥
कपोतमांसहोमेन रम्यां कन्यां लभेत वै ।
भारद्वाजेन मांसेन मृतं सञ्जीवयेदसौ ॥ ८१ ॥
पारावतक्रव्यहोमात् कामिनीनां प्रियो भवेत् ।
कौयष्टिकस्य मांसेन खेचरीसिद्धिभाग्भवेत् ॥ ८२ ॥
महद्वैरं जनयति उलूकपललाहुतिः ।
साधको मद्गुहोमेन कामरूपः क्षणाद् भवेत् ॥ ८३ ॥
जङ्गमाजङ्गमं सर्वमाकर्षेच्छ्येनहोमतः ।
शातपत्रामिषैर्होमो राजानं वशमानयेत् ॥ ८४ ॥

पक्षिमांस के होम का फल—अब पक्षिमांस के होम से जन्य फल को सुनो । वार्ध्रीनस (=गैंडा) के मांस की आहुति से (होता) धर्म का पात्र बनता है । कबूतरमांस के होम से रमणीय कन्या मिलती है । भारद्वाज (=भरदूल) के मांस से यह (हवन कर्त्ता) मृत व्यक्ति को जीवित कर देता है । पारावत के मांस के होम से (साधक) कामिनियों का प्रिय होता है । कौयष्टिक (=टिटिहरी) के मांस से (होता) खेचरीसिद्धि वाला हो जाता है । उल्लू के मांस का हवन महावैंर उत्पन्न करता है । मद्गु के होम से साधक एक क्षण में कामरूप हो जाता है । बाज के होम से (होता) जङ्गम और स्थावर सबको आकृष्ट कर लेता है ॥ ८०-८४ ॥

अदृश्यः स्यात् खञ्जरीटैर्देवतासुररक्षसाम् ।
धनावाप्तिः सुतावाप्तिर्वार्त्तिकेन न संशयः ॥ ८५ ॥
चाषेन देवलोकादिगमनं विदधाति वै ।
कारण्डवस्य मांसेन भवेज्जातिस्मरो नरः ॥ ८६ ॥
उच्चाटनं मारणं च विद्वेषः काकमांसतः ।
हारीतमांसहोमेन पर्वतानुद्धरेदपि ॥ ८७ ॥
कुररक्रव्यहोमेन मूकानपि च वादयेत् ।
लावमांसस्य होमेन तेजस्वी चाग्निमान् भवेत् ॥ ८८ ॥
पिकक्रव्याहुतिः कुर्यात् साधकं किन्नरेश्वरम्।
धत्ते सत्यं परपुरप्रवेशं टिट्टिभाहुतिः ॥ ८९ ॥
कुक्कुटक्रव्यहोमोऽयं सद्यो लक्ष्मीफलप्रदः ।
साधकस्याथ तनुते चकोरश्चिरजीविताम् ॥ ९० ॥

शातपत्र (= कठफोड़वा) के मांस के होम से (साधक) राजा को वश में कर लेता है । खञ्जरीट (=खञ्जन, के मांसहोम) से देवता असुर और राक्षसों का अदृश्य हो जाता है । बत्तक (के मांस) से नि:सन्देह धनप्राप्ति और पुत्रलाभ होता है । चाष से देवलोक आदि में गमन करता है । कारण्डव (=पक्षी विशेष) के मांस (के होम) से मनुष्य पूर्वजन्मों के स्मरण वाला हो जाता है । कौवे के मांस से उच्चाटन मारण और विद्वेषण होता है । हारीतमांस के होम से (साधक) पर्वतों को उखाड़ लेता है । कुरर मांस के होम से (साधक) मूक व्यक्ति को भी वाग्मी बना देता है । लवामांस के होम से (होता) तेजस्वी और अग्निमान् होता है । कोकिलमांस की आहुति साधक को किन्नरों का स्वामी बना देती है । टिट्टिभमांस की आहुति सत्यत: परकाय प्रवेश कराती है । मुर्गे के मांस का होम सद्य: लक्ष्मी देता है । चकोर का मांस साधक को चिरञ्जीवी बना देता है ॥ ८५-९० ॥

कान्ताप्रियत्वं सौन्दर्यं करोति चटकाहुतिः ।
सारसो योगसिद्धिं च वितनोति वरानने ॥ ९१ ॥
कालिङ्गस्तनुते होम आरोग्यमपराजयम् ।
चक्रवाकेन बन्धूनां सर्वेषामीश्वरो भवेत् ॥ ९२ ॥
कारठेन तु होमेन धनायुःकवितां लभेत् ।
हांसेन मोक्षमाप्नोति दात्यूहैरतिबुद्धिताम् ॥ ९३ ॥
तित्तिरैश्चिरजीवित्वं चातकैर्मोहनं तथा ।
मायूरमांसहोमेन विमानाधिपतिर्भवेत् ॥ ९४ ॥
गार्ध्रेण खड्गसिद्धिः स्याद् वकैः सौभाग्यसौख्यभाक् ।
चैलेन धातुसिद्धिः स्यात् क्रौञ्चैस्तरति दुर्गतिम् ॥ ९५ ॥
यावत्यः सिद्धयः सन्ति त्रिलोक्यां वरवर्णिनि ।

तावतीर्लभते सद्यो होमं कीरामिषैश्चरन् ॥ ९६ ॥

गौरैया की आहुति (साधक के अन्दर) कान्ताप्रियत्व और सौन्दर्य उत्पन्न करती है । हे वरानने! सारस (का मांस) योगसिद्धि देता है । कलिङ्ग (=जिसके मस्तक पर शिखा रहती है उस) पक्षी का होम आरोग्य और विजय देता है । चक्रवाक के होम से समस्त बन्धुओं का स्वामी हो जाता है । कारट (=कौवे के मांस) के होम से, (साधक) धन, आयु और कवित्व प्राप्त करता है । हंस के मांस से मोक्ष और दात्यूह (=काले कौवे) के मांस से अतिबुद्धि प्राप्त होती है । तित्तिर से चिरञ्जीविता और पपीहा से सम्मोहन प्राप्त होता है । मयूर के मांसहोम से विमान का स्वामी होता है । गृध्र के मांस से खड्गसिद्धि, बगुले से सौभाग्य और सुख का भागी होता है । चैल (=चील्ह) से धातुसिद्धि और क्रौञ्च से दुर्गतिनाश होता है । हे वरवर्णिनि ! इस त्रिलोक में जितनी सिद्धियाँ हैं; शुक के मांस से आहुति करने वाला उन सब सिद्धियों को प्राप्त करता है ॥ ९१-९६ ॥

[आहुतिनिर्माणप्रकाराभिधानम्]

आज्येन वापि मधुना दध्ना वा पयसाथ वा ।
आमिक्षयेक्षुदण्डेन तिलैः शर्करयापि वा ॥ ९७ ॥
मिश्रितैराहुतिर्ग्राह्या केवला न कदाचन ।
प्रसृतिर्मुख्यपक्षः स्यान्मध्यमोऽर्द्धमितो भवेत् ॥ ९८ ॥
होमकर्मणि चैवात्र त्रिपर्व(प्र)मितोऽधमः ।

आहुतिनिर्माणविधि—घी, मधु, दधि, दूध, छेना, ईख, तिल अथवा शक्कर से मिश्रित आहुति बनानी चाहिये । केवल (एक वस्तु की आहुति) कभी भी नहीं होनी चाहिये । होमकर्म में (आहुति की मात्रा आदि) एक प्रसृति (=पसर) हो तो उत्तम पक्ष है । आधा पसर मध्यम होता है । (ऊँगली के) तीन पर्व से परिमित आहुति अधम होती है ॥ ९७-९९ ॥

[काम्यकर्मानुरूपकुण्डनिर्माणाभिधानम्]

चतुरस्त्रं भवेत् कुण्डं शान्तिपुष्ट्यादिकर्मणि ॥ ९९ ॥
मारणोच्चाटने द्वेषवशीकारे त्रिकोणकम् ।
स्तम्भने मोहने वापि वर्त्तुलं कुण्डमाचरेत् ॥ १०० ॥
भुक्तिमुक्त्यैकसिद्ध्यर्थं दीर्घं कुण्डं समाचरेत् ।
यथा यत् समये प्रोक्तं तत्र कुर्यात्तथाविधिम् ॥ १०१ ॥
एष ते कथितो देवि होमक्रमविधिर्मया ।

काम्यकर्म के अनुरूप कुण्ड का निर्माण—शान्ति-पुष्टि आदि (शुभ) कर्मों में कुण्ड को चौकोर होना चाहिये । मारण-उच्चाटन-विद्वेषण और वशीकरण में त्रिकोण होना चाहिये । स्तम्भन अथवा सम्मोहन में गोल कुण्ड बनाना चाहिये । भोग अथवा

मोक्ष की सिद्धि के लिये लम्बा कुण्ड बनाना चाहिये । जिस समय में जिस कुण्ड को जैसा कहा गया उस समय उसी प्रकार का कुण्ड बनाना चाहिये । हे देवि! यह मैंने तुमको होमक्रम की विधि बतलायी ॥ ९९-१०२ ॥

[योगविध्यभिधानं योगमाहात्म्याभिधानं च]

अथ योगविधिं मत्तः शृणु सावहिता सती ॥ १०२ ॥
जपहोमार्च्चनध्यानप्रयोगाश्चैकतो मताः ।
एकतो वायुरोधेन देहषट्चक्रभेदनम् ॥ १०३ ॥
सदाशिवेन यः प्रोक्तः क्रमो योगविधेर्मम ।
तस्मिन् कृते किमेभिर्वा प्रयोगैः साधनैरपि ॥ १०४ ॥
यो योगेन तनूमेतां साधयेद् विधिवर्त्मना ।
परार्द्धशतजीवी स एवमाह सदाशिवः ॥ १०५ ॥

योगविधि और उसका माहात्म्य—अब मुझसे सावधान होकर योगविधि को सुनो । जप, होम, पूजा, ध्यान, अनुष्ठान एक ओर तथा वायुरोध के द्वारा देहस्थ-षट्चक्र का भेदन एक ओर । सदाशिव ने योगविधि का जो क्रम मुझको बतलाया उसके करने पर ये प्रयोग और साधन व्यर्थ हैं । जो (मनुष्य) योग के द्वारा विधिवत् इस शरीर की साधना कर लेता है वह परार्धशत जीवी होता है—ऐसा उन महादेव सदाशिव ने बतलाया ॥ १०२-१०५ ॥

[योगोपकारि देहसंस्थानविवरणम्]

तत्रादौ देहसंस्थानमाकर्णय वरानने ।
द्वे सहस्रे तु नाडीनां (तिष्ठन्ति) देहपञ्जरे ॥ १०६ ॥
कीकसानि च तिष्ठन्ति द्वात्रिंशदिति निश्चयः ।
वायवो दश तिष्ठन्ति पञ्च तेषु महत्तराः ॥ १०७ ॥
सूर्य्याचन्द्रमसोः स्थानं देहमध्ये व्यवस्थितम् ।
आकाशभूमिसलिलवह्नीनां तत्र संस्थितिः ॥ १०८ ॥
वायुस्तु सर्वदेहेषु चलत्येव प्रतिक्षणम् ।
यस्मात् प्रयात्यणुर्भूत्वा तस्मात् प्राण इतीर्यते ॥ १०९ ॥
अग्निस्थानं यदेतस्मिंस्तज्जाम्बूनदसन्निभम् ।
त्रिकोणाकारतो ज्ञेयमितरेषां तु मण्डलम् ॥ ११० ॥

देहसंस्थान का विवरण—हे वरानने! उसमें पहले देहसंस्थान को सुनो । इस देहरूपी पिंजड़े में दो हजार नाड़ियाँ हैं । बत्तीस कीकस (=हड्डियाँ) हैं । वायु दश हैं, उनमें पाँच वायु महत्तर हैं । सूर्य और चन्द्रमा का स्थान देह के मध्य में कहा गया है । उसमें आकाश, भूमि, जल और अग्नि की सत्ता है । सम्पूर्ण देह में वायु प्रतिक्षण चलता रहता है । चूँकि यह अणु होकर प्रयाण करता है इसलिये इसे प्राण

(=प्र+अणु—यहाँ उकार का उच्चारण सौविध्य के कारण लोप होने और दीर्घ सन्धि होने से 'प्राण' शब्द का उद्भव हुआ है) कहते हैं । इस शरीर में जो अग्निस्थान है वह सुवर्ण जैसा है । यह त्रिकोणाकार बतलाया गया है । अन्य (=आकाश, पृथ्वी और जल) का स्थान गोल है ॥ १०६-११० ॥

त्रिकोणमग्निस्थानं यद् देहमध्यं तदुच्यते ।
यद्यत्र तिष्ठति तनौ त्वं तदादौ निबोध मे ॥ १११ ॥
अधो मेढ्राद् द्व्यङ्गुलं तत्तावदेव गुदोपरि ।
एकाङ्गुलप्रमाणं तद् देहमध्यं प्रकीर्तितम् ॥ ११२ ॥
देहमध्यादूर्ध्वमस्ति कन्दं देवि नवाङ्गुलम् ।
चतुरङ्गुलमुच्छ्रायमायामं तावदेव च ॥ ११३ ॥
आकारेणाण्डसदृशं त्वगस्थिपरिवेष्टितम् ।
तत्र सञ्चरति प्राणः स्वे स्थाने परमोपरि ॥ ११४ ॥
तस्योपरिष्टाद् विज्ञेयं कुण्डलीस्थानमुत्तमम् ।
कृत्स्नो योगविधिस्तत्र सिद्धिश्चापि प्रतिष्ठिता ॥ ११५ ॥

जो त्रिकोण अग्निस्थान है वह देह का मध्य कहा जाता है । जो इस शरीर में जहाँ रहता है पहले उसको मुझसे जानो । वह देहमध्य एक अङ्गुल परिमाण वाला है । वह मेढ्र (=लिङ्गमूल) से दो अङ्गुल नीचे गुदा के उतना (=दो अङ्गुल) ही ऊपर स्थित है । हे देवि! देहमध्य से ऊपर नव अङ्गुल परिमाण वाला कन्द है । यह चार अङ्गुल ऊँचा और उतना ही चौड़ा है । यह आकार में अण्डा के समान तथा त्वचा और अस्थि से परिवेष्टित है । उसी स्थान में प्राण सञ्चरण करता रहता है। उसके ऊपर उत्तम कुण्डली का स्थान है । उसी में सम्पूर्ण योगविधि और सिद्धि प्रतिष्ठित है ॥ १११-११५ ॥

कन्दमध्ये स्थितास्तत्र मुख्या नाड्यश्चतुर्दश ।
एकैकस्यां द्विचत्वारिंशच्छतं परिनिष्ठिताः ॥ ११६ ॥
तिस्रस्तास्वपि मुख्याः स्युः सुषुम्णेडाथ पिङ्गला।
पयस्विनीसरस्वत्यौ वारणा च कुहूस्तथा ॥ ११७ ॥
गान्धारी शङ्खिनी पूषा हस्तिजिह्वाप्यलम्बुषा ।
विश्वोदरायशस्विन्यौ मुख्या ह्येताश्चतुर्दश ॥ ११८ ॥
मोक्षमार्गे सुषुम्णा सा ब्रह्मरन्ध्रे प्रतिष्ठिता ।
तस्या वामे इडा ज्ञेया चन्द्रसञ्चारसञ्चिता ॥ ११९ ॥
दक्षिणे पिङ्गला नाडी रविसञ्चारशोभिता ।
सरस्वती कुहूश्चैव सुषुम्णापार्श्वयोः स्थिता ॥ १२० ॥

उस कन्द के मध्य में चौदह मुख्य नाड़ियाँ स्थित हैं । एक-एक नाड़ी में एक सौ बयालिस (अथवा बयालिस सौ छोटी-छोटी नाड़ियाँ) संयुक्त हैं । इन सभी

(नाड़ियों) में इडा पिङ्गला और सुषुम्णा मुख्यतम हैं । पयस्विनी, सरस्वती, वारणा, कुहू, गान्धारी, शङ्खिनी, पूषा, हस्तिजिह्वा, अलम्बुसा, विश्वोदरा और यशस्विनी (और उपर्युक्त इडा आदि तीन कुल मिलाकर) ये चौदह नाड़ियाँ मुख्य हैं । (इनमें से) सुषुम्णा मोक्षमार्ग में ब्रह्मरन्ध्र में स्थित है । उसके बायें चन्द्र-सञ्चार वाली इडा और दक्षिण में सूर्यसञ्चरण वाली पिङ्गला नाड़ी सुशोभित है । सुषुम्णा के दोनों पार्श्वों में सरस्वती और कुहू स्थित हैं ॥ ११६-१२० ॥

गान्धारी हस्तिजिह्वा च इडायाः पृष्ठपार्श्वयोः ।
पूषा पयस्विनी चैव पिङ्गलापृष्ठपार्श्वयोः ॥ १२१ ॥
कुहोश्च हस्तिजिह्वाया मध्ये विश्वोदरा स्थिता ।
पयस्विनीकुहोर्मध्ये वारणा च प्रकीर्तिता ॥ १२२ ॥
पूषायाश्च सरस्वत्याः स्थिता मध्ये यशस्विनी ।
गान्धार्याश्च सरस्वत्याः शङ्खिनी मध्यसंस्थिता ॥ १२३ ॥
अलम्बुषा च देवेशि कन्दमध्यादधः स्थिता ।
पूर्वभागे सुषुम्णाया मेढ्रान्तं च कुहूः स्थिता ॥ १२४ ॥
अधश्चोर्ध्वं च विज्ञेया वारणा सर्वगामिनी ।
पयस्विनी च याम्यस्य पादाङ्गष्ठाङ्गुमिष्यते ॥ १२५ ॥
पिङ्गला चोर्ध्वगा याम्ये नासान्तं विद्धि पार्वति ।
याम्ये पूषा च नेत्रान्तं पिङ्गलायास्तु पृष्ठतः ॥ १२६ ॥

गान्धारी तथा हस्तिजिह्वा इडा के पीछे और पार्श्व में स्थित हैं । पूषा और पयस्विनी पिङ्गला के पीछे और पार्श्व में स्थित हैं । कुहू और हस्तिजिह्वा के मध्य में विश्वोदरा स्थित है । पयस्विनी और कुहू के मध्य में वारणा (स्थित) कही गयी है । पूषा और सरस्वती के मध्य में यशस्विनी है । गान्धारी और सरस्वती के मध्य में शङ्खिनी स्थित है । हे देवेशि! अलम्बुसा कन्द के मध्य से नीचे वर्त्तमान है । सुषुम्णा के पूर्वभाग में मेढ्र के अन्त तक कुहू स्थित है । वारणा सर्वगामिनी है । वह ऊपर नीचे सब जगह फैली हुई है । पयस्विनी दायें पैर के अङ्गूठे तक गयी है । हे पार्वति! पिङ्गला (सुषुम्णा के) दायीं ओर ऊपर दायें नासारन्ध्र तक गयी है । पूषा नाड़ी पिङ्गला के पीछे दायीं ओर दायें नेत्र पर्यन्त गयी हुई है ॥ १२१-१२६ ॥

यशस्विनी नाडिका च याम्यकर्णान्तमिष्यते ।
सरस्वती तथा चोर्ध्वमाजिह्वायां प्रतिष्ठिता ॥ १२७ ॥
आसव्यकर्णाद् देवेशि शङ्खिनी चोर्ध्वगा मता ।
गान्धारी सव्यनेत्रान्तमिडायाः पृष्ठतः स्थिता ॥ १२८ ॥
हस्तिजिह्वा तथा सव्यं पादाङ्गुष्ठाङ्गमिष्यते ।
विश्वोदरा च या नाडी सव्येऽसव्ये गता स्मृता ॥ १२९ ॥
अलम्बुषा महाभागा पादमूलादधोगता ।

यशस्विनी नाडी दाहिने कान तक जाती है । उसी प्रकार सरस्वती ऊपर की ओर जिह्वा में प्रतिष्ठित है । हे देवि! शङ्खिनी ऊपर की ओर बायें कान तक गयी है । गान्धारी इडा के पीछे बायें नेत्र तक स्थित है । इसी प्रकार हस्तिजिह्वा बायें पैर के अङ्गूठे तक स्थित है । जो विश्वोदरा नाडी है वह बायें-दायें सर्वत्र फैली हुई है । महाभागा अलम्बुसा नाडी पादमूल से नीचे गयी है ॥ १२७-१३० ॥

प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥ १३० ॥
नागः कूर्मः कृकरश्च देवदत्तो धनञ्जयः ।
एते नाडीषु सर्वासु चरन्ति दश वायवः ॥ १३१ ॥
एतेषु वायवः पञ्च मुख्याः पूर्वोदिताः प्रिये ।
तेषु मुख्यतमः प्राणः कन्दस्याधः प्रतिष्ठितः ॥ १३२ ॥
मुखनासिकयोर्मध्ये हृदये नाभिमण्डले ।
कन्दमध्येऽपि च प्राणः स्वयमेवावतिष्ठते ॥ १३३ ॥
अपानो मेढ्रपाय्वोश्च ऊरुवङ्क्षणजानुषु ।
जङ्घोदरे च कट्यां च नाभिमूले च तिष्ठति ॥ १३४ ॥
व्यानः श्रोत्राक्षिमध्ये च हृत्कट्यां गुल्फयोरपि।
समानः सर्वदेहेषु सर्वव्यापी प्रतिष्ठितः ॥ १३५ ॥
भुक्तं सर्वरसं गात्रे व्यापयन् वह्निना सह ।
द्विसप्ततिसहस्रेषु नाडीमध्येषु सञ्चरन् ॥ १३६ ॥
समानो वायुरेवैकः स्थितो व्याप्य कलेवरम् ।
नागादिवायवः पञ्च त्वगस्थ्यादिषु संस्थिताः ॥ १३७ ॥

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय—ये दश वायु सभी नाड़ियों में सञ्चरण करते रहते हैं । हे प्रिये! इनमें से पाँच मुख्य हैं जिन्हें पहले ही कह दिया गया है । उन (पाँचों) में भी प्राण मुख्यतम है । यह कन्द के नीचे स्थित रहता है । मुख और नासिका के मध्य में, हृदय नाभिमण्डल मे तथा कन्द के मध्य में प्राण स्वयं स्थित रहता है । अपान वायु मेढ्र, पायु, ऊरु, वङ्क्षण (=जङ्घा और कूल्हे का जोड़ वाला भाग) जानु (=जाङ्घ), जङ्घा, पेट, कटि और नाभिमूल में रहता है। व्यान कान, आँख, हृदय, कटि, गुल्फ (=टखना) में रहता है । समान वायु सर्वव्यापी सम्पूर्ण शरीर में प्रतिष्ठित है । अग्नि के साथ वह खाये-पीये समस्त रस को पूरे शरीर में फैलाता है । बहत्तर हजार नाड़ियों के बीच सञ्चरण करता हुआ यह समान वायु अकेला है जो सम्पूर्ण शरीर को व्याप्त कर स्थित है । नाग आदि पाँच वायु, त्वचा, अस्थि आदि में संस्थित हैं ॥ १३०-१३७ ॥

निःश्वासोच्छ्वासकादिश्च प्राणकर्म इतीष्यते ।
अपानवायोः कर्मैतद् विण्मूत्रादिविसर्जनम् ॥ १३८ ॥
प्राणोपादानचेष्टादि व्यानकर्मेति कीर्तितम् ।

उदानकर्म तत् प्रोक्तं देहस्योन्नमनादिकम् ॥ १३९ ॥
शोषणादि समानस्य शरीरे कर्म कीर्त्यते ।
क्षेपणादिगुणो यश्च नागकर्मेति कीर्तितम् ॥ १४० ॥
निमीलनादि कूर्मस्य क्षुत् तृष्णा कृकरस्य च।
देवदत्तस्य देवेशि निद्रा तन्द्रेति कीर्तितम् ॥ १४१ ॥
धनञ्जयस्य शोषादि सर्वकर्म प्रकीर्तितम् ।

नि:श्वास-उच्छ्वास आदि प्राण वायु का कर्म माना जाता है । मल मूत्र आदि का त्याग अपान वायु का कर्म है । प्राण, उपादान, चेष्टा आदि व्यान वायु का कर्म कहा गया है । देह का ऊपर उठाना नीचे झुकाना आदि उदान वायु का कर्म है । शरीर में शोषण आदि समान वायु का कर्म कहा जाता है । जो फेंकना आदि गुण हैं वह नाग का कर्म कहा गया है । पलक गिराना आदि कूर्म का, क्षुत् तृष्णा आदि कृकर का कर्म है । हे देवेशि! निद्रा तन्द्रा आदि देवदत्त का कर्म कहा गया है । शोषण आदि सब कर्म धनञ्जय का कहा गया है ॥ १३८-१४२ ॥

ज्ञात्वैवं नाडिकास्थानं वायुयानं च यत्नत: ॥ १४२ ॥
नाडीनां शोधनं कुर्याद् यथाविधि पुर:सर: ।
ततस्तपोवनं गत्वा फलमूलोदकान्वितम् ॥ १४३ ॥
तत्र रम्ये शुचौ देशे नद्यां देवालयेऽपि वा ।
सुशोभनं स्थलं कृत्वा सर्वरक्षासमन्वितम् ॥ १४४ ॥
त्रिकालस्नानसंयुक्त: शुचिर्भूत्वा समाहित: ।
मन्त्रैर्न्यासैर्न्यस्ततनु: सितभस्मधर: सदा ॥ १४५ ॥
समस्थलोपरि कुशान् समास्तीर्याथ वाऽजिनम् '
विनायकं सुसम्पूज्य कुशपुष्पोदकादिभि: ॥ १४६ ॥
गुरून् देवीं नमस्कृत्य तत्र चावध्य चासनम् ।
उदङ्मुख: प्राङ्मुखो वा पवित्रासनसङ्गत: ॥ १४७ ॥
समग्रीवशिर:काय: संवृतास्य: सुनिश्चल: ।
सुषुम्णा वर्त्मना वायुं कुण्डलिन्यां धमेत् क्षणम् ॥ १४८ ॥

नाड़ी-शोधन—इस प्रकार नाड़ीसंस्थान और वायु का गमनागमन जानकर साधक यथाविधि नाड़ियों का शोधन करे । फल-फूल जल से युक्त तपोवन में जाकर रमणीय पवित्र स्थान में नदी या देवमन्दिर में समस्त रक्षा से युक्त सुन्दर स्थान बनाकर (साधक) त्रिकाल स्नान करे । पवित्र होकर चित्त को शान्त कर मन्त्र और न्यास से शरीर को युक्त करे । सदा श्वेत भस्म धारण करे । समतल भूमि पर कुश या चर्म का आसन बिछाये । कुश पुष्प जल आदि से गणेश की पूजा कर गुरु और देवी को प्रणाम करे । पुन: (पद्म अर्धपद्म स्वस्तिक आदि में से कोई एक) आसन लगाकर उत्तरमुख या पूर्वमुख हो आसन पर बैठ जाय । शिर गर्दन शरीर सीधा

रखे। मुख बन्द रखे । निश्चल होकर सुषुम्णा के रास्ते वायु को एक क्षण के लिये कुण्डलिनी में ले जाय ॥ १४२-१४८ ॥

गच्छत्यभिव्यक्तिमिदं नादब्रह्म सनातनम् ।
तन्नादं पिङ्गलामार्गे समानीय हृदब्जके ॥ १४९ ॥
इडया पूरयेत् तावद् यावद् वर्णात्मकं भवेत् ।
भूमेरुपरि धातारं रत्या बिन्दुसमन्वितम् ॥ १५० ॥
बिम्बमध्यस्थमोंकारसम्पुटाकृतमुन्नतम् ।
एकीकृत्य तु तत् सर्वमाकर्षेद् हस्तिजिह्वया ॥ १५१ ॥
विश्वोदरालम्बुषाभ्यां ब्रह्मरन्ध्रे निवेशयेत् ।

(उस समय) यह सनातन (अर्थात् नित्य) नादब्रह्म अभिव्यक्त होता है । उस नाद को पिङ्गलामार्ग से हृदयकमल में ले आकर इडा से तब तक पूरित करते रहना चाहिये जब तक कि वह वर्ण का आकार नहीं ले लेता । भूमि (=ल) के बाद धाता (=क) को रति[1] (=औ) और बिन्दु से युक्त करे । फिर बिम्ब (=ह्रींयंड्री) के मध्य में स्थित ॐकार से सम्पुटित करे । (इस प्रकार ॐ लकौं ड्रीं ओऽम् बना?) इन सब वर्णों को एक बार हस्तिजिह्वा नाडी से आकृष्ट करे और विश्वोदरा तथा अलम्बुसा नाड़ियों के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में प्रविष्ट कराये ॥ १४९-१५२ ॥

[देव्या निराकारस्वरूपध्यानम्]

निवेश्य तां तत्र देवीं निराकारां विचिन्तयेत् ॥ १५२ ॥
एकां ज्योतिर्मयीं शुक्लां सर्वगां व्योमरूपिणीम् ।
अत्यन्तनिर्मलां शुद्धामादिमध्यान्तवर्जिताम् ॥ १५३ ॥
अतिसूक्ष्मामनाकाशामस्पृश्यां तामचाक्षुषीम् ।
कूटस्थामप्यदृश्यां तां सच्चिदानन्दविग्रहाम् ॥ १५४ ॥
अगन्धामरसां स्वच्छामप्रेयामनूपमाम् ।
आनन्दामजरां नित्यां सदसत्सर्वकारिणीम् ॥ १५५ ॥
सर्वाधारां जगद्रूपाममृत्युं चाव्ययामजाम् ।
अनवस्थामप्रतर्क्यां बहिस्थां सर्वतोमुखीम् ॥ १५६ ॥
सर्वदृक् सर्वतः पादां सर्वस्पृक् सर्वतः शिराम् ।
निरञ्जनीं निर्विकारां शुद्धचैतन्यरूपिणीम् ॥ १५७ ॥
नादोपाहृतबीजेन ध्यायंस्तत्र यजेदिमाम् ।
कुलाकुलसमुद्भूताममृतानन्दसञ्चयाम् ॥ १५८ ॥
सूर्यकोटिसमां शुभ्रां नादबीजतया स्थिताम् ।
षट्चक्रभेदेन यजेद्योगे कुण्डलिनीहृदोः ॥ १५९ ॥

---

१. भूमि धाता रति आदि के बीजभूत अन्य वर्ण भी हैं । उनको यथोचित रूप में क्रमबद्ध किया जा सकता है ।

देवी का निराकार ध्यान—उस (=ब्रह्मरन्ध्र) में प्रवेश कराकर वहाँ उसका निराकार ध्यान करे कि वह एक, ज्योतिर्मयी, शुक्ला, सर्वगा, व्योमरूपिणी, अत्यन्त निर्मल, शुद्ध, आदिमध्यान्तहीन, अतिसूक्ष्म, अनाकाश (=रिक्ततारहित), अस्पृश्य, अचाक्षुषी, कूटस्थ होती हुई भी अदृश्य, सच्चिदानन्दरूपिणी, गन्ध रस से रहित, स्वच्छ, अप्रमेय, अनौपम्य, आनन्दरूप, अजर, नित्य, सत् असत् सब की रचना करने वाली, सबका आधार, जगद् रूप, मृत्यु रहित, अव्यय, जन्मरहित, अवस्था-रहित, अप्रतर्क्य, अग्नि में स्थित, सर्वव्यापिनी, सर्वदृक्, सर्वतः पैर वाली, सर्वस्पर्श वाली, सर्वशिरवाली, निर्मल, निर्विकार, शुद्धचैतन्य रूप है । नाद से प्राप्त बीजमन्त्र के द्वारा ध्यान करता हुआ साधक वहीं (=ब्रह्मरन्ध्र में ही) उनकी पूजा करे। कुल (=शक्ति) और अकुल (=शिव) से उत्पन्न अमृत आनन्द की समूह रूप, करोड़ों सूर्य के समान (तेजोमयी), शुभ, नादबीज के रूप में स्थित देवी की षट्चक्रभेदन के द्वारा कुण्डलिनी और हृदय के सन्धिस्थल में पूजा करे ॥ १५२-१५९ ॥

आधारपद्ममध्येऽन्तर्द्विपत्रे त्रिदलेऽपि च ।
स्वाधिष्ठाने षोडशारे पीठे च मणिपूरके ॥ १६० ॥
द्वादशे च विशुद्धेऽपि तत्राप्यष्टदले तथा ।
हृदये दशपत्रे तु द्वादशार्द्धे चतुर्दले ॥ १६१ ॥
कण्ठे भाले यजेद् देवीं जिह्वया नादमुच्चरन्।
गच्छन्तीं ब्रह्ममार्गेण सूक्ष्मषट्चक्रभेदिनीम् ॥ १६२ ॥
प्रच्योतदमृतं दिव्यं क्षीरधारोपमं द्रवम् ।
पीत्वा सदाशिवेनैव सामरस्यपदं गताम् ॥ १६३ ॥
यजेद् ध्यायेन्नमस्कुर्याद् यद् यदिच्छेदनन्यधीः ।

षट्चक्र-भेद के द्वारा कुण्डलिनी का जागरण—दो दलों वाले मूलाधार कमल, तीन दलों वाले स्वाधिष्ठान, षोडशदल वाले मणिपुर, द्वादशान्त, अष्टदल विशुद्ध, दशदलहृदय, षड्दल और चतुर्दल वाले कण्ठ और भाल में देवी की पूजा जिह्वा से नाद का उच्चारण करते हुए करना चाहिये । सूक्ष्म षट्चक्र का भेदन करने वाली वह देवी ब्रह्ममार्ग से जाने वाली अमृत का क्षरण करती हुई, क्षीरधारा के समान दिव्य द्रव का पान कर सदाशिव के साथ समरसता को प्राप्त हुई है । साधक एकचित्त होकर जिस-जिस की कामना करता हो (उस-उस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये देवी का) यजन, ध्यान और नमन करे ॥ १६०-१६४ ॥

[एतदीयफलश्रुतिः]

सामरस्यपदं प्राप्तां यः क्षणं चिन्तयेत् सुधीः ॥ १६४ ॥
राजसूयाश्वमेधानां तेनेष्टा यज्ञकोटयः ।
काष्ठां कलां क्षणं व्याप्य यः स्थितस्तत्र साधकः ॥ १६५ ॥
वाजपेयः पुण्डरीको विश्वजित् तेन वै कृतः ।

ध्यान का फल—जो विद्वान् (देवी के साथ) सामरस्यपद को प्राप्त इसका एक क्षण के लिये भी ध्यान करता है (समझ लेना चाहिये कि) उसने करोड़ों राजसूय और अश्वमेध यज्ञ कर लिये हैं । जो साधक एक काष्ठा कला या क्षण तक उस (ध्यानावस्था) में स्थित रहता है मानो उसने वाजपेय पुण्डरीक और विश्वजित् याग कर लिया ॥ १६४-१६६ ॥

[कुण्डलिन्याः स्वस्थाननिवेशः]

पुनस्तेनैव मार्गेण नयेत् कुण्डलिनीमधः ॥ १६६ ॥
पश्यन्त्यापरया तत्र वैखर्या वर्त्मनापि च ।
संयोज्य लम्बिकामार्गात्तालुमूलादधो नयेत् ॥ १६७ ॥
जिह्वयाकृष्य तां विद्यां हृदब्जे विनिवेशयेत् ।
आमूलाद् ब्रह्मरन्ध्रान्तमेकीभूतं विचिन्तयेत् ॥ १६८ ॥
हृदब्जादपि निष्काश्य तथा नाडीचयादपि ।
प्रदीपकलिकाकारां कन्द एव निवेशयेत् ॥ १६९ ॥

कुण्डलिनी का स्वस्थान में निवेश—(साधक जिस मार्ग से कुण्डलिनी को ब्रह्मरन्ध्र तक ले गया था) पुनः उसी मार्ग से कुण्डलिनी को नीचे ले जाय । इस क्रम में वह पश्यन्ती-परा-बैखरी के मार्ग से भी उसे संयुक्त कर लम्बिकामार्ग से तालुमूल से नीचे ले आये । जिह्वा से आकर्षण कर उस विद्या का हृदयकमल में प्रवेश कराये । फिर मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक एकीभूत रूप में ध्यान करे । तत्पश्चात् प्रदीप की कलिकासदृश उसको हृदय और नाड़ीसमूह से निकाल कर कन्द में प्रविष्ट करा दे ॥ १६६-१६९ ॥

[योगाभ्यासस्यास्य माहात्म्याभिधानम्]

एतदभ्यासयोगेन यत्फलं तच्छृणुष्व मे ।
न क्षुत् पिपासा न जरा न मृत्युर्नामयादि च ॥ १७० ॥
पुरीषमूत्रे नैव स्यान्निद्रा तन्द्रा भवेन्न च ।
यावान् दोषः शरीरस्य तेषु कोऽपि न जायते ॥ १७१ ॥
अतीतानागतं वेत्ति वाक्सिद्धिरपि जायते ।
सरस्वती तस्य मुखे स्वयमेत्य वसेत् सदा ॥ १७२ ॥
परार्द्धजीवी च भवेत् कामरूपी भवत्यपि ।
देवानाकर्षयेच्चापि खेचरो जायते तथा ॥ १७३ ॥
वर्णितुं शक्यते नास्य महिमा वर्षकोटिभिः ।
साक्षात् स रुद्रो भवति पाञ्चभौतिकदेहभृत् ॥ १७४ ॥
प्राप्नोति मोक्षमेवासौ षण्मासाभ्यन्तरे नरः ।

इस योगाभ्यास का माहात्म्य—इस अभ्यासरूपी योग से जो फल मिलता है वह मुझसे सुनो । इससे (योगी को) भूख-प्यास जरा मृत्यु रोग नहीं होते । मल-मूत्र

का त्याग और निद्रा-तन्द्रा भी नहीं होती । शरीर के जितने दोष हैं उनमें से कोई भी नहीं होता । (वह साधक) अतीत और अनागत को जान लेता है । उसको वाक्सिद्धि प्राप्त हो जाती है । उसके मुख में सदा सरस्वती निवास करती है । वह कामरूपी और परार्द्धजीवी होता है । देवताओं को आकृष्ट करता और आकाशचारी हो जाता है । उसकी महिमा का वर्णन करोड़ों वर्ष तक नहीं किया जा सकता । पाञ्चभौतिक शरीर धारण किया हुआ भी वह साक्षात् रुद्र हो जाता है । यह मनुष्य छह महीने के भीतर मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ १७०-१७५ ॥

[मोक्षोत्कर्षस्य सिद्धीनां चापकर्षस्याभिधानम्]

मोक्षैकसाधकस्यास्य विधेरन्यास्तु सिद्धयः ॥ १७५ ॥
केवलं विघ्नकारिण्य इत्येतद् विद्धि पार्वति ।
मूढास्तु केवलं सिद्धीरभिकाङ्क्षन्ति नित्यशः ॥ १७६ ॥
मोक्षार्थमेव यतते धीरः संसारसागरे ।
नाड्यश्चतुर्दश प्रोक्ताः पूर्वं मुख्यतमा हि याः ॥ १७७ ॥
तासु वायुनिरोधेन भूयस्यः स्युर्हि सिद्धयः ।
तेषां प्रकारा नाख्याता विस्तरत्वान् मया प्रिये ॥ १७८ ॥
केवलं सिद्धिहेतुत्वं तेषां नात्रोपयोगिता ।
विधिमेनं विधातुं यो न समर्थो विमूढधीः ॥ १७९ ॥
स चिन्तयेत्तु साकारां तां देवीं हृदयाम्बुजे ।

मोक्ष उत्कृष्ट और सिद्धियाँ अपकृष्ट हैं—मोक्ष के साधक इस (योगी) के लिये सिद्धियाँ विधि से भिन्न प्रकार की होती हैं । हे पार्वति! यह समझ लो कि वे केवल विघ्नकारिणी ही होती हैं । मूर्ख लोग प्रतिदिन केवल सिद्धियों को चाहते हैं किन्तु धीरपुरुष इस संसारसागर में मोक्ष के लिये ही प्रयास करते हैं । पहले जो मुख्य चौदह नाड़ियाँ बतलायी गयीं उनमें प्राणवायु को रोकने से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं । हे प्रिये! विस्तार के भय से मैंने उन (=सिद्धियों) के भेद नहीं बताये । यहाँ उन सिद्धियों की उपयोगिता केवल (सांसारिक वैभव की) हेतु बनने में नहीं है । (वरन् उनकी सहायता से देवी के निराकार चिन्तन का मार्ग प्रशस्त करना चाहिये) । जो मूढ इस विधि का अनुष्ठान करने में समर्थ नहीं है वह अपने हृदयकमल में साकार उसका चिन्तन करे ॥ १७५-१८० ॥

ध्यानं सम्प्रति वक्ष्यामि शृणु देवि समाहिता ॥ १८० ॥
ध्यानमेव हि जन्तूनां कारणं सौख्यमोक्षयोः ।

[देव्याःसाकाररूपध्यानम्]

हृत्पद्माष्टदलोपेते कन्दमूलसमुत्थिते ॥ १८१ ॥
द्वादशाङ्गुलनालेऽस्मिंश्चतुरङ्गुलमुच्छ्रिते ।

प्राणायामैर्विकसिते केशरान्वितकर्णिके ॥ १८२ ॥
हृत्सरोरुहमध्येऽस्मिन् प्रकृत्यात्मिककर्णिके ।
अष्टैश्वर्य्यदलोपेते विद्याकेशरसंयुते ॥ १८३ ॥
ज्ञाननाले महाकन्दे प्राणायामप्रबोधिते ।
विश्वार्च्चिषं महावह्निं वमन्तीं सर्वतोमुखीम् ॥ १८४ ॥
भयङ्करीं जगद्योनिं ललज्जिह्वाकरालिनीम् ।
भासयन्तीं स्वकं देहमापादतलमस्तकम् ॥ १८५ ॥
प्रेतभूतपिशाचादिडाकिनीयोगिनीगणैः ।
भैरवाद्यैः परिवृतां श्मशानतलवासिनीम् ॥ १८६ ॥
ज्वलत्करालज्वलनचितामध्यकृतस्थितिम् ।
शवोपरि समारूढां विमुक्तचिकुरोच्चयाम् ॥ १८७ ॥
निष्क्रान्तरसनाकम्पप्रकम्पितजगत्त्रयाम् ।
दन्तमण्डलनिर्गच्छच्चारुचन्द्रिकया तया ॥ १८८ ॥
द्योतयन्तीं जगत् सर्वं चन्द्रमण्डलवत् सदा ।
तुङ्गपीवरवक्षोजभरनम्रकलेवराम् ॥ १८९ ॥
प्रत्यालीढपदां देवीमट्टहासभयप्रदाम् ।
पार्श्वस्थिताभ्यां फेरुभ्यामतीव विकरालिनीम् ॥ १९० ॥
नृमुण्डमालासन्दोहकृतमालावगुण्ठिनीम् ।
सद्यःकृत्तनृमुण्डाभ्यां कुण्डलद्वयशोभिनीम् ॥ १९१ ॥
कठोरपीवरानीलदोः षोडशविराजिताम् ।
नरान्त्रविहिताबद्धयोगपट्टपरिच्छदाम् ॥ १९२ ॥
दिगम्बरां खर्वतनुं हसन्तीं कामलालसाम् ।
संवर्त्तकालज्वलनदुर्निरीक्ष्यतनुप्रभाम् ॥ १९३ ॥
कल्पान्तघोषमार्तण्डकोटिस्तम्भनकारिणीम् ।
निर्वातदीपवत्तस्मिन् दीपितां हव्यवाहने ॥ १९४ ॥
ततस्तस्य शिखामध्ये संस्थितां जगदम्बिकाम् ।
ध्यात्वा कामकलाकालीं सोऽहमस्मीति भावयेत् ॥ १९५ ॥
तद्रूपतां समासाद्य मुक्तिं तेनैव गच्छति ।

देवी के साकार रूप का ध्यान—हे देवि! अब मैं (उसका) ध्यान बतलाऊँगा । सावधान होकर सुनो । ध्यान ही जीवों के सुख और मोक्ष का कारण है । कन्दरूपी मूल से उठा हुआ हृदयकमल आठ दलों वाला है । उसका नाल बारह अङ्गुल का है (अर्थात् मूलाधार से हृदय तक की दूरी बारह अङ्गुल है) । यह कमल चार अङ्गुल ऊँचा है । इसकी कर्णिका में केशर है और यह प्राणायाम के द्वारा विकसित है । इस हृदयकमल के बीच प्रकृति कर्णिका के रूप में है । अष्ट सिद्धियाँ (उस कमल के) आठ दल हैं । विद्या केशर है । ज्ञान नाल है । ऐसा महाकन्द जब

प्राणायाम से प्रबोधित होता है तो उसमें (कामकलाकाली का ध्यान करना चाहिये । वह काली) विश्वज्वाला वाली महा अग्नि का वमन कर रही है । परिपूर्ण, भयङ्कर, संसार का कारण है । लपलपाती हुई जिह्वा के कारण विकराल है । पैर से लेकर मस्तक तक अपने शरीर को भासित कर रही है । प्रेत, भूत, पिशाच आदि डाकिनी एवं योगिनीगणों तथा भैरव आदि से परिवृत है । जलती हुई विकराल अग्नि की चिता के मध्य में स्थित, शव के ऊपर आरूढ, खुले बालों वाली, (मुँह के अन्दर से बाहर) निकली हुई जीभ के कम्प से तीनों लोकों को कँपा देने वाली, दाँतों से निकलने वाली चारुचन्द्रिका से समस्त संसार को चन्द्रमण्डल के समान सदा प्रकाशित करने वाली है । उनका शरीर ऊँचे-चौड़े स्तनों के भार से नम्र है । पैर आगे की ओर बढ़ा है । अट्टहास से भय देने वाली है । अगल-बगल दो शृगालिने स्थित हैं जिनसे वह अतीव विकराल हैं । नरमुण्डसमूह की माला पहनी है । तत्काल काटे गये दो नरमुण्डों के कुण्डल से शोभायमान हैं । कठोर पुष्ठ नीली सोलह भुजाओं (की करधनी से) शोभायमान हैं । मनुष्य की आँतों से योगपट्ट बाँधी हैं । दिगम्बर, छोटी देहवाली, हँसती हुई, कामासक्त, प्रलय काल की अग्नि की भाँति दुर्निरीक्ष्य शरीर प्रभावाली है । कल्प के अन्त में उत्पन्न हुए शब्द से करोड़ों सूर्यों को स्तम्भित करने वाली तथा उस अग्नि में निर्वातदीप के समान दीपित हैं । उस अग्निशिखा के मध्य स्थित जगदम्बा कामकलाकाली का ध्यान कर 'सोऽहमस्मि' (मैं वहीं कामकला काली हूँ) ऐसी भावना करनी चाहिये । साधक तद्रूपता को प्राप्त कर उसी से मुक्त हो जाता है ॥ १८०-१९६ ॥

[ध्यानविधिना विविधसिद्धिप्राप्त्युपायस्य वर्णनम्]

अथवा सिद्धिलिप्सा चेद् भवत्येव न संशयः॥ १९६ ॥
ध्यायन् वै पञ्चघटिकाः सर्वरोगैः प्रमुच्यते ।
घटिकादशकध्यानात् पृथिव्या जयमाप्नुयात् ॥ १९७ ॥
नाडीपञ्चदशध्यानाद् वह्निनासौ न दह्यते ।
घटिकाविंशतिध्यानाद् वायुवद् व्योमगो भवेत् ॥ १९८ ॥
मूत्रं पुरीषं जयति पञ्चविंशतिनाडिभिः ।
सम्पूर्णदिवसेनैव सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥ १९९ ॥
अहोरात्रेण देवेशि जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।
इति योगविधिः सर्वः कथितस्ते मया क्रमात् ॥ २०० ॥

ध्यान से विविध सिद्धियाँ—अथवा यदि (साधक को) सिद्धिलाभ की इच्छा हो तो निःसन्देह वह पाँच घड़ी (=२ घण्टा) ध्यान कर समस्त रोगों से मुक्त हो जाता है । दश घड़ी ध्यान करने से पृथिवी पर विजय प्राप्त करता है । पन्द्रह घड़ी ध्यान करने से वह अग्नि से नहीं जलता । बीस घटिका तक ध्यान करने से वायु के समान व्योमचारी हो जाता है । पच्चीस नाडी तक ध्यान से मल-मूत्र पर नियन्त्रण

प्राप्त करता है । पूरा एक दिन ध्यान करने से सर्वसिद्धि मिलती है । हे देवेशि! एक दिन-रात ध्यान करने से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है । इस प्रकार मैंने तुमको क्रम से योगविधि बतलायी ॥ १९६-२०० ॥

[पूजायाः कोटित्रयनिर्देशः]

उत्तमो मध्यमः पक्षस्तथैवाधम एव च ।
उत्तमो योगमार्गेण मध्यमो ध्यानसंश्रयात् ॥ २०१ ॥
पूजाध्यानादिभिर्ज्ञेयोऽप्यधमाराधनक्रमः ।
कृते युगे वा त्रेतायां योग एवोत्तमो विधिः ॥ २०२ ॥
ध्यानमेव द्वापरादौ कलौ न्यासार्चनं खलु ।
अल्पायुषोऽल्पमेधाश्च स्वल्पप्रज्ञा महालसाः ॥ २०३ ॥
दुराचारा नास्तिकाश्च कामलोभपरायणाः ।
ईदृशाश्च नराः सर्वे भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ २०४ ॥
नायं योगो महेशानि भविष्यति गुरुं विना ।
केवलं न्यासपूजादि करिष्यन्ति फलार्थिनः ॥ २०५ ॥

योगविधि की श्रेणियाँ—(यह योगविधि) उत्तम मध्यम और अधम (तीन प्रकार की) होती है । उत्तमविधि योगमार्ग की, मध्यम ध्यान का आश्रयण और पूजा ध्यान आदि अधम आराधन का क्रम है । सत्ययुग अथवा त्रेता में योग ही उत्तमविधि थी । द्वापर में ध्यान और कलियुग में न्यास, पूजा (प्रशस्य मानी गयी) है । कलियुग में मनुष्य अल्पायु, मन्दबुद्धि, स्वल्पप्रज्ञा वाले, महाआलसी, दुराचारी, नास्तिक, कामी और लोभी होंगे । हे महेशानि! यह योग गुरु के बिना नहीं किया जा सकता । फल अर्थात् सिद्धि चाहने वाले केवल न्यास.पूजा आदि करेंगे ॥ २०१-२०५ ॥

[विश्वासस्य फलदायकत्वाभिधानम्]

तथाप्यास्थावतां देवि फलं किञ्चित् प्रयच्छति ।
एवं ज्ञात्वा तु यः कुर्याद् ध्यानन्यासार्चनानि हि ॥ २०६ ॥
अवश्यं फलभाग् भूयान्नात्र कार्या विचारणा ।
ध्यानेऽर्चने जपे न्यासे होमे च बलिकर्मणि ॥ २०७ ॥
भावना यादृशी यस्य सिद्धिः स्यादेव तादृशी ।
इति ते कथितो देवि प्रपञ्चः कामकालिकः ॥ २०८ ॥
वद सत्यं पुनर्मत्तः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ २०९ ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां सामान्यविशेषप्रयोगो नाम सप्तमः पटलः ॥ ७ ॥

...✿...

विश्वास फलदायक है—(यद्यपि कलियुग में योगी और ध्यानी नहीं होते) तथापि हे देवि! आस्था वालें को (यह विधि) कुछ फल देती ही है । ऐसा जानकर जो व्यक्ति ध्यान न्यास अर्चन करता है वह अवश्य फल का भागी होता है । इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये । ध्यान पूजा जप न्यास होम और बलि-कार्य के विषय में जिसकी जैसी भावना होती है उसको वैसी सिद्धि मिलती है । हे देवि ! यह मैंने तुमको कामकलाकाली का विस्तार बतलाया । सच बताओ कि तुम मुझसे और क्या सुनना चाहती हो ॥ २०६-२०९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकाल-संहिता के कामकलाकाली खण्ड के सामान्यविशेषप्रयोग नामक सप्तम पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

अष्टमः पटलः

[षोढान्यासस्यावतरणम्]

देव्युवाच—

महायोगिन् महाकाल कलानिधिविभूषित ।
सर्वज्ञ सर्वलोकेश धूर्जटे भक्तवत्सल ॥ १ ॥
त्वत्प्रसादादिदं सर्वं प्रयोगं कामकालिकम् ।
अश्रौषं सर्वमेवाहमप्रमत्तेन चेतसा ॥ २ ॥
अन्यद् रहस्यं यद्यत् स्यात् तच्चापि कथय प्रभो ।
आकर्णयन्त्याश्चेतो मे न तृप्तिमधिगच्छति ॥ ३ ॥
देव्या रहस्यं यत् किञ्चिदेतद् व्यावर्तते विभो ।
तत्तत् सर्वमशेषेण कथय त्वं दयानिधे ॥ ४ ॥

छह प्रकार का न्यास—देवी ने कहा—हे महायोगिन्! महाकाल! कलानिधि (=चन्द्रमा) से विभूषित! सर्वज्ञ! समस्त लोकों के स्वामी! धूर्जटे! भक्तवत्सल! आपकी कृपा से मैंने कामकलाकाली का समस्त प्रयोग ध्यान लगा कर सुना । हे प्रभो! अन्य जो-जो रहस्य हैं उसे भी बतलाइये । यह सुनती हुई मेरा चित्त तृप्त नहीं होता । हे विभो! देवी का जो रहस्य व्यावर्त्तित होता रहता है हे दयानिधे! वह सब पूर्णतया बतलाइये ॥ १-४ ॥

महाकाल उवाच—

साधु देवि वरारोहे धन्यासि त्वं न संशयः ।
शृण्वन्त्या अपि ते यस्माच्छुश्रूषानुक्षणं भवेत् ॥ ५ ॥
चेतसा भक्तियुक्तेन शुश्रूषुर्योऽनसूयकः ।
तस्मै रहस्यं नाचष्टे यः स पापकृदग्रणीः ॥ ६ ॥
तस्मात् तव प्रवक्ष्यामि रहस्यं यद्धि वेद्म्यहम् ।
भक्तिश्रद्धापरायास्ते नाकथ्यं विद्यते मम ॥ ७ ॥

महाकाल ने कहा—हे देवि ! हे वरारोहे ! तुम धन्य हो इसमें संशय नहीं है । क्योंकि सुनने वाली तुम्हारे (मन मे) प्रतिक्षण सुश्रूषा होती रहती है । जो भक्तियुक्त चित्त से सुनने की इच्छा वाला है, अनसूयक है.मैं उसका (रहस्य बतलाता हूँ) और जो पापियों में अग्रणी है उसको रहस्य नहीं बतलाता । इस कारण जो रहस्य मैं जानता हूँ वह तुमको बतलाऊँगा । भक्तिश्रद्धापरायण तुम्हारे लिये मेरे पास कुछ भी अकथ्य नहीं है ॥ ५-७ ॥

[वक्ष्यमाणस्य षोढान्यासस्य गोपनीयत्वस्य महत्त्वातिशयस्य चाभिधानम्]

न चाख्येयं त्वयान्यस्य प्राणेषु विगलत्स्वपि ।
रहस्यमेतद् देवानां सर्वसिद्धिमभीप्सताम् ॥ ८ ॥
न कामकालिको योगो न विधानं शिवाबलेः ।
नान्यप्रयोगो न जपो न होमो न च पूजनम् ॥ ९ ॥
वक्ष्यमाणरहस्यस्य सहस्रांशं न चार्हति ।
सिद्धिमीयुः पुरैतस्याः प्रसादात् पार्थिवर्षयः ॥ १० ॥

षोढान्यास की गोपनीयता और महत्ता—प्राणसङ्कट होने पर भी तुम किसी और को मत बतलाना । समस्त सिद्धियों को चाहने वाले देवताओं के लिये भी यह रहस्य है । कामकला योग, शिवाबलि का विधान, अन्य प्रयोग, जप, होमपूजन—ये सब वक्ष्यमाण रहस्य के बराबर नहीं है । राजा और ऋषि लोग इसकी कृपा से पूर्वकाल में सिद्धि प्राप्त किये ॥ ८-१० ॥

[प्रवर्तकतया षोढान्यासेन प्राप्तसिद्धीनां राज्ञामनुकीर्तनम्]

पौरवो बृहदश्वश्च • सोमदत्तो बृहद्रथः ।
अजमीढः कार्तवीर्यो भद्रश्रेण्यः पुरूरवाः ॥ ११ ॥
पृथुर्गयो रन्तिदेवो मान्धाता नहुषो रघुः ।
विदूरथश्च भरतो दिवोदासः प्रतर्दनः ॥ १२ ॥
कृशाश्वो यमदग्निश्च जैगीषव्यश्च देवलः ।
पैठीनसिर्वीतहव्यः कश्यपो भृगुरङ्गिराः ॥ १३ ॥
संवर्तश्च वशिष्ठोऽत्रिर्व्यासः शातातपस्तथा ।
उद्दालको भरद्वाजो जाबालो जैमिनिस्तथा ॥ १४ ॥
सप्तद्वीपेश्वरत्वं हि चक्रवर्तित्वमेव च ।
प्रापुः पूर्वे महीपालाश्चिरजीवित्वमप्यलम् ॥ १५ ॥
योगसिद्धिं तथाप्यन्ये तपस्यां सर्वसाधिकाम् ।
शापानुग्रहसामर्थ्यं प्राप्तवन्तो महर्षयः ॥ १६ ॥
कथयामि तमेवाहं षोढान्यासं शुचिस्मिते ।
त्रैलोक्याधिपतित्वं हि यत्प्रसादात् करे स्थितम् ॥ १७ ॥

षोढान्यास से सिद्धि प्राप्त करने वाले राजा और ऋषिगण—पौरव (=युधिष्ठिर) वृहदश्व सोमदत्त वृहद्रथ अजमीढ सहस्रार्जुन भद्रश्रेण्य पुरूरवा पृथु गय रन्तिदेव मान्धाता नहुष रघु विदूरथ भरत दिवोदास प्रतर्दन कृशाश्व यमदग्नि जैगीषव्य देवल पैठीनसि वीतहव्य कश्यप भृगु अङ्गिरा संवर्त्त वशिष्ठ अत्रि व्यास शातातप उद्दालक भरद्वाज जाबाल जैमिनि में से सभी राजा सप्तद्वीप के स्वामी और चक्रवर्त्ती होते हुए चिरञ्जीवी हुए । अन्य ऋषि लोग सर्वसाधिका तपस्या करने का सामर्थ्य, शाप देने और उसे वापस लेने का सामर्थ्य प्राप्त किये । हे शुचिस्मिते! मैं उस

षोढान्यास को तुमको बतलाऊँगा जिसकी कृपा से त्रैलोक्य का स्वामित्व हस्तगत हो जाता है ॥ ११-१७ ॥

[षोढान्यासोद्भवमूलतया त्रिपुरासुरकथाभिधानम्]

तारक्षः कमलाक्षश्च विद्युन्माली तथैव च ।
एते ह्यासन् कृतयुगे दैतेया भ्रातरस्त्रयः ॥ १८ ॥
तेऽतप्यन्त तपो घोरं दिव्यं वर्षायुतं प्रिये ।
ततः प्रजापतिस्तेभ्यो वरं सम्प्रार्थितो ददौ ॥ १९ ॥
वव्रुर्वरद्वयं दैत्यास्ते शौर्यमदगर्विताः ।
एकं त्वेषामवध्यत्वं सर्वभूतेभ्य उत्थितम् ॥ २० ॥
द्वितीयं योजनानां त्रित्रिलक्षान्तरसंस्थितम् ।
त्रयाणां त्रिपुरं भूयाद् दुर्लङ्घ्यं त्रिदशैरपि ॥ २१ ॥
वरं दत्वावदद् धाता सर्वे शृणुत पुत्रकाः ।
सर्वप्रकारैः कस्यापि नावध्यत्वं जगत्त्रये ॥ २२ ॥
एकेनापि प्रकारेण घटमानेन सर्वथा ।
सर्वे स्वकीयं निधनमङ्गीकुरुत दानवाः ॥ २३ ॥

त्रिपुर राक्षस की कथा—सत्ययुग में दिति के पुत्र ताराक्ष कमलाक्ष और विद्युन्माली नामक तीन भाई थे । हे प्रिये ! उन्होंने दश हजार वर्षों तक घोर तपस्या की । इसके बाद प्रार्थना किये जाने पर प्रजापति ने उन्हें वर दिया । शूरता और मद से गर्वित वे दैत्य दो वर माँगे । एक तो यह कि वे तीनों समस्त प्राणियों के अवध्य हो जाँय । दूसरा कि तीन-तीन लाख योजन के अन्तर से उनके तीन पुर हो जाँय जिन्हें देवता लोग भी न जीत सकें । वर देने के बाद ब्रह्मा बोले—हे समस्त प्रिय पुत्रों, सुनो! तीनो लोक में सब प्रकार से कोई भी अवध्य नहीं है । तुम सब दानव घटमान किसी भी एक प्रकार से अपनी मृत्यु को स्वीकार करो ॥ १८-२३ ॥

ते विचार्यावदन् सर्वे शरेणैकेन यः क्षणात् ।
दहेत् त्रयाणां त्रिपुरं स नो मृत्युर्भविष्यति ॥ २४ ॥
तथेत्युक्त्वा ययौ वेधा ब्रह्मलोकं सुरैर्वृतः ।
तेऽपि सर्वे तथा चक्रुर्यथा पूर्वं विचारितम् ॥ २५ ॥
ताराक्षस्य तु सौवर्णं पुरं सर्वोपरि स्थितम् ।
योजनायुतविस्तीर्णं तावदेवायतं प्रिये ॥ २६ ॥
राजतं कमलाक्षस्य योजनायुतविस्तृतम् ।
दिक्षु तादृशविस्तीर्णं विद्युन्मालिन आयसम् ॥ २७ ॥
त्रित्रिलक्षान्तरं तेषां पुरं गगनसीमनि ।
प्राकारपरिखोपेतं चयाट्टालकशोभितम् ॥ २८ ॥
ध्वजगोपुरनिःश्रेणीपताकायन्त्रशोभितम् ॥

खड्गप्रासाङ्कुशाकिङ्कगदाकार्मुकधारिभिः ॥ २९ ॥
पाशशूलभुशुण्ड्यर्ष्टिचक्रमुद्गरपाणिभिः ।
त्रिंशन्निखर्वषड्वृन्दनवत्यर्बुदकोटिभिः ॥ ३० ॥
एकैकं पुरमाक्रान्तं दानवैर्युद्धदुर्मदैः ।

उन सबों ने विचार कर कहा कि जो एक ही बाण से एक क्षण मे तीनों पुरों को जला दे वही हमारी मृत्यु का कारण बने । 'तथास्तु' ऐसा कह कर देवताओं से आवृत ब्रह्मा ब्रह्मलोक को चले गये । वे सब भी वैसा ही किये जैसा कि उन्होंने पहले से विचार किया था । तारक्ष का सोने का नगर सबसे ऊपर स्थित था । वह दश हजार योजन और उतना ही चौड़ा था । कमलाक्ष का पुर चाँदी का तथा दश हजार योजन विस्तृत था । विद्युन्माली का पुर लोहे का बना हुआ था और उतना ही विस्तृत था । उनका पुर तीन-तीन लाख योजन के अन्तराल पर (ऊपर नीचे स्थित था) । उसमें चारदीवारी खाईं और अट्टलिकायें थीं । उसमें ध्वज गोपुर निःश्रेणी (=सीढ़ी) पताका और यन्त्र स्थापित थे । एक-एक पुर खड्ग प्रास अङ्कुश अकिङ्क गदा और धनुष धारण करने वाले हाथ में पाश शूल भुसुण्डी (=बन्दूक) अर्ष्टि चक्र और मुद्गर धारण किये हुए तीस निखर्व छह वृन्द नब्बे अरब करोड़ युद्धदुर्मद दानवों से भरा था ॥ २४-३१ ॥

[देवानां त्रिपुरासुरभीत्यभिधानम्]

दृष्ट्वा तु तादृशीमृद्धिं देवाः सर्वे सवासवाः ॥ ३१ ॥
पलायाञ्चक्रिरे केचित् केचिच्चापि तमभ्ययुः ।
केचिच्च युयुधुर्देवास्तत्यजुस्त्रिदिवं परे ॥ ३२ ॥
केचित् समुद्रं विविशुः केचिच्च गिरिगह्वरम् ।
जहुः केचिद् भिया प्राणानगुः केचिच्चतुर्दिशम् ॥ ३३ ॥

जब इन्द्रसहित सब देवता उस प्रकार की समृद्धि को देखे तो कुछ देवतायें वहाँ से भाग खड़ी हुईं । कुछ देव उसके पास चले गये । कुछ देवता उससे युद्ध करने लगे और कुछ ने स्वर्ग का त्याग कर दिया । कुछ समुद्र में प्रविष्ट हो गये और कुछ पर्वत की गुफाओं में घुस गये । कुछ ने डर के मारे प्राण त्याग दिया और कुछ चारों दिशाओं में चल गये ॥ ३१-३३ ॥

[त्रिपुरासुरसंहारायेन्द्रस्य रुद्रशरणत्वाभिधानम्]

दृष्ट्वा सुराणामधिपो देवानामीदृशीं दशाम् ।
रुद्रं जगाम शरणं पुरोधाय प्रजापतिम् ॥ ३४ ॥
दण्डवत् प्रणता भूत्वा ते देवाः सपितामहाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा पिनाकिनमुमापतिम् ॥ ३५ ॥
तपस्यया वरं धातुः सम्प्राप्य त्रिपुरासुराः ।

बाधन्तेऽस्मान् महेशानान् शैलगह्वरगानपि ॥ ३६ ॥
त्वत्तः शरण्यो नास्माकं विद्यते देव कश्चन।
अतो निवेदयामस्ते प्रमथाधिपते प्रभो ॥ ३७ ॥
देवाङ्गनाः समाकृष्य नयन्ति स्वपुरं प्रति ।
निरध्वरं जगज्जातं निष्कल्पतरुनन्दनम् ॥ ३८ ॥
निर्मनुष्या मही सर्वा निर्देवाप्यमरावती ।
निस्तोया निम्नगा जाता नीरत्ना सागरा अपि॥ ३९ ॥

त्रिपुरसंहार के लिये इन्द्रसहित देवताओं का प्रयास--देवताओं के स्वामी इन्द्र ने जब देवताओं की यह दशा देखी तो ब्रह्मा को आगे कर रुद्र की शरण में गये । पितामह के साथ वे देवता दण्डवत् प्रणाम कर पिनाकी उमापति से हाथ जोड़कर बोले—तपस्या के द्वारा विधाता से वर प्राप्त कर त्रिपुरासुरगण शैल गह्वर में स्थित भी हम देवताओं को पीड़ा दे रहे हैं । हे देव! हम लोगों के लिये आपसे बढ़कर शरणदाता कोई नहीं है । इसलिये हे प्रमथाधिप प्रभो! हम आपसे निवेदन करने आये हैं । (वे राक्षस) देवताओं की स्त्रियों को खींच कर अपने पुर में ले जाते हैं । संसार यज्ञविहीन और नन्दन कानन कल्पवृक्ष से रहित हो गया है । सारी पृथिवी मनुष्यों से रहित और अमरावती देवविहीन हो गयी है । नदियों में पानी और समुद्र में रत्न नहीं हैं ॥ ३४-३९ ॥

पादपानां कोटरेषु कन्दरेषु महीभृताम् ।
लीना भूत्वा वयं सर्वे तिष्ठामस्तद्भयार्दिताः॥ ४० ॥
तेषां हि शास्ता त्रैलोक्ये त्वदन्यो नास्ति कश्चन।
तान् निहत्यासुरान् स्वर्गे पुनरस्मान् निवेशय ॥ ४१ ॥
इत्युक्तः प्रणतैः सर्वैर्विहस्य वृषभध्वजः ।
प्रत्युवाच सुरान् सर्वान् रथो मे कल्प्यतामिति ॥ ४२ ॥
ततो ब्रह्माब्रवीत्तत्र स्मितं कुर्वन् महेश्वरम् ।
निर्मातव्यो रथो देव कैस्त्वद्रारोहणक्षमः ॥ ४३ ॥
त्वद्वोढृरथनिर्माणे सामर्थ्यं कस्य विद्यते ।
स्वयोग्यं स्यन्दनं चास्त्रं स्वयमेवोपकल्पय ॥ ४४ ॥
इत्युक्तो ब्रह्मणा शम्भुरवदद् धर्षयन् सुरान् ।

हम सब उनके भय से त्रस्त होकर वृक्षों के कोटरों तथा पर्वतों की गुफाओं में रह रहे हैं । त्रिलोक में उनको दण्ड देने में समर्थ आपके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है । उन राक्षसों को मार कर स्वर्ग में हम लोगों का पुनः प्रवेश कराइये । प्रणत उन लोगों के द्वारा ऐसे कहे गये निवेदन पर भगवान् रुद्र ने हँस कर उन सब देवताओं से कहा—मेरे लिये रथ तैयार करो । इसके बाद ब्रह्मा ने मुस्कराते हुए महेश्वर से कहा—हे देव! आपके आरोहण के लिये सक्षम रथ का निर्माण कौन कर सकता है?

आपको ढोने वाले रथ के निर्माण में किसका सामर्थ्य है? अपने योग्य रथ और अस्त्र का निर्माण आप स्वयं कीजिये। ब्रह्मा के द्वारा ऐसा कहे गये शिव ने देवताओं को प्रसन्न करते हुए कहा ॥ ४०-४५ ॥

[त्रिपुरासुरसंहाराय रुद्रार्थं तद्युद्धानुरूपरथस्य निर्माणाभिधानम्]

चत्वारो वाजिनो वेदाः सम्पूर्णा मेदिनी रथः ॥ ४५ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ चक्रे कूबरो गन्धमादनः ।
विन्ध्यो गिरिर्नाभिरस्तु कैलासोऽक्षत्वमेव तु ॥ ४६ ॥
मेरुर्मे ध्वजदण्डः स्यात् सारथिर्भगवान् विधिः ।
प्रणवस्तु प्रतोदः स्यात् प्रकाशानि च रश्मयः ॥ ४७ ॥
धनुर्मे मन्दरो भूयात् शिञ्जिनी बासुकिर्भवेत् ।
विष्णुः शरो मे भवतु वाजे वायुर्विशत्वपि ॥ ४८ ॥
यमो मृत्युश्च कालश्च फली मध्ये विशन्तु च ।
वासवः शरपृष्ठे स्यात् कुबेरवरुणावुभौ ॥ ४९ ॥
भवतः पुङ्खसंस्थानौ लस्तके सर्वदेवताः ।
नासत्यावटनीसंस्थौ यज्ञाः सर्वे पदातयः ॥ ५० ॥
स्वेच्छयान्यच्च सकलं कल्पयामास शङ्करः ।
स्वयोग्यं कवचं शम्भुरलब्ध्वा चिन्तितोऽभवत् ॥ ५१ ॥
निमील्य त्रीणि नेत्राणि चिरं तस्थौ जगत्पतिः ।
अथ ध्यानगतो भूत्वा तुष्टाव जगदम्बिकाम् ॥ ५२ ॥
स्तुत्वा सम्प्रार्थयामासाभेद्यं कवचमात्मनः ।

रथ-निर्माण—(भगवान् शिव ने विचार किया—) चारो वेद घोड़े बनें। पृथ्वी रथ हो। सूर्य और चन्द्रमा पहिये तथा गन्धमादन पर्वत कूबर (=जुआ) हो जाय। विन्ध्याचल नाभि और कैलास पर्वत धुरा बने। सुमेरु पर्वत ध्वजा का दण्ड बन जाय और ब्रह्मा सारथि बन जायें। प्रणव कोड़ा और प्रकाश लगाम बन जाय। मन्दराचल मेरा धनुष. वासुकि नाग प्रत्यञ्चा बने। विष्णु बाण बनें। वायु बाण का पक्ष बन जाय। यम स्वयं मृत्यु और काल ये (बाण के) फली (=बाण का आगे का नुकीला लोहा) में घुस जाँय। इन्द्र शर के पृष्ठ में स्थित रहें तथा कुबेर और वरुण पुंख बने। लस्तक (=धनुष के मध्य भाग) में सभी देवतायें स्थित रहें। दोनों नासत्य अटनी (=धनुष के दोनों कोणों) में स्थित रहें। समस्त यज्ञ पदाति सेना बन जाय। अन्य सब कुछ की कल्पना महेश्वर ने अपनी इच्छानुसार की। किन्तु अपने योग्य कवच को न पाकर शम्भु चिन्ता में पड़ गये। तदनन्तर जगत्पति (भगवान् शिव) अपने नेत्रों को बन्द कर बहुत देर तक बैठे रहे। इसके बाद ध्यानस्थ होकर उन्होंने स्वयं जगदम्बिका की स्तुति की। स्तुति करने के बाद अपने अभेद्य कवच के लिये उनसे प्रार्थना की ॥ ४५-५३ ॥

[शिवं प्रति षोढान्यासस्य देव्योपदेशः]

ततः सोपदिदेशास्मै षोढान्यासं महात्मने ॥ ५३ ॥
स्वीयं च कवचं देवी कवचत्वेन तं ददौ ।
तेनामुक्तो हरो भूत्वा जगाम त्रिपुरं प्रति ॥ ५४ ॥
अस्त्रं पाशुपतं चापि सन्धाय वृषभध्वजः ।
पुराणि त्रीणि दैत्यानां विभेदैकेन पत्रिणा ॥ ५५ ॥
क्षणेन भस्मसाद् भूता जग्मुर्दैत्या यमालयम् ।
तमेव षोढान्यासं ते प्रवदामि वरानने ॥ ५६ ॥
यदेकवारं कृत्वैव भवेत् त्रिजगतीपतिः ।
प्राणव्ययेऽपि नान्येषां कथनीयं कदाचन ॥ ५७ ॥

देवी का न्यासोपदेश—इसके बाद उन (जगदम्बिका) ने इन महात्मा (शिव) को षोढा न्यास का उपदेश दिया तथा अपना कवच स्वयं कवच के रूप में उनको प्रदान किया। उससे संयुक्त होकर भगवान् रुद्र त्रिपुर की ओर चल पड़े । वृषभध्वज ने पाशुपत अस्त्र का सन्धान किया और एक ही बाण से दैत्यों के तीनो पुरों का भेदन कर दिया । एक ही क्षण में भस्म होकर दैत्य यमालय को चले गये । हे वरानने! इसी षोढा न्यास को मैं तुमको बतला रहा हूँ । जिसको केवल एक ही बार करने से (कर्त्ता) तीनों लोक का स्वामी हो जाता है । प्राण देकर भी इसे किसी को नहीं बतलाना चाहिये ॥ ५३-५७ ॥

[षोढान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

षोढान्यासस्यास्य ऋषिस्त्रिपुरारिर्महेश्वरः ।
छन्दश्च जगती प्रोक्तं देवतेयं प्रकीर्तिता ॥ ५८ ॥
कान्दर्पार्णं तु बीजं स्यात् क्रोधः कीलकमुच्यते ।
मायाबीजं च शक्तिः स्यात् कामना यद्यदिष्यते ॥ ५९ ॥

षोढा न्यास के ऋषि आदि—इस षोढान्यास के ऋषि त्रिपुरारि महेश्वर हैं । छन्द जगती देवता यह (=कामकला काली) है । क्लीं बीज, हूँ कीलक, ह्रीं शक्ति है । कामना जो-जो वाञ्छित हो ॥ ५८-५९ ॥

[षण्णां न्यासानां नामनिर्देशः]

आदौ नृसिंहन्यासः स्याद् द्वितीये भैरवस्य च ।
तृतीयेऽपि च विज्ञेयो न्यासः कामकलाभिधः ॥ ६० ॥
चतुर्थे डाकिनीन्यासः शक्तिन्यासश्च पञ्चमे ।
षष्ठेऽपि देवीन्यासः स्यादथैतस्य विधिं शृणु ॥ ६१ ॥

न्यासों के नाम—पहला नृसिंहन्यास कहा गया । दूसरा भैरवन्यास और तीसरा कामकलान्यास बतलाया गया है । चौथा डाकिनीन्यास और पाँचवाँ शक्तिन्यास कहा

गया । इसके बाद छठाँ देवी न्यास बतलाया गया है । अब इसकी विधि को आप मुझसे सुनो ॥ ६०-६१ ॥

[षोढान्यासस्य विध्यभिधानम्]

वर्गाः कचटतपाः पञ्च षष्ठो यरलवास्तथा ।
सप्तमः शषसाश्चापि हळक्षाश्चाष्टमः प्रिये ॥ ६२ ॥

विधि—हे प्रिये! कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग ये पाँच वर्ग हैं । यरलव छठाँ वर्ग शषस सातवाँ और हळक्ष आठवाँ वर्ग है ॥ ६२ ॥

[तत्र प्रथमस्य नृसिंहन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

ऋषिर्नृसिंहन्यासस्य हयग्रीवः प्रकीर्तितः ।
गायत्रीच्छन्द इत्युक्तं नरसिंहोऽस्य देवता ॥ ६३ ॥
बीजानि वर्णा विज्ञेयाः स्वराः षोडश शक्तयः ।
विनियोगो नृसिंहस्य न्यास एवेति सम्मतः ॥ ६४ ॥
षड्भिर्दीर्घैः क्षबीजस्य कराङ्गन्यासमाचरेत् ।
पुनस्तद्वद् वरारोहे तैरेव च षडङ्गकम् ॥ ६५ ॥

नृसिंहन्यास—नृसिंहन्यास के ऋषि, हयग्रीव, छन्द गायत्री, देवता नरसिंह बीज व्यञ्जनवर्णसमूह, शक्तियाँ सोलह स्वरवर्ण हैं । नृसिंहन्यास में इसका विनियोग होता है । छह दीर्घ क्ष वर्णों से न्यास करना चाहिये । इसका स्पष्ट स्वरूप इस प्रकार है—(ॐ क्षां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ क्षीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ क्षूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ क्षैं अनामिकाभ्यां हुम्, ॐ क्षौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ क्षः करतल करपृष्ठाभ्यां फट्) इस प्रकार कराङ्गन्यास कर हे वरारोहे! उन्हीं से षडङ्गन्यास भी करना चाहिये । (वह इस प्रकार है—ॐ क्षां हृदयाय नमः, ॐ क्षीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्षूं शिखायै वषट्, ॐ क्षैं कवचाय हुम्, ॐ क्षौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ क्षः अस्त्राय फट्) ॥ ६३-६५॥

सबिन्दुर्वर्गमध्यस्थः कवर्गो बिन्दुसंयुतः ।
क्रमेणानेन देवेशि (वर्णाः) कचवर्गयोः ॥ ६६ ॥
अष्टावृत्त्या भवेन् न्यासस्ततश्चापि निबोध मे ।
सबिन्दवो हलः सर्वे सृष्टिमार्गेण चैककम् ॥ ६७ ॥
त एव तादृशा ज्ञेयाः पुनः संहारवर्त्मना ।
सृष्टिस्थितिभ्यामन्तेऽपि न्यासः सम्पूर्ण उच्यते ॥ ६८ ॥

अनुस्वार के साथ वर्गों के मध्य वर्ण (=गं जं डं दं बं रं षं) और बिन्दु से संयुक्त कवर्ग (=कं खं गं घं ङं), हे देवेशि! इसी क्रम से कवर्ग और चवर्ग के वर्ण (=कं खं गं घं ङं चं छं जं झ ञं) इनकी आठ आवृत्ति से (आठ अङ्गों शिर, नेत्र, मुख, भुजा, नाभि, जानु, पाद और सर्वाङ्ग? का) न्यास होता है । इसके बाद मुझसे जानो कि बिन्दु के साथ समस्त हल् (=व्यञ्जनों, यथा कं खं गं घं ङं ..... शं षं सं

हं क्षं) का सृष्टिमार्ग से अर्थात् 'कं' से लेकर 'क्षं' तक फिर संहार से (=क्षं हं सं षं शं..... ङं घं गं खं कं) न्यास पुनः सृष्टि न्यास और स्थितिन्यास इस प्रकार चार न्यास सम्पूर्ण न्यास कहलाता है ॥ ६६-६८ ॥

[एकपञ्चाशन्नरसिंहनामानि]

ज्वालामाली करालश्च भीमश्चैवापराजितः ।
क्षोभणश्च तथा सृष्टिः स्थितिः कल्पान्त इत्यपि ॥ ६९ ॥
अनन्तश्च विरूपश्च व(व्र)ायुधपरापरौ ।
प्रध्वंसनश्च विज्ञेयो विश्वमर्दन इत्यपि ॥ ७० ॥
उग्रो भद्रश्च मृत्युश्च सहस्रभुज इत्यपि ।
विद्युज्जिह्वो घोरदंष्ट्रो महाकालाग्निरेव च ॥ ७१ ॥
मेघनादश्च विकटस्तथा पिङ्गजटोऽपि च ।
प्रदीपो विश्वरूपश्च विद्युद्दशन एव च ॥ ७२ ॥
विदारो विक्रमश्चापि प्रचण्डः सर्वतोमुखः ।
वज्रो दिव्यश्च भोगश्च मोक्षो लक्ष्मीरपि क्रमात् ॥ ७३ ॥
विद्रावणः कालचक्रः कृतान्तस्तप्तहाटकः ।
भ्रामकश्च महारौद्रो विश्वान्तकभयङ्करौ ॥ ७४ ॥
प्रतप्तो विजयश्चापि सर्वतेजोमयस्तथा ।
ज्वालाजटालश्च खरनखरो नाददारुणः ॥ ७५ ॥
निर्वाणनरसिंहश्चेत्येकपञ्चाशदीरिताः ।

नरसिंह के इक्यावन नाम—ज्वालामाली, कराल, भीम, अपराजित, क्षोभण , सृष्टि, स्थिति, कल्पान्त, अनन्त, विरूप, वज्रायुध, परापर, प्रध्वंसन, विश्वमर्दन, उग्र, भद्र, मृत्यु, सहस्रभुज, विद्युज्जिह्व, घोरदंष्ट्र, महाकालाग्नि, मेघनाद, विकट, पिङ्गजट, प्रदीप्त, विश्वरूप, विद्युद्दशन, विदार, विक्रम, प्रचण्ड, सर्वतोमुख, वज्र, दिव्य, भोग, मोक्ष, लक्ष्मी, विद्रावण, कालचक्र, कृतान्त, तप्तहाटक, भ्रामक, महारौद्र, विश्वान्तक, भयङ्कर, प्रतप्त, विजय, सर्वतेजोमय, ज्वालाजटाल, खरनखर, नाददारुण, निर्वाण और नरसिंह—ये इक्यावन नाम कहे गये हैं ।

ललाट, मुखवृत्त, दक्षनेत्र, वामनेत्र, दक्षकर्ण, वामकर्ण, दक्ष नासापुट, वाम नासापुट, वामगण्ड, ओष्ठ, अधर, ऊर्ध्वदन्त, अधोदन्त, मूर्धा (=ब्रह्मरन्ध्र), जिह्वा, दक्षिणभुजमूल, दक्षिण कूर्पर, दक्ष मणिबन्ध, दक्षाङ्गुलीमूल, दक्षाङ्गुल्यग्र, वामभुजमूल, वामकूर्पर, याममणिबन्ध, वामाङ्गुलीमूल, वामाङ्गुल्यग्र, दक्षिणपादमूल, दक्षिण जानुमध्य, दक्षिण गुल्फ, दक्षपादाङ्गुलीमूल, दक्षपादाङ्गुल्यग्र, वामपादमूल, दक्षपार्श्व, वामपार्श्व, पृष्ठ, नाभि, जठर, हृदय, दक्षअंस, ककुत्, वामअंस, हृदयादि दक्षकर, हृदयादि वामकर, हृदयादि दक्षपाद, हृदयादि वामपाद, हृदयाद्युदर, हृदयादि मुख वाला व्यापक—इसके लिये देखें—गुह्यकाली खण्ड (१।६।५२३-५२९) ॥ ६९-७६ ॥

[नरसिंहध्यानम्]

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि यत् कृत्वा न्यासमाचरेत् ॥ ७६ ॥
उद्यन्मार्त्तण्डकोट्यंशुसमारुणतनुप्रभाः ।
उलूकाकारपृथुलनेत्रत्रितयभूषिताः ॥ ७७ ॥
विदारिसृक्कनिर्गच्छद्दंष्ट्राचन्द्रकलान्विताः ।
विदीर्णविकरालास्यनिर्यज्जिह्वाविराजिताः ॥ ७८ ॥
विमुक्तचामराकारसटाकेशरमण्डिताः ।
आबद्धयोगपट्टान्ता जानुन्यस्तकराम्बुजाः ॥ ७९ ॥
कोटिकल्पान्तार्कसमा भीमदंष्ट्राट्टहासिनः ।
कौस्तुभोद्भासिहृदयाः श्वेतपद्मोपरि स्थिताः ॥ ८० ॥
किरीटहारकेयूरकिङ्किण्यङ्गदशोभिताः ।
मुखैः कल्पान्तकालाग्निं वमन्तः सर्वतोमुखाः ॥ ८१ ॥

नरसिंह का ध्यान—अब ध्यान को बतलाऊँगा जिसको करने के बाद (साधक) न्यास करे । देवी के चारो ओर नरसिंह विराजमान हैं । उनके शरीर की कान्ति उदीयमान करोड़ों सूर्य की किरणों के समान अरुण है । सबके तीनों नेत्र उल्लू के आकार की भाँति पृथुल हैं । उनके खुले हुए होठों के बीच से दाँतरूपी चन्द्रमा की किरणें प्रकाशित हो रही हैं । खोले गये विकराल मुखों से जिह्वायें बाहर निकली हुई हैं । चामर के आकार की खुली हुई सटाओं के केशर से वे अलङ्कृत हैं । वे योगपट्ट बाँधे हुए तथा हाथों को घुठनों पर रखे हुए हैं । करोड़ों कल्पान्त सूर्य के समान (उत्ताप युक्त), भयङ्कर दाँतों से अट्टहास करने वाले हैं । उनके हृदय पर कौस्तुभमणि चमक रही है और स्वयं वे सब श्वेत कमल पर बैठे हुए हैं । किरीट हार केयूर किङ्किणी अङ्गद पहने हुए हैं । मुखों से कल्पान्त कालाग्नि उगल रहे वे सर्वतोमुख हैं ॥ ७६-८१ ॥

करालभृकुटीदृष्टिसन्त्रासितजगत्त्रयाः ।
नखनिर्भिन्नदैत्येन्द्ररुधिरोक्षितबाहवः ॥ ८२ ॥
विपाटितान्त्रनिर्गच्छद्वसालिप्ताङ्ककुक्षयः ।
अस्त्रैर्विभूषितान् दीर्घान् भुजान् षोडश बिभ्रतः ॥ ८३ ॥
शरं चक्रं गदां खड्गं पाशमङ्कुशमेव च।
वज्रं विदारणं चापि दक्षिणेन क्रमादपि ॥ ८४ ॥
धनुः शङ्खं च पद्मं च खेटकं मुशलं तथा ।
परशुं पट्टिशं चापि विदारणमतः परम् ॥ ८५ ॥
वामेन धारयन्तस्ते रत्नाकल्पविराजिताः ।
वामजङ्घासन्निविष्टलक्ष्मीकाः सिद्धिदायिनः ॥ ८६ ॥
स्थिता देव्याश्चतुर्दिक्षु नरसिंहा वरानने ।

मातृकान्याससंस्थाने न्यसेत् साधकसत्तमः ॥ ८७ ॥
एष ते कथितो देवि नृसिंहन्यास उत्तमः ।

विकराल भ्रुकुटिद्वय वाली दृष्टि से तीनों संसार को भयभीत किये हुए हैं । नखों से फाड़े गये दैत्येन्द्र (=हिरण्यकशिपु) के रक्त उनकी बाहुओं में उपलिप्त हैं । फाड़ी गयी आँतों से निकलने वाली वसा से गोद और बगलें आलिप्त हैं । अस्त्रों से युक्त सोलह भुजाओं को वे धारण किये हैं । बाण, चक्र, गदा, खड्ग, पाश, अङ्कुश, वज्र और विदारण को दायें हाँथों में धारण किये हैं । धनुष, शङ्ख, कमल खेटक, मुसल, परशु, पट्टिश और विदारण को बायें हाथों से पकड़े हुए वे रत्नों से युक्त हैं । वाम जङ्घा पर स्वयं लक्ष्मी को धारण किये हुए तथा सिद्धिदायक हैं । उत्तम साधक को मातृकान्यास के संस्थान में न्यास करना चाहिए । हे देवि! यह तुम्हें उत्तम नृसिंहन्यास बतलाया गया ॥ ८२-८८ ॥

[द्वितीयस्य भैरवन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अथातो भैरवन्यासं प्रवदामि निबोध तम् ॥ ८८ ॥
अस्य भैरवन्यासस्य ऋषिस्तावत् प्रकीर्तितः ।
कालाग्निरुद्रश्छन्दश्च जगती सम्प्रकीर्तिता ॥ ८९ ॥
भैरवो देवता प्रोक्ता क्रोधबीजं च बीजकम् ।
शक्तिरङ्कुशबीजं च देवि ते परिकीर्तितम् ॥ ९० ॥
विनियोगोऽस्य विज्ञेयो भैरवन्यास एव हि ।
कराङ्गन्यासमेतस्य षडङ्गन्यासमेव च ॥ ९१ ॥
चण्डबीजेन कर्तव्यं दीर्घैः षड्भिः समन्वितम् ।

भैरवन्यास—अब इसके बाद भैरवन्यास को बतलाऊँगा । उसको जानो । इस भैरवन्यास के ऋषि कालाग्निरुद्र हैं । छन्द जगती कही गयी है । भैरव देवता और क्रोधबीज (=हूँ) बीज कहा गया है । शक्ति अङ्कुशबीज (=क्रों) है । भैरवन्यास में इसका विनियोग जानना चाहिये । इसका कराङ्गन्यास और षडङ्गन्यास चण्डबीज (=खं) से करना चाहिये । वह बीज छह दीर्घस्वरों से युक्त हो । उसका स्वरूप इस प्रकार होगा—खां खीं खूं खैं खौं खः । इन छह बीजों से पहले कराङ्गन्यास पुनः षडङ्गन्यास करना चाहिये । जैसे खां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः खीं तर्जनीभ्यां स्वाहा...... खः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् तथा खां हृदयाय नमः खीं शिरसे स्वाहा.....खः करतल-करपृष्ठाभ्यां फट् तथा ॥ ८८-९२ ॥

आदौ तारं समुल्लिख्य द्वितीयं वाग्भवं वदेत्॥ ९२ ॥
तृतीया तु तृतीयं स्याद्रमाबीजं चतुर्थकम् ।
पञ्चमं शृणिमुद्दिष्टं प्रासादं षष्ठमुच्यते ॥ ९३ ॥
सप्तमं क्रोधबीजं स्यान्महाक्रोधं तथाष्टमम् ।
तत्तद् भैरवनामापिडेऽन्तमुच्चारयेत्ततः ॥ ९४ ॥

पुनरप्यष्टबीजानि प्रतिलोमेन चोद्धरेत् ।
हार्देन मनुना युक्तो मनुः सर्वार्थसाधकः ॥ ९५ ॥
पूर्ववन्मातृकास्थानं सर्वत्रैव वरानने ।

(अब भैरवमन्त्र को बतलाते हैं—) पहले प्रणव फिर वाग्भव बीज फिर तृतीया (=ह्रीं) फिर रमाबीज चतुर्थ है । पाँचवाँ शृणि (=क्रों) छठाँ प्रासाद (=हं) सातवाँ अक्षर क्रोध (=हूं) आठवाँ महाक्रोध (=क्षूं) है । इसके बाद तत्तद् भैरव का चतुर्थ्यन्त नाम उच्चारित होगा । (इस प्रकार अब तक मन्त्र का स्वरूप होगा—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हौं हूं क्षूं क्रोधभैरवाय) इसके बाद पुनः उपर्युक्त आठ बीजों को विपरीत क्रम से कहना चाहिये । अन्त में हार्द (=नमः) से युक्त होना चाहिये । (इस प्रकार मन्त्र का पूर्ण रूप होगा—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रों हौं हूं क्षूं क्रोधभैरवाय क्षूं हूं हौं क्रों श्रीं ह्रीं ऐं ॐ नमः) भैरव के वक्ष्यमाण इक्यावन नामों को स्थान-स्थान पर परिवर्त्तित करना चाहिये । हे वरानने! मातृका का स्थान सर्वत्र पूर्ववत् रहेगा ॥ ९२-९६ ॥

भैरवाणामथो नाम गदतो मेऽवधारय ॥ ९६ ॥
क्रोधः श्मशानः कापाली कालः कालान्तको रुरुः ।
महाघोरो घोरतरः संहारश्चण्ड इत्यपि ॥ ९७ ॥
हूङ्कारोऽनादिरुन्मत्त आनन्दस्तदनन्तरम् ।
भूताधिपः कृतान्तोऽसिताङ्गः कालाग्निरित्यपि ॥ ९८ ॥
उग्रायुधश्च वज्राङ्गः करालस्तदनन्तरम् ।
विकरालो महाकालः कल्पान्तोऽपि ततः परम् ॥ ९९ ॥
विश्वान्तकः प्रचण्डश्च भगमाल्युग्र एव च ।
भूतनाथश्च भद्रश्च तथा सम्पत्प्रदोऽपि च ॥ १०० ॥
मृत्युर्यमोऽन्तकश्चापि ततश्चोल्कामुखः स्मृतः ।
एकपादस्तथा प्रेतो मुण्डमाली ततः परम् ॥ १०१ ॥
वटुकः क्षेत्रपालश्च ततोऽपि च दिगम्बरः ।
वज्रमुष्टिर्घोरनादश्चण्डोग्रोऽपि प्रकीर्तितः ॥ १०२ ॥
सन्तापनः क्षोभणश्च ज्वालासम्वर्त्त एव च ।
वीरभद्रस्त्रिकालाग्निः शोषणस्त्रिपुरान्तकः ॥ १०३ ॥
भैरवा एकपञ्चाशदेते देवि प्रकीर्तिताः ।

इक्यावन भैरवों के नाम—अब भैरवों के नाम तुमको बतला रहा हूँ, सुनो । क्रोध भैरव, श्मशान भैरव, कापाली भैरव, काल भैरव, कालान्तक, रुरु महाघोर, घोरतर, संहार, चण्ड, हूङ्कार, अनादि, उन्मत्त, आनन्द, भूताधिप, कृतान्त, असिताङ्ग, कालाग्नि, उग्रायुध, वज्राङ्ग, कराल, विकराल, महाकाल, कल्पान्त, विश्वान्तक, प्रचण्ड, भगमाली, उग्र, भूतनाथ, भद्र, सम्पत्प्रद, मृत्यु, यम, अन्तक, उल्कामुख, एकपाद, प्रेत, मुण्डमाली, वटुक, क्षेत्रपाल, दिगम्बर, वज्रमुष्टि, घोरनाद,

चण्डोग्र, सन्तापन, क्षोभण, ज्वालासम्वर्त्त, वीरभद्र, त्रिकालाग्नि, शोषण और त्रिपुरान्तक। (प्रत्येक नाम के अन्त में 'भैरव' जोड़ना चाहिये जैसा कि प्रथम चार नामों के साथ जोड़ा गया है) हे देवि! ये इक्यावन भैरव कहे गये ॥ ९६-१०४ ॥

[भैरवध्यानम्]

ध्यानमेषां भैरवाणां कथ्यमानं मया शृणु ॥ १०४ ॥
ज्वलद्धुतवहज्वालाश्मशानस्थलचारिणः ।
पादालम्बिजटाभारा मसीपुञ्जसमप्रभाः ॥ १०५ ॥
ज्वलच्चिताकुण्डनिभलोचनत्रयभूषिताः ।
लम्बोदराः पिङ्गजटाः स्थूलाः खर्वकलेवराः ॥ १०६ ॥
नृमुण्डमालाघटितहारग्रैवेयकोज्ज्वलाः ।
मज्जासृङ्मांसमेदोऽस्थिवसासम्पूरिताननाः ॥ १०७ ॥
घोरदंष्ट्रा ललज्जिह्वाः करालमुखमण्डलाः ।
शवोपरि कृतावासा अट्टहासभयानकाः ॥ १०८ ॥
द्विशीर्षाश्च त्रिशीर्षाश्च तथा विंशतिमौलयः ।
शतशीर्षास्त्रिपादाश्च बहुपादा अपादकाः ॥ १०९ ॥

भैरव का ध्यान—अब मेरे द्वारा इन भैरवों के कथ्यमान ध्यान को सुनो। ये भैरव जलती हुई अग्नि की ज्वाला वाले श्मशान में रहते हैं। इनकी जटायें पैर तक लटकी हुई रहती हैं। ये काली स्याही के पुञ्ज के समान हैं। जलती हुई चिता के कुण्ड के समान तीन नेत्रों से ये युक्त हैं। लम्बा उदर तथा पीली जटा वाले, स्थूल तथा नाटे कद के हैं। नरमुण्ड की माला से बने हुए हार और ग्रैवेयक धारण करने से देदीप्यमान हैं। मुँह में मज्जा, रक्त-मांस, मेदा, हड्डी, वसा भरे हुए हैं। डरावने दाँत, लपलपाती हुई जिह्वा और करालमुख मण्डल वाले हैं। शव के ऊपर बैठे हुए, ये भयानक अट्टहास करते हैं। इनमें से कुछ दो शिर वाले, कुछ तीन शिर और कुछ तो बीस शिर वाले हैं। किसी को एक सौ शिर भी हैं। इसी प्रकार तीन पैर वाले, अनेक पैर वाले तथा कोई बिना पैर के हैं ॥ १०४-१०९ ॥

त्रिशूलचक्रपरिघगदामुसलतोमरान् ।
भुशुण्डीचापविशिखपाशपट्टिशमुद्गरान् ॥ ११० ॥
परश्वङ्कुशखट्वाङ्गभिन्दिपालर्ष्ट्ययोगुडान् ।
कुन्तप्रासहुनायष्टिशक्तिच्छुरिककर्त्तृकान् ॥ १११ ॥
मुष्टिनीचर्म्मकुणपनागपाशाक्षछुच्छुकाः ।
घण्टाखर्प्परपाषाणांस्तथा तर्ज्जनमेव च ॥ ११२ ॥
धारयन्तः करैः सर्वे व्याघ्रचर्मावगुण्ठिताः ।
एवं ध्यात्वा न्यसेद् देवि मातृकान्यासवर्णवत्॥ ११३ ॥
एष द्वितीयस्ते प्रोक्तो भैरवन्यास उत्तमः ।

ये सब हाथों में त्रिशूल, चक्र, परिघ, गदा, मुसल, तोमर, भुसुण्डी, धनुष, बाण, पाश, पट्टिश, मुद्गर, परशु, अङ्कुश, खट्वाङ्ग, भिन्दिपाल, ऋष्टि, अयोगुड, कुन्त, प्रास, हुना, यष्टि, शक्ति, चाकू, कैंची, मुष्टिनी, चर्मकुणप, नागपाश, अक्षछुच्छुक, घण्टा, खप्पर, पत्थर और तर्जन धारण किये हुए हैं। सबके सब बाघ के चर्म से अवगुण्ठित हैं। इस प्रकार हे देवि! भैरवों का ध्यान कर मातृकान्यासवर्ण की भाँति ही इनका न्यास करना चाहिये। यह तुमको दूसरे प्रकार का उत्तम भैरव-न्यास बतलाया गया ॥ ११०-११४ ॥

[तृतीयस्य कामकलान्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अतः कामकलान्यासं समाकर्णय भामिनि ॥ ११४ ॥
चिकीर्षयापि यस्य स्याद् देवी प्रत्यक्षरूपिणी ।
अस्य कामकलाख्यस्य न्यासस्य जगदम्बिके ॥ ११५ ॥
ऋषिश्च दक्षिणामूर्त्तिर्महादेवः प्रकीर्तितः ।
छन्दश्च बृहती ख्यातं देवता सा प्रकीर्तिता ॥ ११६ ॥
येयं कामकलाकाली कामार्णं बीजमुच्यते ।
रतिबीजं हि शक्तिः स्याद् विनियोगं च मे शृणु ॥ ११७ ॥
देवि कामकलान्यासे एवमेव प्रकीर्तयेत् ।
कराङ्गन्यासमादध्यात् षडङ्गन्यासमेव च ॥ ११८ ॥
धरारूढेण विधिना षड्दीर्घेनाचरेदिमम् ।
अथ मन्त्रं निबोधास्य न्यासस्य जगदम्बिके ॥ ११९ ॥
पाशं भूतं समुद्धृत्य फेत्कारीं प्रेतमुद्धरेत् ।
कालीं च गारुडं कालं विद्युन्मेघौ समाहरेत् ॥ १२० ॥
अमृतं नागबीजं च खेचरीं च ततो वदेत् ।
रतित्रयं कामयुगं ङेऽन्ता कामाभिधा ततः ॥ १२१ ॥
ततश्च मूलमन्त्रः स्यात् त्रिरतिः कामयुक् ततः ।
हार्देन मनुना युक्तस्त्रैलोक्यैश्वर्य्यसाधकः ॥ १२२ ॥

कामकलान्यास—हे भामिनि! इसके बाद कामकलान्यास को सुनो जिसके करने की इच्छामात्र से देवी प्रत्यक्ष हो जाती है। हे जगदम्बिके! इस कामकलान्यास के ऋषि दक्षिणामूर्त्ति महादेव कहे गये हैं। छन्द बृहती और देवता कामकला काली है। काम वर्ण (=क्लीं) बीज है। रतिबीज (=क्लूं) शक्ति है। अब मुझसे विनियोग सुनो। हे देवि! कामकलान्यास में इसी प्रकार कहना चाहिये। तत्पश्चात् कराङ्गन्यास और षडङ्गन्यास करना चाहिये। धरा (लं) पर आरूढ विधि (क्) को छह दीर्घ स्वरों से युक्त करे (इस प्रकार मन्त्र का स्वरूप बनेगा—क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः)। हे जगदम्बिके! इसके बाद इस न्यास का मन्त्र जानो—पाश भूत फेत्कारी प्रेत काली गरुड काल विद्युत् मेघ अमृत नाग बीजों को कहने के बाद खेचरी बीज कहना

चाहिये। (यहाँ तक का स्वरूप हुआ—आं स्फ्रें हस्ख्फ्रें स्हौः क्रीं क्रौं जूं ब्लौं क्लौं ग्लूं ब्रीं ख्रौं)। इसके बाद रति बीज तीन बार कामबीज दो बार तत्पश्चात् कामकला का चतुर्थ्यन्त उच्चारण फिर मूलमन्त्र ततः रतिबीज तीन बार फिर अन्त में हार्द कहना चाहिये। (इस अंश का स्वरूप होगा—क्लूं क्लूं क्लूं क्लीं क्लीं अनङ्गाय क्लीं क्रीं क्रों स्फ्रें कामकलाकालि स्फ्रें क्रों हूं क्रीं क्लीं स्वाहा क्लूं क्लूं क्लूं क्लीं क्लीं नमः)। सम्पूर्ण मन्त्र—आं स्फ्रें ह् स् ख्फ्रें स्हौं क्रीं क्रौं जूं ब्लाँ ग्लूं ब्रीं ख्रौं क्लूं क्लूं क्लीं क्लीं अनङ्गाय क्लीं क्रीं क्रों स्फ्रें कामकलाकालि स्फ्रें क्रों हूं क्रीं क्लीं स्वाहा क्लूं क्लूं क्लूं क्लीं नमः। प्रत्येक मन्त्र के साथ कामदेव का नाम बदल देना चाहिये। यह मन्त्र त्रैलोक्य के ऐश्वर्य का साधक है ॥ ११४-१२२ ॥

[एकपञ्चाशत्कामनामाभिधानम्]

आद्योऽनङ्गः समाख्यातस्ततः कन्दर्प उच्यते।
रतिप्रियः पञ्चशरः सुरतातुर इत्यपि ॥ १२३ ॥
मनोभवस्ततो ज्ञेयः कुसुमायुध इत्यपि।
चित्ततर्ज्जन इत्येवं मन्मथस्तदनन्तरम् ॥ १२४ ॥
सम्मोहनो यौवनेशो मदनस्तदनन्तरम्।
हृत्क्षोभकश्चाकर्षकः केलिवल्लभ एव च ॥ १२५ ॥
चित्तविद्रावणश्चापि दर्पको भ्रामकस्तथा।
त्रिलोकीवशकारी च मकरध्वज इत्यपि ॥ १२६ ॥
उन्मादकोऽन्धकारी च चण्डवेगस्ततो वदेत्।
मार उच्चाटनश्चापि तथा व्यामोहदाय्यपि ॥ १२७ ॥
पुष्पधन्वा स्मरश्चापि ततः सन्तापनः स्मृतः।
मनःप्रमाथी भगदो मीनकेतुरितः परम् ॥ १२८ ॥
उपस्थगो योनिवासी तथा मनसिजोऽपि च।
पुष्पचापो यौवतेशस्तथा विश्वोपताप्यपि ॥ १२९ ॥
वसन्तमित्रो मलयकेतुश्चेतःप्रमोदनः।
क्रथनश्चण्डतेजाश्च धर्माधर्मप्रवर्त्तकः ॥ १३० ॥
कोमलायुध इत्येवं प्रमर्दन इतः परम्।
त्रिलोकीसुखदः पश्चात् पिकदुन्दुभिरेव च ॥ १३१ ॥
अलिमाली जगज्जेता कामोऽन्ते च प्रकीर्तितः।
कामा इत्येकपञ्चाशद् देव्याः पारिषदाः स्मृताः॥ १३२ ॥

कामदेव के इक्यावन नाम—पहला नाम अनङ्ग है दूसरा कन्दर्प। इसी प्रकार रतिप्रिय, पञ्चशर, सुरतातुर, मनोभव, कुसुमायुध, चित्ततर्जन, मन्मथ, सम्मोहन, यौवनेश, मदन, हृत्क्षोभक, आकर्षक, केलिवल्लभ, चित्तविद्रावण, दर्पक, भ्रामक, त्रिलोकीवशकारी, मकरध्वज, उन्मादक, अन्धकारी, चण्डवेग, मार, उच्चाटन,

व्यामोहदायी, पुष्पधन्व, स्मर, सन्तापन, मन:प्रमाथी, भगद, मीनकेतु, उपस्थग, योनिवासी, मनसिज, पुष्पचाप, यौवतेश, विश्वोपतापी, वसन्तमित्र, मलयकेतु, चेत:प्रमोदन, क्रथन, चण्डतेजा, धर्माधर्मप्रवर्त्तक, कोमलायुध, प्रमर्दन, त्रिलोकीसुखद, पिकदुन्दुभि, अलिमाली, जगज्जेता और काम । इस प्रकार के इक्यावन काम देवी के परिषद् में रहते हैं ॥ १२३-१३२ ॥

[कामदेवध्यानम्]

शृणु देवि ध्यानमेषां यद् ध्यात्वा न्यासमाचरेत् ।
रत्नसन्दोहसंशोभिकिरीटोज्ज्वलमौलयः ॥ १३३ ॥
माणिक्यशकलोद्भासिकुण्डलद्वयशोभिताः ।
शरत्पार्वणशीतांशुसमानमुखदीप्तयः ॥ १३४ ॥
माणिक्यखण्डभ्रमकृद्दन्तमण्डलमण्डिताः ।
विशाललोचनयुगाः श्यामकुञ्चितमूर्द्धजाः ॥ १३५ ॥
कङ्कणाङ्गदकेयूरमुक्ताहारविराजिताः ।
वल्गत्कुण्डलसंशोभिकपोलद्वयराजिताः ॥ १३६ ॥
गौरा हसन्तश्चपलाः सर्वे सर्वाङ्गसुन्दराः ।
पौष्पं चापं करे वामे दक्षिणे पञ्चसायकान् ॥ १३७ ॥
दधतश्चित्रवसना मञ्जीररणिताङ्घ्रयः ।
पिककोकिलझङ्कारवसन्तमलयानिलैः ॥ १३८ ॥
सेव्यमाना मुदा स्वस्वशक्त्यालिङ्गितमूर्त्तयः ।
सर्वे देव्याश्च पुरतो नृत्यन्तः सस्मिताननाः ॥ १३९ ॥
तत्तत्कलाभिः सहिता ध्यातव्याः सिद्धिदायिनः ।

कामदेव का ध्यान—हे देवि ! अब इनका ध्यान सुनो; जिसको करने के बाद न्यास करना चाहिये । इनके शिर रत्नसमूहजटित किरीटों से उज्ज्वल हैं । ये माणिक्य के टुकड़ों से उद्भासित होने वाले दो-दो कुण्डलों (=कर्णाभूषणों) से सुशोभित हैं । इनके मुख की दीप्ति शरत्कालीन पूर्णिमा के चन्द्र के समान है । माणिक्यखण्ड का भ्रम उत्पन्न करने वाले दाँतों से ये अलङ्कृत हैं । इनके दोनों नेत्र विशाल और बाल काले तथा घुँघराले हैं । कङ्गन, अङ्गद, केयूर, मुक्ताहार से ये शोभायमान हैं । इनके दोनों कपोल हिलते-डुलते कुण्डलों से शोभायमान हैं। गोरे, हँसते हुए चञ्चल सबके सब सर्वाङ्गसुन्दर कहे गये हैं । बायें हाथ में पुष्प का धनुष, दाहिने में पाँच बाण धारण किये हुए ये रंग-बिरंगे वस्त्र पहने हुए हैं । पैरों में मञ्जीर बज रही है । पिकों, कोकिलों के झङ्कार बसन्त के मलयानिल से सेव्यमान ये शक्तियों के द्वारा प्रेमपूर्वक आलिङ्गित हैं। मुस्कान के साथ ये सब साक्षात् देवी के सामने नाच रहे हैं। सिद्धिदाता इन सबों का तत्तत् कलाओं के साथ साधक को ध्यान करना चाहिये ॥ १३३-१४० ॥

[चतुर्थस्य डाकिनीन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अथ प्रवक्ष्ये ते देवि डाकिनीन्यासमुत्तमम् ॥ १४० ॥
यदाचरन् नरो याति समग्रैश्वर्य्यपात्रताम् ।
न्यासस्य डाकिनीनाम्नो विरूपाक्ष ऋषिर्मतः ॥ १४१ ॥
पङ्क्तिश्छन्दः समाख्यातं डाकिन्यो देवता अपि ।
बीजं तु डाकिनीबीजं खेचरी शक्तिरुच्यते ॥ १४२ ॥
डाकिनीन्यास एवास्य विनियोगः प्रकीर्तितः ।
षड्दीर्घैर्डाकिनीबीजैः षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥ १४३ ॥
वाग्भवं च पराकूटं मायां लक्ष्मीं ततः परम् ।
क्रोधबीजं वधूबीजं योगिनीबीजमेव च ॥ १४४ ॥
शाकिनीकामबीजे च धनदाबीजमेव च ।
कालीचण्डाङ्कुशार्णं च बीजानीह त्रयोदश ॥ १४५ ॥
सनाम डाकिनी ङेऽन्तं सर्वशेषे नमः पदम् ।
मातृकान्यासवत्स्थानमासां देवि प्रकीर्तितम् ॥ १४६ ॥

डाकिनी-न्यास—हे देवि ! अब इसके बाद तुमको उत्तम डाकिनीन्यास बतलाऊँगा जिसका आचरण करने वाला मनुष्य समग्र ऐश्वर्य का पात्र हो जाता है । इस डाकिनी नामक न्यास के ऋषि विरूपाक्ष हैं । छन्द पङ्क्ति और देवता डाकिनियाँ हैं । डाकिनी वर्ण (=ख्फ्रें) बीज है और खेचरीबीज (=हस् ख्फ्रें) शक्ति है । इसका डाकिनीन्यास में विनियोग कहा गया है । छह दीर्घ डाकिनी बीज से षडङ्गन्यास करे । (उसका स्वरूप यह है—ख्फ्रां ख्फ्रीं ख्फ्रूं ख्फ्रें ख्फ्रौं ख्फ्रः) (डाकिनीमन्त्र का स्वरूप बतलाते हैं—) वाग्भव, पराकूट (=सहक्लह्रीं) माया, लक्ष्मी, क्रोध, वधू, योगिनी, शाकिनी, काम, धनदा, काली, चण्ड और अङ्कुश ये तेरह बीज तत्पश्चात् डाकिनी का चतुर्थ्यन्त नाम और सबके अन्त में 'नमः' कहना चाहिये । (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होगा—ऐं सहक्लह्रीं ह्रीं श्रीं हूं स्त्रीं छ्रीं फ्रें क्लीं क्ष्रं क्रीं फ्रें क्रों कालरात्रिडाकिन्यै नमः । डाकिनियों का नाम समय-समय पर सर्वत्र बदल देना चाहिये) हे देवि! इनका स्थान मातृका न्यास के समान है ॥ १४०-१४६ ॥

[एकपञ्चाशड् डाकिनीनामाभिधानम्]

डाकिनीनां च नामापि गदतो मेऽवधारय ।
महारात्रिः कालरात्रिर्विरूपा च कपालिनी ॥ १४७ ॥
महोत्सवा गुह्यनिद्रा ततो दोर्दण्डखण्डिनी ।
वज्रिणी शूलिनी चापि विमला च महोदरी ॥ १४८ ॥
कुरुकुल्ला कौमुदी च कौलिनी कालसुन्दरी ।
बलाकिनी फेरवी च ज्ञेया डमरुका तथा ॥ १४९ ॥
घटोदरी भीमदंष्ट्रा ततश्च भगमालिनी ।

मेना तारावती भानुमती तदनु कीर्तिता ॥ १५० ॥
एकानङ्गा केकराक्षीन्द्राक्षी संहारिणी तथा ।
प्रभञ्जना भ्रामरी च प्रचण्डाक्ष्यपराजिता ॥ १५१ ॥
विद्युत्केशी महामारी शोषिणी वज्रनख्यपि ।
सूची तुण्डी जृम्भका च तीव्रा प्रस्वापनी ततः ॥ १५२ ॥
ज्वालिनी चण्डघण्टा च लम्बोदर्य्यग्निमर्द्दिनी ।
एकदन्तोल्कामुखी च सूर्पजिह्वा च घोणकी ॥ १५३ ॥
पूतना वेगमाला च ततो जालन्धरी मता ।
एकपञ्चाशदित्येता डाकिन्यः परिकीर्तिताः ॥ १५४ ॥
नमस्कृताः स्तुता ध्याता प्रयच्छन्त्युत्तमां श्रियम् ।
विपरीतेन विधिना साधकं भक्षयन्ति तम् ॥ १५५ ॥

इक्यावन डाकिनी नाम—अब डाकिनियों के नाम भी मुझसे सुनो । महारात्रि, कालरात्रि, विरूपा, कपालिनी, महोत्सवा, गुह्यनिद्रा, दोर्दण्डखण्डिनी, वज्रिणी, शूलिनी, विमला, महोदरी, कुरुकुल्ला, कौमुदी, कौलिनी, कालसुन्दरी, बलाकिनी, फेरवी, डमरुका, घटोदरी, भीमदंष्ट्रा, भगमालिनी, मेना, तारावती, भानुमती, एकानङ्गा, केकराक्षी, इन्द्राक्षी, संहारिणी, प्रभञ्जना, भ्रामरी, प्रचण्डाक्षी, अपराजिता, विद्युत्केशी, महामारी, शोषिणी, वज्रनखी, सूचीतुण्डी, जृम्भका, तीव्रा, प्रस्वापनी, ज्वालिनी, चण्डघण्टा, लम्बोदरी, अग्निमर्दिनी, एकदन्ता, उल्कामुखी, सूर्पजिह्वा, घोणकी, पूतना, वेगमाला और जालन्धरी । इस प्रकार ये इक्यावन डाकिनियाँ कही गयी हैं । इनका नमस्कार, स्तुति और ध्यान करने पर ये साधक को उत्तम लक्ष्मी प्रदान करती हैं । यदि विपरीत विधि से अनुष्ठान होता है तो ये उस साधक को ही खा जाती हैं ॥ १४७-१५५ ॥

[डाकिनीध्यानम्]

ध्यानं ब्रवीम्यहं तासां यत्कृत्वा न्यासमाचरेत् ।
काश्चिद् बन्धूकसदृशाः काश्चिन्नीलघनप्रभाः ॥ १५६ ॥
काश्चिन्मार्त्तण्डबिम्बाभदेहद्युतय ईरिताः ।
काश्चित्स्फटिकखण्डाभाः काश्चित्स्वर्णसमप्रभाः ॥ १५७ ॥
दीर्घकर्णचलद्घोरनृमुण्डाङ्कितकुण्डलाः ।
शुष्कस्तनकपोलोरोजजङ्घाग्रीवामुखोदराः ॥ १५८ ॥
नरास्थिकृतसर्वाङ्गभूषणा घोरदर्शनाः ।
ज्वलच्चिताग्निजिह्वाभजटामण्डलमण्डिताः ॥ १५९ ॥
अर्धचन्द्रसमुद्भासिललाटतटपट्टिकाः ।
विदीर्णमुखनिर्गच्छज्जिह्वादंष्ट्राविराजिताः ॥ १६० ॥
पादालम्बिजटाभाराः श्मशानस्था दिगम्बराः ।

भूतप्रेतपिशाचाद्यैः सज्जन्त्यः कामलालसाः ॥ १६१ ॥
दोर्भ्यामादाय कुणपान् गिलन्त्यः पितृकानने ।
त्रासयन्त्यस्तर्जयन्त्यो जगदेतच्चराचरम् ॥ १६२ ॥
दीर्घैर्भुजैर्धारयन्त्यः शस्त्रास्त्राणि च भूरिशः ।
बाणान् धनूंषि परिघान् कृपाणांस्तोमरान् गदाः ॥ १६३ ॥
खट्वाङ्गानि त्रिशूलानि कुठारान् मुद्गरानपि ।
भिन्दिपालान् भुशुण्डीश्च शक्तीश्चक्राणि पट्टिशान् ॥ १६४ ॥
हुनाः प्राशांश्च कुणपान् मुशलानङ्कुशान् गुडान् ।
चर्माणि घण्टा डमरून् भेरीझर्झरमर्द्दलान् ॥ १६५ ॥
सवसासृक्पलास्थीनि खर्पराणि बहूनि च ।
नृत्यन्तश्चर्चरीशब्दैः प्रकम्पितजगत्त्रयाः ॥ १६६ ॥
कोटिविद्युद्दुर्निरीक्ष्यज्वलच्चपलतारकाः ।
दीर्घातिशुष्ककठिनगर्ताभुग्नकलेवराः ॥ १६७ ॥
देव्याः पारिषदीभूताः बद्धाञ्जलिपुटद्वयाः ।
किङ्कर्य आज्ञाकारिण्यः सर्वा देव्याः पुरः स्थिताः ॥ १६८ ॥
एवंरूपाः प्रध्यातव्या डाकिनीन्यासकारिणा ।

डाकिनी-ध्यान—मैं उनका ध्यान बतला रहा हूँ जिसको करने के बाद न्यास करना चाहिये । कोई बन्धूक के समान कोई नीलघनसदृश और कोई सूर्यबिम्ब के समान द्युतिमय शरीर वाली कही गयी हैं । कोई स्फटिक के टुकड़े के समान तथा कोई स्वर्णप्रभा वाली हैं । लम्बे कानो में हिलते-डुलते नरमुण्ड का कुण्डल पहनी हैं। इनके स्तन कपोल उरोज जङ्घा ग्रीवा मुख और उदर सूख गये हैं । मनुष्य की अस्थि का इन्होंने सर्वाङ्ग आभूषण धारण किया है । इनका दर्शन भयानक है । जलती हुई चिता की अग्नि की लपट के समान जटा धारण की हैं । ललाटतट पर अर्धचन्द्र विराजमान है । खुले हुए मुख में से जिह्वा और दाँत बाहर निकले हुए हैं । जटायें पैर तक लटकी हैं । ये श्मशान में रहती हैं और नग्न हैं । कामातुर ये भूत-प्रेत पिशाच आदि के साथ संसक्त रहती हैं । दोनों हाथों से शवों को लेकर श्मशान में चिल्ला रही होती हैं—('गृ शब्दे' अथवा निगल रही हैं—गृ निगरणे) । इस चराचर जगत् को सन्त्रस्त एवं तर्जित कर रही हैं । लम्बी भुजाओं से बहुत से शस्त्रास्त्र धारण की हुई हैं। वे शस्त्र हैं—बाण, धनुष, परिघ, कृपाण, तोमर, गदा, खट्वाङ्ग, त्रिशूल, कुठार, मुद्गर, भिन्दिपाल, भुशुण्डी, शक्ति, चक्र, पट्टिश, हुना, पाश, कुणप, मुसल, अङ्कुश, गुड, चर्म, घण्टा, डमरू, भेरी, झांझर, और मर्दल । ये वसा, रक्त, मांस, हड्डी से भरे बहुत से कपाल ली हुई हैं । चर् चर् शब्दों से नर्त्तन करती हुई ये तीनों लोकों को कम्पित कर रही हैं । उनकी आँखों की पुतलियाँ करोड़ों विद्युत के समान दुर्निरीक्ष्य एवं चञ्चल हैं । उनका पेट लम्बा. शुष्क और कठिन तथा शरीर कुछ झुका हुआ है । देवी के परिषद के रूप में ये हाथ जोड़ कर

देवी के सामने किङ्करी और आज्ञाकारिणी के रूप में खड़ी हैं । डाकिनीन्यास करने वाले साधक के द्वारा इनका इस रूप में ध्यान करना चाहिये ॥ १५६-१६९ ॥

[पञ्चमस्य शक्तिन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अतः शृणु वरारोहे शक्तिन्यासमनुत्तमम् ॥ १६९ ॥
यदाचरन् सिद्धिमिष्टामाप्नोति शतवासरैः ।
शक्तिन्यासस्य देवेशि ऋषिः कपिल उच्यते ॥ १७० ॥
छन्दोऽनुष्टुप् समाख्यातं देवता शक्तयस्त्विमाः ।
लज्जाबीजं तु बीजं स्याच्छक्तिश्च कमलार्णकम् ॥ १७१ ॥
न्यासस्य विनियोगोऽस्य शक्तिन्यासे प्रकीर्तितः ।
अग्न्यारूढाकाशबीजैः षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥ १७२ ॥
षड्भिर्दीर्घैः समेतैश्च कराङ्गन्यासमेव च ।

शक्ति-न्यास—हे वरारोहे ! इसके बाद सर्वोत्तम शक्तिन्यास को सुनो जिसका अनुष्ठान करने वाला साधक सौ दिनों में इष्टसिद्धि प्राप्त करता है । हे देवेशि! शक्तिन्यास के ऋषि कपिल कहे जाते हैं । छन्द अनुष्टुप् और देवता ये शक्तियाँ कही गयी हैं । लज्जा (=ह्रीं) बीज है और कमलावर्ण (=श्रीं) शक्ति है । शक्ति के न्यास में इन सबका विनियोग कहा गया है । अग्नि पर आरूढ़ आकाश बीजों (अर्थात् अग्नि के बीच र् से युक्त आकाशबीज 'ह' के छह दीर्घरूपों) से कराङ्गन्यास तथा षडङ्गन्यास करना चाहिये (न्यास का स्वरूप होगा—ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः......ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् तथा ह्राँ हृदयाय नमः.....ह्रः अस्त्राय फट्) ॥ १६९-१७३॥

तारमायारमाक्रोधकालीकामाङ्कुशामृतैः ॥ १७३ ॥
शक्तिनाम चतुर्थ्यन्तं दत्वा तदनु कीर्तयेत् ।
कवर्गाद्यार्णयुगलमवर्गेणान्वितं प्रिये ॥ १७४ ॥
ततः प्रासादमुद्धृत्य महाक्रोधं च गारुडम् ।
अस्त्रत्रितयमुद्धृत्य स्वाहान्तो मनुराडसौ ॥ १७५ ॥

उसके बाद तार माया रमा क्रोध काली काम अङ्कुश और अमृत बीजों का उच्चारण कर शक्ति का चतुर्थ्यन्त नाम बोलने के बाद कवर्ग का आदिम दो वर्ण अवर्ग के साथ कहे । उसके बाद प्रासाद को उद्धृत कर महाक्रोध गरुड तीन अस्त्र का उच्चारण कर अन्त में 'स्वाहा' कहे । (मन्त्र का स्वरूप यह होगा—ॐ ह्रीं श्रीं हूं क्रीं क्लीं क्रों ग्लूं सूक्ष्माशक्त्यै कं खं हौं क्षूं क्रौं फट् फट् फट् स्वाहा) । यह मन्त्रराज कहा गया है ॥ १७३-१७५ ॥

चवर्गवर्णयोरेव टवर्गवर्णयोरपि ।
तवर्गवर्णयोरेव पवर्गवर्णयोरपि ॥ १७६ ॥
यवर्गवर्णयोः पश्चाच्छवर्गवर्णयोरपि ।
स्वरान्त्यवर्णसंयुक्तो हवर्णस्तदनन्तरम् ॥ १७७ ॥

पुनः स्वरान् समुच्चार्य वर्गान्तत्र्यक्षरं वदेत् ।
आवृत्तयश्चतस्त्रः स्युः सर्वशेषविवर्जितम् ॥ १७८ ॥
उक्ता मयैते शक्तीनां मन्त्राः सर्वार्थसाधकाः ।

इसके बाद चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग तथा शवर्ग के आद्य दो अक्षरों को अन्तिमस्वरवर्ण से संयुक्त करे । इसके बाद हवर्ण का उच्चारण करे । पुनः सोलह स्वरों का उच्चारण कर सातों वर्गों के अन्तिम तीन अक्षरों का उच्चारण करे । इस प्रकार मन्त्र पूरा होता है । इस पूरे मन्त्र की चार आवृत्तियाँ करनी चाहिये । इस प्रकार मैंने शक्तियों के सर्वार्थसाधक मन्त्रों को बतलाया ॥ १७६-१७९ ॥

[एकपञ्चाशच्छक्तिनामानि]

नामानि तासामधुना समाकर्णय पार्वति ॥ १७९ ॥
सूक्ष्मा जया तथा माया प्रभा च विजया पुनः ।
सुप्रभा नन्दिनी पश्चाद् विशुद्धिः कान्तिरुन्नतिः ॥ १८० ॥
कीर्तिर्विभूतिर्हृष्टिश्च व्युष्टिः सन्नतिरुन्नतिः ।
ऋद्धिरुत्कृष्टिरजिता तथा चैवापराजिता ॥ १८१ ॥
नित्या सरस्वती श्रीश्च स्मृतिर्लक्ष्मीरुषा धृतिः ।
बुद्धिः श्रद्धा मतिर्मेधा विद्या प्रज्ञा प्रकीर्तिता ॥ १८२ ॥
इच्छा क्रिया तथा माया दीप्ता प्रीतिस्ततः परम् ।
नीतिः सृष्टिः स्थितिर्ज्ञेया संहृतिश्चेतनापि च ॥ १८३ ॥
सत्या शान्ती रतिर्भद्रा रौद्री ज्येष्ठा च विद्युता ।
एकपञ्चाशत्तमा च ज्ञेया शक्तिः परापरा ॥ १८४ ॥
इत्येताः शक्तयः सर्वा देव्याः पारिषदा मताः ।
देव्यास्तनौ च संविष्टा ध्यानमासां निशामय ॥ १८५ ॥

इक्यावन शक्तियों के नाम—हे पार्वति ! अब आप उन (शक्तियों) के नामों को मुझसे सुनो । सूक्ष्मा, जया, माया, प्रभा, विजया, सुप्रभा, नन्दिनी, विशुद्धि, कान्ति, उन्नति, कीर्त्ति, विभूति, हृष्टि, व्युष्टि, सन्तति, उन्नति, ऋद्धि, उत्कृष्टि, अजिता, अपराजिता, नित्या, सरस्वती, श्री, स्मृति, लक्ष्मीः, उषा, धृति, बुद्धि, श्रद्धा, मति, मेधा, विद्या, प्रज्ञा, इच्छा, क्रिया, माया, दीप्ता, प्रीति, नीति, सृष्टि, स्थिति, संहृति, चेतना, सत्या, शान्ति, रति, भद्रा, रौद्री, ज्येष्ठा, विद्युता और परापरा । ये समस्त शक्तियाँ देवी कामकलाकाली की पारिषद हैं । देवी के शरीर में संविष्ट इनका ध्यान सुनो ॥ १७९-१८५ ॥

[शक्तीनां ध्यानम्]

निरङ्कपूर्णिमापूर्णचन्द्रबिम्बसमानना: ।
विशालफुल्लराजीवदलशोणायतेक्षणाः ॥ १८६ ॥

विलसद्रत्नताटङ्कश्रवणाभरणोज्ज्वलाः ।
मन्दारमालासन्नद्धधम्मिल्लभरगर्विताः ॥ १८७ ॥
विशालजघनाभोगा अतिक्षीणकटिस्थलाः ।
कठोरपीवरोत्तुङ्गवक्षोजयुगलान्विताः ॥ १८८ ॥
रत्नमञ्जीरकेयूरकङ्कणाङ्गदशोभिताः ।
किङ्किणीहारमुकुटमुद्रिकावलयान्विताः ॥ १८९ ॥
त्रैलोक्यसारसौन्दर्ययौवनोन्मादगर्विताः ।
सिंहासनसमारूढा विचित्रविविधाम्बराः ॥ १९० ॥
स्वच्छशीतांशुशकलविराजितललाटिकाः ।
सुशुक्लमाल्यललिताः स्वस्वचेटीगणैर्वृताः ॥ १९१ ॥
गौराङ्गदेहसंशोभिचन्दनागुरुचित्रकाः ।
सुस्मितोद्भासिवदनचञ्चद्दशनपक्तयः ॥ १९२ ॥
कराभ्यां धारयन्त्यस्ता वराभयमनुत्तमम् ।
न्यसनीयं स्थानगता देव्यास्तु तत्तनौ प्रिये ॥ १९३ ॥
एवं ध्यात्वा चरेन्न्यासं सर्वकामार्थसिद्धये ।

शक्तियों का ध्यान—ये शक्तियाँ पूर्णिमा के निष्कलङ्क चन्द्र के बिम्ब के समान मुखों वाली हैं । इनकी आँखें विशाल खिले हुए कमल के दल के समान लाल और बड़ी-बड़ी हैं । रत्नों से जटित ताटङ्क आदि कर्णाभरण धारण करने से वे चमक रही हैं । कल्पवृक्ष के फूलों की माला से बँधी हुई चोटी के भार से वे गर्वित हैं । जघन का विस्तार विशाल है । कटि अत्यन्त क्षीण है । दोनों स्तन कठोर विशाल और ऊँचे-ऊँचे हैं । रत्नजटित मञ्जीर केयूर कङ्कण और अङ्गद से सुशोभित ये शक्तियाँ किङ्किणी-हार-मुकुट-मुँदरी और कङ्गन से अन्वित हैं । त्रैलोक्य के सारभूत सौन्दर्य और यौवन के उन्माद से ये गर्वित हैं । सिंहासन पर बैठी हुई ये अनेक एवं रंग-बिरंगे वस्त्र धारण की हुई हैं । इनके ललाट पर स्वच्छ चन्द्रमा का खण्ड विराजमान है । श्वेत मालाओं से ललित ये अपनी-अपनी दासियों से घिरी रहती हैं । इनके गौराङ्ग देह के ऊपर चन्दन और अगर के द्वारा विविध चित्र बने हुए हैं । मुस्कराहट के कारण चमकने वाले बदन में दाँतों की पङ्क्तियाँ चमक रही हैं । दोनों हाथों से वे वरद एवं अभय मुद्रा धारण की हुई हैं । हे प्रिये! देवी के उस शरीर में स्थित इनका न्यास करना चाहिये । इस प्रकार ध्यान कर समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिये न्यास करना चाहिये ॥ १८६-१९४ ॥

[षष्ठस्य देवीन्यासस्य ऋष्यादिनिर्देशः]

अथ षष्ठो वरारोहे देवीन्यासः प्रकीर्त्यते ॥ १९४ ॥
षोढा न्यासः समग्रोऽपि यत्र देवि प्रतिष्ठतः ।
वक्तुं न शक्यो महिमा यस्य वर्षायुतैरपि ॥ १९५ ॥

या यामले कृतोद्धारा डामरे याः प्रकीर्तिताः ।
भीमातन्त्रे च याः प्रोक्ता याः प्रोक्ताः कौलिकार्णवे ॥ १९६ ॥
देव्यास्ता एकपञ्चाशत् समन्त्रध्यानपूर्विकाः ।
न्यसनीयास्तनौ देवि तासां मन्त्रं समुच्चरेत् ॥ १९७ ॥

देवी-न्यास—हे वरारोहे ! अब छठाँ देवीन्यास कहा जा रहा है । हे देवि ! इसमें समग्र षोढा न्यास प्रतिष्ठित है । इसकी महिमा दश हजार वर्षों तक भी नहीं कहीं जा सकती । हे देवी ! यामल में जिनका उद्धार किया गया और डामर में जो कही गयी हैं । भीमातन्त्र में जिनका वर्णन है और कुलार्णव तन्त्र में जिनका वर्णन है—इन इक्यावन देवियों का मन्त्र एवं ध्यान के साथ देवी के शरीर में न्यास करना चाहिये । फिर उनके मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये ॥ १९४-१९७ ॥

देवीन्यासस्यास्य ऋषिः सदाशिव इतीरितः ।
जगत्यनुष्टुब्बृहतीगायत्रीपङ्क्तयोऽपि च ॥ १९८ ॥
छन्दांसि कथितानीह देवता परिकीर्तिता ।
देवी कामकलाकाली बीजं कामस्य वर्जिता ॥ १९९ ॥
क्रोधबीजं तु शक्तिः स्याद् विनियोगः प्रकीर्तितः ।
देवीन्यासे कामबीजैः षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥ २०० ॥
कराङ्गन्यासमेतैश्च षड्दीर्घैराचरेद् बुधः ।

इस देवीन्यास के ऋषि सदाशिव, छन्द जगती अनुष्टुब् बृहती गायत्री और पङ्क्ति हैं । देवता कामकलाकाली हैं, बीज काम (=क्लीं) है तथा शक्ति क्रोधबीज (=हूं) है । इस प्रकार इसका विनियोग कहा गया है । देवीन्यास में कामबीजों के द्वारा षडङ्गन्यास करना चाहिए । विद्वान् छः दीर्घ इनके (कामबीज के) स्वरूप के द्वारा कराङ्गन्यास करे । (यथा—क्लां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, क्लीं तर्जनीभ्यां स्वाहा... क्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् तथा क्लां हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा...क्लः अस्त्राय फट्) ॥ १९८-२०१ ॥

[एकपञ्चाशद् देवीनां नामानि]

आदौ नाम वदाम्यासां मन्त्रध्याने ततः परम् ॥ २०१ ॥
कथयिष्यामि विधिवत् सावधानं मनः कुरु ।
आदौ ज्ञेया महालक्ष्मीस्ततो वागीश्वरी मता ॥ २०२ ॥
अश्वारूढा च मातङ्गी नित्यक्लिन्ना ततः परम् ।
भुवनेशी तथोच्छिष्टचाण्डाली भैरवी ततः ॥ २०३ ॥
शूलिनी वनदुर्गा च त्रिपुटा त्वरिता ततः ।
अघोरा जयलक्ष्मीश्च वज्रप्रस्तारिणी ततः ॥ २०४ ॥
पद्मावत्यन्नपूर्णा च कालसङ्कर्षणी ततः ।
धनदा कुक्कुटी भोगवती च शबरेश्वरी ॥ २०५ ॥
कुब्जिका सिद्धिलक्ष्मीश्च बाला च त्रिपुरा ततः ।

तारा दक्षिणकाली च छिन्नमस्ता त्रिकण्टकी ॥ २०६ ॥
ततो नीलपताका च चण्डघण्टा ततः परम् ।
चण्डेश्वरी भद्रकाली गुह्यकाली ततः परम् ॥ २०७ ॥
अनङ्गमाला चामुण्डा वाराही वगलापि च ।
जयदुर्गा नारसिंही ब्रह्माणी वैष्णवी ततः ॥ २०८ ॥
माहेश्वरी तथेन्द्राणी हरसिद्धा ततोऽपि च ।
फेत्कारी लवणेशी च नाकुली मृत्युहारिणी ॥ २०९ ॥
ततः कामकलाकालीत्येकपञ्चाशदीरिताः ।
एकैकस्या महादेव्या मूलमन्त्रेण साधकः ॥ २१० ॥
अकारादिक्षकारान्तस्थानेषु न्यसनं चरेत् ।
अथासां मूलमन्त्रांस्तान् क्रमादुद्धारयाम्यहम् ॥ २११ ॥
ध्यानं च मन्त्रानुपदं यथाऽऽम्नायेषु कीर्तितम् ।

इक्यावन देवियों के नाम—पहले इन देवियों के नाम बाद में मन्त्र और ध्यान को विधिवत् बतलाऊँगा । मन को सावधान रखो । पहले महालक्ष्मी उसके बाद वागीश्वरी फिर अश्वारूढा, मातङ्गी, नित्यक्लिन्ना, भुवनेश्वरी, उच्छिष्टचाण्डालिनी, भैरवी, शूलिनी, वनदुर्गा, त्रिपुरा, त्वरिता, अघोरा, जयलक्ष्मी, वज्रप्रस्तारिणी, पद्मावती, अन्नपूर्णा, कालसङ्कर्षिणी, धनदा, कुक्कुटी, भोगवती, शबरेश्वरी, कुब्जिका, सिद्धिलक्ष्मी, बाला, त्रिपुरा, तारा, दक्षिणकाली, छिन्नमस्ता, त्रिकण्टकी, नीलपताका, चण्डघण्टा, चण्डेश्वरी, भद्रकाली, गुह्यकाली, अनङ्गमाला, चामुण्डा, वाराही, वगला, जयदुर्गा, नारसिंही, ब्रह्माणी, वैष्णवी, माहेश्वरी, इन्द्राणी, हरसिद्धा, फेत्कारी, लवणेशी, नाकुली, मृत्युहारिणी और कामकलाकाली ये इक्यावन देवियाँ कही गयी हैं । साधक को चाहिये कि वह मूलमन्त्र से एक-एक देवी का अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त स्थानों में न्यास करे । अब जैसा कि शास्त्रों में कहे गये हैं वैसे इनके मूल मन्त्रों को और मन्त्रों के बाद ध्यान को क्रम से बतला रहा हूँ ॥ २०१-२१२ ॥

[महालक्ष्म्या मन्त्रध्याने]

वाग्भवं कामलं मायां कामबीजं ततः परम् ॥ २१२ ॥
चतुरक्षरमन्त्रोऽयं महालक्ष्म्याः प्रकीर्तितः ।
पूर्णचन्द्राननां लक्ष्मीमरविन्दोपरि स्थिताम् ॥ २१३ ॥
गौराङ्गीं विविधाकल्परत्नाभरणमण्डिताम् ।
क्षौमाबद्धनितम्बां तां वराभयकरद्वयाम् ॥ २१४ ॥
श्वेतैश्चतुर्भिर्द्विरदैः शुण्डदण्डनिवेशितैः ।
हिरण्मयामृतघटैः सिच्यमानां विभावयेत् ॥ २१५ ॥

लक्ष्मी के मन्त्र ध्यान—वाग्भव, कमला, माया और कामबीज—यह चार अक्षरों वाला महालक्ष्मी का मन्त्र बतलाया गया है (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं) । पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली, कमल के ऊपर बैठी हुई, गौराङ्गी, अनेक

प्रकार के रत्नों से अलङ्कृत, नितम्बों तक रेशमी वस्त्र को धारण की हुई, दोनों हाथों में वरद एवं अभय मुद्रा धारण की हुई है। श्वेतवर्ण के चार हाथी अपने सूड़ों में सोने का अमृतपूर्ण घट लेकर उसका अभिषेक कर रहे हैं—ऐसा ध्यान करना चाहिये ॥ २१२-२१५ ॥

[वागीश्वर्या मन्त्रध्याने]

अथ वागीश्वरीमन्त्रस्तारं माया च वाग्भवः ।
पुनर्माया पुनस्तारो ङेऽन्तापि च सरस्वती ॥ २१६ ॥
अन्ते हृन्मनुना ज्ञेयो मन्त्रो ह्येकादशाक्षरः ।
ध्यायेद् वागीश्वरीं देवीं हंसारूढां हसन्मुखीम् ॥ २१७ ॥
पूर्णेन्दुवदनां कुन्दकर्पूरसितविग्रहाम् ।
अर्धेन्दुविलसद्भालां दिव्याभरणभूषिताम् ॥ २१८ ॥
विशाललोचनां तुङ्गस्तनीं स्मितमनोहराम् ।
पीयूषकुम्भं विद्यां च वामे सम्बिभ्रतीं शिवाम् ॥ २१९ ॥
वीणामक्षगुणान् दक्षे धारयन्तीं चतुर्भुजाम् ।
ध्यात्वा तु मूलमन्त्रेण साधको न्यासमाचरेत् ॥ २२० ॥

वागीश्वरी के मन्त्र ध्यान—अब वागीश्वरी का मन्त्र—तार माया वाग्भव माया तार चतुर्थ्यन्त सरस्वती पद फिर 'नमः'। यह ग्यारह अक्षरों वाला मन्त्र है (मन्त्र—ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः)। हंस पर आरूढ, मुस्कराती हुई, पूर्णिमा के चन्द्र सदृश मुखवाली, कुन्द और कपूर के समान श्वेत शरीर वाली, ललाट पर अर्धचन्द्र, दिव्य आभूषणों से विभूषित, विशाल नेत्रों वाली, ऊँचे स्तनों वाली, मुस्कान से मनोहर, बायें दोनों हाथों में अमृतकलश और शिवशास्त्र तथा दायें दोनों हाथों में वीणा और माला धारण की हुई चार भुजा वाली वागीश्वरी का ध्यान कर साधक मूल मन्त्र से न्यास करे ॥ २१६-२२० ॥

[अश्वारूढाया मन्त्रध्याने]

अश्वारूढा तृतीया स्यादस्या मन्त्रं निबोध मे ।
तारं लज्जां रमां क्रोधं कामं पाशं ततः परम् ॥ २२१ ॥
अश्वारूढा चतुर्थ्यन्ता ततोऽस्त्रद्वितयं वदेत् ।
वह्निजायान्तगो मन्त्रो ज्ञेयः पञ्चदशाक्षरः ॥ २२२ ॥
ध्यानं चास्याः कथ्यमानं निबोध वरवर्णिनि ।
पूर्णशारदशीतांशुसमानवदनां शिवाम् ॥ २२३ ॥
सन्तप्तकाञ्चनाभासां विशालाम्बुजलोचनाम् ।
व्यालम्बमानवेणीकां स्थितां ज(य)वनवाजिनि ॥ २२४ ॥
करे च दक्षिणे बाणं वामे रश्मिं च वाजिनः ।
चन्द्रखण्डलसद्भालां वेत्रं पद्मं च बिभ्रतीम् ॥ २२५ ॥

अश्वारूढा के मन्त्र ध्यान—तीसरी देवी अश्वारूढा है । इसके मन्त्र को मुझसे जानो । तार, लज्जा, रमा, क्रोध, काम, पाश बीजों के बाद चतुर्थ्यन्त अश्वारूढा पद का उच्चारण कर दो बार अस्त्र मन्त्र कहना चाहिये । अन्त में 'स्वाहा' कहने पर यह पन्द्रह अक्षरों वाला मन्त्र बनता है (मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं हूं क्लीं आं अश्वारूढायै फट् फट् स्वाहा) । हे वरवर्णिनि! इसके कथ्यमान ध्यान को जानो—यह देवी शिवा शरत्कालीन पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली, तप्त सोने के समान कान्तिमती, विशाल नेत्रों वाली, लटकती हुई वेणी वाली, वेगवान् घोड़े पर सवार, दायें हाथ में बाण और बायें हाथ में घोड़े की लगाम ली हुई, ललाट पर शोभायमान चन्द्रखण्ड वाली (नीचे के दायें, बायें हाथों में बेंत एवं कमल ली हुई है—इस प्रकार ध्यान करना चाहिये) ॥ २२१-२२५ ॥

[मातङ्गीदेव्या मन्त्रध्याने]

निशामयाथ मातङ्गीमन्त्रं सर्वार्थसाधकम् ।
वाग्भवं च त्रपा लक्ष्मीस्ततः प्रणव एव च ॥ २२६ ॥
नमो भगवतीत्युक्त्वा मातङ्गेश्वरि चोद्धरेत् ।
ततः सर्वजनेत्येवं मनोहारि पदं ततः ॥ २२७ ॥
पुनः सर्वमुखेत्युक्त्वा रञ्जिनीति समुद्धरेत् ।
तत उच्चारयेदेवं सर्वराजवशङ्करि ॥ २२८ ॥
सर्वस्त्रीपुरुषेत्युक्त्वा वशङ्करि ततो वदेत् ।
सर्वदुष्टमृगाभाष्य ततश्चापि वशङ्करि ॥ २२९ ॥
ततोऽपि चोद्धरेदेवं सर्वसत्त्ववशङ्करि ।
सर्वलोकममुं मे च वशमानय चेत्यपि ॥ २३० ॥
शिरोऽन्तो मनुरुद्दिष्टो वश्यकर्मफलप्रदः ।

मातङ्गी के मन्त्र ध्यान—अब सर्वार्थसाधक मातङ्गी मन्त्र को सुनो । वाग्भव, लज्जा, लक्ष्मी, प्रणव कहकर 'नमोभगवति मातङ्गेश्वरि' कहे । पुनः 'सर्वजन-मनोहारि' कहने के बाद 'सर्वमुखरञ्जिनि' कहे । इसी प्रकार 'सर्वराजवशङ्करि' कहे तथा 'सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि' कहने के बाद 'सर्वसत्त्ववशङ्करि' कहे । पुनः 'सर्वलोकं अमुं च मे वशमानय' कहने के बाद अन्त में शिर कहे (मन्त्र—ऐं ह्रीं श्रीं ॐ नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्वजनमनोहारि सर्वमुखरञ्जिनि सर्वराजवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वलोकममुं च मे वशमानय स्वाहा) । यह मन्त्र वश्यकर्मफल देने वाला कहा गया है ॥ २२६-२३१ ॥

रत्नपीठोपरि गतां सान्द्रनीरदसच्छविम् ॥ २३१ ॥
शृण्वन्तीं कीरपोतस्य कलभाषितमुत्तमम् ।
न्यस्तैकपादां कमले बालेन्दुकृतशेखराम् ॥ २३२ ॥
करपल्लवयुग्मेन वीणावादनतत्पराम् ।

आपादपद्मलम्बिन्या रम्यां कल्हारमालया ॥ २३३ ॥
तिलकोद्भासिवदनां वारुणीपानविह्वलाम् ।

(इसका ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—) (यह देवी) रत्नजटित पीठ पर विराजमान, सघन काले बादल के समान छवि वाली, शुकशावक के मधुर शब्दों का श्रवण करती हुई, एक पैर कमल के ऊपर रखी हुई, मस्तक पर बाल चन्द्र धारण की हुई, दो हाथों से वीणावादन में तत्पर, पैर तक लटकी हुई कल्हार (=श्वेत कुमुदिनी) की माला से सुशोभित, मुख पर तिलक लगायी हुई तथा वारुणीपान के कारण मदमत्त है ॥ २३१-२३४ ॥

[नित्यक्लिन्नाया मन्त्रध्याने]

अथ धारय चेतस्त्वं नित्यक्लिन्नामनौ मनः ॥ २३४ ॥
प्रणवं वाग्भवं बीजं मायिकं तदनन्तरम् ।
नित्यक्लिन्ने समुद्धृत्य ततोऽपि च मदद्रवे ॥ २३५ ॥
सवाग्भवत्रपास्वाहा मनुः पञ्चदशाक्षरः ।

नित्यक्लिन्ना के मन्त्र ध्यान—इसके बाद अब तुम नित्यक्लिन्ना के मन्त्र पर ध्यान दो । प्रणव, वाग्भव, माया बीज के बाद 'नित्यक्लिन्ने' कहकर 'मदद्रवे' कहे । फिर वाग्भव लज्जा बीज के साथ 'स्वाहा' कहे । (मन्त्र—ॐ ऐं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ऐं ह्रीं स्वाहा) । यह पञ्चदशाक्षर मन्त्र है ॥ २३४-२३६ ॥

रक्ताङ्गी यौवनोद्भिन्नपीनवक्षोरुहद्वयाम् ॥ २३६ ॥
त्रिनेत्रां मदिरापानविह्वलाङ्गीं शिवप्रियाम् ।
रक्ताङ्गरागवसनाभरणां सस्मिताननाम् ॥ २३७ ॥
बालेन्दुमौलिमरुणसरोरुहकृतस्थितिम् ।
कल्पवल्लीं कपालं च वामतो बिभ्रतीं शिवाम्॥ २३८ ॥
पाशाङ्कुशौ दक्षिणे च धारयन्तीं विचिन्तयेत् ।

(उसका ध्यान इस प्रकार है—) (यह देवी) रक्त अङ्गों वाली, यौवन के कारण उभरे हुए दो स्तनों वाली, तीन नेत्रों वाली, मदिरापान से विह्वल अङ्गों वाली, शिवप्रिया, रक्तवर्ण के अङ्गराग वस्त्र और आभूषणों का धारण करने वाली मुख पर मुस्कान और शिर पर बाल चन्द्रमा वाली तथा लाल कमल पर बैठी हुई है । बायें हाथ में कल्पलता और कपाल तथा दायें हाथ में पाश और अङ्कुश धारण की है—ऐसा ध्यान करना चाहिये ॥ २३६-२३९ ॥

[भुवनेश्वर्या मन्त्रध्याने]

शृणु षष्ठीं महादेवीमतस्त्वं भुवनेश्वरीम् ॥ २३९ ॥
पाशलज्जाङ्कुशैरेव मन्त्रस्त्र्यक्षर एव च ।
महिमा वर्णितुं देवि न शक्यस्त्रिदशैरपि ॥ २४० ॥

भुवनेशीमथ ध्यायेत् सिन्दूरारुणविग्रहाम् ।
त्रिलोचनां स्मेरमुखीं चन्द्रार्धकृतशेखराम् ॥ २४१ ॥
पीनवक्षोरुहद्वन्द्वां सर्वाभरणशोभिताम् ।
माणिक्यरत्नकुम्भस्थसव्यपादां करद्वये ॥ २४२ ॥
बिभ्रतीं रत्नचषकं रक्तोत्पलमथापि च ।

भुवनेश्वरी के मन्त्र ध्यान—इसके बाद तुम छठीं महादेवी भुवनेश्वरी को सुनो । पाश लज्जा और अङ्कुश बीजों से बना हुआ (इस देवी का) मन्त्र तीन अक्षरों वाला है । (मन्त्र—आं ह्रीं क्रों) । (इस मन्त्र की) महिमा का वर्णन देवताओं के भी द्वारा शक्य नहीं है । सिन्दूर की भाँति अरुण विग्रह वाली, तीन लोचनों वाली, स्मित-मुखी, मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण की हुई, चौड़े दोनों स्तनों वाली, समस्त अलङ्कारों से अलङ्कृत, मणिक्यरत्न से जटित (अथवा निर्मित) कुम्भ के ऊपर बायें पैर को रखी हुई, दोनों हाथों में रत्ननिर्मित पानपात्र, और लालकमल धारण की हुई है—ऐसा ध्यान करना चाहिये ॥ २३९-२४३ ॥

[उच्छिष्टचाण्डाल्या मन्त्रध्याने]

अथ वक्ष्येऽहमुच्छिष्टचाण्डालीमन्त्रमादृतम् ॥ २४३ ॥
आदौ सम्बोधनं देव्याः सुमुखी तद्वदेव च ।
ततो देवि महाप्रोच्य वदेत् पश्चात् पिशाचिनी ॥ २४४ ॥
मायाबीजं विसर्गेण सहितं ठत्रयं ततः ।
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रः सर्वसिद्धिविधायकः ॥ २४५ ॥
ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि यथावज्जगदीश्वरि ।
शवोपरि समासीनां रक्ताम्बरपरिच्छदाम् ॥ २४६ ॥
रक्तालङ्कारसंयुक्तां नीलमेघसमप्रभाम् ।
ईषद्धास्यसमायुक्तां गुञ्जाहारविराजिताम् ॥ २४७ ॥
षोडशाब्दां च युवतीं पीनोन्नतपयोधराम् ।
कपालकर्तृकाहस्तां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ २४८ ॥

उच्छिष्टचाण्डालिनी के मन्त्र ध्यान—अब मैं सर्वत्र आदर को प्राप्त उच्छिष्ट-चाण्डाली मन्त्र को बतलाऊँगा । पहले देवी का सम्बोधन फिर 'सुमुखी' का सम्बोधन तत्पश्चात् 'देवि' कहे । फिर 'महाशब्द' का उच्चारण कर 'पिशाचिनी' का सम्बोधन कहे । बाद में मायाबीज फिर विसर्गसहित तीन ठ कहे (मन्त्र—उच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः ठः) । बाईस अक्षरों वाला यह मन्त्र सर्वसिद्धि देने वाला है । हे जगदीश्वरि! अब इसका यथावत् ध्यान बतलाऊँगा । (यह देवी) शव के ऊपर बैठी, लालवस्त्र ओढ़ी हुई, रक्त अलङ्कार से संयुक्त, नीलमेघ के समान कान्तिवाली, किञ्चित् हास्य से युक्त, गुञ्जा का हार पहनी हुई, सोलह वर्षीया युवति, चौड़े और ऊँचे स्तनों वाली, हाथ में कपाल और कैंची ली हुई एवं सर्वाभरणभूषित

है—ऐसा ध्यान करना चाहिये ॥ २४३-२४८ ॥

[भैरव्या मन्त्रध्याने]

अथ ब्रवीमि भैरव्या मन्त्रमागमगोपितम् ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं न कस्मा अपि केन च ॥ २४९ ॥
न कीलितं न शप्तं च स्तम्भितं न च कैरपि ।
पञ्चकूटात्मिकां विद्यामुद्धरामि श्रृणुष्व ताम् ॥ २५० ॥
खं खपूर्वो विधिर्भूमिस्तार्तीयकविराजितः ।
नभो वह्निविधिक्षोणीसवह्निधनदार्णकम् ॥ २५१ ॥
तृतीयं कूटं फेत्कारी चतुर्थी शाङ्करी भवेत् ।
पञ्चमी व्योमकूटाख्या सर्वकामफलप्रदा ॥ २५२ ॥
कथयामि ध्यानमस्या यद्विधाय न्यसेत्तनुम् ।
उद्यत्सहस्रमार्तण्डकान्तिमिन्दुकलोज्ज्वलाम् ॥ २५३ ॥
त्रिनेत्रां पीनवक्षोजां पद्मासनपरिस्थिताम् ।
सर्वाभरणसम्पूर्णां पूर्णयौवनशालिनीम् ॥ २५४ ॥
चतुर्भुजां जपवटीं दक्षिणे बिभ्रतीं वरम् ।
वामे विद्यामभीतिं च धारयन्तीं विचिन्तयेत् ॥ २५५ ॥

भैरवी के मन्त्र ध्यान—अब आगमों में छिपाकर रखे गये भैरवीमन्त्र को बतला रहा हूँ । जिसको (मैंने) किसी को नहीं बतलाया और किसी दूसरे व्यक्ति ने भी किसी को नहीं बतलाया । (इस मन्त्र को) किसी ने न तो कीलित न अभिशप्त और न स्तम्भित किया है । मैं पञ्चकूटात्मिका विद्या को उद्धृत कर रहा हूँ । उसको सुनो—

ख खपूर्व विधि भूमि (पहला कूट) तार्तीयक (दूसरा कूट) फेत्कारी तीसरा शाङ्करी चौथा और व्योमकूट पाँचवाँ है (मन्त्र—हं ह् क् लं ह्सौं हं रं वं लं रं ढं ह् स् ख् फ्रें ऋं हं?) यह विद्या सर्वकामफलप्रदा है । अब इसका ध्यान बतला रहा हूँ जिसको करने के बाद शरीर का न्यास करना चाहिये । उगते हुए हजारों सूर्य के समान कान्ति वाली, चन्द्रकला के समान उज्ज्वल, तीन नेत्रों वाली, पीन स्तनों वाली, पद्मासन पर बैठी हुई, सर्वाभरण परिपूर्ण, पूर्णयौवन वाली, चार भुजा वाली, दायें हाथों में जपवटी और वरद मुद्रा, बायें में विद्या मुद्रा और अभय मुद्रा धारण की हुई है—ऐसा ध्यान करना चाहिये ॥ २४९-२५५ ॥

[शूलिन्या मन्त्रध्याने]

अर्थाकर्णय शूलिन्या मन्त्रं ध्यानं च पार्वति ।
ज्वलयुग्मं समुद्धृत्य वदेत्तदनु शूलिनि ॥ २५६ ॥
दुष्टग्रहं समाभाष्य क्रोधबीजमथोद्धरेत् ।
अस्त्रं शिरस्ततः पश्चान्मनुः पञ्चदशाक्षरः ॥ २५७ ॥

ध्यायेन्मृगेन्द्रमारूढां सतोयजलदच्छविम् ।
त्रिनेत्रां बिभ्रतीं भालं चन्द्रखण्डावतंसितम् ॥ २५८ ॥
ददतीं द्विषतां भीतिं युद्धोद्यतकलेवराम् ।
देवीमष्टभुजां घोरभृकुटीभीषणाकृतिम् ॥ २५९ ॥
पद्मं गदां धनुर्मुण्डं वामे सम्बिभ्रतीं क्रमात्।
त्रिशूलं करवालं च विशिखं पाशमेव च ॥ २६० ॥
धारयन्तीं दक्षिणेन सर्वालङ्कारमण्डिताम् ।
कृपाणखेटकौ दोर्भ्यां बिभ्रतीभिरहर्निशम् ॥ २६१ ॥
कन्यकाभिश्चतसृभिः सेव्यमानां विचिन्तयेत् ।

शूलिनी के मन्त्र ध्यान—हे पार्वति ! अब शूलिनी के मन्त्र और ध्यान को सुनो । दो बार 'ज्वल' कहकर 'शूलिनि' कहे । फिर 'दुष्टग्रह' कहकर क्रोधबीज को उद्धृत करे । उसके बाद अस्त्र और शिर कहे (मन्त्र—ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्टग्रहं हूं फट् स्वाहा) यह पन्द्रह अक्षरों वाला मन्त्र है । ध्यान—सिंह पर आरूढ, जल से परिपूर्ण बादल के समान (नील) छवि वाली, तीन नेत्रों वाली, चन्द्रखण्ड से युक्त भालवाली, शत्रुओं को भय देने वाली, युद्ध के लिये उद्यत शरीर वाली, अष्टभुजा, भयङ्कर भौंहों से डरावनी आकृतिवाली, बायें हाथों में कमल, गदा, धनुष और मुण्ड तथा दायें हाथों में त्रिशूल, तलवार, बाण और पाश को क्रमशः धारण की हुई, सर्वालङ्कार-अलङ्कृत, भुजाओं में निरन्तर कृपाण और खेटक धारण की हुई, चार कन्याओं के द्वारा सेव्यमान (देवी) का ध्यान करना चाहिये ॥ २५६-२६२ ॥

[वनदुर्गाया मन्त्रध्याने]

अथातो वनदुर्गायाः प्रवक्ष्ये मनुमुत्तमम् ॥ २६२ ॥
तारं वाग्भवमुद्धृत्य लक्ष्मीं लज्जां च योगिनीम् ।
क्रोधमङ्कुशमुल्लिख्य शिरोऽन्तोऽयं नवाक्षरः ॥ २६३ ॥
कालाभ्रसमदेहाभां सिंहस्कन्धोपरि स्थिताम् ।
मौलिबद्धेन्दुशकलां कटाक्षैः शत्रुभीतिदाम् ॥ २६४ ॥
त्रिनेत्रां पीवरोरोजां स्मेरवक्त्रां चतुर्भुजाम् ।
शङ्खं चक्रं गदां खड्गमुद्वहन्तीं हरप्रियाम् ॥ २६५ ॥
पूरयन्तीं जगत्सर्वं स्वतेजोभिर्विचिन्तयेत् ।

वनदुर्गा के मन्त्र ध्यान—इसके बाद अब मैं आपको वनदुर्गा का उत्तम मन्त्र बतलाऊँगा—तार, वाग्भव को उद्धृत कर लक्ष्मी, लज्जा, योगिनी (=छ्रीं) क्रोध अङ्कुश का उल्लेख कर अन्त में 'शिर' कहना चाहिये । (मन्त्र—ॐ ऐं श्रीं ह्रीं छ्रीं हूं क्रों स्वाहा) । यह नव अक्षरों वाला मन्त्र है । ध्यान—काले बादल के समान शरीरकान्ति वाली, सिंह के कन्धे पर बैठी, शिर पर चन्द्रमा का खण्ड धारण की हुई, कटाक्षों से शत्रुओं को भय देने वाली, तीन नेत्रों और उन्नत स्तनों वाली,

मुस्कानभरे मुख और चार भुजाओं वाली, शङ्ख, चक्र, गदा और खड्ग धारण की हुई, शिव की प्रिया तथा समस्त संसार को अपने तेज से आपूरित करती हुई (देवी का) ध्यान करना चाहिये ॥ २६२-२६६ ॥

[त्रिपुटाया मन्त्रध्याने]

त्रिपुटाया मनुर्बीजैस्त्रिभिर्लक्ष्मीत्रपास्मरैः ॥ २६६ ॥
ध्यानं वदाम्यथैतस्याः सर्वसिद्धिविधायकम् ।
गौराङ्गीं रत्नमञ्जीरकाञ्चीग्रैवेयकोज्ज्वलाम् ॥ २६७ ॥
रत्नमौलिं त्रिनयनामर्द्धेन्दुकृतशेखराम् ।
चतुर्भुजां रक्तवस्त्रगन्धमाल्यानुलेपनाम् ॥ २६८ ॥
रक्तोत्पलं चापपाशौ वामतो दधतीं शिवाम् ।
दक्षिणेऽप्यङ्कुशं पुष्पं वाणान् सम्बिभ्रतीं तथा॥ २६९ ॥

त्रिपुटा के मन्त्र ध्यान—त्रिपुटा का मन्त्र लक्ष्मी लज्जा और काम के तीन बीजों से (बनता) है । (मन्त्र—श्रीं ह्रीं क्लीं) । अब इसके सर्वसिद्धिविधायक ध्यान को बतला रहा हूँ—गोरे अङ्गों वाली, रत्नजटित मञ्जीर काञ्ची और ग्रैवेयक से दीप्यमान, शिर पर रत्न धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली, मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण की हुई, चार भुजा वाली, रक्तवर्ण के वस्त्र, गन्ध, माला और लेप धारण की हुई, बायें हाथों में लाल कमल धनुष, पाश तथा दायें हाथों में अङ्कुश, पुष्प और बाणों को धारण की हुई है ॥ २६६-२६९ ॥

[त्वरिताया मन्त्रध्याने]

प्रवदामि मनूद्धारं त्वरिताया अतः परम् ।
प्रगवं मायिकं बीजं क्रोधबीजमतः परम् ॥ २७० ॥
पाशमङ्कुशबीजं च वधूबीजमतः परम् ।
पुनः क्रोधं ततोऽन्त्यार्णे युञ्जीताधोदतं स्वरम्॥ २७१ ॥
पुनर्मायां तदन्तेऽस्त्रं मन्त्रः प्रोक्तो दशाक्षरः ।
कथ्यमानमथ ध्यानं समाकर्णय पार्वति ॥ २७२ ॥
इन्द्रनीलशिलाखण्डतुल्यावयवरोचिषम् ।
पत्राच्छादितवक्षोजनितम्बजघनस्फिचम् ॥ २७३ ॥
गुञ्जाहारसमुल्लासिपीवरोरोजयुग्मकाम् ।
अलङ्कारतया बद्धान् भुजगानष्ट बिभ्रतीम् ॥ २७४ ॥
ताटङ्काङ्गदमञ्जीरहारकुण्डलतामिताम् ।
मयूरपिच्छसम्बद्धकपालकृतशेखराम् ॥ २७५ ॥
किरातवेषं दधतीं त्रिनेत्रां जगदम्बिकाम् ।
वराभयोद्यतकरां कृपास्मेरमुखाम्बुजाम् ॥ २७६ ॥

त्वरिता के मन्त्र ध्यान—इसके बाद त्वरिता देवी के मन्त्र का उद्धार बतला रहा हूँ। प्रणव, माया बीज इसके बाद क्रोध बीज, पाश, अङ्कुश बीज तत्पश्चात् वधूबीज पुनः क्रोध इसके बाद अन्तिम वर्ण में अधोदन्त (=औं) स्वर को जोड़ना चाहिये। पुनः माया उसके बाद अस्त्र कहना चाहिये। (मन्त्र—ॐ ह्रीं हूं आं क्रों स्त्रीं हूं औं ह्रीं फट्) यह दश अक्षरों वाला मन्त्र कहा गया है। हे पार्वति! अब इसके कथ्यमान ध्यान को सुनो—नीलम पत्थर के टुकड़ों के समान अवयवों से कान्तियुक्त, पत्तों के द्वारा स्तन नितम्ब जघन और स्फिक् (=कूल्हों) को ढँके रखने वाली, गुञ्जा के हार से शोभायमान दोनों स्तनों वाली, अलङ्कार के रूप में बद्ध आठ सर्पों को धारण की हुई, ताटङ्क, अङ्गद, मञ्जीर, हार और कुण्डल से तामित (=अलङ्कृत), मयूर की पूँछ को बाँध कर कपाल पर रखी हुई, किरातवेष को धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली, हाथों में वरद एवं अभय मुद्रा धारण की हुई, कृपा की इच्छा से मुस्कानयुक्त मुखकमल वाली जगदम्बिका का ध्यान करना चाहिये ॥ २७०-२७६ ॥

[अघोराया मन्त्रध्याने]

अथाघोरामनुं वक्ष्ये येन सिद्ध्यन्ति साधकाः।
करामलकवद् विश्वं यस्य संस्मरणादपि ॥ २७७ ॥
मायारमाङ्कुशानङ्गवधूवाग्भवगारुडैः ।
योगिनीशाकिनीकालीफेत्कारीक्रोधबीजकैः ॥ २७८ ॥
सम्बोधनमघोरायाः सिद्धिं मे देहि चोद्धरेत् ।
ततश्च दापयेत्युक्त्वा स्वाहान्तो मनुरिष्यते ॥ २७९ ॥
पञ्चविंशत्यक्षरोऽयं मन्त्रो वाञ्छितसिद्धिकृत् ।
अथ ध्यानं व्याहरामि येन मन्त्रः प्रसिद्ध्यति ॥ २८० ॥
सुस्निग्धकज्जलग्रावतुल्यावयवरोचिषम् ।
विशालवर्तुलारक्तनयनत्रितयान्विताम् ॥ २८१ ॥
श्वेतत्रस्थिकृताकल्पसमुज्ज्वलतनुच्छविम् ।
दिगम्बरां मुक्तकेशीं नृमुण्डकृतकुण्डलाम् ॥ २८२ ॥
शवोपरि समारूढां दंष्ट्राविकटदर्शनाम् ।
द्विभुजां मार्जनीसूर्पहस्तां पितृवनस्थिताम् ॥ २८३ ॥

अघोरा के मन्त्र ध्यान—अब अघोरा के मन्त्र को बतलाऊँगा जिससे साधक सिद्ध हो जाते हैं। जिस (मन्त्र) के स्मरणमात्र से विश्व हस्तामलक की भाँति (ज्ञात) होता है। माया, रमा, अङ्कुश, काम, वधू, वाग्भव, गरुड, योगिनी, शाकिनी, काली, फेत्कारी, क्रोध, बीजों के साथ अघोरा का सम्बोधन कहकर 'सिद्धिं मे देहि' कहे। इसके बाद 'दापय' कहकर अन्त में 'स्वाहा' कहे। (मन्त्र—ह्रीं श्रीं क्रों क्लीं स्त्रीं ऐं क्रौं छ्रीं फ्रें क्रीं हस्ख्फ्रें हूं अघोरे सिद्धिं मे देहि दापय स्वाहा)। पचीस अक्षरों वाला यह मन्त्र वाञ्छित की सिद्धि देने वाला है। अब मैं ध्यान बतला रहा हूँ जिससे

मन्त्र सिद्ध होता है—चिकने कज्जल पत्थर (=काले पत्थर) के समान अवयव की चमक वाली, विशाल. गोल. कुछ लाल रंग वाले तीन नेत्रों वाली, मनुष्य की श्वेत अस्थि से युक्त उज्ज्वल तनुशोभा वाली, नग्न, खुले बालों वाली, मनुष्य के मुण्ड का कुण्डल पहनी हुई, शव के ऊपर बैठी हुई, दाँतों के कारण भयङ्कर दिखलायी पड़ने वाली, द्विभुजा, हाथ में झाड़ू और सूप ली हुई श्मशान वासिनी (अघोरा का ध्यान करना चाहिये) ॥ २७७-२८३ ॥

[जयलक्ष्म्या मन्त्रध्याने]

जयलक्ष्मीमन्त्रमतो ब्रवीमि परमेश्वरि ।
वाग्भवं भुवनेशी च लक्ष्मीकामसदाशिवाः ॥ २८४ ॥
जयलक्ष्मि ततो ब्रूयाद् युद्धे मे विजयं वदेत् ।
देहि प्रासादपाशौ च शृणिबीजमतः परम् ॥ २८५ ॥
अस्त्रत्रितयसंयुक्तं शिरस्तदनु कीर्तयेत् ।
जयलक्ष्मीमथो ध्यायेदासीनां कमलोपरि ॥ २८६ ॥
विद्युत्कनकवर्णाभां मुक्तादामविराजिताम् ।
पृथुलोत्तुङ्गवक्षोजां लोचनत्रितयान्विताम् ॥ २८७ ॥
चतुर्भुजां पद्मयुगं वराभयमथापि च ।
दधतीं कौस्तुभोद्भासिहृदयां चिन्तयेत् पराम् ॥ २८८ ॥

जयलक्ष्मी के मन्त्र ध्यान—हे परमेश्वरि ! इसके बाद मैं आपको जयलक्ष्मी मन्त्र को बतलाऊँगा । वाग्भव भुवनेश्वरी लक्ष्मी काम सदाशिव बीजों के बाद 'जयलक्ष्मि' कहे । फिर 'युद्धे में विजयं देहि' कहने के बाद प्रासाद पाश बीज फिर शृणि बीज (=क्रों) कहे । फिर तीन अस्त्र कहने के बाद शिरो बीज कहे । (मन्त्र—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्क्रों? जयलक्ष्मि युद्धे में विजयं देहि हौं आं क्रों फट् फट् फट् स्वाहा) इसके बाद जयलक्ष्मी का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये कि वे कमल पर बैठी हैं; विद्युत अथवा स्वर्ण के वर्ण सी कान्तिवाली, मोती की माला पहनी हुई, बड़े ऊँचे स्तनों वाली, तीन नेत्रों से युक्त, चार भुजा वाली, (हाथों में) दो कमल, वरद एवं अभय मुद्रा धारण की हुई हृदय पर कौस्तुभमणि पहनी हुई है । ऐसी परा देवी का ध्यान करना चाहिये ॥ २८४-२८८ ॥

[वज्रप्रस्तारिण्या मन्त्रध्याने]

व्याहराम्यथ देवेशि वज्रप्रस्तारिणीमनुम् ।
तारत्रपारमाकामप्रासादाङ्कुशबीजकैः ॥ २८९ ॥
सम्बोधनं ततो देव्याः स्वाहान्तो मनुरीरितः ।
रत्नसिन्धौ रत्नपोतोपरि देवीं निषेदुषीम् ॥ २९० ॥
कमले द्वादशदले सन्निविष्टां हसन्मुखीम् ।
रत्नाङ्गीं रत्नमुकुटां चन्द्रखण्डविराजिताम् ॥ २९१ ॥

स्तनभारावनम्राङ्गीं विशालनयनत्रयाम् ।
षड्भुजां रत्नखचितरक्ताम्बरविराजिताम् ॥ २९२ ॥
बीजपूरधनुःपाशान् दक्षिणे दधतीं शिवाम् ।
अङ्कुशस्मरकोदण्डकपालानि च वामतः ॥ २९३ ॥
विचिन्त्यैवं जगद्धात्रीं न्यासङ्कुर्यादतन्द्रितः ।

वज्रप्रस्तारिणी के मन्त्र ध्यान—हे देवेशि! अब वज्रप्रस्तारिणी मन्त्र को बतला रहा हूँ । तार, लज्जा, लक्ष्मी, काम, प्रासाद, अङ्कुश, बीजों के साथ देवी का सम्बोधन और अन्त में 'स्वाहा' यह मन्त्र कहा गया है (मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रौं क्रों वज्रप्रस्तारिणि स्वाहा) । ध्यान-रत्नों के समुद्र में रत्न की नौका पर बैठी हुई, द्वादशदल कमल पर विराजमान, हँसती हुई, अङ्गों में रत्न धारण की हुई, रत्नजटित मुकुट वाली, चन्द्रखण्ड से शोभायमान, स्तनों के भार से नत शरीर वाली, तीन विशाल नेत्रों वाली, छह भुजाओं वाली, रत्नजटित लाल वस्त्र धारिणी है । दायें हाथों में बीजपूर (=बिजौरा नीबू) धनुष और पाश तथा बायें हाथों में अङ्कुश स्मरधनुष एवं कपाल धारण की है । जगद्धात्री का इस प्रकार अतन्द्रित हुआ ध्यान कर साधक न्यास करे ॥ २८९-२९४ ॥

[पद्मावत्या मन्त्रध्याने]

मायामादौ समुद्धृत्य पद्मावतिपदं ततः ॥ २९४ ॥
शिरोमन्त्रान्वितो ज्ञेयो मन्त्रः सप्ताक्षरो महान् ।
अरुणामरविन्दस्थां फुल्लपद्मसमाननाम् ॥ २९५ ॥
कराभ्यां दधतीं रक्तोत्पलद्वन्द्वं त्रिलोचनाम् ।

पद्मावती के मन्त्र ध्यान—पहले माया बीज फिर 'पद्मावति' फिर शिरोमन्त्र से युक्त यह सात अक्षरों वाला मन्त्र है (मन्त्र—ह्रीं पद्मावति स्वाहा) । ध्यान—अरुण वर्ण वाली, कमल पर बैठी हुई, खिले कमल के समान मुख वाली, त्रिनेत्रा तथा हाथों में दो कमल ली हुई है ॥ २९४-२९६ ॥

[अन्नपूर्णाया मन्त्रध्याने]

अथ वक्ष्येऽन्नपूर्णाया मन्त्रं सप्तदशाक्षरम् ॥ २९६ ॥
मायाबीजं समुद्धृत्य नमो भग इतीरयेत् ।
वति माहेश्वरि ततोऽप्यन्नपूर्णे समाहरेत् ॥ २९७ ॥
वह्निजायायुतो मन्त्रो महदन्नसमृद्धिकृत् ।
विचित्रवसनां देवीमरुणामम्बुजासनाम् ॥ २९८ ॥
स्तनभारावनम्राङ्गीं नवचन्द्रार्द्धशेखराम् ।
प्रमथाधिपमालोक्य प्रहृष्टवदनाम्बुजाम् ॥ २९९ ॥
हेमभाण्डं रत्नदर्वीं दधतीं करयोर्द्वयोः ।

अन्नपूर्णा के मन्त्र ध्यान—अब अन्नपूर्णा के सत्रह अक्षरों वाले मन्त्र को बतलाऊँगा । माया बीज का उच्चारण कर 'नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे' कहना चाहिये । 'स्वाहा' से युक्त यह मन्त्र अन्न की महासमृद्धि करता है । ध्यान—अरुण रंग की, विचित्र वस्त्रों को धारण की हुई, रक्तवर्ण वाली, कमल पर बैठी, स्तनभार से नतशरीर वाली, नवीन अर्धचन्द्र को मस्तक पर धारण की हुई, शिव को देखकर प्रसन्न वदनाम्बुज वाली, दोनों हाथों में सोने का पात्र और रत्नजटित दर्वी (=कल्छुल) धारण की हुई है ॥ २९६-३०० ॥

[कालसङ्कर्षण्या मन्त्रध्याने]

अथ प्रवक्ष्ये देवेशि कालसङ्कर्षणीमनुम् ॥ ३०० ॥
यन्न ज्ञातं न चाख्यातं कस्मैचिदपि केन च ।
तारत्रपारमाकामवाग्भवाङ्कुशकालिकाः ॥ ३०१ ॥
पाशक्रोधमहाक्रोधप्रासादामृतगारुडाः ।
फेत्कारीधनदाचण्डयोगिनीशाकिनीघनैः ॥ ३०२ ॥
विद्युद्रतिप्रेतभूतखेचरीकालपन्नगाः ।
कालसङ्कर्षणि प्रोच्य क्रोधयुग्मं ततः परम् ॥ ३०३ ॥
स्वाहान्तो मन्त्रराजोऽयं मन्त्रः षट्त्रिंशदक्षरः ।
ध्यानं वदामि ते देवि तत्र चेतो निवेशय ॥ ३०४ ॥
घनाघनप्रभां देवीं पितृकाननचारिणीम् ।
प्रज्वलत्पावकचिताशवमध्यनिषेदुषीम् ॥ ३०५ ॥
अग्निकीलालसमया जटया गुल्फसंस्पृशा ।
विमुक्तया शोभमानां शोणनेत्रत्रयान्विताम् ॥ ३०६ ॥
अतिघोरतरन्नस्थिभूषणोज्ज्वलविग्रहाम् ।
पीवरापघनां खर्वां लम्बमानमहोदरीम् ॥ ३०७॥
छिन्नचन्द्रकलातुल्यदंष्ट्राकोटिभयङ्कराम् ।
लेलिहानमहाशोणप्रकम्पिरसनां शिवाम् ॥ ३०८ ॥
विस्रस्तकेशमनुजकपालकृतकुण्डलाम् ।
शुष्कैर्न्नरास्थिभिः शुभ्रैर्विहिताशेषभूषणाम् ॥ ३०९ ॥
मयूरपिच्छनिचयच्छादितोरुकटिस्थलाम् ।
मृतब्रह्मादिगीर्वाणकपालरचितस्त्रजम् ॥ ३१० ॥
कृत्वाट्टहासं धावन्तीं पीनोन्नतपयोधराम् ।
विदीर्णसृक्वयुगलां व्यात्तघोराननां सदा ॥ ३११ ॥
सर्वशस्त्रास्त्रसम्पूर्णषट्त्रिंशद्दोर्विराजिताम् ।

कालसङ्कर्षिणी के मन्त्र ध्यान—हे देवेशि! अब कालसङ्कर्षिणी का मन्त्र बतलाऊँगा जिसको आज तक किसी ने किसी को भी नहीं बतलाया । तार, त्रपा,

रमा, काम, वाग्भव, अङ्कुश, काली, पाश, क्रोध, महाक्रोध, प्रासाद, अमृत, गरुड़, फेत्कारी, धनदा, चण्ड, योगिनी, शाकिनी, घन, विद्युत्, रति, प्रेत, भूत, खेचरी, काल , सर्प (बीजों का उच्चारण करे फिर) 'कालसङ्कर्षिणि' कहकर दो क्रोध बीज के साथ अन्त में 'स्वाहा' कहे । यह छत्तीस अक्षरों वाला मन्त्र है । (मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं क्रों क्रीं आं हूं क्ष्रूं हौं वं क्रौं ह्स्ख्फ्रें क्ष्रूं फ्रों छ्रीं फ्रें क्लौं ब्लौं क्लूं स्हौः स्फ्रें ह्स्ख्फ्रें झं थं कालसङ्कर्षिणि हूं हूं स्वाहा) हे देवि! अब तुमको ध्यान बतला रहा हूँ, उसमें मन को लगाओ । जलपूर्ण घने बादल की कान्तिवाली, श्मशानचारिणी, जलती हुई अग्नि वाली चिता पर रखे हुए शव के ऊपर विराजमान, गुल्फ (=एड़ी) तक लटकने वाली द्रुत अग्नि के समान खुली जटाओं से शोभायमान, लाल तीन नेत्रों वाली, अत्यन्त घोर नरास्थि के आभूषण से दीप्त शरीर वाली, पीवर अङ्गों वाली, छोटे कद की, लटकते हुए बड़े पेट वाली, छिन्न चन्द्रकला के समान दाँतों की नोक से भयङ्कर, अत्यधिक रक्त को चाटने में लगी हुई जीभ वाली, बिखरे हुए बालों वाले नरकपाल का कुण्डल पहनी हुई उज्ज्वल नरास्थि से बने समस्त भूषणों वाली, मोर के पङ्खों से उरु और कटिस्थल को आच्छादित की हुई, मृत ब्रह्मा आदि देवताओं के कपाल से बनी माला पहनी हुई, अट्टहास कर दौड़ती हुई, पीन उन्नत स्तनों वाली, फटी सृक्क (=गलफर) वाली, खुले अतएव घोर मुख वाली, समस्त शस्त्रास्त्रों से युक्त छत्तीस भुजाओं से शोभायमान है ॥ ३००-३१२ ॥

पद्मचर्म्मधनुःपाशाङ्कुशानपि वरानने ॥ ३१२ ॥
भिन्दिपालं तथा प्रासं घण्टां कुणपमेव च ।
शङ्खमृष्टिं च डमरूमक्षमालां क्रमेण च ॥ ३१३ ॥
रक्तकुम्भं नृमुण्डं च शत्रुजिह्वां ततः परम् ।
खर्परं चाभयं वामे दधतीं भीषणाकृतिम् ॥ ३१४ ॥
त्रिशूलखड्गविशिखचक्रशक्तिगदा अपि ।
मुद्गरं परिघं कुन्तं तथा मुशलतोमरौ ॥ ३१५ ॥
परश्वधं नागपाशं भुशुण्डीं पट्टिशं तथा ।
खट्वाङ्गं कर्त्तृकां दक्षे वहन्तीं च तथा वरम् ॥ ३१६ ॥
करालाभिः परिवृतां डाकिनीनवकोटिभिः ।
कालसङ्कर्षणीनाम्नीं कल्पान्ते क्षयकारिणीम् ॥ ३१७ ॥
कोटिविद्युद्दुर्निरीक्ष्यां देवैर्हरिहरादिभिः ।
एवं ध्यात्वा न्यसेद् देवीं चतुर्वर्गफलप्रदाम् ॥ ३१८ ॥

कमल, चर्म, धनुष, पाश, अङ्कुश, भिन्दिपाल, प्रास, घण्टा, मृतशरीर, शङ्ख, ऋष्टि, डमरू, अक्षमाला, रक्तपूर्णघट, नरमुण्ड, शत्रुजिह्वा, खर्पर और अभयमुद्रा को बायें हाथों में धारण की हुई यह भयानक रूप वाली है । दायें हाथों में त्रिशूल, खड्ग, बाँण, चक्र, शक्ति, गदा, मुद्गर, परिघ, भाला, मुशल, तोमर, परश्वध,

नागपाश, कैंची एवं वरद मुद्रा धारण की हुई है । नव करोड़ विकराल डाकिनियों से परिवृत, कल्पान्त में क्षय करने वाली, हरि हर आदि देवताओं के द्वारा भी करोड़ों विद्युत् के समान दुर्निरीक्ष्य चतुर्वर्गफलप्रदा काल-सङ्कर्षिणी नामक देवी का ध्यान कर न्यास करना चाहिये ॥ ३१२-३१८ ॥

[धनदाया मन्त्रध्याने]

अथातो धनदामन्त्रं व्याहरामि तवाग्रतः ।
महाकालसमारूढः क्षेत्रपालो वरानने ॥ ३१९ ॥
वामकर्णान्वित बीजं सद्य एव वसुप्रदम् ।
देवीं कोकनदारूढां विकचाब्जसमाननाम् ॥ ३२० ॥
कृतपद्ममहापद्मनिधिकुण्डलयुग्मिकाम् ।
मञ्जीरतापन्नशङ्खमकराख्यनिधिद्वयाम् ॥ ३२१ ॥
रत्नकङ्कणतापन्नमुकुन्दनिधिकच्छपाम् ।
ललाटबिन्दुतापन्नविराजत्कुन्दशेवधिम् ॥ ३२२ ॥
त्रिलोचनां नीलनिधिकृतहारां हसन्मुखीम् ।
अञ्जलिद्वितयेनापि ददतीं सर्वतो धनम् ॥ ३२३ ॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तां विचित्रवसनां पराम् ।
चिन्तयेद् धनदां देवीं वाञ्छितार्थफलप्रदाम्॥ ३२४ ॥

धनदा के मन्त्र ध्यान—अब तुम्हारे समक्ष धनदा का मन्त्र बतलाता हूँ । हे वरानने! महाकाल पर समारूढ क्षेत्रपाल और वामकर्ण से युक्त बीज तत्काल धन देता है (मन्त्र—क्ष्मूं) । ध्यान—यह देवी कोकनद (=रक्त कमल) पर आरूढ, विकसित कमल के समान मुख वाली, पद्म और महापद्म दो निधियों का कुण्डल पहनी हुई, शङ्ख और मकर नामक दो निधियों को मञ्जीर (=पादाभूषण) बनायी हुई, मुकुन्द और कच्छप निधियों को कङ्कण बनायी हुई, कुन्द निधि को ललाट बिन्दु बनायी हुई है । तीन नेत्रों वाली, नील निधि का हार पहनी हुई, हंसी युक्त, दोनों हाथों से सम्पूर्ण धन देती हुई, सर्वालङ्कार युक्त, विचित्र (=रंग-बिरंगे) वस्त्र धारण की हुई तथा वाञ्छितार्थ फलप्रदा हैं—ऐसी देवी का ध्यान करना चाहिये ॥ ३१९-३२४ ॥

[कुक्कुट्या मन्त्रध्याने]

प्रवक्ष्ये कुक्कुटीमन्त्रं सद्यः प्रत्ययकारकम् ।
वाग्भवं मायिकं बीजं लक्ष्मीं काममनूच्चरेत् ॥ ३२५ ॥
फेत्कारीं क्रोधमुल्लिख्य कुक्कुटीति ततो वदेत् ।
कालीपाशाङ्कुशानुक्त्वा शाकिनीं चण्डमुच्चरेत् ॥ ३२६ ॥
सास्त्रद्वयं शिरः पश्चाद्विज्ञेयोऽष्टादशाक्षरः ।
इयं वै कुक्कुटीविद्या गुप्ता सर्वागमेष्वपि ॥ ३२७ ॥

स्कन्देनोपासिता पूर्वं तारकस्य जयेप्सुना ।
अब्धौ रत्नमये पोते रत्नसिंहासनस्थिताम् ॥ ३२८ ॥
श्यामां त्रिनेत्रां कुटिलकुन्तलभ्रूविराजिताम् ।
माणिक्यशकलद्योतिदन्तमण्डलमण्डिताम् ॥ ३२९ ॥
रत्नाभरणनद्धाङ्गीं चतुर्दोर्वल्लिशोभिताम् ।
कुक्कुटीं खर्प्परं वामे बिभ्रतीं शशिशेखराम् ॥ ३३० ॥
खड्गं च कर्त्तृकां दक्षे धारयन्तीं शुचिस्मिताम् ।

कुक्कुटी के मन्त्र ध्यान—अब सद्यः प्रत्यय (=यश, बुद्धि) देने वाले कुक्कुटी मन्त्र को बतलाऊँगा । वाग्भव, माया, लक्ष्मी, काम, फेत्कारी, क्रोध, बीजों को कहकर 'कुक्कुटि' कहे । फिर काली पाश अङ्कुश बीजों का कथन कर शाकिनी और चण्ड बीजों का उच्चारण करे । दो अस्त्र और अन्त में शिर को कहने से अट्ठारह अक्षर वाला मन्त्र बनता है । (मन्त्र—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्स्ख्फ्रें हूं कुक्कुटि क्रीं आं क्रों फ्रें फ्रों फट् फट् स्वाहा) । यह कुक्कुटीविद्या सभी आगमों में गुप्त रखी गयी है । तारकासुर के ऊपर विजय की इच्छा वाले स्कन्द ने इसकी उपासना की । ध्यान—समुद्र में रत्नमय जहाज के ऊपर रत्नजटित सिंहासन पर बैठी हुई श्यामवर्ण वाली (अथवा यौवनमध्यथा), त्रिनेत्रा, कुटिल कुन्तल वाले भौंह से शोभायमान, माणिक्य के टुकड़ों की कान्तिवाले दन्तसमूह से सुशोभित, रत्नजटित अलङ्कारों को अङ्गों में पहनी हुई, चार भुजलताओं से शोभित, बायें दो हाथों में कुक्कुटी (=मुर्गी) और खर्पर ली हुई है, मस्तक पर चन्द्रमा वाली, दायें हाथ में खड्ग और कैंची ली हुई शुचिस्मिता कुक्कुटी देवी का ध्यान करने के बाद न्यास करे ॥ ३२५-३३१ ॥

[भोगवत्या मन्त्रध्याने]

चिन्तयित्वा चरेन्न्यासं शृणु भोगवतीमथ ॥ ३३१ ॥
पाशाङ्कुशौ समुद्धृत्य प्रासादोऽन्तो मनुर्मतः ।
त्र्यक्षरो जगतीमध्ये सर्वसौख्यप्रदायकः ॥ ३३२ ॥
अरुणामरविन्दास्यामतिपीनपयोधराम् ।
शेखरीकृतशीतांशुं रत्नमौलिं त्रिलोचनाम् ॥ ३३३ ॥
वराभयकरां शान्तां सितपद्मोपरि स्थिताम् ।

भोगवती के मन्त्र ध्यान—अब भोगवती को सुनो । पाश और अङ्कुश का उच्चारण कर अन्त में प्रासाद कहने पर (इस देवी का) मन्त्र होता है (मन्त्र—आं क्रों हौं) यह तीन अक्षरों वाला मन्त्र संसार मे समस्त सुखों को देने वाला है । ध्यान—रक्त वर्ण वाली, कमल जैसे मुख वाली, अत्यन्त पीन स्तनों वाली, मस्तक पर चन्द्रमा धारण की हुई, शिर पर रत्न (जटित मुकुट धारण करने) वाली, त्रिनेत्रा, श्वेत कमल के ऊपर बैठी हुई हाथों में वरद एवं अभय मुद्रा धारण की हुई, शान्त देवी का ध्यान करना चाहिये ॥ ३३१-३३४ ॥

[शबरेश्वर्या मन्त्रध्याने]

कथयाम्यथ देवेशि विद्यां तां शबरेश्वरीम् ॥ ३३४ ॥
तारं त्रपां तथा पाशं ङेन्ता च शबरेश्वरी ।
युक्तो हृन्मनुनाप्यन्ते महामन्त्रो दशाक्षरः ॥ ३३५ ॥
श्यामा पर्णावृततनुर्गुञ्जाहारविराजिता ।
स्मेरा षोडशवर्षीयावतंसितलतादला ॥ ३३६ ॥
वैणवं भाजनं वामे कटेरुपरि बिभ्रतीम् ।
फलानि चिन्वती दक्षकरेण विपिनावनौ ॥ ३३७ ॥
वराटककृताकल्पा गायन्ती खर्वविग्रहा ।
भक्तिभावतया देवी ध्यातव्या शबरेश्वरी ॥ ३३८ ॥

शबरेश्वरी के मन्त्र ध्यान—हे देवेशि! अब उस शबरेश्वरी विद्या को बतला रहा हूँ। तार, त्रपा, पाश कहने के बाद ङेऽन्त शबरेश्वरी का उच्चारण कर अन्त में हृदय मन्त्र कहे। यह दश अक्षरों वाला मन्त्र है। (मन्त्र—ॐ ह्रीं आं शबरेश्वर्यै नमः)। ध्यान—श्यामा, पत्तों से शरीर को ढँकी हुई, गुञ्जा के हार वाली, स्मयमाना, सोलहवर्षीया, लता एवं पत्रों को अवतंस (=कर्णाभरण) बनाई हुई, बायीं कटि के ऊपर बाँस का पात्र लटकायी हुई, दायें हाथ से जंगल की भूमि पर फल तोड़ती हुई, कौड़ियों का आभूषण धारण की हुई, गान करती हुई, नाटे कद की भगवती शबरेश्वरी देवी का ध्यान करना चाहिये ॥ ३३४-३३८ ॥

[कुब्जिकाया मन्त्रध्याने]

अथातः कुब्जिकामन्त्रमाकर्णय वरानने ।
नवकूटात्मिका (विद्या) चिन्तामणिरितीरिता ॥ ३३९ ॥
आदौ वैहायसं कूटं वायवीयं द्वितीयकम् ।
आग्नेयकूटं तार्तीयं फेत्कारी तुर्यमुच्यते ॥ ३४० ॥
पञ्चमं वारुणं कूटं शाङ्करं षष्ठमुच्यते ।
सप्तमं हंसकूटं स्यात् पराकूटमथाष्टमम् ॥ ३४१ ॥
नवमं डाकिनीकूटं गुप्तं सर्वागमेष्वपि ।
पूर्वमेव विशेषोऽस्याः कथितस्त्वयि पार्वति ॥ ३४२ ॥
अतो विशिष्य नो वच्मि तथाप्युक्तं समासतः ।
ध्यानं पूर्वोदितं कुर्याद् यथा देवि मयोदितम् ॥ ३४३ ॥

कुब्जिका के मन्त्र ध्यान—हे वरानने! अब इसके बाद कुब्जिका के मन्त्र को सुनो। नवकूटात्मिक (यह कुब्जिका देवी) चिन्तामणि कही गयी है। पहले आकाश कूट फिर वायुबीज तीसरा अग्निबीज चौथा फेत्कारी पाँचवा वरुण कूट छठां शङ्कर (=शं) सातवाँ हंस (=सं) बीज आठवाँ पराकूट और नवाँ डाकिनी कूट है। (मन्त्र—ह य र ह्स्ख्फ्रें वं शं सं ह्रीं ख्फ्रें)। यह समस्त आगमों में गुप्त है। हे

पार्वति! इसका विशेष तुमको पहले ही बतलाया जा चुका है इसलिये विस्तार से यहाँ नहीं कर रहा हूँ। तथापि संक्षेप में कहा गया। हे देवि! ध्यान पूर्वोक्त करना चाहिये जैसा कि मैंने पहले कहा है ॥ ३३९-३४३ ॥

[सिद्धिलक्ष्म्या मन्त्रध्याने]

त्वं चतुर्विंशतितमां सिद्धिलक्ष्मीमथो शृणु ।
लज्जां क्रोधं शाकिनीं च योगिनीं प्रेतमेव च ॥ ३४४ ॥
कालीमथाङ्कुशं बीजं शाकिनीं कामिनीमपि ।
लक्ष्मीं चण्डं च कालं च वैद्युतं भुजगार्णकम् ॥ ३४५ ॥
स्वाहान्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रोऽमृतफलप्रदः ।
श्वेतां श्वेतशवारुढां नृमुण्डकृतकुण्डलाम् ॥ ३४६ ॥
पञ्चवक्त्रां महारौद्रीं प्रतिवक्त्रत्रिलोचनाम् ।
व्याघ्रचर्मावृतकटिं शुष्कावयवभूषिताम् ॥ ३४७ ॥
आबद्धयोगपट्टाञ्च नरास्थिकृतभूषणाम् ।
हस्तैः षोडशभिर्युक्तां विस्रस्तघनकुन्तलाम् ॥ ३४८ ॥
खड्गं बाणं तथा शूलं चक्रं शक्तिं गदामपि ।
जपमालां कर्त्तृकां च बिभ्रतीं दक्षिणे भुजे ॥ ३४९ ॥
फलकं कार्मुकं नागपाशं परशुमेव च ।
डमरुं फेरुपोतं च नरमुण्डं कपालकम् ॥ ३५० ॥
उद्वहन्तीं करे वामे दीर्घसर्वाङ्गभीषणाम् ।

सिद्धिलक्ष्मी के मन्त्र ध्यान—अब तुम चौबीसवीं सिद्धिलक्ष्मी को सुनो। लज्जा, क्रोध, शाकिनी, योगिनी, प्रेत, काली, अङ्कुश, शाकिनी, कामिनी, लक्ष्मी, चण्ड, काल, विद्युत, सर्प, बीजों को कहकर अन्त में 'स्वाहा' कहना चाहिये। (मन्त्र—ह्रीं हूं फ्रें छ्रीं स्हौः क्रीं क्रों फ्रें क्लीं श्रीं फ्रों जूं ब्लों दं स्वाहा) सोलह वर्णो वाला यह मन्त्र अमृतत्व देता है। ध्यान—श्वेत वर्ण की, श्वेत शव पर आरूढ, नरमुण्ड का कुण्डल पहनी हुई, पाँच मुखों वाली, महाभयङ्करी, प्रत्येक मुख में तीन आँखों वाली, कटिप्रदेश में बाघ का चर्म पहनी हुई, शुष्क अङ्गों वाली, सोलह हाथों से युक्त, बिखरे घने बालों वाली, दायें हाथों में खड्ग, बाण, त्रिशूल, चक्र, शक्ति, गदा, जपमाला और कैंची तथा बायें हाथों में फलक, धनुष, नागपाश, कुठार, डमरू, शृगाल का बच्चा, नरमुण्ड और कपाल ली हुई तथा समस्त लम्बे अङ्गों से भयङ्कर देवी (का ध्यान कर अङ्गन्यास करना चाहिये) ॥ ३४४-३५१ ॥

[बालाया मन्त्रध्याने]

कृत्वा ध्यानं न्यसेदङ्गे बालामाकलयाधुना ॥ ३५१ ॥
आदौ वाग्भवमुद्धृत्य कामबीजं ततः परम् ।
सकारोऽधोदन्तयुतो महासेनविराजितः ॥ ३५२ ॥

त्र्यक्षरः परमो मन्त्रो विद्यैश्वर्य्यप्रदायकः ।
समुद्यद्रविबिम्बाभामरुणक्षौमधारिणीम् ॥ ३५३ ॥
फुल्लराजीववदनां पीनोत्तुङ्गपयोधराम् ।
रत्नकेयूरताटङ्कमुक्ताहारविराजिताम् ॥ ३५४ ॥
त्रिनेत्रां बालशीतांशुखण्डशोभिललाटिकाम् ।
पद्मोपरि समासीनां बालां देवीं चतुर्भुजाम् ॥ ३५५ ॥
विद्यामभीतिं वामेन दक्षे जपवटीं वरम् ।
धारयन्तीं जगद्धात्रीं सर्वदैव हसन्मुखीम् ॥ ३५६ ॥
सञ्चिन्त्य न्यसनं कुर्यादप्रमत्तेन चेतसा ।

बाला के मन्त्र ध्यान—अब बाला को सुनो । पहले वाग्भव फिर काम अधोदन्त (=ओ) से युक्त सकार जो कि महासेन (=:) से सुशोभित है । (मन्त्र—ऐं क्लीं सौः) । तीन अक्षरों वाला यह परम मन्त्र विद्या देता है । ध्यान—उगते हुए सूर्यबिम्ब के समान कान्तिवाली, लाल रेशमी वस्त्र पहनी हुई, विकसित कमल के समान मुख वाली, पीन उत्तुङ्ग स्तनों वाली, रत्नजटित केयूर ताटङ्क एवं मोती के हार से शोभायमान, तीन नेत्रों वाली, ललाट पर बालचन्द्रखण्ड वाली, कमल के ऊपर बैठी, चार भुजा वाली बाला देवी बायें हाथों में विद्या और अभय मुद्रा, दायें हाथों में जपमाला और वरद मुद्रा धारण की हुई, जगत् का पालन करने वाली, सर्वदा हँसती हुई देवी का अप्रमत्त चित्त से ध्यान कर न्यास करना चाहिये ॥ ३५१-३५७ ॥

[त्रिपुरसुन्दर्या मन्त्रध्याने]

अथाकर्णय देवेशि विद्यां त्रिपुरसुन्दरीम् ॥ ३५७ ॥
यत्र प्रतिष्ठिताः सर्वे तन्त्रडामरयामलाः ।
यतः परतरा विद्या न भूता न भविष्यति ॥ ३५८ ॥
केनापि नैव शप्तेयं नैव केन च कीलिता ।
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यथावदुपधारय ॥ ३५९ ॥
सव्योमसब्रह्मभूमित्रपार्णैराद्यकूटकम् ।
व्योमसब्रह्मगगनमेदिनी भुवनेश्वरी ॥ ३६० ॥
द्वितीयकूटमुद्दिष्टं विद्याराज्यफलप्रदम् ।
सक्रोधीशपिनाकीशलज्जाबीजान्त्यसंयुतम् ॥ ३६१ ॥
तृतीयकूटमुद्दिष्टं सर्वसिद्धिविधायकम् ।
एषा प्रकाशिता विद्या लोपामुद्राविधायिनी ॥ ३६२ ॥
यस्याः संस्मरणेनापि किं कार्यं नैव सिद्ध्यति ।
कथ्यमानं मया देवि ध्यानमस्या निशामय ॥ ३६३ ॥

त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र ध्यान—हे देवेशि ! अब त्रिपुरसुन्दरी विद्या को सुनो । जिसमें सभी तन्त्र डामर और यामल प्रतिष्ठित हैं । इससे बढ़कर विद्या न हुई और न

होगी । इसे न तो किसी ने शाप दिया और न किसी ने इसका कीलन किया । उसको मैं तुम्हें बतला रहा हूँ । जैसा मैं बतला रहा हूँ वैसा ही मन में समझो । आकाश ब्रह्म भूमि लज्जा वर्णों का पहला कूट है । आकाश, ब्रह्म, गगन, भूमि, भुवनेश्वरी यह दूसरा कूट है । यह विद्या और राज्य देने वाला है । क्रोधीश पिनाकीश लज्जा यह तृतीय कूट है जो सर्वसिद्धिदायक है । (मन्त्र स्वरूप—१.हं कं लं ह्रीं, २.कं लं ह्रीं) । यह प्रकाशिता विद्या लोपामुद्रा (अगस्त्य की पत्नी) को ऋषित्व प्रदान करने वाली है । कौन सा ऐसा कार्य है जो इसके स्मरण मात्र से नहीं सिद्ध होता । हे देवि! मेरे द्वारा इसके कथ्यमान ध्यान को सुनो ॥ ३५७-३६३ ॥

उद्यच्चन्द्रोदयक्षुब्धरक्तपीयूषवारिधेः ।
मध्ये हेममयी भूमी रत्नमाणिक्यमण्डिता ॥ ३६४ ॥
तन्मध्ये नन्दनोद्यानं मदनोन्मादनं महत् ।
नित्याभ्युदितपूर्णेन्दुज्योत्स्नाजालविराजितम् ॥ ३६५ ॥
सदा सह वसन्तेन कामदेवेन रक्षितम् ।
कदम्बचूतपुन्नागनागकेशरचम्पकैः ॥ ३६६ ॥
वकुलैः पारिजातैश्च सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः ।
झङ्कारमुखरैर्भृङ्गैः कूजद्भिः कोकिलैः शुकैः ॥ ३६७ ॥
नानावर्णैरथान्यैश्च द्विजसङ्घैर्निषेवितम् ।
शिखिकारण्डहंसाद्यैर्नानापक्षिभिरावृतम् ॥ ३६८ ॥
नानापुष्पलताकीर्णैः शोभितं वृक्षखण्डकैः ।
पर्यन्तदीर्घिकोत्फुल्लकमलोत्पलसम्भवैः ॥ ३६९ ॥
रजोभिर्धूसरैः सम्यक्सेवितं मलयानिलैः ।
ध्यात्वैतन्नन्दनोद्यानं तदन्तः प्राङ्गणं स्मरेत् ॥ ३७० ॥

उदीयमान चन्द्र के उदय से क्षुब्ध रक्त वर्ण के अमृतसिन्धु के मध्य में रत्नमाणिक्य से मण्डित स्वर्णमयी भूमि है । उसके बीच में कामोद्दीपक नन्दन वन है। यहाँ नित्योदित पूर्णचन्द्र की ज्योत्स्ना फैली रहती है । कामदेव वसन्त के साथ सदा (इस वन की) रक्षा करते हैं । कदम्ब, आम, पुन्नाग, नागकेशर, चम्पा, बकुल, पारिजात सभी ऋतुओं में पुष्पित रहते हैं । झङ्कारयुक्त भौंरों कूजती हुई कोकिलों, शुकों तथा अन्य नाना प्रकार के पक्षियों से यह वन व्याप्त है । मयूर कारण्डव हंस आदि अनेक पक्षियों से आवृत नाना पुष्पों एव लताओं से व्याप्त वृक्षों से सुशोभित, किनारे-किनारे तक व्याप्त तालाब के अन्दर खिले हुए कमलों से उत्पन्न पराग कणों से धूसर, मलयानिल से सेवित इस नन्दन वन का ध्यान कर उसके भीतर स्थित आंगन का ध्यान करना चाहिये ॥ ३६४-३७० ॥

शुद्धकाञ्चनसङ्काशवसुधाभिरलङ्कृतम् ।
प्राङ्गणं चिन्तयित्वेत्थं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ ३७१ ॥

तन्मध्ये मण्डपं ध्यायेद् व्याप्तब्रह्माण्डमण्डलम् ।
सहस्रादित्यसङ्काशं चतुरस्रसुशोभितम् ॥ ३७२ ॥
रत्नतेज:प्रभापुञ्जपिञ्जरीकृतदिङ्मुखम् ।
मध्यस्तम्भविनिर्मुक्तं कोणस्तम्भसमन्वितम् ॥ ३७३ ॥
महामाणिक्यवैदूर्य्यरत्नकाञ्चनभूषितम् ।
मुक्तादामवितानाढ्यं रत्नसोपानमण्डितम् ॥ ३७४ ॥
मन्दवायुसमाक्रान्तं गन्धधूपतरङ्गितम् ।
रत्नचामरघण्टादिवितानैरुपशोभितम् ॥ ३७५ ॥
जातीचम्पकपुन्नागकेतकीमल्लिकादिभि: ।
रक्तोत्पलसिताम्भोजमाधवीभि: सुपुष्पकै: ॥ ३७६ ॥
वद्धाभिश्चित्रमालाभि: सर्वत्र समलङ्कृतम् ।
तिर्यगूर्ध्वलसद्रत्नं पुत्तलीकोटिमण्डितम् ॥ ३७७ ॥
नानारत्नादिभिर्दिव्यैर्निर्मितं विश्वकर्मणा ।

शुद्ध स्वर्ण के समान पृथिवी से अलङ्कृत तथा देवताओं और सिद्धों से सेवित इस प्रकार के प्राङ्गण का ध्यान कर उसके बीच में ब्रह्माण्डमण्डल को व्याप्त करने वाले मण्डप का ध्यान करना चाहिये । यह मण्डप हजार सूर्य के समान (दीप्तिमय), चौकोर, रत्नों के तेज प्रभापुञ्ज से दिशाओं को आवृत करने वाला, मध्य में स्तम्भ-रहित, कोनों पर स्तम्भ वाला, महामाणिक्य वैदूर्य रत्न और स्वर्ण से अलङ्कृत, मोतियों की माला से भरा हुआ, रत्नों के सोपान से मण्डित, मन्दवायु से भरा, गन्ध एवं धूप से तरङ्गित, रत्न, चामर, घण्टा आदि के विस्तार से शोभित, जाती चम्पक पुन्नाग केतकी मल्लिका आदि रक्तकमल श्वेतकमल माधवी आदि पुष्पों से बनी विचित्र मालाओं से सर्वत्र समलङ्कृत, तिर्यक् और ऊपर की ओर चमकते रत्नों वाला, करोड़ों पुत्तलियों से मण्डित एवं विश्वकर्मा के द्वारा दिव्य अनेक रत्न आदि से विनिर्मित है ॥ ३७१-३७८ ॥

तन्मध्ये भावयेन्मन्त्री पारिजातं मनोहरम् ॥ ३७८ ॥
स्वर्णादिरत्नभूमिं च बालुकां काञ्चनप्रभाम् ।
उद्यदादित्यसङ्काशं व्याप्तब्रह्माण्डमण्डपम् ॥ ३७९ ॥
शतयोजनविस्तीर्णं ज्योतिर्मन्दिरमुत्तमम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं हेमप्राकारमण्डितम् ॥ ३८० ॥
रत्नोपक्लृप्तसंशोभिकपाटाष्टकसंयुतम् ।
नवरत्नसमाक्लृप्ततुङ्गगोपुरतोरणम् ॥ ३८१ ॥
हेमदण्डशिखालम्बिध्वजावलिपरिष्कृतम् ।
मध्यकोणस्थितस्तम्भनवरत्नसमन्वितम् ॥ ३८२ ॥
महामाणिक्यवैदूर्य्यरत्नचामरशोभितम् ।

मन्दवायुसमाक्रान्तं गन्धधूपैरलङ्कृतम् ॥ ३८३ ॥
बहुचामरघण्टादिवितानैरुपशोभितम् ।
कल्पवृक्षे गिरेः पार्श्वे छत्रं तन्मण्डपोपरि ॥ ३८४ ॥
सुवर्णसूत्रै रचितं तन्मध्ये रत्नमण्डपम् ।
तन्मध्ये स्फुरितं ध्यायेत् त्रिशृङ्गज्योतिरुत्तमम् ॥ ३८५ ॥
तस्य मध्ये महाचक्रं पीयूषपरिपूरितम् ।
रत्नसिंहासनं तस्या वेद्या मध्ये स्मरेच्छुभम् ॥ ३८६ ॥
विरिञ्चिविष्णुरुद्रेशरूपपादचतुष्टयम् ।
सदाशिवमयं साक्षात्तस्मिन् परशिवात्मकम् ॥ ३८७ ॥
पुष्पपर्य्यंकमाश्चर्य्य......(परिच्छदसमावृतम्) ।

मन्त्री इस मण्डप के बीच मनोहर पारिजात की भावना करे । स्वर्ण आदि रत्नों की भूमि और सोने सी चमक वाली बालुका की भावना करे । उगते हुए सूर्य के समान तथा ब्रह्माण्डमण्डप को व्याप्त किया हुआ सौ योजन विस्तृत तथा उत्तम एक ज्योति-मन्दिर है जिसमें चार दरवाजे और स्वर्ण की चारदीवारी है । रत्न से बने हुए शोभायुक्त आठ किवाड़ से यह युक्त है । इसका गोपुर और तोरण नव रत्नों से रचित एवं अति उच्च है । यह ज्योति-मन्दिर सोने के दण्ड की शिखा से लटकने वाली पताकाओं से परिष्कृत, मध्य एवं कोनों में स्थित स्तम्भ में जटित नवरत्नों से समन्वित, महामाणिक्य वैदूर्य रत्नों से जटित चामरों से शोभित, मन्द वायु से समाक्रान्त, गन्ध धूप से अलङ्कृत, बहुत से चामर घण्टा आदि वस्तुओं से शोभित है । उस मण्डप के ऊपर पर्वत के पास कल्पवृक्ष के ऊपर छत्र है । उसके बीच में सोने के तारों से निर्मित रत्नमण्डप है । साधक को उस मण्डप के मध्य में तीन शिखा वाली उत्तम स्फुरित होती हुई ज्योति का ध्यान करना चाहिये । उसके मध्य में अमृतपूर्ण महाचक्र (=गोल वेदी) है। साधक को उस वेदी के मध्य में शुभ रत्नमय सिंहासन का ध्यान करना चाहिये । यह रत्नसिंहासन ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईशान रूप चार पायों वाला है। वह सदाशिवमय है (अर्थात् पञ्च कारण ही इस सिंहासन के रूप में विराजमान हैं) । उसमें परमशिव पुष्प के पर्यङ्क के समान है जो आश्चर्ययुक्त चादर से युक्त है ॥ ३७८-३८८ ॥

तन्मध्ये योनिमध्यस्थे श्रीमदोड्यानपीठके ॥ ३८८ ॥
पर्यङ्कबद्धविलसत्स्वस्तिकासनशालिनीम् ।
ध्यायेत् परशिवाङ्कस्थां पद्ममध्योज्ज्वलाकृतिम् ॥ ३८९ ॥
त्रिपुरासुन्दरीं देवीं बालार्ककिरणारुणाम् ।
जवाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमोपमाम् ॥ ३९० ॥
पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमोदकसन्निभाम् ।
स्फुरन्मुकुटमाणिक्यकिङ्किणीजालमण्डिताम् ॥ ३९१ ॥

कालालिकुलसङ्काशकुटिलालकपल्लवाम् ।
प्रत्यग्रारुणसङ्काशवदनाम्भोजमण्डलाम् ॥ ३९२ ॥
किञ्चिदर्द्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम् ।
पिनाकधनुराकारसुभ्रुवं परमेश्वरीम् ॥ ३९३ ॥
आनन्दमुदितोल्लोलललीलान्दोलितलोचनाम् ।
स्फुरन्मयूखसङ्घातविलसद्धेमकुण्डलाम् ॥ ३९४ ॥
स्वगण्डमण्डलाभोगजितेन्द्वमृतमण्डलाम् ।
विश्वकर्मादिनिर्माणसूत्रसुस्पष्टनासिकाम् ॥ ३९५ ॥
ताम्रविद्रुमबिम्बाभरक्तोष्ठीममृतोपमाम् ।
दाडिमीबीजपङ्क्त्याभदन्तपङ्क्तिविराजिताम् ॥ २९६ ॥
स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम् ।
अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् ॥ ३९७ ॥
कम्बुग्रीवां महादेवीं मृणाललिलितैर्भुजैः ।
रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकराम्बुजाम् ॥ ३९८ ॥

उस पर्यङ्क के मध्य में योनि है । योनि के मध्य में उड्डीयान पीठ पर पर्यङ्क आसनयुक्त स्वस्तिक आसन वाली त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करना चाहिये । (यह देवी) परम शिव की गोद में विराजमान है । यह परमेश्वरी कमल के मध्य (स्थ केशर) के समान उज्ज्वल आकृति वाली, प्रात:कालीन सूर्य के समान अरुण, जपाकुसुम अनार पुष्प पद्मराग कुङ्कुमोदक के समान है । इसका मुकुट माणिक्य एवं किङ्किणी जाल से युक्त कहा गया है । काले भ्रमर (अथवा मृत्युकारी भ्रमर) कुल के समान कुटिल बालों वाली, निकलते हुए अरुण के समान मुखकमल वाली, कुछ टेढे अर्धचन्द्र के समान कोमल ललाटपट्ट वाली, पिनाक धनुष के आकार वाले सुन्दर भौंहों वाली है । आनन्द से मुदित उल्लोल लीला के कारण आन्दोलित नेत्रों वाली, चञ्चल किरणों से शोभायमान स्वर्ण कुण्डलों वाली, अपने गण्डमण्डल के विस्तार से चन्द्रमा के अमृतमण्डल को जीतने वाली, विश्वकर्मा आदि के रचनासूत्र से सुस्पष्ट नाक वाली, ताम्र, मूँगा, बिम्बफल के समान लाल ओठों वाली, अमृततुल्य अनार की बीजपङ्क्ति के समान दन्तपङ्क्ति से सुशोभित, मुस्कान की मधुरिमा से माधुर्यरस सागर को भी जीत लेने वाली है । अनुपम गुणों वाली चिबुक से शोभित यह देवी कम्बुग्रीवा है । मृणाल के समान ललित भुजाओं से युक्त रक्तकमल दल के आकार के समान कोमल करों वाली है ॥ ३८८-३९८ ॥

कराम्बुजनखज्योतिर्विद्योतितनभस्थलाम् ।
मुक्ताहारलतोपेतसमुन्नतपयोधराम् ॥ ३९९ ॥
त्रिबलीबलिनायुक्तमध्यदेशोपशोभिताम् ।
लावण्यसरिदावर्त्ताकारनाभिविभूषिताम् ॥ ४०० ॥

अनर्घ्यरत्नघटितकाञ्चीयु(त)नितम्बिनीम् ।
नितम्बबिम्बद्विरदरोमराजिवराङ्कुशाम् ॥ ४०१ ॥
कदलीललितस्तम्भसुकुमारोरुमीश्वरीम् ।
लावण्यकदलीतुल्यजङ्घायुगलमण्डिताम् ॥ ४०२ ॥
गूढगुल्फपदद्वन्द्वप्रपदाजितकच्छपाम् ।
ब्रह्मविष्णुशिरोरत्ननिघृष्टचरणाम्बुजाम् ॥ ४०३ ॥
तनुदीर्घांगुलीभास्वन्नखचन्द्रविराजिताम् ।
शीतांशुशतसङ्काशकान्तिसन्तानहासिनीम् ॥ ४०४ ॥
लौहित्यजितसिन्दूरजवादाडिमरागिणीम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानां पाशाङ्कुशकरोद्यताम् ॥ ४०५ ॥
रक्तपुष्पनिविष्टां च रक्ताभरणमण्डिताम् ।
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च पञ्चबाणधनुर्द्धराम् ॥ ४०६ ॥

हाथों की नखज्योति से नभ:स्थल को प्रकाशित करने वाली, उसके स्तनों पर मुक्ताहार शोभायमान है । यह ईश्वरी त्रिबली से युक्त मध्य देश (=कटिप्रदेश के ऊपर का भाग) वाली, सौन्दर्य की सरिता के आवर्त्त (=भँवर) के आकार वाली नाभि से विभूषित, नितम्बों पर अमूल्य रत्नों से बनी काञ्ची पहनी हुई, नितम्ब बिम्ब (=गोल कूल्हे) के ऊपर हाथी के रोमसमूह के समान अङ्कुश वाली, केले की सुन्दर स्तम्भ के समान सुकुमार ऊरु वाली, लावण्य के केले के सदृश दोनों जङ्घा वाली, गूढ गुल्फ वाले दोनों पैरों से कच्छप को भी जीत लेने वाली है । इसके चरणों में ब्रह्मदेव, श्रीविष्णु अपने शिरमुकुट के रत्न घिसते रहते (अर्थात् नमन करते रहते) हैं । पतली लम्बी ऊँगलियों में चन्द्रतुल्य नख भासमान हैं । सैकड़ों चन्द्रमा की कान्ति सी हँसी वाली, लालिमा में सिन्दूर जवाकुसुम और अनार के रंग को जीतने वाली, लाल वस्त्र पहनी हुई, हाथ में पाश और अङ्कुश धारण की हुई, रक्त पुष्पों पर बैठी हुई, रक्त आभरण से अलङ्कृत, चार भुजा और तीन नेत्रों वाली, पाँच बाण और धनुष को धारण की हुई है ॥ ३९९-४०६ ॥

कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलापूरिताननाम् ।
महामृगमदोद्दामकुङ्कुमारुणविग्रहाम् ॥ ४०७ ॥
सर्वशृङ्गारवेषाढ्यां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।
जगदाह्लादजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम् ॥ ४०८ ॥
जगदाकर्षणकरीं जगत्कारणरूपिणीम् ।
सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् ॥ ४०९ ॥
सर्वलक्ष्मीमयीं नित्यां परमानन्दनन्दिताम् ।
प्रदीपैः पूर्णकुम्भैश्च सर्वतः समलङ्कृताम् ॥ ४१० ॥
हैमीभिः पालिकाभिश्च साङ्कुराभिरलङ्कृताम् ।

रत्नपीठस्थितैर्दिव्यैरागमैः परिशोभिताम् ॥ ४११ ॥
तदन्तरान्तराप्रोद्यन्मणिदर्पणमङ्गलाम् ।
मधुरोदारविविधगान्धर्वस्तोत्रबृंहिताम् ॥ ४१२ ॥
शृङ्गाररससन्नद्धैर्नवयौवनलम्पटैः ।
अमरीनिकरैर्नानामणिभूषणभूषितैः ॥ ४१३ ॥
वीणावेणुमृदङ्गादिवादनेन च नृत्यकैः ।
प्रीणयद्भिर्महादेवीं परीतां परितः सदा ॥ ४१४ ॥
देवीं ध्यात्वा न्यसेदेवं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।

यह देवी कपूर के खण्ड से मिश्रित पान से पूरित मुख वाली, महामृगमद (=कस्तूरी) से अत्यन्त सुगन्धित कुङ्कुम से उपलिप्त देहवाली, समस्त शृङ्गारवेष से परिपूर्ण, समस्त अलङ्कारों से विभूषित, संसार को आह्लाद देने वाली, जगत् का मनोरञ्जन करने वाली, सर्वमन्त्रमयी, सर्वसौभाग्यसुन्दरी, सर्वलक्ष्मीमयी, नित्या, परमानन्द से परिपूर्ण प्रदीपों और पूर्ण कुम्भों से सब ओर से अलङ्कृत, रत्नपीठ पर स्थित मणिदर्पण से मङ्गलमयी, मधुर उदार विविध गान्धर्व स्तोत्रों से सम्बर्धित है । शृङ्गार रस से सन्नद्ध नव यौवन से युक्त नाना मणियुक्त अलङ्कारों से अलङ्कृत देवताओं की स्त्रियों, वीणा-वंशी-मृदङ्ग आदि बाजों के साथ नर्त्तकों, महादेवी की प्रशंसा करने वालों से सदा सब ओर से परिवृत देवी का ध्यान कर न्यास करे । (इससे साधक) समस्त इच्छाओं की पूर्त्ति प्राप्त करता है ॥ ४०७-४१५ ॥

[ताराया मन्त्रध्याने]

अथ वक्ष्ये महादेव्यास्ताराया मन्त्रमुत्तमम् ॥ ४१५ ॥
मायाबीजं निःसकारं वधूबीजं ततः परम् ।
क्रोधबीजमथोच्चार्य शेषेऽस्त्रं प्रतिपादयेत् ॥ ४१६ ॥
ध्यानमस्याः समासेन कथ्यमानं निबोध मे ।
प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम् ॥ ४१७ ॥
खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृतोरुकाम् ।
नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम् ॥ ४१८ ॥
चतुर्भुजां महादेवीं ललज्जिह्वां वरप्रदाम् ।
खड्गकर्तृधरां दक्षे तथोत्पलकपालके ॥ ४१९ ॥
वामतो बिभ्रतीं देवीं दंष्ट्राघोरताननाम् ।
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम् ॥ ४२० ॥
कुणपं वामपादेन चाक्रम्य परिनिष्ठिताम् ।
नीलेन्दीवरमालाभिः संशोभिचिकुरोच्चयाम् ॥ ४२१ ॥
नीलमेघाभभुजपरिनद्धजटाभराम् ।
जवाकुसुमसङ्काशभुजङ्गकृतकुण्डलाम् ॥ ४२२ ॥

धूमप्रभमहानागकृतकेयूरमण्डलाम् ।
तप्तकाञ्चनरुग्भोगिविहितोज्ज्वलकङ्कणाम् ॥ ४२३ ॥
दूर्वादलश्यामनागकृतयज्ञोपवीतिनीम् ।
हिमकुन्दाभभोगीन्द्रविराजिकटिसूत्रिणीम् ॥ ४२४ ॥
पाटलीकुसुमाभां हि कृतमञ्जीरशोभिताम् ।
प्रज्वालपितृभूमध्यगतां दंष्ट्राकरालिनीम् ॥ ४२५ ॥
सावेशस्मेरवदनां स्त्र्यलङ्कारविभूषिताम् ।
सद्यः कवित्वफलदां सद्यो राज्यफलप्रदाम् ॥ ४२६ ॥
भवाब्धितारिणीं तारां चिन्तयित्वा न्यसेन्मनुम्।

तारा के मन्त्र ध्यान—अब महादेवी तारा का उत्तम मन्त्र बतलाऊँगा । माया सकाररहित वधू बीज इसके बाद क्रोध बीज का उच्चारण कर अन्त में अस्त्र कहना चाहिये (मन्त्र—ह्रीं त्रीं हूं फट्) । अब संक्षेप में इसका ध्यान कह रहा हूँ । मुझसे जानो । एक पैर को आगे बढ़ायी हुई, घोर, मुण्डमाला से अलङ्कृत, खर्व, लम्बे उदरवाली, भयङ्कर, उरु को बाघ के चर्म से ढँकी हुई, नव यौवन वाली, पञ्चमुद्रा से विभूषित, चार भुजा वाली, जिह्वा को लपलपाती हुई, वरप्रदा, दायें (हाथ में) खड्ग और कैंची धारण की हुई, बायें (हाथ में) कमल और कपाल धारण की हुई, दाँत के कारण घोरतर आनन वाली, शिर पर अक्षोभ्य और पिङ्ग जटा से भूषित, बायें पैर से शव को आक्रान्त कर खड़ी, बालों में नीलकमल की मालायें गूँथी हुई, जटाओं में नील मेघ के समान काले नाग लपेटी हुई, कानों में जवाकुसुम के रंग एवं आकृति के समान सर्प धारण की हुई, धूम के समान महानाग का केयूर पहनी हुई, तप्त कञ्चन की आभा वाले साँपों का उज्ज्वल कङ्कण पहनी हुई, दूर्वादल के समान महासर्प का यज्ञोपवीत पहनी हुई, हिम एवं कुमुद के समान साँप के कटिसूत्र (=करधनी) से शोभायमान, पाटलीपुष्प के समान कान्तिवाली, मञ्जीर पहनने से सुशोभित, ज्वालायुक्त श्मशान के मध्य में खड़ी, दाँतों के कारण भयङ्करी, आवेशसहित मुस्कान वाली, स्त्री के लिये उचित अलङ्कार से विभूषित, तत्काल कवित्वशक्ति देने वाली, सद्यः राज्यफल देने वाली, संसारसागर से पार लगाने वाली तारा का ध्यान कर मन्त्र का न्यास करना चाहिये ॥ ४१५-४२७ ॥

[दक्षिणकाल्या मन्त्रध्याने]

अथ दक्षिणकाल्यास्तु मन्त्रमुद्धारयाम्यहम् ॥ ४२७ ॥
यदेकवारस्मरणात् किं तद् यन्न करे स्थितम् ।
आदौ बीजत्रयं काल्यास्ततः क्रोधयुगं वदेत् ॥ ४२८ ॥
लज्जाबीजद्वयं प्रोच्य वदेद् दक्षिणकालिके ।
पुनर्बीजत्रयं काल्याः क्रोधबीजद्वयं पुनः ॥ ४२९ ॥
लज्जायुगं वह्निजाया द्वाविंशत्यक्षरो मनुः ।

धन्यः सोऽपि नरो लोके यः सकृत् प्रोच्चरेदमुम् ॥ ४३० ॥
महिमा वर्णितुं देवि न शक्योऽस्य कथञ्चन ।
विस्तारोऽस्याः पूर्वमेव देवि ते वर्णितो मया ॥ ४३१ ॥
ध्यानं पूजादिकं सर्वं कथितं तत्प्रसङ्गतः ।
किञ्चिद् ध्यानं प्रवक्ष्यामि तस्या ध्यानक्रमागतम् ॥ ४३२ ॥
ज्वलत्पावककीलालश्मशानचितिमध्यगाम् ।
करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम् ॥ ४३३ ॥
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्।
नागयज्ञोपवीतां च चन्द्रार्द्धकृतशेखराम् ॥ ४३४ ॥
जटायुक्तां घोररूपां महाकालसमीपगाम् ।
सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवामोर्ध्वाधःकराम्बुजाम् ॥ ४३५ ॥
अभयं वरदं चापि दक्षिणोऽधोर्ध्वपाणिकम् ।
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम् ॥ ४३६ ॥
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम् ।
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम् ॥ ४३७ ॥
घोरदंष्ट्राकरालास्यां पीनोन्नतपयोधराम् ।
शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ॥ ४३८ ॥
सृक्कद्वन्द्वस्रवद्रक्तधाराविच्छुरिताननाम् ।
घोराकारां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् ॥ ४३९ ॥
भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीगणमध्यगाम् ।
दैत्यदानवकोटिघ्नीं ललज्जिह्वाभयानकाम् ॥ ४४० ॥
दक्षिणां कालिकां ध्यायेदित्थं सिद्धिविधायिनीम् ।

दक्षिणकाली के मन्त्र ध्यान—अब मैं दक्षिण काली का मन्त्रोद्धार करूँगा जिसके एक बार के स्मरण से ऐसी कौन सी वस्तु है जो हाथ में न आ जाय । पहले कालीबीज को तीन बार इसके बाद क्रोधबीज को दो बार फिर लज्जा बीज को दो बार कह कर 'दक्षिणकालिके' कहे । फिर काली बीज को तीन क्रोध बीज को दो और लज्जा बीज को दो बार कहने के बाद 'स्वाहा' कहे (मन्त्र—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके क्री क्रीं क्रीं हूं हू ह्रीं ह्रीं स्वाहा)[1] । इस लोक में वह मनुष्य धन्य है जो एक बार भी इस मन्त्र का उच्चारण करता है । हे देवि । इस मन्त्र की महिमा का वर्णन किसी भी प्रकार नहीं किया जा सकता । हे देवि! इसका विस्तार मैंने तुमको पहले ही बतला दिया है । उस प्रसङ्ग में मैंने ध्यान पूजा आदि सब कुछ कह दिया है । यहाँ ध्यानक्रम से प्राप्त कुछ ध्यान बतलाऊँगा । ध्यान—यह देवी

१. काली का मन्त्र एक अक्षर से लेकर बाईस अक्षरों तक का होता है । उपर्युक्त मन्त्र में से 'दक्षिणे कालिके' पद को हटाकर षोडशाक्षर और उपर्युक्त द्वाविंशाक्षर मन्त्र अधिक प्रचलित माना गया है ।

जलती हुई आग और पानी वाले श्मशान की चिता के मध्य में स्थित है । विकराल मुख वाली, घोर, खुले बालों वाली, चतुर्भुजा दिव्य दक्षिणाकाली मुण्डमाला से विभूषित है । यह देवी नाग का यज्ञोपवीत, मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण की हुई, जटावाली, घोररूपा, महाकाल के समीप स्थित है । बायें ऊपर-नीचे दोनों हाथों से सद्यः कटा हुआ शिर और खड्ग तथा दायें ऊपर-नीचे हाथों में अभय और वरद मुद्रा धारण की है । महामेघ की प्रभा के समान काली, नग्न, कण्ठ में पड़ी मुण्डमाला से गिरते हुए रक्त से उपलिप्त, कानों में दो शवों का कुण्डल धारण करने से भयानक, घोर दाँत के कारण विकराल मुख वाली, पीन और उत्तुङ्ग स्तनों वाली, शवों के हाथों की करधनी पहनी हुई, हँसमुख, दोनों सृक्कों से गिरती हुई रक्त धारा से अलङ्कृत मुख वाली, भयानक आकार वाली, श्मशान गृह में रहने वाली, भूत-प्रेत पिशाच आदि तथा डाकिनियों के बीच स्थित,करोड़ों दैत्यों और दानवों का नाश करने वाली, लपलपाती जिह्वा के कारण भयानक सिद्धिदायिनी काली का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये ॥ ४२७-४४१ ॥

[छिन्नमस्ताया मन्त्रध्याने]

अथातश्छिन्नमस्ताया मन्त्रं ते व्याहराम्यहम् ॥ ४४१ ॥
जिघृक्षयापि यस्य स्युः साधकस्याष्टसिद्धयः ।
नातः परतरा काचिदुग्रा देवी भविष्यति ॥ ४४२ ॥
तस्मादशक्तैर्मनुजैर्न ग्राह्योऽयं कथञ्चन ।
सिद्धिर्वा मृत्युरपि वा द्वयोरकेतरं भवेत् ॥ ४४३ ॥
प्रणवं च रमाबीजं लज्जां वाग्भवमेव च ।
वज्रवैरोचनीये च इत्येवं तत उद्धरेत् ॥ ४४४ ॥
क्रोधद्वयं ततश्चास्त्रं स्वाहान्तः षोडशाक्षरः ।
ध्यानं चास्याः प्रवक्ष्यामि तत्र चेतो निवेशय ॥ ४४५ ॥
स्वनाभौ नीरजं ध्यायेच्छुब्धं विकसितं सितम् ।
तत्पद्मकोषमध्ये तु मण्डलं चण्डरोचिषः ॥ ४४६ ॥
जवाकुसुमसङ्काशं रक्तबन्धूकसन्निभम् ।
रजःसत्त्वतमोरेखायोनिमण्डलसन्निभम् ॥ ४४७ ॥
मध्ये तस्या महादेवीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
छिन्नमस्तां करे वामे धारयन्तीं स्वमस्तकम् ॥ ४४८ ॥
प्रसारितमुखं भीमं लेलिहानोग्रजिह्वकम् ।
प्रपिबद्रौधिरीं धारां निजकण्ठसमुद्भवाम् ॥ ४४९ ॥
विकीर्णकेशपाशं च नानापुष्पविराजितम् ।
दिगम्बरां महारूपां प्रत्यालीढपदस्थिताम् ॥ ४५० ॥
अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ।
विपरीतरतासक्तरतिकामोपरिस्थिताम् ॥ ४५१ ॥

छिन्नमस्ता के मन्त्र ध्यान—अब मैं तुम्हें छिन्नमस्ता का मन्त्र बतला रहा हूँ जिसके ग्रहण करने की इच्छामात्र से साधक को अष्टसिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। कोई भी देवी इससे बढ़कर उग्र नहीं है । इस कारण असमर्थ मनुष्यों को इसका मन्त्र का ग्रहण नहीं करना चाहिये । (इस मन्त्र के प्रभाव से) सिद्धि या मृत्यु दोनों में से एक ही मिलती है । प्रणव रमाबीज लज्जा वाग्भव बीजों के बाद 'वज्रवैरोचनीये' कहना चाहिये । फिर क्रोध बीज दो बार और अन्त में स्वाहा कहना चाहिये । (मन्त्र—ॐ श्रीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा) । यह मन्त्र सोलह अक्षरों वाला है । अब इसका ध्यान बतला रहा हूँ, इसमें चित्त को स्थिर करो। अपनी नाभि में शुद्ध विकसित श्वेतकमल का ध्यान करना चाहिये । उस पद्मकोश के मध्य में चण्डरोचिष् (=सूर्य) के मण्डल का चिन्तन करना चाहिये। यह मण्डल जवाकुसुम अथवा रक्त बन्धूक के समान सत्त्व रजस् तमस् रेखा योनि मण्डल के समान है । इस (=योनि) के मध्य में करोड़ों सूर्य के समान प्रभा वाली महादेवी छिन्नमस्ता का ध्यान करे । यह देवी अपने बायें हाथ से अपना (कटा हुआ) शिर ली हुई है । उस शिर का मुख खुला हुआ है । इस भयङ्कर मुख में उग्र जिह्वा लहलहा रही है तथा अपने कण्ठ से निकली रुधिर धारा को यह मुख पी रहा है । केशपाश बिखरे हुए हैं। उसमें अनेक पुष्प सुशोभित हो रहे हैं । यह देवी नग्न, विशालरूपा, आगे बढ़े पैर पर खड़ी, हड्डी की माला पहनी हुई, नाग का यज्ञोपवीत धारण की हुई, विपरीत रति में आसक्त काम और रति के ऊपर खड़ी है ॥ ४४१-४५१ ॥

वर्णिनीडाकिनीयुक्तां वामदक्षिणपार्श्वतः ।
दक्षिणे वर्णिनीं ध्यायेद्वामपार्श्वे च डाकिनीम् ॥ ४५२ ॥
वर्णिनीं लोहितश्यामां मुक्तकेशीं दिगम्बराम् ।
कपालकर्त्तृकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः ॥ ४५३ ॥
देवीकण्ठोच्छलद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम् ।
अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥ ४५४ ॥
डाकिनीं वामपार्श्वे च कल्पान्तजलदोपमाम् ।
विद्युच्छटाभनयनां दन्तपङ्क्तिवलाकिनीम्॥ ४५५ ॥
दंष्ट्राकरालवदनां पीनोत्तुङ्गकुचद्वयाम् ।
महोदरीं मुक्तकेशीं महाघोरां दिगम्बराम् ॥ ४५६ ॥
लेलिहानचलज्जिह्वां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
कपालकर्त्तृकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः ॥ ४५७ ॥
देवीं गलोच्छलद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम् ।
करस्थितकपालेन भीषणेनातिभीषणाम् ॥ ४५८ ॥
दुर्निरीक्ष्यां चेतसापि सर्वकामफलप्रदाम् ।
ध्यात्वेत्थं मनुनानेन न्यसेत् साधकसत्तमः ॥ ४५९ ॥

बायें और दायें वर्णिनी और डाकिनी नामक दो शक्तियों से युक्त है । (इसके) दायीं ओर वर्णिनी और वामपार्श्व में डाकिनी का ध्यान करना चाहिये । वर्णिनी लोहित, श्यामा, मुक्तकेशी, दिगम्बरा है । बायें हाथ में कपाल और दायें हाथ में कैंची ली हुई है । देवी के कण्ठ से उछलती हुई रक्तधारा का पान कर रही है । अस्थिमाला धारण करने वाली वह देवी नाग का यज्ञोपवीत पहनी हुई है । वाम पार्श्व में डाकिनी का ध्यान करना चाहिये । यह कल्पान्त प्रलय के मेघ के समान, विद्युत् छटा की भाँति नेत्रों वाली, बलाका के समान (धवल) दन्तपङ्क्ति वाली, दंष्ट्रा के कारण कराल मुख वाली, पीन उत्तुङ्ग दोनों स्तनों वाली, विशाल उदर वाली, मुक्तकेशी, महाघोरा और दिगम्बरा है । इसकी जिह्वा लहलहा रही और चञ्चल है । मुण्डमाला से विभूषित यह बायें-दायें हाथों में कपाल और कैंची ली हुई है । यह देवी हाथ में स्थित भीषण कपाल के द्वारा गले से निकलती रक्तधारा को पी रही है । अत्यन्त भयङ्कर मन से भी दुर्निरीक्ष्य यह सर्वकाम-फलप्रदा है । उत्तम साधक ऐसा ध्यान कर उक्त मन्त्र से न्यास करे ॥ ४५२-४५९ ॥

[त्रिकण्टक्या मन्त्रध्याने]

अथ त्रिकण्टकीमन्त्रं समाकर्णय भामिनि ।
क्रोधमादौ समुद्धृत्य माक्रूरौ चण्डघण्टिकौ ॥ ४६० ॥
सविसर्गं क्षबीजं च तृतीयं परिकीर्तितम् ।
अथ ध्यानं शृणु त्वं मे यथावद्वरवर्णिनि ॥ ४६१ ॥
पादादानाभिपर्यन्तं घनाघनतनुच्छविः ।
नाभेराकण्ठपर्य्यन्तं सिन्दूरारुणविग्रहा ॥ ४६२ ॥
चतुर्भिर्वदनैर्युक्ता दंष्ट्रापटलभीषणैः ।
दुर्निरीक्ष्यैर्महाघोरैः पतितैरुदरोपरि ॥ ४६३ ॥
त्रिनेत्रा चन्द्रशकलद्योतिभालस्थला शिवा ।
हस्ताभ्यां दधती शङ्खं चक्रमद्भुतविक्रमम् ॥ ४६४ ॥
सर्वालङ्कारशोभाढ्या सर्वकामफलप्रदा ।
ध्येया त्रिकण्टकी देवी न्यासकर्मणि साधकैः ॥ ४६५ ॥

त्रिकण्टकी के मन्त्र ध्यान—हे भामिनि ! अब त्रिकण्टकी के मन्त्र को सुनो । पहले क्रोध बीज फिर माँ (=लक्ष्मी) और क्रूर बीज चण्डघण्टिक, फिर तीसरा बीज विसर्ग सहित 'क्ष' है । (मन्त्र—हूं श्रीं रट्रें फ्रों फ्रम्रग्लओं क्षः) । हे वरवर्णिनि! अब इसका यथावत् ध्यान सुनो । यह देवी पैर से लेकर नाभि तक काले बादल की छवि वाली, नाभि से कण्ठ तक सिन्दूर के समान अरुणविग्रहा है । इसके चार मुख हैं । महाघोर दुर्निरीक्ष्य भयङ्कर दाँत इसके उदर के ऊपर तक गिरे हुए हैं । तीन नेत्रों वाली तथा भाल पर चन्द्रखण्ड धारण की हुई यह शिवा हाथों में शङ्ख चक्र धारण की हुई है । समस्त अलङ्कारों से युक्त सर्वकामफलप्रद इस त्रिकण्टकी देवी का ध्यान साधकों को न्यासकर्म में करना चाहिये ॥ ४६०-४६५ ॥

[नीलपताकाया मन्त्रध्याने]

अतो नीलपताकाख्यां विद्यामाकर्णयाम्बिके ।
तारं हृत्पदमाभाष्य कामेश्वरि पदं ततः ॥ ४६६ ॥
कामाङ्कुशे पदं चोक्त्वा ततः कामप्रदायिके ।
भगवत्यथ नीलान्ते पताके च भगान्तिके ॥ ४६७ ॥
रतिहृन्मन्त्रमालिख्य ततोऽस्त्विति च ते वदेत् ।
परमान्ते तथा गुह्ये हूङ्कारत्रिकमालिखेत् ॥ ४६८ ॥
मदने मदनान्तेऽथ देहे त्रैलोक्यमावदेत् ।
आवेशय तथा लेख्यं कवचास्त्राग्निवल्लभा ॥ ४६९ ॥
षट्षष्ठ्यर्णा महेशानी देवी नीलपताकिका ।
निगद्यमानं ध्यानं च समाकर्णय पार्वति ॥ ४७० ॥
इन्द्रनीलशिलाखण्डसमानतनुरोचिषम् ।
प्रफुल्लपुण्डरीकाभवदनां स्मितशालिनीम् ॥ ४७१ ॥
कबरीबन्धशोभाढ्यां पीवरोरोजसंयुताम् ।
रम्याभिः सर्वतो नीलपताकाभिरलङ्कृताम्॥ ४७२ ॥
वराभयकरद्वन्द्वं धारयन्तीं शुचिस्मिताम् ।
ध्यायेद् यतमनाः सुस्थः साधको विजितेन्द्रियः॥ ४७३ ॥

नीलपताका के मन्त्र ध्यान—हे अम्बिके! अब नीलपताका विद्या को सुनो । तार हृत् को कहने के बाद 'कामेश्वरि' पद कहना चाहिये । 'कामाङ्कुशे' कहने के बाद 'कामप्रदायिके भगवति नीलपताके भगाङ्किते' कहे । फिर रति हृन्मन्त्र कहने के बाद 'अस्तु ते' कहे । 'परमगुह्ये' के बाद तीन हूङ्कार का उच्चारण करे । 'मदने मदनान्ते देहे त्रैलोक्यम् आवेशय' कहे । फिर कवच अस्त्र और अन्त में अग्निवल्लभा कहे । (मन्त्र— ॐ नमः कामेश्वरि कामाङ्कुशे कामप्रदायिके भगवति नीलपताके भगाङ्किते क्लूं नमोऽस्तु ते परमगुह्ये हूं हूं हूं मदने मदनदेहे त्रैलोक्यमावेशय हुं फट् स्वाहा)-। हे महेशानि! नीलपताका देवी छाछट वर्णों वाली है । हे पार्वति! इसके निगद्यमान ध्यान को सुनो । यह नीलमणि के खण्ड के समान देहकान्ति वाली है । इसका मुख खिले कमल के समान है । स्मितशालिनी वालों को पीछे बाँधने से शोभायुक्त, पीवरस्तनवाली, सर्वतः रमणीय नीलपताकाओं से अलङ्कृत वरद एवं अभयमुद्रा वाले दोनों हाथों को धारण करने वाली शुचिस्मिता इसका ध्यान साधक सुस्थ जितेन्द्रिय एवं संयत मन वाला होकर करे ॥ ४६६-४७३ ॥

[चण्डघण्टाया मन्त्रध्याने]

द्वात्रिंशत्तमिकां देवीं चण्डघण्टामथो शृणु ।
युद्धे जयेप्सुभिर्दैत्यैः पूर्वमाराधिता परा ॥ ४७४ ॥
द्विकाली च चतुःक्रोधमङ्कुशत्रितयं ततः ।

द्विरमा च द्विमाया च योगिनीशाकिनीवधूः ॥ ४७५ ॥
चण्डघण्टे ततो वाच्यं शत्रूंश्च तदनन्तरम् ।
स्तम्भय द्वितयं प्रोच्य मारय द्वितयं ततः ॥ ४७६ ॥
कवचास्त्राग्निजायान्तो ह्यष्टत्रिंशाक्षरो मनुः ।
ध्यायेद् दूर्वादलश्यामां पूर्णचन्द्राननत्रयाम् ॥ ४७७ ॥
एकैकवक्त्रनयनत्रितयोज्ज्वलविग्रहाम् ।
पीताम्बरपरीधानां पीतस्त्रगनुलेपनाम् ॥ ४७८ ॥
सर्वाभरणनद्धाङ्गीं रत्नाकल्पपरिष्कृताम् ।
चण्डघण्टामष्टभुजां स्थितां मत्तगजोपरि ॥ ४७९ ॥
खड्गं त्रिशूलं विशिखं कर्तृकां दक्षिणे करे ।
चर्मपाशधनुर्दण्डखर्पराणि च वामतः ॥ ४८० ॥
धारयन्तीं क्रूरदृष्टिं चण्डघण्टां विचिन्तयेत् ।

चण्डघण्टा के मन्त्र ध्यान—अब मुझसे बत्तीसवीं देवी चण्डघण्टा को सुनो । यह परा देवी प्राचीन काल में विजय चाहने वाले राक्षसों के द्वारा आराधित हुई थी । मन्त्र इस प्रकार है—दो काली बीज, चार क्रोध, तीन अङ्कुश, दो रमा, दो माया, फिर योगिनी शाकिनी वधू बीज कहने के बाद 'चण्डघण्टे शत्रून्' कहे । फिर 'स्तम्भय' दो बार कहकर 'मारय' दो बार कहे । अन्त में कवच अस्त्र और अग्निजाया कहे । (मन्त्र—क्रीं क्रीं हूं हूं हूं हूं क्रों क्रों क्रों श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं चण्डघण्टे शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय मारय मारय हुं फट् स्वाहा) । यह मन्त्र अँड़तीस अक्षरों वाला है । ध्यान—दूर्वादल की भाँति श्याम, पूर्ण चन्द्र के समान तीन मुखों वाली, एक-एक मुख में तीन-तीन नेत्रों वाली, पीतवस्त्र पीतमाला और पीत अनुलेपन वाली, समस्त अङ्गों में आभूषण पहनीं हुई, रत्नों से परिष्कृत, मत्तगज के ऊपर बैठी हुई यह चण्डघण्टा अष्टभुजा है । खड्ग, त्रिशूल, बाण, कैंची को दायें हाथ में तथा चर्म, पाश, धनुष और खर्पर बायें हाथ में ली हुई है । ऐसी क्रूरदृष्टि वाली चण्डघण्टा का ध्यान करना चाहिये ॥ ४७४-४८१ ॥

[चण्डेश्वर्या मन्त्रध्याने]

अतश्चण्डेश्वरीमन्त्रं शृणु सावहिता सती ॥ ४८१ ॥
तारलज्जारमाक्रोधाङ्कुशकालीवधूस्मराः ।
अष्टबीजं समुद्धृत्य शाम्भवं कूटमुद्धरेत् ॥ ४८२ ॥
ततश्च भैरवीकूटं कूटं माहेश्वरं ततः ।
ततः परापरं कूटं व्योमकूटं च पञ्चमम् ॥ ४८३ ॥
उक्त्वा चण्डेश्वरि ततः खेचरीं योगिनीं लिखेत् ।
शाकिनीं गारुडं बीजं युगं क्रोधास्त्रयोस्ततः ॥ ४८४ ॥
वह्निजायान्वितो मन्त्रो जगतीतलदुर्लभः ।
नातः परतरो मन्त्रो न भूतो न भविष्यति ॥ ४८५ ॥

चण्डेश्वरी के मन्त्र ध्यान—अब सावधान होकर चण्डेश्वरी के मन्त्र को सुनो। तार, लज्जा, रमा, क्रोध, अङ्कुश, काली, वधू, काम इन आठ बीजों को उद्धृत कर शाम्भव कूट कहना चाहिये। इसके बाद भैरवी कूट माहेश्वर कूट परापर कूट व्योम कूट का कथन कर 'चण्डेश्वरि' कहे। फिर खेचरी योगिनी शाकिनी गरुड बीज को दो बार और क्रोध को तीन बार कहने के बाद अन्त में 'स्वाहा' कहे। (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—ॐ ह्रीं श्रीं हूं क्रों क्रीं स्त्रीं क्लीं स्हजहलक्षम्लवनऊं क्षमक्लह्रहसव्यऊं क्वलहभ्रकह्रनसक्लईं सस्लक्षकमहव्रूं क्ष्लह्रमव्यऊं चण्डेश्वरि ख्फ्रें छ्रीं फ्रें क्रौं हूं हूं फट् फट् स्वाहा) यह मन्त्र जगतीतल पर दुर्लभ है। इससे बढ़कर मन्त्र न हुआ और न होगा॥ ४८१-४८५॥

शृणु ध्यानममुष्यास्त्वमतिनिर्मलचेतसा।
इन्द्रगोपनिभां देवीं प्रौढास्त्रीरूपधारिणीम्॥ ४८६॥
पञ्चवक्त्रां महाभीमां दंष्ट्राभिर्विकरालिनीम्।
प्रविस्त्रस्तजटाभारां नरास्थिकृतभूषणाम्॥ ४८७॥
केयूराङ्गदकोटीरहारनूपुरशालिनीम्।
किङ्किणीकुण्डलापीडधारिणीं त्र्यस्थिनिर्मिताम्॥ ४८८॥
राङ्कवत्वक्परीधानां शुष्कलम्बस्तनद्वयाम्।
शवद्वयोपरिगतां दक्षवामाङ्घ्रियोगतः॥ ४८९॥
सकेशनरमुण्डाभ्यां बद्धाभ्यां पादयोर्द्वयोः।
त्रित्रिलोचनसंयुक्तवदनां घोररूपिणीम्॥ ४९०॥
चण्डेश्वरीं दशभुजामट्टहासं वितन्वतीम्।
वक्त्रं मुखद्वयं वामे दक्षिणे वदनद्वयम्॥ ४९१॥
सम्मुखे वदनं चैकं धारयन्तीं प्रकल्पितम्।
हस्तमात्रविनिष्क्रान्तलेलिहानभयानकम्॥ ४९२॥
जिह्वायुगं दक्षिणयोः करयोर्बिभ्रतीं सदा।
तथैव रसनायुग्मं दधतीं वामहस्तयोः॥ ४९३॥
सम्मुखास्यगतां जिह्वां नभःस्थलप्रसारिताम्।
दधतीं घोरनादाट्टहासत्रस्तजगत्त्रयाम्॥ ४९४॥
सद्यःकृत्तस्त्रवद्रक्तधारं मुण्डं कचान्वितम्।
कराभ्यां वामदक्षाभ्यां वहन्तीं सकलोपरि॥ ४९५॥
ततो हस्तद्वये जिह्वां विस्फुरन्तीं च बिभ्रतीम्।
मुण्डवृतासृजां धारां पतन्तीं रसनोपरि॥ ४९६॥
पिबन्तीं शीत्कृतिं कृत्वा हूँ हूँकारविनादिनीम्।

यह देवी इन्द्रगोप (=मखमली लाल रंग का कीड़ा जिसे बीरहूटी कहते हैं) के समान, प्रौढा स्त्री का रूप धारण की हुई, पाँच मुखों वाली, महाभयङ्कर, दाँतों के

कारण विकराल, अस्तव्यस्त जटाओं वाली, नरास्थि का आभूषण पहनी हुई, केयूर अङ्गद कोटीर हार नूपुर भूषणों वाली, मनुष्य की अस्थि से निर्मित किङ्किणी कुण्डल आपीड (=कण्ठहार) धारिणी, रङ्कु का चर्म धारण की हुई, सूखे लटकते हुए दो स्तनों वाली, केशयुक्त नरमुण्ड बंधे हुए दायें-बायें पैरों को जोड़ कर दो शवों के ऊपर स्थित होकर, तीन-तीन नेत्रों से संयुक्त, (पाँच) मुखों वाली, घोररूपा, दशभुजावाली, अट्टहास करती हुई, (पाँच मुखों में से) बायीं ओर दो मुख, दक्षिण ओर दो मुख और एक मुख सामने धारण की हुई, एक हाथ निकली हुई लेलिहान भयानक दो जिह्वाओं को दो दायें हाथों से और दो जिह्वाओं को दो बायें हाथों से पकड़ी हुई, तथा सामने वाले मुख की जिह्वा को आसमान में उठाई हुई है। घोर नादयुक्त अट्टहास से तीनों लोकों को त्रस्त करने वाली, तत्काल कटे हुए एवं रक्तधारा गिरते हुए बालों सहित मुण्ड को बायें दायें हाथों से सबके ऊपर ले जाती हुई, इसके बाद दो हाथों से फड़कती जिह्वा को पकड़ी हुई, उस जिह्वा पर मुण्ड से निकली हुई रक्त की गिरती हुई धारा का शीत्कार (=सी सी) कर पान करती हुई, हूं हूं नाद करती है ॥ ४८६-४९७ ॥

तथा नृमुण्डयुगलं पुनर्दक्षिणवामयोः ॥ ४९७ ॥
पुनर्जिह्वायुगं तद्वद्वामदक्षिणहस्तयोः ।
धयन्तीं पूर्ववद्रक्तं सशब्दपरिघोषितम् ॥ ४९८ ॥
पुरः स्थिताभ्यां घोराभ्यां करालाभ्यामतीव हि ।
योगिनीडाकिनीभ्यां च रक्तपूर्णं घटद्वयम् ॥ ४९९ ॥
सर्वदा पातयन्तीभ्यां स्थिताभ्यां पुरतः सदा ।
सम्मुखस्थितजिह्वायां मांसखण्डास्थिपूरितम् ॥ ५०० ॥
पिबन्तीमीदृशाकारां दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरैः ।
कपालं खर्प्परं शेषभुजाभ्यां बिभ्रतीं पराम् ॥ ५०१ ॥
चिन्तयेन्मन्त्रविन्न्यासे देवीं चण्डेश्वरीं हृदि ।

उसी प्रकार दो नरमुण्डों को पुनः दायें, बायें हाथों में, पुनः दो जिह्वाओं को उसी प्रकार दायें, बायें हाथों से पकड़ी हुई, पूर्व की भाँति शब्दघोष के साथ रक्तपान करती हुई विराजमान हैं। सामने स्थित घोर अत्यन्त विकराल योगिनी और डाकिनी के द्वारा रक्तपूर्ण दो घटों से रक्त गिराती हुई, पुनः सम्मुख स्थित जिह्वा के ऊपर मांसखण्ड और अस्थि से पूरित रक्त का पान करती हुई है। इस प्रकार के आकार वाली वह सुरों और असुरों से दुर्निरीक्ष्य है। (रसना मुण्ड आदि के ग्रहण से) अवशिष्ट दो भुजाओं के द्वारा कपाल और खप्पर धारण की हुई परा देवी चण्डेश्वरी का ध्यान मन्त्रन्यास के सन्दर्भ में करना चाहिये ॥ ४९७-५०२ ॥

[भद्रकाल्या मन्त्रध्याने]

इदानीं भद्रकाल्यास्त्वं शृणु मन्त्रमनुत्तमम् ॥ ५०२ ॥

येन सिद्धिमवाप्नोति परत्रामुत्र मानवः ।
प्रणवं शाकिनीबीजं वधूं कवचमेव च ॥ ५०३ ॥
योगिनीमङ्कुशं पाशं फेत्कारीस्मरमायिकम् ।
नवाक्षरो महामन्त्रो भद्रकाल्याः प्रकीर्त्यते ॥ ५०४ ॥
ध्यानं चास्याः कथ्यमानमवधारय पार्वति ।
सिंहोपरि समासीनां मसीपुञ्जसमप्रभाम् ॥ ५०५ ॥
भृकुट्यरालवदनां त्रीक्षणां घोरदर्शनाम् ।
शार्दूलत्वक्परीधानां विष्वग् विस्तारिताननाम्॥ ५०६ ॥
अत्यन्तशुष्कसर्वाङ्गीं ललज्जिह्वाकरालिनीम् ।
त्रेतागर्त्तस्थितत्र्यग्निसमाननयनां शिवाम् ॥ ५०७ ॥

भद्रकाली के मन्त्र ध्यान—अब तुम भद्रकाली के सर्वोत्तम मन्त्र को सुनो जिससे मनुष्य परत्र और अमुत्र दोनों स्थानों में सिद्धि प्राप्त करता है । (भद्रकाली का महामन्त्र) प्रणव शाकिनी बीज वधू कवच योगिनी अङ्कुश पाश फेत्कारी काम माया बीजों वाला नव अक्षरों वाला है । (मन्त्र—ॐ फ्रें स्त्रीं हुं छ्रीं क्रों आं ह्स्ख्फ्रें क्लीं ह्रीं)[1] । ध्यान—हे पार्वति! इसके कहे जा रहे ध्यान को समझो । सिंह के ऊपर बैठी, काली स्याही के पुञ्ज की भाँति, टेढ़ी भ्रुकुटियुक्त मुख वाली, तीन नेत्रों वाली, घोरदर्शना, सिंहचर्म पहनी हुई, चारो ओर मुख फैलायी हुई, अत्यन्त शुष्क सर्वाङ्गवाली, ललत् जिह्वा से विकराल, तीन गड्ढों में स्थित तीन अग्नियों के समान (तीन) नेत्रों वाली है ॥ ५०२-५०७ ॥

नरमुण्डावलीहारां नादापूरितपुष्कराम् ।
ज्वलद्धुतवहाकारविस्त्रस्तकचसञ्चयाम् ॥ ५०८ ॥
नरास्थिकृतसर्वाङ्गभूषणां जगदम्बिकाम् ।
कोटिकोटिमहाघोरयोगिनीगणमध्यगाम् ॥ ५०९ ॥
कालीं दशभुजां सृक्कगलद्रुधिरचर्चिताम् ।
खड्गं त्रिशूलं विशिखं शक्तिं दक्षिणतः स्मरेत्॥ ५१० ॥
फलकं डमरुं चापं कपालं वामतोऽपि च ।
व्यादाय वदनं घोरं दंष्ट्राभिः पूरितान्तरम् ॥ ५११ ॥
लेलिहानचलद्विद्युत्समानरसनं महत् ।
दानवासुरदैत्यानां कोटिमर्बुदमेव च ॥ ५१२ ॥
धारयित्वा च धृत्वा च सार्द्धं कटकटारवैः ।
प्रक्षिप्य तत्र बाहुभ्यां चर्वयन्तीं हसन्मुखीम् ॥ ५१३ ॥
गिलन्तीं पूरयन्तीं च पातालतुलितोदरम् ।
ध्यात्वा चैवंविधां कालीं ततोऽङ्गेषु न्यसेदमुम् ॥ ५१४ ॥

---

१. यहाँ दश अक्षर बन रहे हैं । इसलिये या तो 'नवाक्षरो' की जगह 'दशाक्षरो' पाठ होना चाहिये, या एक बीजाक्षर कम होना चाहिये ।

यह शिवा नरमुण्ड का हार धारण की हुई, नाद से पुष्कर (=आकाश) को पूरित करने वाली, जलती हुई अग्नि के आकार वाले विखरे हुए बालों वाली, नरास्थि के बने हुये सर्वाङ्गभूषण वाली, करोड़ों-करोड़ों महाघोर योगिनीगणों के मध्य में स्थित जगदम्बा काली दश भुजा वाली है। सृक्क से गिरते हुए रुधिर से उपलिप्त वह दायें हाथों में खड्ग त्रिशूल, बाँण और शक्ति तथा बायें हाथों में फलक, डमरू, धनुष और कपाल ली हुई है। मुख घोर दाँतों से भरा है उसमें विद्युत् के समान रसना लपलपा रही है। ऐसे मुख को खोलकर उसमें भुजाओं के द्वारा दानवों असुरों को करोड़ों की सङ्ख्या में घसीट कर कट-कट शब्दों के साथ मुख में फेंक कर चबाती हुई, हँसती हुई, राक्षसों को निगल कर उनसे पाताल सदृश अपने उदर को भर रही है। इस प्रकार की काली का ध्यान कर फिर इस मन्त्र का अङ्गों में न्यास करना चाहिये ॥ ५०८-५१४ ॥

[गुह्यकाल्या मन्त्रध्याने]

गुह्यकालीमन्त्रमतः समाकर्णय भामिनि ।
यत्तवैवोच्यते देवि नैवान्यत्र कदाचन ॥ ५१५ ॥
त्रपाऽनङ्गं शाकिनीं च क्रोधमङ्कुशमेव च ।
गुह्यशब्दादपि वदेत् कालिशब्द वरानने ॥ ५१६ ॥
कालीं च योगिनीबीजं फेत्कारीं चण्डमेव च ।
योगिनीकामिनीबीजं स्वाहान्ते विनिवेशयेत् ॥ ५१७ ॥
सुदुर्लभो मन्त्रराजो ज्ञेयः सप्तदशाक्षरः ।
न तीर्य्यतेऽस्य महिमा वर्णितुं वरवर्णिनि ॥ ५१८ ॥
ध्यानं निशामयाथास्याः प्रोच्यमानं मया स्वयम् ।
आपादपद्मादारभ्य कण्ठं पाटलसन्निभा ॥ ५१९ ॥
मुखे दूर्वादलश्यामा जटाभारविराजिता ।
शवोपरि समासीना किञ्चिद्विस्तारितानना ॥ ५२० ॥
दशभिर्वदनैर्युक्ता त्रित्रिचक्षुर्विराजितैः ।
मुण्डकुण्डलसंवीता सर्वेषु वदनेष्वपि ॥ ५२१ ॥
नरास्थिविहिताकल्पा कल्पकल्पक्षयङ्करा ।
सर्वत्र लम्बितजटा सर्वत्रापदि तारिणी ॥ ५२२ ॥
किञ्चिच्छुष्कगलोद्देशा किञ्चिदाकुञ्चितानना ।
पिचिण्डिला निम्ननाभिर्नातिपीनपयोधरा ॥ ५२३ ॥
स्थूलोरुजङ्घाविकटा सर्वाभरणभूषिता ।
अदीर्घषोडशापीनदोर्मण्डलविराजिता ॥ ५२४ ॥

गुह्यकाली के मन्त्र ध्यान—हे भामिनि ! इसके बाद गुह्यकाली का मन्त्र सुनो जिसको मैं तुम्हीं को बतला रहा हूँ किसी और को नहीं। लज्जा काम शाकिनी क्रोध

अङ्कुश के बाद 'गुह्य' शब्द के बाद 'कालि' कहे । फिर काली बीज योगिनीबीज, फेत्कारी चण्ड योगिनी कामिनी बीजों के बाद अन्त में 'स्वाहा' कहना चाहिये (मन्त्र—ह्रीं क्लीं फ्रें हूं क्रों गुह्यकालि क्रीं छ्रीं ह्स्ख्फ्रें फ्रों छ्रीं स्त्री स्वाहा) । यह दुर्लभ मन्त्रराज सत्रह अक्षरों वाला समझना चाहिये । हे वरवर्णिनि ! इसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता । अब मेरे द्वारा कहे जाने वाले इसके ध्यान को सुनो—यह देवी पैर से लेकर कण्ठ तक पाटल के समान है । मुख दूर्वादल के समान श्याम है । शिर पर जटा विराजमान है । शव के ऊपर आसीन इसका मुख कुछ विस्तारित है । तीन-तीन नेत्रवाले दशमुखों से युक्त यह सभी मुखों में नरमुण्ड का कुण्डल पहनी हुई है । नरास्थि का आकल्प (=आभूषण) धारण की हुई है । कल्प-कल्प में यह संहार करती रहती है । इसकी जटायें सब ओर लटक रही हैं । यह सब आपत्तियों को दूर करने वाली है । इसका गला कुछ सूखा हुआ और मुख कुछ सिकुड़ा है । पिचिण्डिला (=बड़े पेट वाली), गहरी नाभि वाली और सामान्य स्तनों वाली यह स्थूल उरु एवं जङ्घा के कारण विकट है । समस्त आभूषणों से अलङ्कृत छोटी-छोटी पतली सोलह भुजाओं से यह शोभायमान है ॥ ५१५-५२४॥

नीलाम्बरपरीधाना नीलस्त्रग्गन्धलेपना ।
शिवापोतं च खट्वाङ्गं गदामङ्कुशमेव च ॥ ५२५ ॥
घण्टां नृमुण्डं वामेन दधती खर्पराभये ।
खड्गं त्रिशूलं चक्रं च नागपाशं ततः परम् ॥ ५२६ ॥
जपमालां च डमरुं कर्त्तृकां वरमेव च ।
धारयन्ती दक्षिणेनोपविष्टा कुणपोपरि ॥ ५२७ ॥
योगपट्टसमुन्नद्धजानुमध्यकराम्बुजा ।
समस्तविग्रहव्यापि मुण्डमालाविराजिता ॥ ५२८ ॥
सर्वकामप्रदा देवी सर्वसिद्धिविधायिनी ।
ध्यातव्या भक्तिभावेन परमैश्वर्यदायिनी ॥ ५२९ ॥
नातः परतरा कापि त्रैलोक्यैश्वर्य्यसाधिका ।
विद्यते दयिते देवी सद्यः प्रत्ययकारिणी ॥ ५३० ॥
लोकपालशिरोरत्ननिघृष्टचरणद्वयः ।
त्रैलोक्यविजयी यत्र प्रमाणं दशकन्धरः ॥ ५३१ ॥
दिव्यं वर्षायुतं देवि ध्यायता येन तां पराम् ।
पेशष्कारीयता कालात् प्राप्ता सत्यं दशास्यता ॥ ५३२ ॥
यमेन्द्रचन्द्रवरुणकुबेरानिलनैर्ऋताः ।
मित्राग्निरविनासत्यरुद्रब्रह्मादिदेवताः ॥ ५३३ ॥
यक्षराक्षसगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगाः ।
उपासते सभायां यं नित्यमेव समाहिताः ॥ ५३४ ॥

मन्वन्तरद्वयं पूर्णं किञ्चिदप्यधिकं प्रिये ।
यः शशासाखण्डिताज्ञो भुवनानि चतुर्दश ॥ ५३५ ॥
नास्तेऽमरत्वमेतस्मात्कालेनासौ निपातितः ।

यह देवी नीलवस्त्र पहनी हुई, नीलमाला और गन्ध लगायी हुई है । बायें हाथों में शृगाल का बच्चा खट्वाङ्ग, गदा, अङ्कुश, घण्टा, नरमुण्ड, खप्पर और अभयमुद्रा तथा दायें हाथों में खड्ग, त्रिशूल, चक्र, नागपाश, जपमाला, डमरू, कैंची और वरदमुद्रा धारण की हुई है । शव के ऊपर बैठी हुई है । योगपट्ट से बँधे हुए जानु के मध्य में हाथ रखी हुई तथा सर्वसिद्धिदायिनी है । परम ऐश्वर्यदायिनी इसका भक्तिभाव से ध्यान करना चाहिये । इससे बढ़कर त्रिलोक के ऐश्वर्य को देने वाली कोई दूसरी नहीं है । हे देवि! यह सद्यः ज्ञानदायिनी है । इस विषय में वह रावण प्रमाण है जो कि त्रैलोक्यविजयी रहा तथा जिसके दोनों चरणों में लोकपालों का मुकुट अवनत रहा करता था । इस परा देवी का ध्यान करने वाले जिसने समय के अनुसार छलविद्या और दश मुख प्राप्त किया । यम इन्द्र, चन्द्र, वरुण, कुबेर, वायु, निर्ऋति, मित्र, अग्नि, सूर्य, नासत्य, रुद्र, ब्रह्मा आदि देवतायें तथा यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, सर्प, नित्य समाहित होकर सभा में नित्य जिसकी उपासना करते थे । हे प्रिये! जिसकी आज्ञा कभी उल्लङ्घित नहीं हुई ऐसा जो चौदहों भुवनों के ऊपर दो मन्वन्तर से कुछ अधिक समय तक शासन किया और चूँकि अमरत्व (इस लोक में) किसी का नहीं रहता इसलिये काल के अनुसार वह मारा गया (—ऐसा रावण इस विषय में प्रमाण है) ॥ ५२५-५३६ ॥

[अनङ्गमालाया मन्त्रध्याने]

अथातोऽनङ्गमालाया व्याहरामि मनुं शुभम् ॥ ५३६ ॥
प्रणवं वाग्भवं पाशं त्रपाक्रोधाङ्कुशान्यपि ।
क्षेत्रपालं च कालीं च गारुडं शाकिनीमपि ॥ ५३७ ॥
अनङ्गमाले उल्लिख्य स्त्रियमित्युच्चरेदथ ।
आकर्षयद्वयं चोक्त्वा त्रुटछेदययोर्युगम् ॥ ५३८ ॥
कवचद्वितयं चास्त्रद्वयं स्वाहान्तगो मनुः ।
स्वर्णसिंहासनगतां तप्तकाञ्चनसन्निभाम् ॥ ५३९ ॥
विशालमुकुराकारवदनां स्मितशालिनीम् ।
चलत्खञ्जनलीलानुकारित्रिनयनां सदा ॥ ५४० ॥
अर्द्धेन्दुशेखरां देवीं किञ्चिदाकुञ्चितभ्रुवम् ।
कर्णान्दोलस्फुरद्रत्नकुण्डलोद्यत्कपोलकाम् ॥ ५४१ ॥
पीवरोत्तुङ्गवक्षोजां वक्षोजोद्योतिगोस्तनाम् ।
गोस्तनोद्योतिशशभृच्छेखरां जगदम्बिकाम् ॥ ५४२ ॥
बृहन्नितम्बवेदीकां तनुमध्यां वरोरुकाम् ।

मञ्जीरकिङ्किणीहारकङ्कणाङ्गदराजिताम् ॥ ५४३ ॥
वराभयकरां देवीं द्विभुजां सिद्धिदायिनीम् ।
ध्यात्वा चित्ते न्यसेद् देवीं सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ५४४ ॥

अनङ्गमाला के मन्त्र ध्यान—अब अनङ्गमाला का शुभ मन्त्र बतला रहा हूँ। प्रणव, वाग्भव, पाश, त्रपा, क्रोध, अङ्कुश, क्षेत्रपाल, काली, गरुड़, शाकिनी बीजों तथा 'अनङ्गमाले' का उच्चारण कर 'स्त्रियम्' कहे । पुनः 'आकर्षय' को दो बार कहकर 'त्रुट छेदय' को दो दो बार कहे । फिर दो कवच दो अस्त्र और अन्त में 'स्वाहा' कहे । (मन्त्र—ॐ ऐं आं ह्रीं हूं क्रों क्षौं क्रीं क्रौं फ्रें अनङ्गमाले स्त्रियमाकर्षय आकर्षय त्रुट-त्रुट छेदय छेदय हुं हुं फट् फट् स्वाहा) ध्यान—स्वर्णसिंहासन पर बैठी हुई, तप्त काञ्चन के समान, विशाल दर्पण के आकार के मुख वाली, मुस्कानयुक्त, चलते हुए खञ्जन की लीला का अनुकरण करने वाले तीन नेत्रों वाली, मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण की हुई, कुछ टेढ़ी भौंह वाली, कानों के हिलने से चमकने वाले कुण्डलों से प्रकाशित कपोल वाली, पीवर उत्तुङ्ग स्तनों वाली, स्तनों पर चमकती हुई गोस्तना (=चार लड़ी की मोतियों की माला) वाली, गोस्तना को चमत्कृत करने वाले चन्द्रमा को मस्तक पर धारण की हुई, संसार की माता, बृहत् नितम्बों वाली, क्षीण कटि प्रदेश तथा श्रेष्ठ जांघों वाली, मञ्जीर किङ्किणी हार कङ्कण अङ्गद से सुशोभित, वरद एवं अभय मुद्रा धारण किये हाथों वाली, दो भुजाओं वाली सिद्धिदायिनी देवी का मन में ध्यान कर सर्वकामार्थसिद्धि के लिये न्यास करना चाहिये ॥ ५३६-५४४॥

[चामुण्डाया मन्त्रध्याने]

कथयाम्यथ चामुण्डामन्त्रमुन्नतिकारकम् ।
यज्ज्ञात्वा यत्र कुत्रापि सङ्कटे नावसीदति ॥ ५४५ ॥
संयुगे निर्भयो भूयादधिगच्छेच्च सम्पदम् ।
प्रणवाङ्कुशकालीयशाकिनीचण्डयोगिनीः ॥ ५४६ ॥
खेचरीक्रोधफेत्कारीविद्युत्कालरतित्रपाः ।
भौजङ्गमहाक्रोधसौपर्णान् षोडशोच्चरेत् ॥ ५४७ ॥
चामुण्डे इति सङ्कीर्त्य युग्मं ज्वल हिलेः किलेः।
मम शत्रूनिति प्रोच्य युगं त्रासय मारय ॥ ५४८ ॥
हल युग्मं पतयुगं भक्षय द्वितयं ततः ।
कालोत्रपारुषां युग्मं फट् द्वयं स्वाहया युतम्॥ ५४९ ॥
एकसप्तत्यक्षरोऽसौ मन्त्रः परमशोभनः ।

चामुण्डा के मन्त्र ध्यान—अब चामुण्डा का उन्नतिकारक मन्त्र बतला रहा हूँ जिसको जानकर मनुष्य किसी भी सङ्कट में दुःखी नहीं होता । युद्ध में निर्भय होता और सम्पत्ति प्राप्त करता है । प्रणव अङ्कुश काली शाकिनी चण्ड योगिनी खेचरी क्रोध फेत्कारी विद्युत् काल रति लज्जा भुजङ्ग महाक्रोध गरुड इन सोलह बीजाक्षरों

का उच्चारण करे । फिर 'चामुण्डे' कहकर 'ज्वल हिलि किलि' को दो-दो बार फिर 'हन पत भक्षय' को दो-दो बार कहने के बाद काली त्रपा क्रोध बीजों तथा फट् को दो बार कहकर 'स्वाहा' कहे । (मन्त्र—ॐ क्रों क्रीं फ्रें फ्रों छ्रीं ख्रौं हूं ह्स्ख्फ्रें ब्लौं जूं क्लूं ह्रीं क्रम्लै क्षूं क्रौं चामुण्डे ज्वल ज्वल हिलि हिलि किलि किलि हन हन पत पत भक्षय भक्षय क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं फट् फट् स्वाहा) । इकहत्तर अक्षरों का यह मन्त्र परम शोभन है ॥ ५४५-५५० ॥

धरालग्नशिरोजानुप्रसुप्तकुणपोपरि ॥ ५५० ॥
निषेदुषीं निष्पललसर्वावयवभीषणाम् ।
त्वगस्थिमात्रघटितामत्युग्राकारदर्शनाम् ॥ ५५१ ॥
कपालाकारशिरसं विलुण्ठितशिरोरुहाम् ।
स्कन्धावसक्तयुगलकुण्डलीकृतखर्पराम् ॥ ५५२ ॥
नारास्थिनिर्मितानेकभूषणां भीषणाकृतिम् ।
मुण्डमालापरिक्षिप्तां ललज्जिह्वाभयानकाम् ॥ ५५३ ॥
विकरालमहादंष्ट्रां रौद्रीं रुद्रपरिग्रहाम् ।
अतिशुष्कोदरश्रोणिनितम्बोरुपयोधराम् ॥ ५५४ ॥
गणेयोभयपार्श्वस्थपञ्जरास्थिकरालिनीम् ।
दीर्घतालद्रुमाकारकरपादां हसन्मुखीम् ॥ ५५५ ॥
खर्ज्जूरकण्टकाकाररोमराजिविराजिताम् ।
लौहसूर्पाकृतिनखां समुत्कम्पिशिरोधराम् ॥ ५५६ ॥
कूपाकारत्रिनयनां विद्युच्चपलतारकाम् ।
लम्बमानौष्ठाधरां तां वलीलग्नपयोधराम् ॥ ५५७ ॥
विदीर्णसृक्कयुगलां नारान्त्रकटिसूत्रिणीम् ।
दिगम्बरां चर्वयन्तीं शवं कटकटारवैः ॥ ५५८ ॥

ध्यान—पृथ्वी से संयुक्त शिर और घुटने वाले (अर्थात् औंधे मुँह पड़े हुए) शव के ऊपर बैठी हुई, मांसरहित समस्त अङ्गों से भयङ्कर, चर्म और अस्थिमात्र की बनी हुई, देखने में अत्यन्त उग्र, कपालसदृश शिर, नोंच लिये गये बालों वाली, कन्धे तक लटके हुये कुण्डल के समान खप्पर वाली, नरास्थि से निर्मित अनेक भूषणों वाली, भीषण आकार वाली, मुण्ड माला से उल्लासित, लपलपाती जिह्वा से भयङ्कर, विकराल दाँतों वाली, रौद्ररूप वाली, रुद्र के साथ स्थित (अथवा रुद्राक्ष धारण की हुई), अत्यन्त शुष्क उदर श्रोणी नितम्ब उरु और पयोधरों वाली, दोनों पार्श्वों की अस्थियों के गिनने योग्य होने से भयङ्कर, दीर्घताडवृक्ष के आकार के हाथ पैर वाली, हँसते हुए मुख वाली, खजूर के काँटे के आकर वाली रोमराजि से शोभायमान, लोहे के सूप के समान नखों वाली, काँपते शरीर वाली, कूप के आकार के तीन नेत्रों वाली, उनमें बिजली के समान चञ्चल ताराओं वाली, लटकते ओष्ठ और अधर

वाली, वली तक लटके हुए स्तनों वाली, दोनों सृक्क खोली हुई, मनुष्य के आँत का कटिसूत्र धारण की हुई, दिगम्बर, शव को कट-कट चबाती हुई है ॥ ५५०-५५८ ॥

अष्टादशभुजां भीमां चरन्तीं पितृकानने ।
वामे करे चर्मचापखट्वाङ्गडमरून् क्रमात् ॥ ५५९ ॥
अङ्कुशं च तथा पाशं भिन्दिपालं शवं तथा ।
रक्तपूर्णं कपालं च धारयन्तीं महोदरीम् ॥ ५६० ॥
दक्षिणे बिभ्रतीं खड्गं विशिखं च त्रिशूलकम् ।
चक्रं शक्तिं गदां पर्शुमस्थिमालां च कर्तृकाम् ॥ ५६१ ॥
दिवा कालाभ्रसदृशां जवापुष्पारुणां निशि ।
वलाकासमदन्तालीं भुजङ्गकुटिलभ्रुवम् ॥ ५६२ ॥
अतिक्रूराकृतिधरां दृष्ट्वैव मरणप्रदाम् ।
घोराट्टहासां गगने प्लवन्तीं सर्वतोमुखीम् ॥ ५६३ ॥
चिन्तयित्वा तु चामुण्डामित्थमङ्गे न्यसेन्मनुम् ।

अट्ठारह भुजा वाली भयङ्कर यह देवी श्मशान में घूमती रहती है । बायें हाथों में ढाल, धनुष, खट्वाङ्ग, डमरू, अङ्कुश, पाश, भिन्दिपाल, शव और रक्तपूर्ण कपाल तथा दायें हाथों में खड्ग, बाँण, त्रिशूल, चक्र, शक्ति, गदा, परशु, अस्थिमाला और कैंची ली हुई; दिन में काले बादल के समान रूप वाली तथा रात्रि में जवाकुसुम के समान लाल, बलाका के समान दाँतों वाली, भुजङ्ग के समान वक्र भौंह वाली, अत्यन्त क्रूर आकार धारण की हुई, देखने से ही मृत्यु देने वाली, चामुण्डा का इस प्रकार ध्यान कर मन्त्र का अङ्गों में न्यास करना चाहिये ॥ ५५९-५६४ ॥

[वाराह्या मन्त्रध्याने]

धरित्रीधरणे धीरामाकर्णय इतः परम् ॥ ५६४ ॥
तारं नमः समाभाष्य भगवत्यै ततो वदेत् ।
वाराह इति चोद्धृत्य रूपिण्यै तदनन्तरम् ॥ ५६५ ॥
ततश्चतुर्दश प्रोच्य कीर्तयेद् भुवना ततः ।
धिपायै समनूद्धृत्य वाराह्यै तदनन्तरम् ॥ ५६६ ॥
भूपतित्वं ततः प्रोच्य मे देहि तदनन्तरम् ।
दापयानन्तरं वह्निजायान्तो मनुरीरितः ॥ ५६७ ॥
घननीलघनाकारां खर्वस्थूलकलेवराम् ।
हस्तमात्रविनिष्क्रान्तप्रचलत्पोत्ररन्ध्रवत् ॥ ५६८ ॥
वामभागेऽक्षिवदनं धारयन्तीं द्विलोचनाम् ।
अष्टमीचन्द्रखण्डाभदंष्ट्रायुगविराजिताम् ॥ ५६९ ॥
कोपादालोलरसनां विस्तारिविवृताननाम् ।
कल्पान्तरविसङ्काशां पूरयन्तीं जगत् त्विषा ॥ ५७० ॥

भीमदंष्ट्राट्टहासां च रक्ताक्षीं रक्तवाससम् ।
कृपाणाकाररोमालीपरिपूर्णकलेवराम् ॥ ५७१ ॥
भूदाररूपधात्रीं च सञ्चरन्तीं विहायसि ।
सटाधूननवित्रस्तप्रपलायितखेचराम् ॥ ५७२ ॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तां घुर्घुरारावकारिणीम् ।
अब्जचापाङ्कुशान् पाशं वामगे बिभ्रतीं करे ॥ ५७३ ॥
चक्रं बाणं गदां शङ्खं दधतीं दक्षिणे करे ।
दूर्वादलश्यामलया धरण्या सेवितां सदा ॥ ५७४ ॥
वाराहीं चिन्तयेदित्थं सर्वकामफलप्रदाम् ।

वाराही के मन्त्र ध्यान—इसके बाद मुझसे पृथ्वी को धारण करने में धीर (वाराही के मन्त्र) को सुनो । तार नमः कहकर 'भगवत्यै' कहे । फिर 'वाराहरूपिण्यै' कहने के बाद 'चतुर्दशभुवनाधिपायै' कहकर 'वाराह्यै' कहे । ततः 'भूपतित्वं मे देहि दापय' के बाद 'स्वाहा' कहे । (मन्त्र—ॐ नमो भगवत्यै वाराहरूपिण्यै चतुर्दशभुवनाधिपायै वाराह्यै भूपतित्वं में देहि दापय स्वाहा) । ध्यान—घने काले बादलों के आकार वाली, छोटी स्थूल शरीर वाली, एक हाथ बाहर निकले हुए चञ्चल थूथुन के छिद्रवाली, बायें भाग में अक्षियुक्त मुख को धारण की हुई, दो आखों वाली, अष्टमी के चन्द्रखण्ड के समान दो (बाहर निकले) दाँतों से सुशोभित, क्रोध के कारण कुछ रक्त जिह्वा वाली, फैले खुले मुख वाली, कल्पान्त सूर्यसदृश, अपने तेज से संसार को व्याप्त करने वाली, भयङ्कर दाँतों से अट्टहास करने वाली, रक्ताक्षी, रक्तवस्त्रधारण की हुई, कृपाण के आकार की रोमावली से परिपूर्ण शरीर वाली, कुदार रूप धारण की हुई तथा आकाश में विचरण करने वाली है । सटा के विधूनन के कारण वित्रस्त अत एव पलायित खेचर (=पक्षी या राक्षस आदि) वाली, सर्वालङ्कारसंयुक्त, घुर्घुर शब्द करने वाली, बायें हाथों में कमल-धनुष अङ्कुश-पाश तथा दायें हाथों में चक्र बाण गदा और शङ्ख धारण की हुई है । दूर्वादल के समान श्यामल पृथ्वी के द्वारा सदा सेव्यमान तथा सर्वकामफलप्रदा वाराही का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये ॥ ५६४-५७५ ॥

[वगलाया मन्त्रध्याने]

श्रृणवतो वगलामन्त्रं येन संवदनं भवेत् ॥ ५७५ ॥
प्रणवान्ते नमो दत्वा भगवत्यै ततोऽपि च ।
पीताम्बरायै चोद्धृत्य त्रपायुग्मं ततः परम् ॥ ५७६ ॥
ततश्च सुमुखि प्रोच्य वगले तदनन्तरम् ।
विश्वमेतं वशं प्रोच्य कुरुयुग्मं शिरोऽपि च ॥ ५७७ ॥
एकत्रिंशाक्षरो मन्त्रो जगद्वश्यकरः प्रिये ।
निगद्यमानमस्यास्त्वं ध्यानमप्यवधारय ॥ ५७८ ॥

गौरी पीताम्बरधरा पीतस्रगनुलेपना ।
रत्नसिंहासनगता रत्नालङ्कारभूषिता ॥ ५७९ ॥
त्रिनेत्रा चन्द्रशकलविराजितललाटिका ।
सौन्दर्य्यसारविजितजगल्लावण्यपुञ्जिका ॥ ५८० ॥
चतुर्भुजाङ्कुशवरे दक्षिणे बिभ्रती करे ।
तथैव धारयन्ती च वामे दीपाभये करे ॥ ५८१ ॥
ध्यातव्या भक्तिभावेन वश्यकर्म चिकीर्षता ।

बगला के मन्त्र ध्यान—इसके बाद वगला मन्त्र को सुनो जिससे संवदन (=वशीकरण) होता है। प्रणव के अन्त में 'नम:' कहकर 'भगवत्यै पीताम्बरायै' कहे। फिर लज्जा बीज दो बार, तत्पश्चात् 'सुमुखि' वगले विश्वमेतं वशं' कहकर 'कुरु' को दो बार कहने के पश्चात् 'शिर' कहना चाहिये। (मन्त्र—ॐ नमो भगवत्यै पीताम्बरायै ह्रीं ह्रीं सुमुखि वगले विश्वमेतं वशं कुरु कुरु स्वाहा)। हे प्रिये! इकतीस अक्षर का यह मन्त्र जगत् को वश में करने वाला है। इसके निगद्यमान ध्यान को भी समझो। (यह देवी) गोरे रंग वाली, पीत वस्त्र धारण की हुई, पीत माला और अनुलेपन वाली, रत्नसिंहासन पर बैठी, रत्नजटित अलङ्कार से भूषित, त्रिनेत्रा, ललाट पर चन्द्रखण्ड की शोभा वाली, सौन्दर्यसार के द्वारा जगत् को जीतने वाले लावण्यपुञ्जवाली, चार भुजाओं वाली, दायें हाथों में अङ्कुश और वरदमुद्रा, उसी प्रकार बायें हाथों में दीपक और अभयमुद्रा धारण की हुई है। वश्यकर्म करने की इच्छा वाला साधक भक्तिभाव से इसका ध्यान करे ॥ ५७५-५८२ ॥

[जयदुर्गाया मन्त्रध्याने]

अथातो जयदुर्गाया रम्यं मनुमुदीरये ॥ ५८२ ॥
ताराङ्कुशस्मररमामायापाशवधूरुषः ।
जय दुर्गे ततश्चोक्त्वा रक्ष रक्ष ततो वदेत् ॥ ५८३ ॥
स्वाहान्त एष कथितो मनुरष्टादशाक्षरः ।
यथैतां चिन्तयेद् देवीं तथा त्वमवधारय ॥ ५८४ ॥
अतिकालघनाकारा चन्द्रार्द्धकृतशेखरा ।
कटाक्षैः शत्रुसङ्घातान् निर्दहन्ती परात्परा ॥ ५८५ ॥
त्रिनेत्रा भृकुटीभङ्गा वित्रासितजगत्त्रया ।
सिंहधोरणधौरीणा चलच्चिकुरपल्लवा ॥ ५८६ ॥
अष्टवाहा जगद्धात्री विकरालतरानना ।
शङ्खं तथाङ्कुशं चापं जीवतो वैरिणः शिरः॥ ५८७ ॥
सकचं वामपार्श्वस्थकरेण दधती शिवा ।
करवालं तथा चक्रं विशिखं च गदामपि ॥ ५८८ ॥
दक्षिणेन करेणैव धारयन्ती भयप्रदा ।
जयदुर्गा सदा ध्येया घोरे समरमूर्द्धनि ॥ ५८९ ॥

जयदुर्गा के मन्त्र ध्यान—अब इसके बाद जयदुर्गा का रम्य मन्त्र कह रहा हूँ । तार, अङ्कुश, काम, रमा, माया, पाश, वधू, क्रोध, बीजों को कहकर 'जय दुर्गे' कहे । पश्चात् 'रक्ष रक्ष' और अन्त में 'स्वाहा' कहे । यह मन्त्र अट्ठारह अक्षरों वाला है (मन्त्र—ॐ क्रों क्लीं श्रीं ह्रीं आं स्त्रीं हूं जयदुर्गे रक्ष रक्ष स्वाहा) । (अब) जिस प्रकार इस देवी का ध्यान करना चाहिये वैसा तुम समझो—अत्यन्त काले बादल के आकार वाली, मस्तक पर अर्धचन्द्र, कटाक्षों से शत्रुओं को नष्ट करने वाली, परात्पर, त्रिनेत्रा, कुटिल भौंहों वाली, तीनों लोकों को त्रस्त करने वाली, सिंह की सवारी करने में दक्ष, चञ्चल बालों वाली, आठ वाह (=भुजा) वाली (अथवा आठ वाहन वाली), जगत् का पालन करने वाली, विकराल मुख वाली, बायें हाथों में शङ्ख, अङ्कुश, धनुष और जीवित शत्रु का बाल सहित शिर तथा दायें हाथों में खड्ग, चक्र, बाँण और गदा धारण की हुई, भयप्रद जयदुर्गा का घोर युद्धक्षेत्र में सदा ध्यान करना चाहिये ॥ ५८२-५८९ ॥

[नारसिंहीदेव्या मन्त्रध्याने]

धारय त्वं कथ्यमानं नारसिंहीमनुं मया ।
तारपाशाङ्कुशक्रोधकालमायास्मरस्त्रियः ॥ ५९० ॥
महाक्रोधक्षेत्रपालचण्डनाकालशाकिनीः ।
उल्काजिह्वा सटाशब्द घोररूप ततो वदेत् ॥ ५९१ ॥
दंष्ट्राकराल आभाष्य नारसिंहि समुद्धरेत् ।
प्रासादत्रितयं चोक्त्वा हुङ्कारत्रिकमालिखेत् ॥ ५९२ ॥
अस्त्रद्वयं ततः स्वाहा चत्वारिंशाक्षरो मनुः ।
यादृशी ध्यानचर्चा स्यात्तामप्याकर्णय प्रिये ॥ ५९३ ॥
हिमानीकुन्दकैलासरजताचलसन्निभा ।
वितस्तकेशरभरा विकीर्णवदनाकृतिः ॥ ५९४ ॥
सृक्कक्षरद्रक्तधारा लम्बमानाधरागलम् ।
द्विगुणीकृतशीतांशुकलातुल्यरदावलिः ॥ ५९५ ॥
अवभ्रटा क्षीणमध्यालातसङ्काशदृग्द्वया ।
कृशदीर्घसमस्ताङ्गी सर्वालङ्कारमण्डिता ॥ ५९६ ॥
प्रोद्यन्मार्तण्डबिम्बाभकौस्तुभोद्भासिनी हृदि ।
मुखावटविनिर्गच्छज्जिह्वाकोटिशतह्रदा ॥ ५९७ ॥
केशराधूननत्रस्तखचरा खचरास्पदा ।
वज्राधिकनखस्पर्शा लोचनाभ्यां मुखादपि ॥ ५९८ ॥
वमन्ती कल्पकालाग्निं चर्वयन्ती दितेः सुतान् ।
हसन्ती चाट्टहासेन नृत्यन्ती व्योममण्डले ॥ ५९९ ॥

नारसिंही देवी के मन्त्र ध्यान—मेरे द्वारा कथ्यमान नारसिंही के मन्त्र को सुनो ।

तार, पाश अङ्कुश, क्रोध, काल, माया, स्मर, स्त्री, महाक्रोध, क्षेत्रपाल, चण्डना, काल, शाकिनी, उल्काजिह्वा, सटा शब्द कहने के बाद 'घोररूपे' कहे । फिर 'दंष्ट्राकराले' कहकर 'नारसिंही' कहे । ततः प्रसाद का तीन बार कथन कर तीन हूङ्कार लिखे । दो अस्त्र लिखने के बाद 'स्वाहा' कहने पर यह चालिस अक्षरों वाला मन्त्र है । (मन्त्र—ॐ आं क्रों हूं जूं ह्रीं क्लीं स्त्रीं क्ष्रूं क्षौं फ्रों जूं क्षं फ्रें उल्काजिह्वा सटाघोररूपे दंष्ट्राकराले नारसिंहि हौं हौं हौं हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा) । हे प्रिये! जैसी ध्यानचर्चा है उसको भी सुनो । (यह देवी) महाहिम कुन्द कैलास अथवा रजत पर्वत के समान (धवल), बिखरे बालों वाली, विकृत वदन वाली, सृक्क से बहती रक्तधारा वाली, गले तक लटकते हुए ओठ वाली, चन्द्रमा की दोगुनी कलातुल्य दाँतों वाली, अवभ्रटा (=चपटी नाक वाली), क्षीण कटिवाली, अलातचक्र के समान दो नेत्रों वाली, कृश एवं दीर्घ समस्त अङ्गों वाली, समस्त अलङ्कार से युक्त, हृदय पर उगते हुए सूर्य बिम्ब के समान कौस्तुभमणि से भासित, मुख से सैकड़ों बिजली की भाँति निकलती हुई जिह्वा वाली, केसर के आधूनन से आकाशचारियों को त्रस्त करने वाली, वज्र से अधिक कठोर नखस्पर्श वाली, आँखों और मुख से भी कल्पकालाग्नि को उगलती हुई, राक्षसों को चबाती हुई, अट्टहास के साथ चलने वाली तथा आकाश में नर्त्तन करने वाली है ।। ५९०-५९९ ।।

गच्छन्ती वातवेगेन चरन्ती पितृकानने ।
दैत्यवक्षःपातनोत्थरुधिरोक्षितविग्रहा ॥ ६०० ॥
सुदीर्घषोडशभुजाशीतिदम्भोलिधारिणी ।
चापकं वज्रचर्माणि मुशलं परशुं तथा ॥ ६०१ ॥
धारयन्ती करे वामे पट्टिशं च विदारणम् ।
बाणचक्रगदाखड्गपाशाङ्कुशपवीनपि ॥ ६०२ ॥
विदारणं दक्षिणेन करेण दधती तथा ।
प्रतप्तहेमपिङ्गाग्रसटाभारावगुण्ठिता ॥ ६०३ ॥
प्रकम्पिततनूयष्टिः पारिप्लवकनीनिका ।
प्रसुप्तभुजगाकारलूमखण्डविराजिता ॥ ६०४ ॥
नक्षत्रमालायितया रम्या नक्षत्रमालया ।
संवर्त्तकालकोट्यर्कदुर्निरीक्ष्यभयङ्करा ॥ ६०५ ॥
कोटिप्रलयकालाग्निप्रत्यनीकतनुप्रभा ।
इत्थं ध्येया नारसिंही न्यासकर्मणि पार्वति ॥ ६०६ ॥

वायुवेग से चलने वाली, श्मशान में विचरण करने वाली, दैत्यों के वक्षस्थल के फाड़ने से निकले हुए रुधिर से उक्षित शरीर वाली, लम्बी सोलह भुजाओं के द्वारा अशीति (=अस्सी सङ्ख्या वाले या अशीति नामक) वज्र, धनुष, वज्र, ढाल, मुसल, परशु, पट्टिश और विदारण बायें हाथों में तथा बाण, चक्र, गदा, खड्ग, पाश, अङ्कुश, वज्र और विदारण दायें हाथों में ली हुई है । तप्त सुवर्ण के समान

पीत, अग्रजटा के भार से आच्छन्न मुख वाली, काँपती हुई शरीर वाली, हिलती-डुलती कनीनिका (आँख की पुतली) वाली, सोये हुए सर्प के आकार वाले लूमखण्ड (=जहरीली पूँछ) से शोभायमान, नक्षत्रमाला के सदृश प्रतीत होने वाली, नक्षत्र माला (=मोतियों की माला) से रमणीय, प्रलयकालीन करोड़ों सूर्य के समान दुर्निरीक्ष्य और भयङ्कर, प्रलयकालीन करोड़ अग्नि के सदृश शारीरिक चमक वाली है । हे पार्वति! न्यासकर्म में इस प्रकार की नारसिंही का ध्यान करना चाहिये ॥ ६००-६०६ ॥

[ब्रह्माण्या मन्त्रध्याने]

ब्रह्माणीमन्त्रमधुना सन्दिशामि तवेश्वरि ।
प्रणवादिं लिखेत् पाशं प्रासादं तदनन्तरम् ॥ ६०७ ॥
पीयूषमङ्कुशं नागमस्त्रं सप्ताक्षरो मनुः ।
ध्येयेयं येन विधिना वदामि तदपि प्रिये ॥ ६०८ ॥
हंसासनसमारूढ़ा रक्तवर्णा चतुर्मुखा ।
पिचिण्डिला निम्ननाभिः शुक्लयज्ञोपवीतिनी ॥ ६०९ ॥
स्थूलगण्डाधरौष्ठभ्रूकपोलवदनात्मिका ।
बद्धपद्मासना स्थूला घनपिङ्गशिखाजटा ॥ ६१० ॥
सप्तर्षिभिर्नारदाद्यैः स्तूयमाना परेश्वरी ।
बाहुभ्यां दक्षवामाभ्यामक्षसूत्रं कमण्डलुम् ॥ ६११ ॥
धारयन्ती मुखैर्वेदान् पठन्ती खर्वविग्रहा ।
चिन्तनीयेदृशी देवी ब्रह्माणी सर्वकामदा ॥ ६१२ ॥

ब्रह्माणी के मन्त्र ध्यान—हे ईश्वरि ! अब तुम्हें ब्रह्माणीमन्त्र बतला रहा हूँ। पहले प्रणव फिर पाश प्रासाद अमृत अङ्कुश नाग और अस्त्र लिखे । यह मन्त्र सात अक्षरों वाला है । (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—ॐ आं हौं ग्लूं क्रों ब्रीं फट्) । हे प्रिये! जिस विधि से इसका ध्यान करना चाहिये । वह भी तुमको बतला रहा हूँ । यह परमेश्वरी हंस पर आरूढ़, रक्तवर्णा, चतुर्मुखा, वृहद् उदरवाली, गहरी नाभि वाली, शुक्ल यज्ञोपवीत धारण की हुई, मोटे गण्ड अधर ओष्ठ भ्रू कपोल और वदन वाली, पद्मासन लगा कर बैठी, मोटी, सघन और पिङ्ग जटावाली है । सप्तर्षि नारद आदि इसकी स्तुति करते रहते हैं । दायें बायें हाथों से अक्षमाला और कमण्डलु धारण की हुई, मुखों से वेदपाठ करती हुई, नाटी कद वाली सर्वकामदा ब्रह्माणी देवी का ध्यान करना चाहिये ॥ ६०७-६१२ ॥

[वैष्णव्या मन्त्रध्याने]

वदामि वैष्णवीमन्त्रमाकर्णय वरानने ।
तारं नमः समुद्धृत्य नारायण्यै ततो वदेत् ॥ ६१३ ॥
जगत्स्थिति ततश्चोक्त्वा कारिण्यै तदनन्तरम् ।
कामबीजत्रयं चोक्त्वा लक्ष्मीबीजत्रयं ततः ॥ ६१४ ॥

पाशबीजं कालबीजं ततश्च विनिवेशयेत् ।
स्वाहान्तो मनुरुद्दिष्टश्चतुर्विंशाक्षरात्मकः ॥ ६१५ ॥
इन्द्रनीलमणिश्यामां फुल्लराजीवलोचनाम् ।
कोटिशारदपूर्णेन्दुसमानमुखरोचिषम् ॥ ६१६ ॥
अत्यच्छदर्पणीभूतकपोलद्वयराजिताम् ।
शोणबिम्बाधरां रत्नस्फुरन्मकरकुण्डलाम् ॥ ६१७ ॥
कम्बुग्रीवां महोदारां तुङ्गवक्षोजनम्रिताम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोद्भासिवक्षःस्थलविराजिताम् ॥ ६१८ ॥
शङ्खचक्रगदापद्मधारिभिर्दीर्घपीवरैः ।
चतुर्भिः पल्लवाकारैर्बाहुभिः परिराजिताम् ॥ ६१९ ॥
आपादपद्मलम्बिन्यालङ्कृतां वनमालया ।
किरीटरत्नकेयूरमञ्जीरादिभिरुज्ज्वलाम् ॥ ६२० ॥
पीताम्बरधरां देवीं भक्तानामभयप्रदाम् ।
गरुडासनमारूढां मन्दमन्दस्मिताधराम् ॥ ६२१ ॥
पक्षाभ्यां दीर्घपीनाभ्यां पृथुचञ्च्वावृताननाम् ।
हेमाभं गरुडं ध्यायेद्यमारूढा हि वैष्णवी ॥ ६२२ ॥

वैष्णवी के मन्त्र ध्यान—हे वरानने! वैष्णवीमन्त्र को बतला रहा हूँ । सुनो । तार 'नमः' को कहकर 'नारायण्यै' कहना चाहिये । फिर 'जगत्स्थितिकारिण्यै' कहकर तीन बार कामबीज कहे । फिर तीन बार लक्ष्मी बीज कहकर पाशबीज, कालबीज कहे । अन्त में 'स्वाहा' कहना चाहिये । वह चौबीस अक्षरों वाला मन्त्र है (मन्त्र—ॐ नमो नारायण्यै जगत्स्थितिकारिण्यै क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं आं जूं स्वाहा) । ध्यान—इन्द्रनीलमणि की भाँति श्याम, खिले कमल के सदृश नेत्रों वाली, करोड़ शरत्कालीन पूर्णचन्द्र के समान मुखकान्ति वाली, अत्यन्त स्वच्छदर्पण के सदृश दोनों कपोलों वाली, लाल बिम्ब के समान अधर वाली, रत्नों से स्फुरित मकराकृति-कुण्डलवाली, कम्बुग्रीवा, विशाल पेट वाली, ऊँचे स्तनों से नम्र, वक्षस्थल पर विराजमान श्रीवत्स (चरणचिह्न) और कौस्तुभ मणिवाली, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण की हुई, लम्बी चौड़ी पल्लवाकार चार भुजाओं से शोभायमान, पैर तक लटकने वाली वनमाला से अलङ्कृत, किरीट रत्न केयूर मञ्जीर आदि से चमत्कृत, पीताम्बरधारिणी देवी भक्तों के लिये अभयप्रदा है । यह गरुड़ासन पर आरूढ़ मन्द मुस्कानयुक्त अधर वाली है । दीर्घ पीन पङ्खों, स्थूल चोंच तथा खुले मुख वाले स्वर्णाभ गरुड़ पर सवार वैष्णवी का ध्यान करना चाहिये ॥ ६१३-६२२ ॥

[माहेश्वर्या मन्त्रध्याने]

अथ माहेश्वरीमन्त्रं समासात् प्रब्रवीमि ते ।
यस्यैकवारस्मरणान्निर्वाणमपि लभ्यते ॥ ६२३ ॥

तारप्रासादपीयूषपाशलज्जारमारुषः ।
माहेश्वरीपदं देवि प्रोच्चरेत्तदनन्तरम् ॥ ६२४ ॥
शाङ्करं शाम्भवं व्योम कूटत्रयमुदाहरेत् ।
भुजङ्गमतडिन्मेघशाकिनीरतिकालिकाः ॥ ६२५ ॥
चण्डकालामृतप्रेतान् युगलं कवचास्त्रयोः ।
त्रिंशदर्णात्मको मन्त्रः स्वाहासंवलितो भवेत् ॥ ६२६ ॥
इदानीं व्याहराम्यस्या ध्यानं सत्त्वगुणोज्ज्वलम् ।
हिमानीशैलसङ्काशामतिपीतजटाभराम् ॥ ६२७ ॥
घनाघनाभनागेन्द्रपरिबद्धजटाचयाम् ।
जटाजूटोच्छलद्गङ्गाजलकल्लोलमालिताम् ॥ ६२८ ॥
पञ्चवक्त्रां गलच्छायाजितकज्जलरोचिषम् ।
हिमांशुशकलोद्दीप्तपञ्चभालां हसन्मुखीम् ॥ ६२९ ॥
प्रतिभालप्रविद्योतित्रित्रिलोचनसङ्गताम् ।
भालतृतीयनेत्रोद्यद्वह्निज्वालासमाकुलाम् ॥ ६३० ॥
कपोलमण्डलोद्योतिशुद्धस्फटिककुण्डलाम् ।
शुभ्रवासुकिनागेन्द्रलसद्यज्ञोपवीतिनीम् ॥ ६३१ ॥
शातकुम्भाभनागेन्द्ररुचिराङ्गदशोभिताम् ।
अतिशोणभुजङ्गेन्द्रविलसद्रत्नकङ्कणाम् ॥ ६३२ ॥
वसानां चर्म वैयाघ्रं रत्नाकल्पोल्लसत्तनुम् ।
माहेश्वरीं समारूढामतिश्वेतवृषोपरि ॥ ६३३ ॥
दशवाहां वीरभद्रनन्दिभृङ्गिपुरःसराम् ।
विष्णुरूपं शवं घोरं त्रिशूलं पर्शुमेव च ॥ ६३४ ॥
अक्षमालां वरं दक्षे करे सम्बिभ्रतीं पराम् !
पिनाकं नागपाशं च मृगं डमरुमेव च ॥ ६३५ ॥
अभयं दधतीं वामे प्रमथादिगणैर्वृताम् ।
इत्थं विचिन्त्य मनसा न्यसेदङ्गेषु साधकः ॥ ६३६ ॥

माहेश्वरी के मन्त्र ध्यान—अब तुम्हें संक्षेप में माहेश्वरी मन्त्र को बतला रहा हूँ, जिसके एक बार के स्मरणमात्र से निर्वाण भी मिलता है । हे देवि ! तार, प्रासाद, अमृत, पाश, लज्जा, रमा, क्रोध बीजों के बाद 'माहेश्वरि' पद कहना चाहिये । ततः शाङ्कर, शाम्भव और व्योम—इन तीन कूटों को कहना चाहिये । भुजङ्गम, विद्युत, मेघ, शाकिनी, रति, काली, चण्ड, काल, अमृत, प्रेत कहकर कवच और अस्त्र को दो बार कहे । 'स्वाहा' से युक्त यह मन्त्र तीस वर्णों वाला है (मन्त्र—ॐ हौं ग्लूं आं ह्रीं श्रीं हूं माहेश्वरि ल्क्षमह्लजरक्रव्य्रऊं स्हजहल्क्षमलवनऊं क्ष्लह्रमव्य्रऊं क्रम्लैं ब्लौं क्लौं फ्रें क्लूं क्रीं फ्रों जूं ग्लूं स्हौः हुं हुं फट् फट् स्वाहा) । अब तुम्हें इसका सत्त्व-गुणोज्ज्वल ध्यान बतला रहा हूँ । महाहिमशैल के समान, अत्यन्त पीत जटावाली,

काले बादल की आभा वाले नागराज से जटा को बाँधी हुई, जटाजूट से उछलती हुई गङ्गा के जल की लहरों की माला वाली, पाँच मुखों वाली, गले की छाया से कज्जल की कान्ति को जीतने वाली, पाँचों मस्तकों पर चन्द्रखण्ड की चमक वाली, हँसमुख, प्रत्येक मस्तक पर चमकते हुए तीन-तीन नेत्रों वाली, भाल के तीसरे नेत्र से निकलने वाली अग्निज्वाला से समाकुल, कपोलमण्डल पर चमकने वाले शुद्ध स्फटिक के कुण्डलों वाली, शुभ्रवासुकि नाग का यज्ञोपवीत धारण की हुई, सोने के समान नागराजों का रुचिर अङ्गद पहनी हुई, अत्यन्त लाल साँपों के कङ्कण से शोभायमान, व्याघ्रचर्म पहनी हुई, रत्नों के आभूषण से सुशोभित शरीर वाली माहेश्वरी अत्यन्त श्वेत बैल पर आरूढ़ हैं। दश भुजा तथा वीरभद्र नन्दी, भृङ्गी के पीछे-पीछे चलने वाली, दायें हाथों में विष्णुरूपी शव, घोर त्रिशूल, परशु, अक्षमाला और वरद मुद्रा तथा बायें हाथों में धनुष, नागपाश, मृग, डमरू और अभय को धारण करती हुई अभय देने वाली, प्रमथ आदि गणों से घिरी हुई है। ऐसा ध्यान कर साधक अङ्गों में न्यास करे ॥ ६२३-६३६ ॥

[इन्द्राण्या मन्त्रध्याने]

अथेन्द्राणीमनुं वक्ष्ये मातृमण्डलमध्यगाम् ।
यदाराधनतो लोकः सद्यः प्राप्नोति देवताम् ॥ ६३७ ॥
प्रणवं समनूद्धृत्य वदेल्लज्जारमारुषः ।
इन्द्राणि तदनूद्धृत्य मायायुग्मं ततो वदेत् ॥ ६३८ ॥
हुं हुं ततः समुच्चार्य्य क्षेत्रपालद्वयं ततः ।
अस्त्रत्रयान्तसंयुक्तः शिरोमन्त्रेण पार्वति ॥ ६३९ ॥
अष्टादशाक्षरो मन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
ध्यानं निरुच्यमानं त्वं समाकर्णय पार्वति ॥ ६४० ॥
कैलासाचलसङ्काशतुङ्गैरावतसंस्थिता ।
नीलोत्पलदलश्यामा कवचावृतविग्रहा ॥ ६४१ ॥
रक्ताम्बरपरीधाना पीवरा खर्वविग्रहा ।
अनर्घ्यरत्नघटितचलच्छ्रवणकुण्डला ॥ ६४२ ॥
सर्वाङ्गव्याप्तशोणाब्जसहस्रनयनोज्ज्वला ।
चतुर्भुजा महापीनोत्तुङ्गवक्षोजमण्डिता ॥ ६४३ ॥
बाहुभ्यां दक्षवामाभ्यां स्थिताभ्यामुपरि क्रमात् ।
कुलिशं खेटकं चापि बिभ्रती समरोत्सुका ॥ ६४४ ॥
वामेनास्फालयन्ती च गण्डं करिपतेर्महत् ।
दक्षेण बाहुना कुम्भं दधती ददती शृणिम् ॥ ६४५ ॥
चतुर्दन्तो मदोन्मत्तस्तुषाराचलसन्निभः ।
ऐरावतोऽपि ध्यातव्यो यमिन्द्राणी समाश्रिता ॥ ६४६ ॥

इन्द्राणी के मन्त्र ध्यान—अब इन्द्राणी के मन्त्र को बतलाऊँगा जिसकी आराधना से मनुष्य उसी दिन मातृमण्डल की मध्यवर्त्ती देवता को प्राप्त कर लेता है। प्रणव को उद्धृत कर लज्जा, रमा और क्रोध बीजों को कहकर 'इन्द्राणि' कहे। इसके बाद दो बार माया बीज कहकर हं हं कहे। ततः दो क्षेत्रपाल बीज कहने के बाद अन्त में तीन अस्त्र और शिरोमन्त्र कहे। हे पार्वति! यह अट्ठारह अक्षरों वाला मन्त्र सर्वसिद्धिदाता है (मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं हूं इन्द्राणि ह्रीं ह्रीं हं हं क्षौं क्षौं फट् फट् फट् स्वाहा)। हे पार्वति! अब कथ्यमान ध्यान को सुनो—वह देवी कैलास पर्वत के समान ऊँचे ऐरावत हाथी पर सवार है। नीलकमल के दल के समान श्याम, पूरे शरीर को कवच से ढँकी हुई, लालवस्त्र पहनी हुई, मोटी, छोटी शरीर वाली, बहुमूल्य रत्नों से जटित चञ्चल श्रवणकुण्डल वाली, समस्त अङ्गों में लाल कमल सदृश सहस्र नेत्रों से देदीप्यमान, चार भुजा वाली, महापीन ऊँचे स्तनों से मण्डित, ऊपर उठे दायें-बायें हाथों में क्रमशः वज्र और खेटक (=ढाल) ली हुई, युद्ध के लिये उत्सुक, बायें हाथ से गजराज के गण्ड को दबाती हुई, दायीं भुजा से कुम्भ धारण की हुई, शृणि (=अङ्कुश) देती हुई है। (इसके ध्यान के साथ) जिस पर यह इन्द्राणी बैठी है उस चतुर्दन्त मदोन्मत्त तुषार पर्वत के समान (विशाल एवं शुभ्र) ऐरावत का भी ध्यान करना चाहिये ॥ ६३७-६४६ ॥

[हरसिद्धाया मन्त्रध्याने]

अथातो हरसिद्धाया मन्त्रं ते व्याहराम्यहम् ।
सर्वं मयाराधितेयं बहुसिद्धिमभीप्सता ॥ ६४७ ॥
अतः प्रसिद्धिं सम्प्राप्तां मन्त्राम्नैव वरानने।
प्रणवं वाग्भवं बीजं मायाबीजं ततः परम् ॥ ६४८ ॥
कमलां मान्मथं बीजं कालीपाशाङ्कुशा अपि ।
चण्डक्रोधमहाक्रोधफेत्कारी शाकिनी अपि ॥ ६४९ ॥
हरसिद्धिं ततः प्रोच्य सर्वसिद्धिमितीरयेत् ।
कुरुयुग्मं देहि युगं दापय द्वितयं पुनः ॥ ६५० ॥
क्रोधत्रयं समुद्धृत्य द्विफडन्तेऽग्निवल्लभा ।
द्विचत्वारिंशवर्णाढ्यो मन्त्रः सर्वोत्तमोत्तमः ॥ ६५१ ॥
ध्यानं चास्याः प्रवक्ष्यामि यत् कृत्वा न्यासमाचरेत् ।
हरितालसमाभासलोचनत्रयभूषिताम् ॥ ६५२ ॥
पादालम्बिजटाभारां नरमुण्डकृतस्रजम् ।
बर्हिपिच्छकृतोदग्रकाञ्चीकिङ्किणिमण्डिताम् ॥ ६५३ ॥
शार्दूलचर्मारचितकञ्चुक्यावृतवक्षसम् ।
शवोपरि समारूढामीषत्कम्पितमस्तकाम् ॥ ६५४ ॥
चलदोष्ठपुटां बाहुचतुष्केन विराजिताम् ।

बर्हिणं वृक्षपालं च वामतो बिभ्रतीं शुभाम् ॥ ६५५ ॥
खड्गं च कर्त्तृकां दक्षे योगपट्टकृतस्त्रजम् ।

हरसिद्धा के मन्त्र ध्यान—अब इसके बाद मैं तुमको हरसिद्धा का सम्पूर्ण मन्त्र बतला रहा हूँ । बहुत सिद्धि चाहने वाले मेरे द्वारा इसकी आराधना की गयी । इसलिये हे वरानने! यह मेरे नाम से ही प्रसिद्ध हुई । प्रणव,वाग्भव बीज, माया बीज, कमला, मन्मथ, काली, पाश, अङ्कुश, चण्ड, क्रोध, महाक्रोध, फेत्कारी, शाकिनी बीजों को कहकर 'हरसिद्धिं' कहकर 'सर्वसिद्धि' कहे । 'कुरु' 'देहि' 'दापय' को दो-दो बार कहकर क्रोधबीज को तीन बार कहे । अन्त में दो बार 'फट्' कहकर 'स्वाहा' कहना चाहिये । बयालिस वर्णों वाला यह मन्त्र सर्वोत्तम है (मन्त्र—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं क्रीं आं क्रों औं हूं क्षूं ह्स्ख्फ्रें फ्रें हरसिद्धिं सर्वसिद्धिं कुरु कुरु देहि देहि दापय दापय हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा) । अब इसके ध्यान को बतलाऊँगा जिसको करने के बाद न्यास करना चाहिये । ध्यान—हरताल के समान चमकने वाले तीन नेत्रों से भूषित, पैर तक लटकती हुई जटा वाली, नरमुण्ड की माला पहनी हुई, मयूर के पङ्ख से बनी हुई सुन्दर करधनी और किङ्किणी से अलङ्कृत, सिंह के चर्म से बनी चोली से वक्ष को ढँकी हुई, शव के ऊपर बैठी हुई, कुछ हिलते हुए शिर वाली, फड़कते ओष्ठपुट वाली, चार भुजाओं से सुशोभित, बायें हाथ से मयूर और वृक्षपाल (=अस्त्र विशेष) दायें हाथ में खड्ग और कैंची ली हुई, शुभ, योगपट्ट की माला धारण की हुई है ॥ ६४७-६५६ ॥

[फेत्कारिण्या मन्त्रध्याने]

अथ फेत्कारिणीमन्त्रं व्याहरामि तव प्रिये ॥ ६५६ ॥
सद्यः कविर्यद्ग्रहणाद् राजा वापि प्रजायते ।
प्रणवाङ्कुशसौपर्णफेत्कारीक्रोधयोगिनीः ॥ ६५७ ॥
बीजान्युद्धृत्य फेत्कारिपदं प्रोक्त्वा वदेत्ततः ।
दद युग्मं देहि ततो दापयेति पदं वदेत् ॥ ६५८ ॥
स्वाहान्तो मनुराजोऽयं विंशत्यक्षरिकः प्रिये ।
ध्यानमस्या ब्रुवे नाभेरधो मनुजसन्निभाम् ॥ ६५९ ॥
ऊर्ध्वं गोमायुसदृशीं तदाकारां मुखेऽपि च ।
अधोजाम्बूनदरुचिमूर्ध्वं रक्तासितप्रभाम् ॥ ६६० ॥
पृष्ठे लूमयुतां नग्नां कुर्वन्तीं फैरवं रवम् ।
शिवाकारं बाहुयुगं बिभ्रतीं पितृतान्विताम् ॥ ६६१ ॥
प्रसुप्तशवपृष्ठस्थां योगपट्टे निषेदुषीम् ।
शिवाभिर्घोररूपाभिर्वामदक्षिणतो वृताम् ॥ ६६२ ॥

फेत्कारिणी के मन्त्र ध्यान—हे प्रिये ! अब तुम्हें फेत्कारिणी का मन्त्र बतला रहा हूँ जिसके ग्रहण से साधक सद्यः कवि या राजा हो जाता है । प्रणव अङ्कुश गरुड

फेत्कारी क्रोध योगिनी बीजों को उद्धृत कर 'फेत्कारि' पद कहे । इसके बाद दो-दो बार 'दद' 'देहि' और 'दापय' कहे । अन्त में 'स्वाहा' कहे । हे प्रिये! यह मन्त्रराज बीस अक्षरों वाला है (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—ॐ क्रों क्रौं ह्सख्फ्रें हूं छ्रीं फेत्कारि दद दद देहि दापय स्वाहा) । अब इसका ध्यान बतला रहा हूँ । ध्यान—(यह देवी) नाभि के नीचे मनुष्य के समान, उसके ऊपर शृगालिनसदृश, मुख भी उसी (शृगाली) के आकार वाला, नीचे स्वर्णसदृश चमक वाली, ऊपर रक्त और कृष्ण वर्ण वाली, पीछे पूँछ वाली, नग्न, सियार का शब्द करती हुई, शिवा के आकार की दो भुजाओं से युक्त, पितृत्व से युक्त, सोये हुए शव की पीठ पर बैठी हुई, योगपट्ट पर बैठी हुई, बायीं और दायीं ओर भयानक सियारिनों से घिरी हुई है (—ऐसा ध्यान करना चाहिये) ॥ ६५६-६६२ ॥

[लवणेश्वर्या मन्त्रध्याने]

अथ ब्रवीमि लवणेश्वर्य्या मन्त्रं कलार्णिकम् ।
आदौ चैतन्यकमले पाशप्रासादकौ ततः ॥ ६६३ ॥
रुग्भूतप्रेतडाकिन्यो योगिनी वनिता तथा ।
मानसं वज्रभारुण्डे कपालं च कुलाङ्गना ॥ ६६४ ॥
त्रैवर्णिकः सर्वशेषे महामन्त्रोऽयमीरितः ।
साम्प्रतं ध्यानमाख्यास्ये यत् कृत्वा न्यासमाचरेत् ॥ ६६५ ॥
रत्नसिंहासनारूढां दूर्वादलसमुद्युतिम् ।
बद्धाञ्जलिपुटैः सप्तसागरै रत्नपाणिभिः ॥ ६६६ ॥
विहाय सम्मुखं दिक्षु विदिक्षु परिवेष्टिताम् ।
नेत्रदासक्तहस्तेन धनदेन पुरोजुषा ॥ ६६७ ॥
सेवितां प्रज्वलन्मौलिमणिभिर्नागनायकैः ।
अष्टभिर्निधिभिश्चापि महापद्मादिभिर्वृताम् ॥ ६६८ ॥
चतुर्भुजां रत्नकुम्भाभये सव्यभुजद्वये ।
अक्षमालावरे दक्षे भुजयुग्मेषु बिभ्रतीम् ॥ ६६९ ॥
मुक्ताहारपरिक्षिप्तां द्रव्यसिद्धिविधायिनीम् ।
न्यासं समाचरेद् देवि ध्यात्वेत्थं लवणेश्वरीम् ॥ ६७० ॥

लवणेश्वरी के मन्त्र ध्यान—अब लवणेश्वरी का कलावर्ण वाला मन्त्र कह रहा हूँ। पहले चैतन्य और कमला इसके बाद पाश और प्रासाद फिर क्रोध भूत, प्रेत, डाकिनी, योगिनी, स्त्री, मानस, वज्र, भारुण्ड, कपाल, कुलाङ्गना और सबके अन्त में त्रैवर्णिक (=ॐ) । यह महामन्त्र कहा गया है । (मन्त्र—ऐं श्रीं आं हौं हूं स्फ्रों स्हौः ख्फ्रें छ्रीं स्त्रीं ठ्रीं ध्रीं प्रीं थ्रीं स्त्रीं ॐ) । अब ध्यान कहूँगा जिसको करने के बाद न्यास करना चाहिये । ध्यान—रत्नसिंहासन पर आरूढ, दूर्वादल के समान (हरित) द्युति वाली, हाथों में रत्न लिये हाथ जोड़े सात सागरों के द्वारा सामना छोड़कर शेष

सात दिशाओं में आवृत, नेत्रदा के ऊपर हाथ रखे हुए एवं सामने स्थित कुबेर के द्वारा सेवित, चमकती हुई मणियों को शिर पर धारण करने वाले नागराजों तथा महापद्म आदि आठ निधियों से घिरी हुई, चार भुजाओं वाली, बायीं दोनों भुजाओं में रत्नकुम्भ और अभय मुद्रा तथा दायीं दोनों भुजाओं में अक्षमाला और वरद मुद्रा धारण की हुई, मोतियों का हार पहनी हुई, द्रव्यसिद्धि देने वाली लवणेश्वरी का इस प्रकार ध्यान कर न्यास करना चाहिये ॥ ६६३-६७० ॥

[नाकुलीदेव्या मन्त्रध्याने]

अथातो नाकुलीं वक्ष्ये महाविद्यां जयप्रदाम् ।
सर्वादिप्रकृतेरादौ सप्तान्ते चतुरस्तथा ॥ ६७१ ॥
त्यक्त्वा माध्यमिकैर्भूतमितैर्मन्त्रो महाफलः ।
कपोतगलदेहाभा पीनोरोजा दिगम्बरा ॥ ६७२ ॥
मुक्तपादालम्बिजटाजूटभारा भयङ्करा ।
बभ्रौ निषेदुषी शूच्याकारतुण्डी खरस्वरा ॥ ६७३ ॥
सितलूताजालजालाच्छादितोर्ध्वशिरोरुहा ।
कपालमालाभरणा त्रस्थिकाञ्चीगुणोज्ज्वला ॥ ६७४ ॥
लम्बमानशिवापोतकुण्डलद्वयशोभिता ।
अर्द्धचन्द्रसमुद्भासिभ्रमरीकललाटिका ॥ ६७५ ॥
दण्डाकारितयोर्दक्षवामयोर्भुजयुग्मयोः ।
बिभ्रती कालभुजगौ दीर्घदंष्ट्राकरालिनी ॥ ६७६ ॥
परस्परं त्यक्तवैरैरुरगैर्नकुलैरपि ।
संवेष्टिता चतुर्दिक्षु महारण्यकृतालया ॥ ६७७ ॥

नाकुलीदेवी के मन्त्र ध्यान—अब विजय देने वाली नाकुली महाविद्या को बतलाऊँगा । (सर्वादि प्रकृति = सोलहस्वर, इनमें से प्रथम सात = अ आ इ ई उ ऊ ऋ, तथा अन्तिम चार = ओ औ अं अः को त्यक्त्वा = छोड़कर शेष माध्यमिकै = मध्य में स्थित, भूतमितै = महाभूत की सङ्ख्या वाले अर्थात् पाँच स्वर ॠं ऌं ॡं एं ऐं) इनसे बना हुआ मन्त्र महाफलदायक होता है । (मन्त्र—ॠं ऌं ॡं एं ऐं?)[1] । ध्यान—यह देवी कबूतर के गले एवं देह जैसी कान्ति वाली, पीनवक्ष वाली, नग्न, पैर तक खुले बालों की जटा वाली, भयङ्कर, बभ्रु पर बैठी हुई, सूई के आकार के मुखवाली, गदहे के स्वर वाली है । उसके शिर के बाल श्वेत मकड़ी के जाल से वेष्टित एवं ऊर्ध्वमुखी है । कपालमाला का आभूषण तथा मनुष्य की हड्डी की करधनी से यह चमत्कृत है । शिवा के बच्चों का कुण्डल धारण की हुई है । अर्धचन्द्र से समुद्भासित तथा भँवर वाले ललाट वाली, दण्ड के आकार वाले दायें-बायें दोनों

---

१. डॉ० किशोरनाथ झा द्वारा सम्पादित संस्करण के अनुसार मन्त्र का स्वरूप है—क्रः छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें ।

हाथों में कालसर्प पकड़ी हुई, लम्बे दाँतों वाली, विकराल, परस्पर वैररहित सर्पों एवं नेवलों से चारो ओर घिरी हुई तथा घोर जंगल में रहने वाली है ॥ ६७१-६७७ ॥

[मृत्युहरिण्या मन्त्रध्याने]

साम्प्रतं मृत्युहारिण्या मन्त्रध्याने ब्रवीमि ते ।
मृत्युञ्जयप्राणमन्त्र उद्धृता या नवाक्षरी ॥ ६७८ ॥
नास्या न्यासं तया कुर्य्यादन्येन प्रब्रवीमि ते ।
तारमाये रमाकालौ रावा(न्त) चतुरक्षरी ॥ ६७९ ॥
प्रासादप्रेतभैरव्यः कूटं शाम्भवमेव च ।
कूटं च परमात्मीयं विहायैतच्छुचिस्मिते ॥ ६८० ॥
विलोमरीत्या प्रवदेत्तान्येव द्वादशानि हि ।
पञ्चविंशाक्षरो मन्त्रो मृत्योर्मृत्त्युकरः स्मृतः ॥ ६८१ ॥
आचरेदमुना न्यासमिदानीं ध्यानमीरये ।
हिमानीकूटसदृशीमीश्वरीं देहरोचिषा ॥ ६८२ ॥
उत्तानकुणपाकारकालमृत्त्यूपरि स्थिताम् ।
चतुर्वेदाकारयोगपट्टजानुद्वयाङ्किताम् ॥ ६८३ ॥
सितसूक्ष्माम्बरधरां स्मेराननसरोरुहाम् ।
ज्ञानरश्मिच्छटाटोपविद्योतितनुमण्डलाम् ॥ ६८४ ॥
प्रौढाङ्गनारूपधरामुत्तुङ्गस्तनमण्डलाम् ।
विभूषितां यावदेकयोषिद्(भू)षणसञ्चयैः ॥ ६८५ ॥
विद्याभिरष्टादशभिर्निबद्धाञ्जलिभिः सदा ।
सेव्यमानां चतुर्दिक्षु हसन्तीं तां निरीक्ष्य च ॥ ६८६ ॥
चतुर्भुजां सुधाकुम्भपुस्तके वामहस्तयोः ।
दक्षयोरक्षमालां च मुद्रां व्याख्यानशालिनीम् ॥ ६८७ ॥
दधतीं सर्वदा ध्यायेद् देवीं तां मृत्त्युहारिणीम् ।

मृत्युहारिणी के मन्त्र ध्यान—अब तुमको मृत्युहारिणी के मन्त्र और ध्यान को बतलाता हूँ । मृत्युञ्जयप्राण मन्त्र में जिस नवाक्षरी का वर्णन किया गया है इस (=मृत्युहारिणी) का न्यास उससे नहीं बल्कि किसी दूसरे से करना चाहिये । वह मैं तुम्हें बतला रहा हूँ । तार माया रमा काल रावान्त चतुरक्षरी प्रसार प्रेत भैरवी शाम्भव और परमात्म के बाद परमात्मा कूट को छोड़कर विलोम क्रम से उन्हीं बारह बीजों को पुनः कहना चाहिये । पचीस अक्षरों वाला यह मन्त्र मृत्यु की भी मृत्यु करता है । (मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं जूं क्रां फ्रीं फ्रूं फ्रैं हौं स्हौः सौः स्हजहलक्षम्लवनऊं तत्त्वमसि स्हजहलक्षम्लवनऊं सौः स्हौः हौं फ्रें फ्रूं फ्रीं क्रां जूं श्रीं ह्रीं ॐ) । इस मन्त्र से न्यास करना चाहिये । अब तुमको मैं इसका ध्यान बतला रहा हूँ । देह की कान्ति हिमकूट के सदृश है । उत्तान शव के आकार वाले कालमृत्यु के ऊपर बैठी, दोनों घुठनों पर

चारों वेदों के आकार की पट्टिका रखी, रश्मि की शोभा के विस्तार के कारण चमकती देह वाली, प्रौढ स्त्री रूपधारिणी, ऊँचे स्तनमण्डल वाली, एक स्त्री के लिये योग्य उचित भूषणों से भूषित, चारो दिशाओं में हाथ जोड़े अट्ठारह विद्याओं से सदा सेवित, हंसती हुई, चतुर्भुजा, बायें हाथों में अमृत कलश एवं पुस्तक तथा दायें हाथों में अक्षमाला और व्याख्यामुद्रा धारण की हुई उस मृत्युहारिणी देवी का सदा ध्यान करना चाहिये ॥ ६७८-६८८ ॥

[कामकलाकाल्या मन्त्रध्याने]

अथात एकपञ्चाशत्तमा वै कामकालिका ॥ ६८८ ॥
न्यसनीया सर्वदोषव्यापकत्वेन पार्वति ।
ध्यानं पूर्वोक्तमेवात्र कर्त्तव्यं प्रथमं बुधैः ॥ ६८९ ॥
ततस्तत्त्वमिता मन्त्रा न्यसनीया क्रमेण हि ।
सर्वाम्नायाः सप्तदश्याः प्रथमं समुदीरयेत् ॥ ६९० ॥
व्यापकं मातृकावर्णं महाम्नायनिकस्य च ।
जघन्ये हृन्मनुर्देवि मध्ये तु मनवोऽखिलाः ॥ ६९१ ॥
एकैकेनैकवारं हि विदध्याद् व्यापकं बुधः ।
पञ्चविंशतिभिश्चैवं मनुभिः पृथगीरितैः ॥ ६९२ ॥
व्यापकं तावतो वारान्निरालस्यः समाचरेत् ।
अथवा निखिलान्मन्त्रानुच्चार्य्य क्रमतः प्रिये ॥ ६९३ ॥
नमोऽन्ते व्यापकं कुर्यात् पूर्वस्मिन् फलभूमता।

कामकला काली के मन्त्र ध्यान—हे पार्वति ! अब सर्वदोष के व्यापक के रूप में इक्यावनवीं देवी कामकला काली का न्यास करना चाहिये । विद्वान् सबसे पहले पूर्वोक्त ध्यान करे । इसके बाद क्रम से तत्त्वमित (=सङ्ख्या के पचीस तत्त्वों की सङ्ख्या वाली) मन्त्रों का न्यास करना चाहिये । पहले समस्त शास्त्रों में स्वीकृत सप्तदशी का कथन करना चाहिये । इसमें महा आम्नाय के (पचास) मातृका वर्णों का उच्चारण कर जघन्य (=अन्त) में हृन्मन्त्र कहना चाहिये । शेष सभी मन्त्र बीच में आते हैं । विद्वान् एक मन्त्र से एक बार व्यापक न्यास करे । इस प्रकार पृथक्-पृथक् कहे गये पचीस मन्त्रो से पचीस बार व्यापक न्यास आलस्यरहित होकर करे । (यह एक विधि है) । अथवा हे प्रिये ! (दूसरी विधि यह है कि) सभी मन्त्रों का क्रम से उच्चारण कर अन्त में 'नमः' कहे और व्यापक न्यास करे । किन्तु पहले (प्रकार से न्यास करने) में प्रचुर फल की प्राप्ति होती है ॥ ६८८-६९४ ॥

इतरत्र ततः किञ्चित्तारतम्यं प्रचक्षते ॥ ६९४ ॥
मरीच्युपासिता विद्या पुरः सप्तदशी मता ।
ततो नु कपिलोपास्या षोडशार्णा निगद्यते ॥ ६९५ ॥
नवाक्षरी हिरण्याक्षोपासिता तदनन्तरम् ।

ततो दशार्णा विज्ञेया लवणोपासिता हि या ॥ ६९६ ॥
वैवस्वतमनूपास्या ज्ञेया पञ्चदशी ततः ।
नवबीजात्मिका दत्तात्रेयोपास्या नवाक्षरी ॥ ६९७ ॥
दूर्वासोपासिता चापि ततः पञ्चाक्षरी मता ।
अष्टादशाक्षरं ज्ञेयं त्रैलोक्याकर्षणं ततः ॥ ६९८ ॥
मन्वक्षरो मनुः पश्चादुत्तङ्कोपासितः प्रिये ।
ततः परा सप्तदशी विश्वामित्रेण सेविता ॥ ६९९ ॥
तत ऊनत्रिंशदर्णा विद्यौर्वोपासिता स्मृता ।
पराशरोपासितश्च षष्ठांशकाक्षरस्ततः ॥ ७०० ॥

सप्तदशी विद्या की उपासना मरीचि ऋषि ने की । इसके बाद कपिल ने सोलह वर्णों वाली विद्या की उपासना की । हिरण्याक्ष ने नवाक्षरी की उपासना की तो लवणासुर ने दशाक्षरी विद्या की उपासना की । पञ्चदशी की उपासना वैवस्वत मनु ने की । नव बीजरूपा नवाक्षरी दत्तात्रेय की उपास्या है । दुर्वाशा ने पञ्चाक्षरी की उपासना की । अट्ठारह अक्षरों वाले मन्त्र को त्रैलोक्याकर्षण जानना चाहिये । हे प्रिये ! मनु ने चौदह अक्षर वाले मन्त्र की पूजा की । विश्वामित्र ने सप्तदशी की और उन्तीस अक्षरों वाली विद्या की उपासना और्व ने की—ऐसा वर्णन है। साठ अक्षरों वाली की पराशर ने उपासना की ॥ ६९४-७०० ॥

विद्या त्रिकूटा तदनु भगीरथनिषेविता ।
वैरोचनिसमाराध्या तदनु स्यात् षडक्षरी ॥ ७०१ ॥
ख्याता महाषोडशीया संवर्तोपासिता ततः ।
नारदोपासिता पश्चाज् ज्ञेया पञ्चदशाक्षरी ॥ ७०२ ॥
या बीजान्तरिता शाम्भवादिकूटपुरःसरा ।
सप्तकूटात्मिका पञ्च बीजेन घटिता तथा ॥ ७०३ ॥
ख्याता महासप्तदशी गरुडोपासिता तथा ।
वक्ष्यमाणक्रमेणापि या तु सप्तदशी ततः ॥ ७०४ ॥
कामदग्धोपासिता च ततः सप्ताक्षरी मता ।
भृगूपास्यतया ख्याता ततः सप्तदशाक्षरी ॥ ७०५ ॥
चतुर्दशार्णस्तदनु कार्त्तवीर्येण सेवितः ।
पञ्चाक्षरी पृथूपास्या तत्पश्चादनु कीर्त्यते ॥ ७०६ ॥
द्वाविंशाक्षरिकः पश्चाद् हनूमत्समुपासितः ।
शताक्षरसहस्त्रार्णौ सर्वोपास्यौ ततः परम् ॥ ७०७ ॥
चतुर्विंशमिता एवं मन्त्राः व्यापककर्मणि ।
ध्यानं चैषामेकमेव यत्पूर्वं गदितं तव ॥ ७०८ ॥

भगीरथ ने त्र्यक्षरा की, बलि ने षडक्षरा की संवर्त्त ने षोडशाक्षरा की उपासना

की। नारद ने पञ्चादशाक्षरी की अर्चना की । जो शाम्भव आदि कूटाक्षरों से आन्तरित (=बीच-बीच में शाम्भव आदि बीजाक्षरवाली) सातकूट वाली पाँच बीजाक्षरों से रचित थी तथा जिसे महा सप्तदशी बतलाया गया है, गरुड़ के द्वारा यह उपासित हुई । वक्ष्यमाण क्रम से जो सप्तदशी है उसकी कामदग्ध ने उपासना की । यही सप्तदशाक्षरी भृगु के द्वारा भी उपास्य थी । चौदह वर्णों वाले इस मन्त्र की सहस्रार्जुन ने अर्चना की । इसके बाद पृथु ने पञ्चाक्षरी की उपासना की । हनुमान् के द्वारा बाईस अक्षरों वाली की उपासना की गयी । शताक्षरा और सहस्राक्षरा सबके द्वारा उपास्य बतलायी गयी हैं । इस प्रकार व्यापक कर्म में चौबीस प्रकार के मन्त्र कहे गये हैं । इन सबका ध्यान एक ही प्रकार का कहा गया है जिसे मैंने तुमको पहले ही बतला दिया है ॥ ७०१-७०८ ॥

[षोढान्यासस्य समर्पणविधिः]

प्राणायामं ततः कृत्वा षडङ्गमपि चाचरेत् ।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा न्यासं देव्यै समर्पयेत् ॥ ७०९ ॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण गृहीतकरपुष्करः ।

[न्याससमर्पणमन्त्रः]

ॐ सर्वं निविष्टं त्रैलोक्ये त्रैलोक्यं त्वयि विष्टितम् ॥ ७१० ॥
त्वमप्यमुष्मिन् न्यासेऽम्ब सन्निविष्टाणुरूपिणी ।
त्रैलोक्यविजयत्वेन ख्यातोऽयमत एव हि ॥ ७११ ॥
निविष्टोऽयं मयि न्यासस्त्रिपुरा विश्वरूपिणि ।
न्यासस्तवार्पितो देवि त्रैलोक्यविजयो मया ॥ ७१२ ॥
एतेनैव सह त्वं च मय्येव प्रविशाम्बिके ।
त्रैलोक्यमखिलं तस्मान् मद्रूपत्वे वितुष्टितम् ॥ ७१३ ॥
अहं त्रैलोक्यरूपश्च तस्मादैक्यं बभूव तु ।

षोढा न्यास समर्पण की विधि और मन्त्र—न्यास के बाद प्राणायाम कर षडङ्ग न्यास भी करना चाहिये । योगी साधक १०८ बार जप कर हाथ में कमल या अभाव में कोई भी फूल लेकर वक्ष्यमाण मन्त्र से न्यास कर देवी के लिये समर्पण करे । (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—ॐ सर्वं निविष्टं..........बभूव तु)। हे देवि! सब कुछ त्रैलोक्य में निविष्ट है और त्रैलोक्य तुममे निविष्टि है । हे अम्ब! तुम भी अणुरूपिणी होकर इस न्यास में सन्निविष्ट हो जाओ । यह न्यास त्रैलोक्यविजय मन्त्र के रूप में विख्यात है अतः एव हे त्रिपुराविश्वरूपिणि! यह न्यास मेरे अन्दर निविष्ट है। मैंने इस त्रैलोक्यविजय न्यास को तुम्हें समर्पित कर दिया । हे अम्बिके! इस न्यास के साथ तुम भी मेरे अन्दर प्रवेश कर जाओ । इस कारण सम्पूर्ण त्रैलोक्य मेरे अन्दर प्रविष्ट हो गया । मैं भी त्रैलोक्य रूप हो गया अतः (मेरी और त्रैलोक्य की एकरूपता हो गयी) ॥ ७०९-७१४ ॥

[समन्त्रो बलिसमर्पणविधिः]

कृतं न्यासं समर्प्यैवं बलिं देव्यै निवेदयेत् ॥ ७१४ ॥
स्वस्वानुक्रमतो मन्त्रपूर्वसम्भक्तिभावितः ।
तारत्रपाकामवध्वः शाकिनी डाकिनी तथा ॥ ७१५ ॥
फेत्कारीप्रेतभैरव्यः कूटं शाम्भवमेव च ।
एह्येहि भगवत्युक्त्वा कालि कामकलार्णतः ॥ ७१६ ॥
इमं बलिं गच्छ युगं तावद् गृह्णापयेति च ।
खादय द्वयमाभाष्य भक्षयद्वितयं ततः ॥ ७१७ ॥
सर्वसिद्धिं प्रयच्छैकं वमदग्निमुखीरयेत् ।
फेरुकोटि समाभाष्य ततः परिवृते वदेत् ॥ ७१८ ॥
हस ज्वल प्रज्वल च द्वयं द्वयमुदीरयेत् ।
क्रोधास्त्रयोश्च त्रितयं नमः स्वाहा जघन्यतः ॥ ७१९ ॥
यथेष्टं विहरेद् धीमान् पठित्वा मनुना बलिम् ।
संहारमुद्रया देवीं हृदये विनिधाय च ॥ ७२० ॥
इति कामकलाकाल्याः षोढान्यासो मयेरितः ।
किन्त्वस्य महिमा(वक्तुं) मयापि नहि शक्यते ॥ ७२१ ॥
पर्वण्यमुं विधायेशि वाञ्छितार्थं प्रसाधयेत् ।
षण्मासेन विदधत् कदाप्यपतितं प्रिये ॥ ७२२ ॥
साक्षाद् देवीपुत्र एव भवेद् भैरव एव वा ।
अमुं न्यासं प्रकुर्वाणः पर्वण्यथ सदापि वा ॥ ७२३ ॥
कस्मैचिदपि न क्रुध्यान्नमेन्न शपेदपि ।
न निष्ठुरं च भाषेत न चापत्यमृतिं स्मरेत् ॥ ७२४ ॥
यस्मैः क्रुध्यात् स म्रियते षण्मासाभ्यन्तरे नरः ।

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्त्र्यां महाकालसंहितायां
षोढान्यासोद्धारो नामाष्टमः पटलः ॥ ८ ॥

बलिसमर्पण की विधि और मन्त्र—साधक किये गये न्यास का इस प्रकार समर्पण कर देवी के लिये बलि दे । यह बलि अपने-अपने क्रम से मन्त्रोच्चारपूर्वक भक्तिभाव से देनी चाहिये । (मन्त्र के लिये) तार, त्रपा, काम, वधू, शाकिनी, डाकिनी, फेत्कारी, प्रेत, भैरवी, शाम्भवकूट के बाद 'एहि एहि भगवति' ऐसा कहकर 'कामकलाकालि इमं बलि' कहे । फिर 'गच्छ गृह्णापय खादय भक्षय' को दो-दो बार कहे । फिर 'सर्वसिद्धिं प्रयच्छ' कहकर एक बार 'वमदग्निमुखि' कहे । ततः 'फेरुकोटि' कहकर 'परिवृते' कहने के बाद 'हस ज्वल प्रज्वल' को दो-दो बार कहना

चाहिये । इसके बाद तीन क्रोध और अस्त्र को तीन-तीन बार 'नम:' और 'स्वाहा' कहकर बलि दे (मन्त्र—ॐ ह्रीं क्लीं स्त्रीं औं ख्फ्रें हस्ख्फ्रें स्हौ: सौ: स्हजहलक्षम्लवनऊं एहि ऐहि) भगवति कामकलाकालि इमं बलिं गच्छ गच्छ (—गृह्ण गृह्ण) गृह्णापय गृह्णापय खादय खादय भक्षय भक्षय सर्वसिद्धिं प्रयच्छ वमदग्निमुखि फेरुकोटिपरिवृते (हस हस ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हूं हूं हूं फट् फट् फट् नम: स्वाहा) । धीमान् साधक मन्त्र को पढ़कर बलि का समर्पण करने के बाद संहारमुद्रा के द्वारा देवी को हृदय में स्थित ध्यान कर यथेष्ट विचरण करे । इस प्रकार मैंने कामकलाकाली के छह न्यासों का वर्णन किया । किन्तु इसकी महिमा का वर्णन मैं भी नहीं कर सकता । हे ईश्वरि! किसी भी पर्व पर इस न्यास का विधान कर वाञ्छित अर्थ की सिद्धि करनी चाहिये । हे प्रिये! छह महीने तक अव्यवहित रूप से करने वाला मनुष्य साक्षात् देवीपुत्र या भैरव हो जाता है । पर्व-पर्व पर अथवा सदा इस न्यास को करने वाला न तो किसी के ऊपर क्रोध करे, न किसी को नमस्कार करे और न किसी को शाप दे, न किसी को गाली दे, न सन्तान की मृत्यु की कामना करे । क्योंकि (यह साधक) जिसके ऊपर क्रोध आदि करेगा वह मनुष्य छह महीने में मर जायेगा ॥ ७१४-७२५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकालसंहिता के कामकलाकाली खण्ड के षोढान्यासोद्धार नामक अष्टम पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ८ ॥

...❀...

नवमः पटलः

[त्रैलोक्यमोहनकवचस्यावतरणम्]

देव्युवाच—

महायोगिन्महाकाल करुणाम्बुनिधे शिव ।
षोढान्यासः श्रुतस्त्वत्तो महासिद्धिर्महाफलः ॥ १ ॥
यत्नेन विधृतश्चापि मया भक्तिप्रवीणया ।
त्रैलोक्यमोहनं नाम कवचं मेऽधुना वद ॥ २ ॥
कवचत्वेन यद् देवी शिवायादात् स्वयं मुदा ।
तत् कीदृशं हि भविता तत्र कौतूहलं मम ॥ ३ ॥
यदि प्रसन्नोऽसि मयि तदेदं वद सुव्रत ।
सर्वस्मादधिकं ह्येतत् त्वयैव समुदीरितम् ॥ ४ ॥
नित्यमामुञ्चसि त्वं च जातो मम तदाग्रहः ।

त्रैलोक्यमोहनकवच-वर्णन—देवी ने कहा—हे महायोगिन्! हे महाकाल! हे करुणानिधे! हे शिव! मैंने आपसे महासिद्धि और महाफल को प्रदान करने वाले षोढान्यास को सुना। भक्तिप्रवीण मैंने प्रयत्नपूर्वक उसका धारण भी कर लिया। अब आप मुझे त्रैलोक्यमोहन कवच का उपदेश दीजिये। जिसको कि देवी ने प्रसन्न होकर स्वयं शिव को दिया। वह किस प्रकार का है? इस विषय में मुझे कौतूहल हो रहा है। हे सुव्रत! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो उसे मुझको बतलाइये। आपने ही इसको सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कहा है और आप उसको प्रतिदिन धारण करते हैं; इसलिये मेरा आग्रह हुआ है ॥ १-५ ॥

महाकाल उवाच—

ममैव दोषो देवेशि महांस्ते नाणुरप्यहो ॥ ५ ॥
यत्पूर्वमेव पुरतस्तव तस्या भिदा कृता ।
नो चेत् किमर्थमप्राक्षीरतो निन्दे स्वमात्मना ॥ ६ ॥
मम चेतस्यभूदित्थं त्वयेदं विस्मृतं भवेत् ।
न विस्मरन्त्युक्तगुप्तं स्त्रियो हीति श्रुतिप्रथाः ॥ ७ ॥
त्वं हि सर्वोत्तमा स्त्रीणां कथं नैव स्मरिष्यसि ।
अतः परमिदं गोप्यं मया त्वत्तः कथं भवेत् ॥ ८ ॥
शरीरार्द्धं च भवसि कथमात्मनि गोपनम् ।
तस्मात् तव प्रवक्ष्यामि नो चेत् (द्रक्ष्यसि) मां कथम् ॥ ९ ॥

श्रद्धां भक्तिं तव प्रेक्ष्य विवक्षा मम जायते ।

महाकाल ने कहा—हे देवेशि ! इसमें मेरा ही बहुत बड़ा दोष है । तुम्हारा दोष रञ्चमात्र भी नहीं है जो मैंने पहले तुम्हारे सामने उसका अभेद किया (अर्थात् उसको तुमसे छिपाये रखा) अन्यथा तुम मुझसे पूछती ही क्यों । इसलिये मैं स्वयं अपने से अपनी ही निन्दा कर रहा हूँ । मेरे मन में यह बात आयी कि सम्भवतः तुम इसे भूल गयी होगी । किन्तु उक्त गुप्त बात को श्रुतिपरम्परा वाली स्त्रियाँ कभी नहीं भूलतीं. यह निश्चित है । फिर तुम तो स्त्रियों में सर्वोत्तम हो तो क्यों नहीं स्मरण करोगी । इसलिये यह परम गोपनीय (कवच) तुमसे मैं किस प्रकार से छिपा सकता हूँ । तुम मेरी शरीरार्द्ध हो । अपने से ही इसे किस प्रकार छिपाया जा सकता है । इसलिये मैं यह तुमको बतलाऊँगा अन्यथा तुम मुझे देखोगी कैसे । तुम्हारी श्रद्धा और भक्ति देखकर मेरे मन में विवक्षा हो रही है ॥ ५-१० ॥

[त्रैलोक्यमोहनकवचस्य फलाभिधानम्]

देवि नैतादृशाः काश्चित् सिद्धयः सन्ति भूतले ॥ १० ॥
त्रैलोक्यमोहनेऽधीते या नैव स्युः करस्थिताः ।
पुनरेकं मया प्रोच्यमानं देवि निशामय ॥ ११ ॥
कर्मानुरूपं जन्म स्याद् देहो जन्मनि जन्मनि ।
देहे देहे तथा प्राणास्तथा सर्वेन्द्रियाणि च ॥ १२ ॥
तेषु तेषु धनं राज्यं भोगा रत्नं स्त्रियो गृहम् ।
सर्वं नरस्य सुलभं न तु त्रैलोक्यमोहनम् ॥ १३ ॥
चिच्छेदिषूणां मूर्द्धानं सर्वस्वं ददतामपि ।
राज्यं धनं स्त्रियः प्राणानुपढौकयतामपि ॥ १४ ॥
सर्वथा देवि नाख्येयं त्रिसत्यं ते ब्रवीम्यहम् ।
शिष्यस्य सिद्धिः कथिते गुरोस्तु मरणं भवेत् ॥ १५ ॥
समासादुपदेशोऽयं मया ते समुदीरितः ।
मृत्युर्न मम तस्मात्तु उपदेक्ष्यामि सुव्रते ॥ १६ ॥
लोभादन्ये ये प्रदद्युर्मृत्युवक्त्रं विशन्ति ते ।
उपदेशं विना ये वै त्रैलोक्याकर्षणस्य हि ॥ १७ ॥
त्रैलोक्यमोहनं नाम पठन्ति कवचं त्विदम् ।
सद्यस्ते मरणं यान्ति भक्षिता योगिनीगणैः ॥ १८ ॥

कवच का माहात्म्य—हे देवि ! इस पृथिवी पर ऐसी कोई सिद्धियाँ नहीं हैं जो त्रैलोक्यमोहन कवच के जानने पर करस्थ न हों । फिर मेरे द्वारा कहे जाने वाले इसको सुनो । कर्म के अनुरूप जन्म होता है । प्रत्येक जन्म में देह मिलती है । प्रत्येक देह में प्राण और इन्द्रियाँ होती हैं । उन इन्द्रियों के लिये धन, राज्य, भोग, रत्न, स्त्रियाँ, गृह आदि सब कुछ मनुष्य के लिये सुलभ हैं. किन्तु त्रैलोक्यमोहन

नहीं। शिर काटने की इच्छा वाले (अर्थात् आततायी, अथवा शिर काट कर समर्पण करने वाले भक्तों), सर्वस्व देने वाले, राज्य धन स्त्री प्राण को अर्पित करने वालों को भी हे देवि! (यह कवच) नहीं बतलाना चाहिये यह मैं तुम्हें दृढ सत्य कह रहा हूँ। इसके बतलाये जाने पर शिष्य को तो सिद्धि मिल जाती है। किन्तु गुरु का मरण हो जाता है। यह मैंने संक्षेप में इसका माहात्म्य बतलाया। मेरी मृत्यु नहीं होती इसलिये हे सुव्रते! तुमको इसका उपदेश करूँगा। जो अन्य लोग लोभवश इसका उपदेश करते हैं वे मृत्यु के मुख में चले जाते हैं और जो लोग त्रैलोक्याकर्षण के उपदेश के बिना इस त्रैलोक्यमोहन कवच का पाठ करते हैं वे शीघ्र ही योगिनियों के द्वारा भक्षित होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ १०-१८ ॥

[त्रैलोक्यमोहनकवचोपदेशः]

उपदेक्ष्यामि तस्मात्त्वां बध्यतामञ्जलिः प्रिये ।
सावधाना स्थिरा भूत्वा गदतोऽनुगदस्व मे ॥ १९ ॥
त्रैलोक्यमोहनस्यास्य कवचस्य महेश्वरि ।
त्रिपुरारिः ऋषिः प्रोक्तो विराट् छन्द उदीरितम् ॥ २० ॥
देवी (भगवती) कामकलाकाली प्रकीर्तिता ।
फ्रें बीजं बीजमुद्दिष्टं कामार्णं कीलकं मतम् ॥ २१ ॥
योगिनी शक्तिरुद्दिष्टा डाकिनी तत्त्वमुच्यते ।
विनियोगोऽस्य कथितः पुरुषार्थचतुष्टये ॥ २२ ॥
देवीकामकलाकालीप्रीत्यर्थे च विशेषतः ।
शत्रुक्षयार्थे राज्याप्त्यै प्रयोगोऽस्य वरानने ॥ २३ ॥

त्रैलोक्यमोहन कवच—इस कारण हे प्रिये! मैं तुमको उपदेश दूँगा। हाथ जोड़ लो। स्थिर और सावधान होकर बोलते हुए मेरे पीछे बोलो। हे महेश्वरि! इस त्रैलोक्यमोहन कवच के ऋषि त्रिपुरारि हैं; छन्द विराट् है; भगवती कामकलाकाली देवता है; फ्रें बीज बीज है; काम बीज कीलक है, योगिनी शक्ति है; डाकिनी तत्त्व है। इसका विनियोग पुरुषार्थचतुष्टय के लिये और विशेष रूप से कामकलाकाली के प्रीत्यर्थ होता है। हे वरानने! इसका प्रयोग शत्रुनाश तथा राज्य प्राप्ति के लिये भी होता है ॥ १९-२३ ॥

ॐ ऐं श्रीं क्लीं शिरः पातु फ्रें ह्रीं छ्रीं मदनातुरा ।
स्त्रीं ह्रूं क्षौं ह्रीं लं ललाटं पातु ख्फ्रें क्रौं करालि(नी) ॥ २४ ॥
आं हौं फ्रों क्षूँ मुखं पातु क्लूं ड्रं थ्रौं चण्डनायिका ।
हूं त्रैं च्लूं मौः पातु दृशौ प्रीं ध्रीं क्ष्रीं जगदम्बिका ॥ २५ ॥
क्रूं ख्रूं घ्रीं च्लीं पातु कर्णौ ज्रं प्लैं रुः सौं सुरेश्वरी ।
गं प्रां ध्रीं थ्रीं हनू पातु अं आं इ ईं श्मशानिनी ॥ २६ ॥
जूं डुं ऐं औं भ्रुवौ पातु कं खं गं घं प्रमाथिनी ।

चं छं जं झं पातु नासां टं ठं डं ढं भगाकुला ॥ २७ ॥
तं थं दं धं पात्वधरमोष्ठं पं फं रतिप्रिया ।
बं भं यं रं पातु दन्तान् लं वं शं सं च कालिका ॥ २८ ॥
हं क्षं क्षं हं पातु जिह्वां सं शं वं लं रताकुला ।
वं यं भं वं च चिबुकं पातु फं पं महेश्वरी ॥ २९ ॥
धं दं थं तं पातु कण्ठं ढं डं ठं टं भगप्रिया ।
झं जं छं चं पातु कुक्षौ घं गं खं कं महाजटा ॥ ३० ॥
ह्सौः ह्स्ख्फ्रें पातु भुजौ क्ष्मूं म्रें मदनमालिनी ।
ङां ञीं णूं रक्षताज्जत्रू नैं मौं रक्तासवोन्मदा ॥ ३१ ॥
ह्रां ह्रीं ह्रूं पातु कक्षौ मे ह्रैं ह्रौं निधुवनप्रिया ।
क्लां क्लीं क्लूं पातु हृदयं क्लैं क्लौं मुण्डावतंसिका ॥ ३२ ॥
श्रां श्रीं श्रूं रक्षतु करौ श्रैं श्रौं फेत्काररराविणी ।
क्लां क्लीं क्लूं अङ्गुलीः पातु क्लैं क्लौं च नारवाहिनी ॥ ३३ ॥
च्रां च्रीं च्रूं पातु जठरं च्रैं च्रौं संहाररूपिणी ।
छ्रां छ्रीं छ्रूं रक्षतान्नाभिं छ्रैं छ्रौं सिद्धिकरालिनी ॥ ३४ ॥
स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं रक्षतात् पार्श्वौ स्त्रैं स्त्रौं निर्वाणदायिनी ।
फ्रां फ्रीं फ्रूं रक्षतात् पृष्ठं फ्रैं फ्रौं ज्ञानप्रकाशिनी ॥ ३५ ॥
क्षां क्षीं क्षूं रक्षतु कटिं क्षैं क्षौं नृमुण्डमालिनी ।
ग्लां ग्लीं ग्लूं रक्षतादूरू ग्लैं ग्लौं विजयदायिनी ॥ ३६ ॥
ब्लां ब्लीं ब्लूं जानुनी पातु ब्लैं ब्लौं महिषमर्दिनी ।
प्रां प्रीं प्रूं रक्षताज्जङ्घे प्रैं प्रौं मृत्युविनाशिनी ॥ ३७ ॥
थ्रां थ्रीं थ्रूं चरणौ पातु थ्रैं थ्रौं संसारतारिणी ।
ॐ फ्रें सिद्धिकरालि ह्रीं छ्रीं ह्रं स्त्रीं फ्रें नमः ॥ ३८ ॥
सर्वसन्धिषु सर्वाङ्गं गुह्यकाली सदावतु ।
ॐ फ्रें सिद्धिं ह्स्खफ्रें ह्सफ्रें ख्फ्रें करालि
ख्फ्रें हस्ख्फ्रें हस्फ्रें फ्रें ॐ स्वाहा ॥ ३९ ॥
रक्षताद् घोरचामुण्डा तु कलेवरं वहक्षमलवरयूं ।
अव्यात् सदा भद्रकाली प्राणानेकादशेन्द्रियान् ॥ ४० ॥
ह्रीं श्रीं ॐ ख्फ्रें हस्ख्फ्रें हक्षम्लब्रयूं
न्क्षीं नज्रीं स्त्रीं छ्रीं ख्फ्रें ठ्रीं ध्रीं नमः ।
यत्रानुक्तस्थलं देहे यावत्तत्र च तिष्ठति ॥ ४१ ॥
उक्तं वाऽप्यथवानुक्तं करालदशनावतु ।
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं स्त्रीं ध्रीं फ्रें क्षूं क्शौं
क्रौं ग्लूं ख्फ्रें प्रीं ठ्रीं थ्रीं ट्रैं ब्लौं फट् नमः स्वाहा ॥ ४२ ॥
सर्वमापादकेशाग्रं काली कामकलावतु ॥ ४३ ॥

इसके बाद तत्तद बीजाक्षरों के साथ तत्तद् देवियों के द्वारा तत्तत् अङ्गों की रक्षा करने के लिये ही बतलाया गया है । अङ्गों और रक्षिका देवियों की तालिका निम्नलिखित है—

अङ्ग	रक्षिका देवी	अङ्ग	रक्षिका देवी
शिर	मदनातुरा	दोनों हाँथ	फेत्कारराविणी
ललाट	करालिनी	अङ्गुलियाँ	नारवाहिनी
मुख	चण्डनायिका	जठर	संहाररूपिणी
आँखें	जगदम्बिका	नाभि	सिद्धिकरालिनी
दोनों कान	सुरेश्वरी	दोनों पार्श्व	निर्वाणदायिनी
ठुड्डी (जबड़ा)	श्मशानिनी	पीठ	ज्ञानप्रकाशिनी
दोनों भौंहें	प्रमाथिनी	कटि	नृमुण्डमालिनी
नासिका	भगाकुला	दोनों ऊरू	विजयदायिनी
दो अधर-ओष्ठ	रतिप्रिया	दोनों जानु	महिषमर्दिनी
दाँत	कालिका	दोनों जङ्घा	मृत्युविनाशिनी
जिह्वा	रताकुला	दोनों पैर	संसारतारिणी
चिबुक	महेश्वरी	समस्त सन्धियाँ	गुह्यकाली
कण्ठ	भगप्रिया	शरीर	घोरचामुण्डा
कुक्षि	महाजटा	प्राण, एकादश इन्द्रियाँ	भद्रकाली
दोनों भुजायें	मदनमालिनी		
दोनों जत्रु	रक्तासवोन्मदा	उक्त अनुक्त समस्त अवयव	करालदशना
कक्ष (बगलें)	निधुवनप्रिया	पैर से लेकर केशाग्र	कामकलाकाली
हृदय	मुण्डावतंसिका		

[त्रैलोक्यमोहनकवचस्य फलश्रुतिः]

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
एतेन कवचेनैव यदा भवति गुण्ठितः ॥ ४४ ॥
वज्रात् सारतरं तस्य शरीरं जायते तदा ।
शोकदुःखामयैर्मुक्तः सद्यो ह्यमरतां व्रजेत् ॥ ४५ ॥
आमुच्यानेन देहं स्वं यत्र कुत्रापि गच्छतु ।
युद्धे दावाग्निमध्ये च सरित्पर्वतसिन्धुषु ॥ ४६ ॥

राजद्वारे च कान्तारे चौरव्याघ्राकुले पथि ।
विवादे मरणे त्रासे महामारीगदादिषु ॥ ४७ ॥
दुःस्वप्ने बन्धने घोरे भूतावेशग्रहोद्गतौ ।
विचर त्वं हि रात्रौ च निर्भयेनान्तरात्मना ॥ ४८ ॥
एकावृत्त्याघनाशः स्यात् त्रिवृत्त्या चायुराप्नुयात्।
शतावृत्त्या सर्वसिद्धिः सहस्रैः खेचरो भवेत् ॥ ४९ ॥
वल्लभेऽयुतपाठेन शिव एव न संशयः ।
किं वा देवि..... जानेः सत्यं सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ५० ॥

त्रैलोक्यमोहन कवच का फल—जो तुम मुझसे पूछती हो यह सब मैंने तुम्हें बतला दिया । जब इस कवच से मनुष्य गुण्ठित होता है तब उसका शरीर वज्र से भी कठोर हो जाता है । शोक-दुःख-रोग से मुक्त वह सद्यः अमर हो जाता है । अपने शरीर को इससे अवगुण्ठित कर तुम युद्ध, दावाग्नि के मध्य, नदी, पर्वत, समुद्र, राजद्वार, जंगल, चोर, व्याघ्र से भरे मार्ग में जहाँ कहीं भी जा सकती हो, विवाद, मरण, भय, महामारी, रोग आदि दुःस्वप्न, कारागार, भूत का आवेश, ग्रह का प्रकोप, रात्रि में सर्वत्र निर्भयमन से विचरण करो । मनुष्य एक बार पाठ करने से पापनाश तथा तीन बार के पाठ से आयु प्राप्त करता है । सौ आवृत्ति से सर्वसिद्धि और एक हजार आवृत्ति से खेचरत्व प्राप्त करता है । हे वल्लभे ! दश हजार पाठ से निःसन्देह शिव हो जाता है। अथवा हे देवि ! मैं तुमसे सत्य कह रहा हूँ ॥ ४४-५० ॥

चतुस्त्रैलोक्यलाभेन त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
त्रैलोक्याकर्षणो मन्त्रस्त्रैलोक्यविजयस्तदा ॥ ५१ ॥
त्रैलोक्यमोहनं चैतत् त्रैलोक्यवशकृन्मनुः ।
एतच्चतुष्टयं देवि संसारेष्वतिदुर्ल्लभम् ॥ ५२ ॥
प्रसादात्कवचस्यास्य के सिद्धिं नैव लेभिरे ।
संवर्ताद्याश्च ऋषयो मारुत्ताद्या महीभुजः ॥ ५३ ॥
विशेषतस्तु भरतो लब्धवान् यच्छृणुष्व तत् ।
जाह्नवीयमुनारेवाकावेरीगोमतीष्वयम् ॥ ५४ ॥
सहस्रमश्वमेधानामेकैकत्राजहार हि ।
याजयित्रे मातृपित्रे त्वेकैकस्मिन् महाक्रतौ ॥ ५५ ॥
सहस्रं यत्र पद्मानां कण्वायादात् सवर्म्मणाम् ।
सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं जिगाय त्रिदिनेन यः ॥ ५६ ॥
नवायुतं च वर्षाणां योऽजीवत् पृथिवीपतिः ।
अव्याहतरथाध्वा यः स्वर्गपातालमीयिवान् ॥ ५७ ॥
एवमन्योऽपि फलवानेतस्यैव प्रसादतः ।
भक्तिश्रद्धापरायास्ते मयोक्तं परमेश्वरि ॥ ५८ ॥

मनुष्य चार बार तीनों लोकों के लाभ से त्रैलोक्यविजयी हो जाता है । हे देवि! पहले त्रैलोक्याकर्षण मन्त्र फिर त्रैलोक्य की विजय ततः त्रैलोक्यमोहन कवच और त्रैलोक्यवशीकरण मन्त्र—यह चार संसार में अत्यन्त दुर्लभ है । इस कवच की कृपा से किन लोगों ने सिद्धि नहीं प्राप्त की । संवर्त्त आदि ऋषिगण मारुत्त आदि राजा लोग विशेष रूप से भरत ने जो प्राप्त किया उसको सुनो । इस भरत ने गङ्गा, यमुना, नर्मदा, कावेरी, गोमती के तटों पर एक-एक स्थान में एक-एक हजार अश्वमेध यज्ञ किया । एक-एक यज्ञ में माता-पिता के यजमान होने पर कवच के सहित एक हजार स्वर्णकमल कण्व ऋषि को दिया । तीन दिन में उन्होंने सम्पूर्ण पृथिवी जीत ली । यह राजा नव हजार वर्षों तक जीवित रहा । विना रुके रथवाला यह राजा स्वर्ग और पाताल में भी पहुँच गया। इसी प्रकार इसकी कृपा से अन्य व्यक्ति ने भी फल प्राप्त किया । हे परमेश्वरि! मैंने भक्ति और श्रद्धा से युक्त तुमको इसे बतलाया ॥ ५१-५८ ॥

[कवचस्यास्य गोपनीयताभिधानम्]

प्राणात्यये(ऽपि) नो वाच्यं त्वयान्यस्मै कदाचन ।
देव्यदात् त्रिपुरघ्नाय स मां प्रादादहं तथा ॥ ५९ ॥
तुभ्यं संवर्त्तऋषये प्रादां सत्यं ब्रवीमि ते ।
संवर्त्तो दास्यति प्रीतो देवि दुर्वाससे त्विमम् ॥ ६० ॥
दत्तात्रेयाय स पुनरेवं लोके प्रतिष्ठितम् ।
वक्त्राणां कोटिभिर्देवि वर्षाणामपि कोटिभिः ॥ ६१ ॥
महिमा वर्णितुं शक्यः कवचस्यास्य नो मया ।
पुनर्ब्रवीमि ते सत्यं मनो दत्वा निशामय ॥ ६२ ॥
इदं न सिद्ध्यते देवि त्रैलोक्याकर्षणं विना ।
ग्रहीत्रे तुष्यते देवी दात्रे कुप्यति तत्क्षणात् ॥ ६३ ॥
एतज् ज्ञात्वा यथाकर्तुमुचितं तत् करिष्यसि ।

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां त्रैलोक्य-विजयकवचवर्णनं नाम नवमः पटलः ॥ ९ ॥

...❧❀☙...

कवच की गोपनीयता—प्राणसङ्कट होने पर भी तुम इसको किसी को कभी मत बतलाना । देवी ने इसे शिव को बतलाया, उन्होंने मुझको, मैंने तुमको और संवर्त्त ऋषि को बतलाया । यह मैं तुमसे सत्य बतला रहा हूँ । हे देवि ! संवर्त्त ऋषि प्रसन्न होकर इसे दुर्वासा ऋषि को प्रदान किये । उन्होंने दत्तात्रेय को प्रदान किया । और उन्होंने (अन्य को) । इस प्रकार यह लोक में प्रतिष्ठित हुआ । हे देवि ! करोड़ों मुखों से करोड़ों वर्षों में भी मैं इस कवच की महिमा का वर्णन नहीं कर सकता । पुनः

तुमसे एक सत्य कह रहा हूँ अब मन लगाकर सुनो । त्रैलोक्याकर्षण के बिना यह कवच सिद्ध नहीं होता । देवी (कामकला काली) मन्त्र के ग्रहीता के ऊपर तो प्रसन्न होती है किन्तु दाता के ऊपर उसी क्षण क्रुद्ध हो जाती है । यह जानकर जो करना उचित हो उसे ही तुम करना ॥ ५९-६४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकाल-संहिता के कामकलाकाली खण्ड के त्रैलोक्यविजयं कवचम् नामक नवम पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ९ ॥

...

दशमः पटलः

[कामकलाकाल्याः रावणकृतं भुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्]

महाकाल उवाच—

अथ वक्ष्ये महेशानि देव्याः स्तोत्रमनुत्तमम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण विघ्ना यान्ति पराङ्मुखाः ॥ १ ॥
विजेतुं प्रतस्थे यदा कालकस्या-
सुरान् रावणो मुञ्जमालिप्रवर्हान् ।
तदा कामकालीं स तुष्टाव वाग्भि-
र्जिगीषुर्मृधे बाहुवीर्य्येण सर्वान् ॥ २ ॥

कामकला काली का रावणकृत स्तोत्र—महाकाल ने कहा—हे महेशानि ! अब मैं देवी के सर्वोत्तम स्तोत्र को तुम्हें बतलाऊँगा जिसके स्मरणमात्र से ही विघ्न वापस हो जाते हैं । रावण ने जब मुञ्जमाली आदि कालकेय असुरों को जीतने के लिये प्रस्थान किया तब युद्ध में भुजाओं के बल से सबको जीत लेने की इच्छा वाले शब्दों से उसने कामकलाकाली की स्तुति की ॥ १-२ ॥

महावर्त्तभीमासृगब्ध्युत्थवीची-
परिक्षालिता श्रान्तकन्थश्मशाने ।
चितिप्रज्वलद्वह्निकीलाजटाले
शिवाकारशावासने सन्निषण्णाम् ॥ ३ ॥

महा आवर्त्त से भयङ्कर रक्तसमुद्र से उठने वाली लहरों से परिक्षालित, श्रान्तकन्थ नामक श्मशान में, चिता की जलती हुई अग्नि की शिखा के समान जटा वाले शिवाकार शव के आसन पर बैठी हुई (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ ३ ॥

महाभैरवीयोगिनीडाकिनीभिः
करालाभिरापादलम्बत्कचाभिः ।
भ्रमन्तीभिरापीय मद्यामिषास्रा-
न्यजस्रं समं सञ्चरन्तीं हसन्तीम् ॥ ४ ॥

भयङ्कर, पैर तक लटकते हुए बालों वाली, मद्य, मांस, रक्त का पान कर निरन्तर नृत्य करने वाली महा भैरवियों, योगिनियों एवं डाकिनियों के साथ सञ्चरण करने वाली हँसती हुई (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ ४ ॥

महाकल्पकालान्तकादम्बिनीत्विट्-
परिस्पर्द्धिदेहद्युतिं घोरनादाम् ।
स्फुरद्द्वादशादित्यकालाग्निरुद्र-
ज्वलद्विद्युदोघप्रभादुर्निरीक्ष्याम् ॥ ५ ॥

महाप्रलय के समय कालान्तक मेघमाला की कान्ति की प्रतिस्पर्धी देहद्युति वाली, घोर नाद वाली तथा चमकते हुए द्वादश आदित्य तथा कालाग्निरुद्र की जलती हुई विद्युत्प्रभा के समान दुर्निरीक्ष्य (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ ५ ॥

लसन्नीलपाषाणनिर्माणवेदि-
प्रभश्रोणिबिम्बां चलत्पीवरोरुम् ।
समुत्तुङ्गपीनायतोरोजकुम्भां
कटिग्रन्थितद्वीपिकृत्त्युत्तरीयाम् ॥ ६ ॥

चमकते हुए नीलमणि पत्थर से निर्मित वेदी के सदृश नितम्बबिम्ब वाली, चञ्चलपीवर जघन वाली, ऊँचे, चौड़े विशाल स्तनों वाली तथा कटिप्रदेश में गैंडा का चमड़ा बाँधी हुई (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ ६ ॥

स्रवद्रक्तवल्गान्त्रमुण्डावनद्धा-
सृगाबद्धनक्षत्रमालैकहाराम् ।
मृतब्रह्मकुल्योपक्लृप्ताङ्गभूषां
महाट्टाट्टहासैर्जगत्त्रासयन्तीम् ॥ ७ ॥

गिरते हुए रक्त वाले नरमुण्ड से बँधे रक्तोपलिप्त मोतियों का हार पहनी हुई, मरे हुए ब्राह्मण की हड्डी से बने आभूषण को धारण करने वाली एवं महा अट्टहास से संसार को भयभीत करती हुई (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ ७ ॥

निपीताननान्तामितोद्वृत्तरक्तो-
च्छलद्धारया स्नापितोरोजयुग्माम् ।
महादीर्घदंष्ट्रायुगन्यञ्चदञ्च
ल्ललल्लेलिहानोग्रजिह्वाग्रभागाम् ॥ ८ ॥

मुख तक पीये गये और उसके बाद उगले गये रक्त की धारा से ऊपलिप्त दोनों स्तनों वाली, अत्यन्त दीर्घ दो दाँतों के बीच लपलपाती हुई उग्र जिह्वाग्रभाग वाली (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ ८ ॥

चलत्पादपद्मद्वयालम्बिमुक्त-
प्रकम्पालिसुस्निग्धसम्भुग्नकेशाम् ।
पदन्याससम्भारभीताहिराजा-
ननोद्गच्छदात्मस्तुतिव्यस्तकर्णाम् ॥ ९ ॥

चलते हुए दोनों चरण कमलों तक लटकने वाले, खुले हुए, भ्रमर के समान

चमकीले-चिकने-घुंघराले बालों वाली, पैरों के रखने के भार से भीत शेष नाग के मुख से निकलने वाली आत्मस्तुति को सुनने में व्यस्त कानों वाली (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ ९ ॥

महाभीषणां घोरविंशार्द्धवक्त्रै-
स्तथासप्तविंशान्वितैर्लोचनैश्च ।
पुरोदक्षवामे द्विनेत्रोज्ज्वलाभ्यां
तथान्यानने त्रित्रिनेत्राभिरामाम् ॥ १० ॥

महाभयकारिणी, घोर दशमुखों तथा सत्ताईस लोचनों से अन्वित इनमें-से सामने दायें, बायें दो नेत्रों से उज्ज्वल तथा अन्य (सात) मुखों में तीन-तीन नेत्रों (इस प्रकार २१+६ = २७ नेत्रों) से सुन्दर (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ १० ॥

लसद्द्वीपिहर्य्यक्षफेरुप्लवङ्ग-
क्रमेलर्क्षतार्क्षद्विपग्राहवाहैः ।
मुखैरीदृशाकारितैर्भ्राजमानां
महापिङ्गलोद्यज्जटाजूटभाराम् ॥ ११ ॥

गैंडा, सिंह, साँप, सियार, बन्दर, ऊँट, भालू, गरुड, हाथी और मगर के मुखों जैसे मुखों से शोभायमान, महा पिङ्गल उठी हुई जटाजूट वाली (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ ११ ॥

भुजैः सप्तविंशाङ्कितैर्वामभागे
युतां दक्षिणे चापि तावद्भिरेव ।
क्रमाद्रत्नमालां कपालं च शुष्कं
ततश्चर्मपाशं सुदीर्घं दधानाम् ॥ १२ ॥
ततः शक्तिखट्वाङ्गमुण्डं भुशुण्डीं
धनुश्चक्रघण्टाशिशुप्रेतशैलान् ।
ततो नारकङ्कालबभ्रूरगोन्माद-
वंशीं तथा मुद्गरं वह्निकुण्डम् ॥ १३ ॥
अधो डम्मरुं पारिघं भिन्दिपालं
तथा मौशलं पट्टिशं प्राशमेवम् ।
शतघ्नीं शिवापोतकं चाथ दक्षे
महारत्नमालां तथा कर्त्तृखड्गौ ॥ १४ ॥
चलत्तर्ज्जनीमङ्कुशं दण्डमुग्रं
लसद्रत्नकुम्भं त्रिशूलं तथैव ।
शरान् पाशुपत्यांस्तथा पञ्च कुन्तं
पुनः पारिजातं छुरीं तोमरं च ॥ १५ ॥

प्रसूनस्रजं डिण्डिमं गृध्रराजं
ततः कोरकं मांसखण्डं श्रुवं च ।
फलं बीजपूराह्वयं चैव सूचीं
तथा पर्शुमेवं गदां यष्टिमुग्राम् ॥ १६ ॥
ततो वज्रमुष्टिं कुणाप्यं सुघोरं
तथा लालनं धारयन्तीं भुजैस्तैः ।
जवापुष्परोचिष्फणीन्द्रोपक्लृप्त-
क्वणन्नूपुरद्वन्द्वसक्ताङ्घ्रिपद्माम् ॥ १७ ॥

वामभाग में सत्ताईस भुजाओं और दक्षिण भाग में भी उतनी ही भुजाओं में क्रमशः रत्नमाला, शुष्क कपाल, दीर्घ चर्म (=ढाल), पाश, शक्ति, खट्वाङ्ग, मुण्ड, भुशुण्डी, धनुष, चक्र, घण्टा, शिशु, प्रेत, पर्वत, नरकङ्काल, बभ्रु, साँप, उन्मादवंशी, मुद्गर, अग्निकुण्ड, डमरू, परिघ, भिन्दिपाल, मुशल, पट्टिश, प्राश, शतघ्नी (=तोप), सियार का बच्चा तथा दायीं ओर महारत्नमाला, कैंची, खड्ग, चञ्चल तर्जनी, अङ्कुश, उग्रदण्ड, सुन्दर रत्नकुम्भ, त्रिशूल, पाँच पाशुपत, बाण, भाला, पारिजात, छुरी, तोमर, फूल-माला, डिण्डिम, गृध्रराज, कोरक, मांस-खण्ड, श्रुवा, जम्भीरी नीबू, सूई, पशु, गदा, उग्रयष्टि, वज्रमुष्टि, घोर शव तथा लालन उन्हीं भुजाओं धारण की हुई एवं जवापुष्प की कान्ति वाले सर्प से उपक्लृप्त (=रचे गये) दो नूपुरों से युक्त पादपद्म वाली (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ १२-१७ ॥

महापीतकुम्भीनसावद्धनद्ध-
स्फुरत्सर्वहस्तोज्ज्वलत्कङ्कणां च ।
महापाटलद्योतिदर्वीकरेन्द्रा-
वसक्ताङ्गदव्यूहसंशोभमानाम् ॥ १८ ॥

अत्यन्त पीत कुम्भीनस से आबद्ध कङ्कण को समस्त हाथों में पहनी हुई, महापाटल के समान चमकने वाले दर्वीकरेन्द्र (=नागराज) के द्वारा रचे गये अङ्गदों से शोभमान (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ १८ ॥

महाधूसरत्त्विड्भुजङ्गेन्द्रक्लृप्त-
स्फुरच्चारुकाटेयसूत्राभिरामाम् ।
चलत्पाण्डुराहीन्द्रयज्ञोपवीत-
त्विडुद्भासिवक्षःस्थलोद्यत्कपाटाम् ॥ १९ ॥

महाधूसर कान्तिवाले विशाल नाग से बने हुए चमकीले कटिसूत्र से सुन्दर, चञ्चल पाण्डुर सर्पेन्द्र के यज्ञोपवीत की कान्ति से उद्भासित वक्षःस्थल रूप कपाट वाली (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ १९ ॥

पिषङ्गोरगेन्द्रावनद्धावशोभा-
महामोहबीजाङ्गसंशोभिदेहाम् ।
महाचित्रिताशीविषेन्द्रोपक्लृप्त-
स्फुरच्चारुताटङ्कविद्योतिकर्णाम् ॥ २० ॥

पिषङ्ग वर्ण के उरगेन्द्र से अवनद्ध अवशोभा वाले महामोहबीजाङ्ग (=योनि?) से संशोभित देह वाली, महाचित्रित सर्पराज से रचित चमकते हुए ताटक (=कर्णाभरण) से विद्योतित कान वाली (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ २० ॥

वलक्षाहिराजावनद्धोर्ध्वभासि-
स्फुरत्पिङ्गलोद्यज्जटाजूटभाराम् ।
महाशोणभोगीन्द्रनिस्यूतमुण्डो-
ल्लसत्किङ्किणीजालसंशोभिमध्याम् ॥ २१ ॥

वलक्ष (=श्वेत) अहिराज से अवनद्ध ऊर्ध्वभासी स्फुरित होती हुई पिङ्गल एवं उठी हुई जटाजूट के भार वाली, महारक्तवर्ण के भोगीन्द्र से सिले गये मुण्ड से उल्लसित किङ्किणी जाल से शोभित मध्य (=कटिप्रदेश) वाली (कामकलाकाली का सदा स्मरण करता हूँ) ॥ २१ ॥

सदा संस्मरामीदृशीं कामकालीं
जयेयं सुराणां हिरण्योद्भवानाम् ।
स्मरेयुर्हि येऽन्येऽपि ते वै जयेयु-
र्विपक्षान्मृधे नात्र सन्देहलेशः ॥ २२ ॥

इस प्रकार की कामकलाकाली का सदा संस्मरण करता हूँ ताकि हिरण्याक्ष एवं हिरणकशिपु से उत्पन्न राक्षसों पर विजय प्राप्त कर सकूँ । अन्य जो भी लोग इसका स्मरण करेंगे वे युद्ध में शत्रुओं को जीत लेंगे । इसमें रञ्चमात्र भी सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥

पठिष्यन्ति ये मत्कृतं स्तोत्रराजं
मुदा पूजयित्वा सदा कामकालीम् ।
न शोको न पापं न वा दुःखदैन्यं
न मृत्युर्न रोगो न भीतिर्न चापत् ॥ २३ ॥

कामकाली की पूजा कर जो लोग सदा प्रेम से मेरे द्वारा रचित इस स्तोत्रराज का पाठ करेंगे उनको न शोक, न पाप, न दुःख, न दैन्य, न मृत्यु, न रोग, न भय, और न आपत्ति होगी ॥ २३ ॥

धनं दीर्घमायुः सुखं बुद्धिरोजो
यशःशर्मभोगाः स्त्रियः सूनवश्च ।
श्रियो मङ्गलं बुद्धिरुत्साह आज्ञा
लयः शर्म(सर्व)विद्या भवेन्मुक्तिरन्ते ॥ २४ ॥

उनको धन, दीर्घायु, सुख, बुद्धि, ओज, यश, शर्म, भोग, स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी, मङ्गल, बुद्धि, उत्साह, आज्ञा, लय, सर्वविद्या और अन्त में मुक्ति मिलती है ॥ २४ ॥

॥ इति महावामकेश्वरतन्त्रे कालकेयहिरण्यपुरविजये रावणकृतं कामकालीभुजङ्गप्रयातस्तोत्रराजं समाप्तम् ॥

[प्रसन्नाकलशस्य शक्तिसामरस्यस्य च विध्योरभिधानम्]

देव्युवाच—

महायोगिन् महाकाल करुणाम्बुनिधे शिव ।
अत्यद्भुतमिदं त्वत्तः श्रुतं कवचमुत्तमम् ॥ १ ॥
विशेषेण श्रुतं सर्वं मया चैतन्महेश्वर ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि मम प्रीतिकरं प्रिय ॥ २ ॥
कीदृशेन विधानेन आशु सा च प्रसीदति ।
तत् कथयस्व देवेश यदि स्नेहोऽस्ति ते मयि॥ ३ ॥

प्रसन्नाकलश और शक्तिसामरस्य विधि—देवी ने कहा—हे महायोगिन् ! हे महाकाल ! हे करुणासागर ! शिव ! मैंने आप से यह अत्यन्त अद्भुत और उत्तम कवच सुना । हे महेश्वर ! मैंने सम्पूर्ण इस (कवच) को विशेष रूप से सुना । हे प्रिय ! अब मैं अपना प्रीतिकारक (विषय) सुनना चाहती हूँ कि किस विधान के कहने पर वह (देवी) शीघ्र प्रसन्न हो जाती है । हे देवेश ! यदि मेरे प्रति आपका स्नेह है तो उसे बतलाइये ॥ १-३ ॥

महाकाल उवाच—

अथ सर्वप्रयोगाणां राजानं व्याहरामि ते ।
यदेकवारकरणात् कृतकृत्योऽभिजायते ॥ ४ ॥
महागोप्यतमं देवि प्रसन्नाकलशं विधिम् ।
विशेषतस्तथा शक्तिसामरस्यकरं विधिम् ॥ ५ ॥
गुरुदैवतमन्त्राणां यथैकत्वं फलप्रदम् ।
तीर्थदैवतशक्तीनां तथैकत्वं महाफलम् ॥ ६ ॥
क्षत्रविट्शूद्रजातीनामेष एव विधिर्मतः ।
देवस्य मध्यतोल्लेखादुभयत्र समा क्रिया ॥ ७ ॥

महाकाल ने कहा—अब मैं तुम्हें समस्त प्रयोगों का राजा बतला रहा हूँ जिसको एक बार करने से (मनुष्य) कृतकृत्य हो जाता है । हे देवि! यह प्रसन्नाकलश विधि महा गोपनीय है । इसके अतिरिक्त शक्तिसामरस्यकर विधि भी विशेषतया (गोपनीय) है । जिस प्रकार गुरु देवता और मन्त्र का एकत्व फलप्रद होता है उसी प्रकार तीर्थ देवता और शक्ति की एकता महाफल वाली होती है । क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जातियों के

लिये यही विधि निर्दिष्ट है । चूँकि देवता का उल्लेख दोनों में है इसलिये दोनों (विधियों) में क्रिया समान होती है ॥ ४-७ ॥

[उपर्युक्तविध्योरधिकारिणो निर्देश:]

द्विजाते: केवलं तीर्थे नाधिकार: प्रशस्यते ।
निन्दा तु प्राणनाशाय त्यागात् सिद्धिक्रियाऽफला ॥ ८ ॥
निन्दात्यागौ न कर्त्तव्यौ देवि सिद्धिमभीप्सता ।

दोनों विधियों के अधिकारी काल और प्रकार—अधिकारी तीर्थ के विषय में केवल ब्राह्मण का अधिकार नहीं है । (तीर्थ की) निन्दा मृत्युकारिणी होती है और (उसके) त्याग से सिद्धि के लिये की जाने वाली क्रिया निष्फल होती है । इसलिये हे देवि ! सिद्धि चाहने वाले को निन्दा और त्याग दोनों ही नहीं करना चाहिये ॥८-९॥

[उपर्युक्तविध्यो: कालाभिधानम्]

प्रत्यष्टम्यां चतुर्दश्यां सङ्क्रान्तौ मङ्गलेऽहनि ॥ ९ ॥
व्यतीपातोपरागे च स्वेच्छा यस्मिन् दिनेऽपि वा ।
कल्पितार्चादिसम्भार: कृतनित्यक्रियो दिवा ॥ १० ॥
भुक्तान्नो वाप्यभुक्तान्नो विधिं कुर्य्यान्महानिशि ।

काल—प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी, सङ्क्रान्ति, मङ्गल का दिन, व्यतीपात योग, ग्रहण में अथवा जिस किसी भी दिन पूजा आदि की सामग्री एकत्रित कर नित्य क्रिया सम्पन्न कर दिन में भोजन करके अथवा उपवास करके यह विधि महानिशा (=मध्यरात्रि का दो प्रहर अर्थात् रात्रि ९.३० से ३.३० तक के समय) में इस विधि को करना चाहिये ॥ ९-११ ॥

[तीर्थस्य द्वादशप्रकाराभिधानम्]

तीर्थशक्त्योर्भिदां वच्मि तत्र चेतो निवेशय ॥ ११ ॥
माध्वीका पानसी चैव खार्ज्जूरी च मधूकिका ।
गौडी ताली चतुर्जाता तण्डुली पुष्पसम्भवा ॥ १२ ॥
माध्वीका च गौधूमी तथौषधिशिफात्मिका ।
क्षत्रविट्शूद्रजातीनां प्रशस्ता द्वादशैव हि ॥ १३ ॥
मधु क्षीरं तथाज्यं च नारिकेलोदकं प्रिये ।
ब्राह्मणानामिदं शस्तं फलानां च रसास्तथा ॥ १४ ॥

तीर्थ (=मद्य) के बारह प्रकार—अब मैं तीर्थ और शक्ति के भेद को बतला रहा हूँ उसमें मन लगाओ । महुआ, कटहल, खजूर, मधु, गुड़, ताड़, चातुर्जात, चावल, फूल, गेहूँ, औषधि और शेफाली से बनी हुई बारह प्रकार की सुरा क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिये प्रशस्त है । हे प्रिये ! ब्राह्मणों के लिये मधु, दूध, घी, नारियल का पानी और फलों का रस सेवनीय कहा गया है ॥ ११-१४ ॥

[शक्तेः प्रकाराभिधानम्]

शक्तिश्च द्विविधा प्रोक्ता स्वकीया परकीयका ।
अभावे परकीयायाः स्वीयां शक्तिं प्रकल्पयेत् ॥ १५ ॥
न व्यङ्गीं नाधिकाङ्गीं च न रूक्षां न शिरालिनीम् ।
न पिङ्गां नाधिकां श्यामां जरन्तीं न करालिनीम् ॥ १६ ॥
नादृष्टरजसं कन्यां नार्त्तवं समुपागताम् ।
नान्तर्वत्नीं न वा बालां नापत्यां न गलत्कुचाम् ॥ १७ ॥
गौराङ्गीं युवतीं रम्यां पीनोन्नतपयोधराम् ।
विशालजघनां चारुदन्तपङ्क्तिविराजिताम् ॥ १८ ॥
दीक्षितां कुलमार्गेषु भक्तिश्रद्धापरायणाम् ।
सदा वचस्कारिणीं च भयहीनां हसन्मुखीम् ॥ १९ ॥
सर्वजातीर्द्विजः कुर्याद् विप्रां त्यक्त्वा तु भूमिपः ।
उभे विहाय वैश्यश्च तिस्रः शूद्रश्च वर्जयेत् ॥ २० ॥
भक्तौ दृढायां जातायां सर्वा सर्वेषु शस्यते ।

शक्ति के प्रकार—शक्ति (=तान्त्रिक साधना में प्रयोज्य स्त्री) दो प्रकार की होती है—स्वकीया और परकीया । परकीया के न मिलने पर अपनी शक्ति (=पत्नी) को प्रयोग में लाना चाहिये । यह शक्ति न अङ्गहीन, न अधिक अङ्गवाली, न रुक्ष, न शिरालिनी (=उभरी हुई नसों वाली), न पिङ्ग (=बहुत गोरी) न बहुत काली, न वृद्धा, न कर्कशा, न कन्या, न रजस्वला, न गर्भवती, न बाला, न निःसन्तान, न ढीले स्तनवाली होनी चाहिये । गोरी, युवती, रमणीय, पीन उन्नत स्तनों वाली, विशाल जघन वाली, सुन्दर दाँतों की पङ्क्ति वाली, दीक्षित, कुल की परम्परा में भक्ति और श्रद्धा वाली, सदा वचन का निर्वाह करने वाली, निर्भय, हँसमुख स्त्री होनी चाहिये । ब्राह्मण सभी जातियों की स्त्री को शक्ति बना सकता है । क्षत्रिय ब्राह्मणी को छोड़कर, वैश्य ब्राह्मणी तथा क्षत्रिया को छोड़कर (वैश्य और शूद्रा को) तथा शूद्र (ब्राह्मणी आदि) तीनों को छोड़कर (केवल शूद्रा को प्रयोग में ला सकता है) । दृढ भक्ति होने पर सब जाति की स्त्रियाँ सब साधकों के लिये विहित हैं ॥ १५-२१ ॥

[तीर्थपात्राभिधानम्]

तीर्थामत्रमथो वच्मि हैमं वा राजतं तथा ॥ २१ ॥
पार्थिवं नारिकेलं वा रात्नीयं सर्वसिद्धिदम् ।
तीर्थप्राप्तेषु पूजायामुभयत्रापि युज्यते ॥ २२ ॥

तीर्थपात्र—इसके बाद तीर्थ का अमत्र (=भोजनपात्र) बतला रहा हूँ । सोना चाँदी मिट्टी नारियल या रत्न का पात्र सर्वसिद्धि देता है । (उपर्युक्त पात्र) तीर्थ के लिये और पूजा में दोनों जगह उपयुक्त माना गया है ॥ २१-२२ ॥

[उक्तविध्योः देशाभिधानम्]

अथ कल्पितपूजादिसम्भारो भक्तितत्परः ।
शून्यागारे निर्जने च श्मशाने च चतुष्पथे ॥ २३ ॥
गृहे वा निःशलाके स्याद् यत्र वा मनसो रुचिः ।
कुर्याद् गोप्यतमं सर्वं पशुर्नैवेक्ष्यते यथा ॥ २४ ॥

विधियों के लिये स्थान—इसके बाद पूजा आदि की सामग्री को एकत्रित कर भक्तियुक्त होकर (साधक) शून्यघर, निर्जन-स्थान, श्मशान, चौराहा अथवा निःशलाक (=खूँटी, कील, हड्डी आदि से रहित) घर में जहाँ कहीं भी मन लगे वहाँ समस्त गोपनीय कार्य करे । यहाँ तक कि उस स्थान को पशु भी न देख पाये ॥ २३-२४॥

[उक्तविध्योः स्वरूपाभिधानम्]

प्रक्षालिताङ्घ्रिराचान्त उत्तराभिमुखो विभीः ।
दृढ़ं पद्मासनं कृत्वा व्याघ्रचर्म्मोपरि स्थितः॥ २५ ॥
भूतापसारणं कृत्वा तालैर्दिग्बन्धनं तथा ।
अङ्गन्यासं ततः कृत्वा कराङ्गन्यासमाचरेत् ॥ २६ ॥
मातृकान्यासपीठादिन्यासं कुर्यात् पुरोक्तवत् ।
अर्घ्यस्थापनपर्यन्तं सर्वं कुर्यादतन्द्रितः ॥ २७ ॥

विधि का स्वरूप—पैर धुल कर आचमन कर निर्भय होकर उत्तराभिमुख होकर बाघ के चर्म पर बैठ कर पद्मासन लगाये । भूतों का अपसारण कर ताली लगाकर दिग्बन्ध करे । उसके बाद अङ्गन्यास करने के पश्चात् कराङ्गन्यास करे । पूर्वोक्त विधि के अनुसार मातृकान्यास पीठ आदि का न्यास करे । अर्घ्यस्थापना तक समस्त अनुष्ठान (साधक) तन्द्रारहित होकर करे ॥ २५-२७ ॥

[समन्त्रः पीठस्थापनविधिः]

ततो गोमयलिप्तायां भूमौ स्वस्तिकताजुषि ।
स्थापयेत् क्षालितं पीठं दारवं धातुमत्तथा ॥ २८ ॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण गोमयालिप्तभूपरि ।
आदौ तारत्रयं प्रोच्य मायायाः पञ्चकं ततः ॥ २९ ॥
कूर्च्चाङ्कुशमहाक्रोधामृतगुह्यारतिप्रियाः ।
कापालभैरवी नीलचामुण्डाशक्तिमानसाः ॥ ३० ॥
योगिनी (शाकिनी) काली कामगारुडविघ्नतः ।
भारुण्डा खेचरी कामलक्ष्मीः(एता) त्रिशक्तयः ॥ ३१ ॥
सद्योजातादिकाः पञ्च कूटाश्च तदनन्तरम् ।
दानवाधारधनदाकूर्मानन्तविषामराः ॥ ३२ ॥
एह्येहि भगवत्येवं ततः पदमुदीरयेत् ।

ततः कामकलाकालि सर्वशक्तिपदं ततः ॥ ३३ ॥
समन्विते इति प्रोच्य प्रसन्नापदमुच्चरेत् ।
शक्तिभ्यां सामरस्यं च तत उद्गारयेत्सुधीः ॥ ३४ ॥
कुरुद्वन्द्वं मम ततः पूजां गृह्ण युगं वदेत् ।
शत्रून् हन युगं प्रोच्य युगं मर्द्दय पातय ॥ ३५ ॥
राज्यं मे(च) समुद्धृत्य देहि दापय युग्मकम् ।
शाकिनीयोगिनीकूर्चस्त्रीह्रियां नवकं वदेत् ॥ ३६ ॥
पञ्चचत्वारिंशबीजमेवं भवति भाविनि ।
फट्त्रयान्ते हृच्छिरोभ्यां मन्त्रः सर्वशुभावहः ॥ ३७ ॥
उच्चार्य्यामुं मनुं पीठं स्थापयेत् स्थण्डिलोपरि ।

पीठ स्थापन मन्त्र—गोबर से लिपी हुई भूमि पर स्वस्तिक बनाये । उसके ऊपर लकड़ी या धातु के बने हुए पीठ को धुल कर रखे । (रखने के समय) निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना चाहिये । पहले तीन तार, फिर माया बीज पाँच बार तत्पश्चात् कूर्च अङ्कुश महाक्रोध अमृत, गुह्या, रति, प्रिया, कपालभैरवी, नील, चामुण्डा, शक्ति, मानस, योगिनी (शाकिनी), काली, काम, गरुड, विघ्न, भारुण्डा, खेचरी, कामलक्ष्मी—ये तीन शक्तियाँ, ततः सद्योजात आदि पाँच कूट, उसके बाद दानव आधार धनदा कूर्म अनन्त विष अमर कहने के बाद 'एहि एहि भगवति' कहकर 'कामकलाकालि सर्वशक्तिसमन्विते' कहे । फिर 'प्रसन्नाशक्तिभ्याँ सामरस्यं' कहे । 'कुरु' को दो बार फिर 'मम पूजां' कहने के बाद 'गृह्ण' को दो बार कहे । 'शत्रून्' कहने के पश्चात् दो बार 'हन' कहे । 'मर्दय पातय' को दो-दो बार कहकर 'राज्य में देहि दापय' कहने के बाद शाकिनी योगिनी कूर्च स्त्रीं ह्लीं बीजों को नव नव बार कहे । हे भामिनि ! इस प्रकार यह मन्त्र पैंतालिस अक्षरों वाला है (मन्त्र—ॐ ॐ ॐ ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं हूं क्रों क्षूं ग्लूं क्ष्लप्रैं क्लूं रच्रां थ्रीं सौः ज्रौं क्रैं क्रीं क्लीं फ्लक्रौं प्रीं ख्रौं क्लीं श्रीं क्रूं ब्लूं ठ्रीं छ्रीं हक्लह्लवडकखऐं कसवहलक्षमऔं वक्रम्लबलक्लऊं क्ष्लह्लमव्यऊं लक्षमहजरक्रव्यऊं श्रीं म्रैं क्ष्रूं व्रीं खैं ज्रं य्लैं एह्येहि भगवति कामकलाकालि सर्वशक्तिसमन्विते प्रसन्नाशक्तिभ्यां सामरस्यं कुरु कुरु मम पूजां गृह्ण गृह्ण शत्रून् हन हन मर्दय मर्दय पातय पातय राज्यं मे देहि देहि दापय दापय फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं हूं हूं हूं हूं हूं हूं हूं हूं हूं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं ह्लीं फट् फट् फट् नमः स्वाहा) ॥२८-३८॥

[समन्त्रमण्डलारचनविध्यभिधानम्]

पुनर्गृहीत्वा सिन्दूरं प्रशस्तं प्रसृतित्रयम् ॥ ३८ ॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण पीठे मण्डलमाचरेत् ।
प्रणवं शाकिनीबीजं फेत्कारीं योगिनीमपि ॥ ३९ ॥
चण्डं भूतं परां नादं रौद्रमानन्दमङ्कुशम् ।

फट्पञ्चकं कामकलाकालीसम्बोधनं ततः॥ ४० ॥
घोररावे इति ततो विकटदंष्ट्र इत्यपि ।
कालि कापालि इति च.................... ॥ ४१ ॥
नररुधिर इत्युक्त्वा वसामांस इतीति च ।
भोजनप्रिय इत्युक्त्वा भगप्रिय इतीरयेत् ॥ ४२ ॥
भगाङ्कुश इति प्रोच्य भगमालिनि चोद्धरेत् ।
भगोन्मादिनि इत्युक्त्वा भगात्तव(भगोत्तमे) इतीरयेत् ॥ ४३ ॥
इहागच्छ युगात्तिष्ठ सन्निधिं कुरु च द्वयम् ।
ततश्च भरतोपास्यागुह्यकाल्याश्च षोडशी ॥ ४४ ॥
ततः कामकलाकाल्यास्त्रैलोक्याकर्षणो मनुः ।
शाकिनी डाकिनीबीजात्फेत्कारीबीजमुद्धरेत् ॥ ४५ ॥
कूर्चं वधूं योगिनीं च प्रणवस्य च पञ्चकम् ।
फडन्ते हृच्छिरश्चापि महामन्त्रोऽयमीरितः ॥ ४६ ॥
अनेन पीठोपरि हि सिन्दूरैर्मण्डलं चरेत् ।

मण्डलरचना विधि—पुनः तीन पसर अच्छा सिन्दूर लेकर पीठ पर वक्ष्यमाण-मन्त्र से मण्डल बनाये । प्रणव, शाकिनी बीज, फेत्कारी, योगिनी, चण्ड, भूत, परा, नाद, रौद्र, आनन्द, अङ्कुश, पाँच फट्, कामकलाकाली का सम्बोधन, फिर 'घोररावे विकटदंष्ट्रे कालि कापालि नररुधिरवसामांसभोजनप्रिये' कहकर 'भगप्रिये' कहना चाहिये । 'भगाङ्कुशे' कहकर 'भगमालिनि भगोन्मादिनि भगोत्तमे' कहना चाहिये । 'इह आगच्छ' दो बार 'आतिष्ठ सन्निधिं' कहने के बाद 'कुरु' दो बार ततः भरतोपास्या और गुह्यकाली का षोडशी मन्त्र फिर कामकलाकाली का त्रैलोक्याकर्षण मन्त्र इसके बाद शाकिनी फेत्कारी बीज, कूर्च वधू योगिनी, पाँच प्रणव और 'फट्' के बाद हृदय और शिर यह महामन्त्र कहा गया । (मन्त्र—ॐ फ्रें हस्ख्फ्रें छ्रीं फ्रों स्फ्रों ...(परा) ब्रीं द्रैं भ्रूं क्रों फट् फट् फट् फट् फट् कामकलाकालि घोररावे विकटदंष्ट्रे कालि कापालि नररुधिरवसामांसभोजनप्रिये भगप्रिये भगाङ्कुशे भगमालिनि भगोन्मादिनि (भगोत्तमे) इह आगच्छ आगच्छ सन्निधिं कुरु कुरु ॐ फ्रें सिद्धिकरालि ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा, क्लीं क्रीं हूं क्रों स्फ्रों कामकलाकालि स्फ्रों क्रों हूं क्रीं क्लीं स्वाहा, फ्रें ख्फ्रें हसखफ्रें हूं स्त्री छ्रीं ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ फट् नमः स्वाहा)। इस मन्त्र के द्वारा पीठ के ऊपर सिन्दूर से मण्डल बनाये ॥ ३८-४७ ॥

[समन्त्रं शक्तेः वस्त्रविमोचनविध्यभिधानम्]

ततः स्नातां शुचिं शक्तिं सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥ ४७ ॥
आनीयानेन मन्त्रेण तस्या वस्त्रं विमोचयेत् ।
तारप्रासादवेतालरुद्रद्रावणभैरवीः ॥ ४८ ॥
शाङ्करब्रह्मभारुण्डाचामुण्डाकालगारुडाः ।

पराकालीरतिक्षेत्रपालकामरमाह्रियः ॥ ४९ ॥
फेत्कारीं विंशतितमां नमः स्वाहान्तगो मनुः ।
चतुर्विंशत्यक्षरेण तां नग्नां कारयेत्सुधीः ॥ ५० ॥

शक्तिवस्त्रविमोचन विधि एवं मन्त्र—इसके बाद स्नान की हुई पवित्र सर्वालङ्कारभूषित शक्ति को लाकर अधोलिखित मन्त्र से उसके कपड़े हटाये । तार प्रासाद, वेताल, रुद्र, द्रावण, भैरवी, शङ्कर, ब्रह्मा, भारुण्डा, काल, गरुड, पराकाली, रति, क्षेत्रपाल, काम, रमा, ह्रीं, फेत्कारी के बाद अन्त में 'नमः स्वाहा' कहे। (मन्त्र—ॐ हौं सफहलक्ष्रूं फहलक्षीं हभ्रीं सौः ख्फ्रीं रह्रीं प्रीं क्रैं जूं क्रौं ह्स्खफ्रें सहक्लह्रीं क्रीं क्लूं क्षौं क्लीं श्रीं ह्रीं ह्स्खफ्रें नमः स्वाहा) । चौबीस अक्षर वाले इस मन्त्र से विद्वान् स्त्री को नग्न कर दे ॥ ४७-५० ॥

[शक्त्यङ्के कलशस्थापनविधेः समन्त्रमभिधानम्]

सिन्दूरमण्डलस्योद्ध्वं कृतपद्मासनां स्त्रियम् ।
उपवेश्य तदङ्के तु पूर्वोक्तं कलशं क्षिपेत् ॥ ५१ ॥
वक्ष्यमाणेन मनुना योनिमण्डलमध्यगम् ।
तारं षड्दीर्घको ह्रश्चः प्रासादाङ्कुशपाशकाः ॥ ५२ ॥
कूर्चं भूतश्च धनदा हयग्रीवकुमारकौ ।
त्रिशक्तिस्तापिनीतत्त्वं कूर्मद्रावणदानवाः ॥ ५३ ॥
ततो जय जयेत्युक्त्वा भगवत्यपि संवदेत् ।
ततः कामकलाकालि सर्वेश्वरि पदं ततः ॥ ५४ ॥
इहागत्य चिरं तिष्ठ तिष्ठेति तदनन्तरम् ।
ततश्च प्रोद्धरेद् देवि यावत्पूजां करोम्यहम् ॥ ५५ ॥
ततस्त्रयं हि बीजानां पञ्चानां समनूद्धरेत् ।
शाकिनीयोगिनीक्रोधह्रीवधूनां पृथक् पृथक् ॥ ५६ ॥
अन्ते फट् पञ्च च स्वाहा कलशस्थापने मनुः ।
इमं मन्त्रं गृणन् जुष्टं तस्या योन्युपरि न्यसेत् ॥ ५७ ॥

शक्ति की गोद में कलशस्थापन एवं मन्त्र—सिन्दूरमण्डल के ऊपर पद्मासन लगाकर स्त्री को बैठाने के बाद पूर्वोक्त कलश को उसकी गोद में रखे। यह कलश योनिमण्डल के मध्य में रखा जाता है । तार, छह दीर्घ ह्र, प्रासाद, अङ्कुश, पाश, कूर्च, भूत, धनदा, हयग्रीव, कार्त्तिकेय, त्रिशक्ति, तापिनी तत्त्व, कूर्म, द्रावण, दानव बीजों को कहकर फिर 'जय जय' कहे । तदनन्तर 'भगवति कामकलाकालि सर्वेश्वरि इहागत्य चिरं तिष्ठ तिष्ठ' कहे । इसके बाद हे देवि! 'यावत् पूजां करोम्यहम्' कहकर शाकिनी योगिनी क्रोध, लज्जा और वधू इन पाँच बीजों को तीन-तीन बार तथा 'फट्' को पाँच बार कहने के बाद 'स्वाहा' कहे (मन्त्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः हौं क्रों आं स्फ्रें क्ष्रूं क्रूं हः क्रूं म्रां स्हें प्रीं हभ्रीं श्रीं जय जय भगवति

कामकलाकालि सर्वेश्वरि इहागत्य चिरं तिष्ठ तिष्ठ यावत् पूजां करोम्यहं फ्रें फ्रें फ्रें छ्रीं छ्रीं छ्रीं हूं हूं हूं ह्रीं ह्रीं ह्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं फट् फट् फट् फट् फट् स्वाहा) यह कलशस्थापन का मन्त्र है । इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए कलश को उस स्त्री की योनि के ऊपर रखे ॥ ५१-५७ ॥

[अन्येषामिह कर्तव्याणामभिधानम्]

ततः पूर्वोदितं तीर्थं भिन्नपात्रस्थितं पुरः ।
आनीयाच्छाद्य हस्ताभ्यां त्रैलोक्याकर्षणं जपेत् ॥ ५८ ॥
दशकृत्वस्ततो धेनुमुद्रया चावगुण्ठनम् ।
दिग्बन्धनं छोटिकया कुर्य्याच्च तदनन्तरम् ॥ ५९ ॥
तस्योपरिष्टात् क्रमशो नवमुद्राः प्रदर्शयेत् ।
शक्तिं कपालं योनिं च सामरस्यं ततः परम् ॥ ६० ॥
मुद्रास्वदर्शितास्वेवं सर्वं तद्विफलं भवेत् ।

अन्य कर्त्तव्य—इसके बाद अलग पात्र में स्थित तीर्थ (=सुरा) को सामने लाकर दोनों हाथों से ढँक कर त्रैलोक्याकर्षण मन्त्र का दश बार जप करना चाहिए । तदनन्तर धेनुमुद्रा से अवगुण्ठन और चुटकी बजा कर दिग्बन्धन करना चाहिए । फिर उसके ऊपर क्रमशः नव मुद्राओं का प्रदर्शन करे । इसके बाद शक्ति कपाल योनि सामरस्य मुद्रा दिखलाये । इन मुद्राओं के न दिखाये जाने पर सब कर्त्तव्य व्यर्थ हो जाता है ॥ ५८-६१ ॥

[अष्टशक्तीनां पूजाविध्यभिधानम्]

तत्र दिक्षु विदिक्ष्वेवं शक्तीरष्ट प्रपूजयेत् ॥ ६१ ॥
इच्छा क्रिया सिद्धिर्ऋद्धिः स्वाहा भीमा करालिनी ।
चण्डसङ्कर्षणी चेति दिक्ष्वष्टसु पृथक् स्थितम् ॥ ६२ ॥
मध्येऽनङ्गकुलां देवीं गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ।
त्रैलोक्याकर्षणेनैव मध्ये कामकलामपि ॥ ६३ ॥
तद्भक्ता गुह्यकालीं वा पूजयेयुर्हि तत्स्थले ।

अष्टशक्तियों की पूजा—वहाँ पर दिशाओं और विदिशाओं में निम्नलिखित आठ शक्तियों की पूजा करे । वे हैं—इच्छा, क्रिया, सिद्धि, ऋद्धि, स्वाहा, भीमा, करालिनी और चण्डसङ्कर्षिणी । ये पृथक् पृथक् आठ दिशाओं में स्थित हैं । इनके बीच में अनङ्गकुला देवी की गन्ध पुष्प आदि से पूजा करे । मध्य में कामकलाकाली अथवा उसके भक्त लोग गुह्यकाली का भी उस स्थल पर पूजन करे ॥ ६१-६४ ॥

[समन्त्रं कुलद्रव्यस्य शापमोक्षविध्यभिधानम्]

कुर्यात्ततः शापमोक्षं कुलद्रव्यस्य भाविनि ॥ ६४ ॥
वैदिकागममन्त्राभ्यां द्रव्यशापविमोक्षणम् ।

तत्रादौ वैदिकं वच्मि कथयिष्ये ततः परम् ॥ ६५ ॥
एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥ ६६ ॥
सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे ।
अमाबीजमये देवि शुक्रपाशापाद्विमुच्यताम् ॥ ६७ ॥
वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु ॥ ६८ ॥
इमं मन्त्रत्रयं देवि वैदिकं परिकीर्त्तितम् ।
आगमोक्तं मन्त्रमपि मयोक्तमवधारय ॥ ६९ ॥
तारं कूर्च्चं डाकिनीं च फेत्कारीं योगिनीमपि ।
लक्ष्मीमन्मथचामुण्डाभारुण्डाभैरवीतडित् ॥ ७० ॥
वामदेवं ततः कूटमीशानं च ततः परम् ।
ततः प्रसन्ने इति च प्रसन्ना तदनन्तरम् ॥ ७१ ॥
रूपिण्यतो भगवति कालि कामकलाक्षरात् ।
शुक्रदत्तं शापमिति मुञ्च मुञ्चापय द्वयम् ॥ ७२ ॥
परमानन्दात्सामरस्यकारिणीति समुद्धरेत् ।
इदं ब्रह्मभूयादहं ब्रह्मभूयासमित्यपि ॥ ७३ ॥
पठेद् वारत्रयमिदं बीजानीह त्रयोदश ।
व्युत्क्रमात् पठनीयानि फट् नमो वह्निकामिनी ॥ ७४ ॥
एतन्मन्त्रेणाभिमन्त्र्य षड्दीर्घैरमृतं स्मरेत् ।
ब्रह्मशापमोचितायै सुधादेव्यै नमो वदेत् ॥ ७५ ॥
दशवारान् जपित्वैवं कामषड्दीर्घमुच्चरेत् ।
कुलकृत्स्नमिति प्रोच्य शापं मोचय युग्मकम्॥ ७६ ॥
अमृतं स्रावय द्वन्द्वं वह्निजायान्तगो मनुः ।
दशवारानि(मं) जप्त्वा त्रैलोक्याकर्षणं जपेत्॥ ७७ ॥

कुलद्रव्य का शापविमोचन—हे भव की स्त्री! इसके बाद कुल द्रव्य का शापविमोचन करना चाहिये । इस द्रव्य के शाप का विमोचन वैदिक एवं आगमिक दोनों मन्त्रों से करना चाहिये । उनमें से पहले वैदिक (मन्त्र) को बतला रहा हूँ दूसरे को इसके बाद कहूँगा । वैदिक मन्त्र—'एक ही परम ब्रह्म स्थूल-सूक्ष्म रूपों वाला तथा ध्रुव है । उसके द्वारा मैं कच से उत्पन्न ब्रह्महत्या का नाश करता हूँ । हे सूर्यमण्डल से उत्पन्न, वरुणालय से सम्भूत, अमाबीजमय देवि! शुक्र के शाप से मुक्त हो जाओ । यदि प्रणव वेदों का बीज है और ब्रह्मानन्दमय है तो हे देवि! उस सत्य से ब्रह्महत्या दूर हो जाय ।' हे देवि! ये तीन मन्त्र वैदिक बतलाये गये हैं । मेरे द्वारा उक्त आगमिक मन्त्र को अब मुझसे सुनो । तार, कूर्च, डाकिनी, फेत्कारी, योगिनी, लक्ष्मी, मन्मथ, चामुण्डा, भारुण्डा, भैरवी, विद्युत्, वामदेव, ईशान कूटों के

बाद 'प्रसन्ने' फिर 'प्रसन्नारूपिणि भगवति कालि कामकले शुक्रदत्तं शापं मुञ्च मुञ्चापय परमानन्दात् सामरस्यकारिणि इदं ब्रह्म भूयात् अहं ब्रह्म भूयासम्' इसको तीन बार पढ़े। फिर तेरह बीजों को पढ़े । अन्त में 'फट् नमः' और वह्निकामिनी को उल्टे क्रम से कहे । (मन्त्र—ॐ हूं ख्फ्रें ह्स्ख्फ्रें छ्रीं श्रीं क्लीं क्रैं प्रीं सौः ब्लौं रजहलक्षमऊँ ब्रकम्लब्लक्लऊं प्रसन्ने प्रसन्नारूपिणि भगवति कामकलाकालि शुक्रदत्तं शापं मुञ्च मुञ्चापय परमानन्दसामरस्यकारिणि इदं ब्रह्म भूयादहं ब्रह्म भूयासं इदं ब्रह्मभूयादहं ब्रह्म भूयासं 'इदं ब्रह्मभूयादहं ब्रह्म भूयासम्' स्वाहा नमः फट्)

उक्त मन्त्र से (कुल द्रव्य का) अभिमन्त्रण कर छह दीर्घस्वरों से युक्त अमृत का स्मरण करना चाहिये । इसके बाद 'ब्रह्मशापमोचितायै सुधादेव्यै नमः' कहे । (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—वां वीं वूं वैं वौं वः ब्रह्मशापमोचितायै सुधादेव्यै नमः) । इसका दश बार जप करने के पश्चात् कामबीज को छह दीर्घ स्वरों के साथ उच्चारित करे । तत्पश्चात् 'कुलकृत्स्नं' कहकर 'शापं मोचय मोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा' कहे (मन्त्र—क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः कुलकृत्स्नं शापं मोचय मोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा) । इसका दश बार जप कर साधक को त्रैलोक्याकर्षण मन्त्र का जप करना चाहिये ॥ ६४-७७ ॥

[आनन्दभैरवभैरव्योर्ध्यानम्]

ततो द्रव्यस्य मध्ये तु ध्यायेदानन्दभैरवम् ।
आनन्दभैरवीं चापि सामरस्यपदं गतौ ॥ ७८ ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ।
वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ॥ ७९ ॥
कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम् ।
पाशाङ्कुशधरं देवं गदामुशलधारिणम् ॥ ८० ॥
खड्गखेटकचक्रर्ष्टिपर्शुमुद्गरशूलिनम् ।
भुशुण्डीधारिणं घोरं वरदाभयपाणिकम् ॥ ८१ ॥
लोहितं देवदेवेशं भावयेद् भैरवीयुतम् ।
एवं ध्यात्वा गुह्यबीजैर्वषट् तं पूजयेत् त्रिधा ॥ ८२ ॥

आनन्द भैरव-भैरवी का ध्यान—इसके बाद सामरस्य पद को प्राप्त आनन्द भैरव और आनन्द भैरवी का कुलद्रव्य (=मदिरा) के मध्य में ध्यान करना चाहिये। करोड़ सूर्य के समान (देदीप्यमान), करोड़ चन्द्रमा के समान शीतल, बैल पर सवार, नीले कण्ठ वाले, समस्त आभरणों से भूषित, कपाल खट्वाङ्गधारी, घण्टा डमरू बजाने वाले, पाश अङ्कुशधारी, गदा मुसलधारी, खड्ग, खेटक, चक्र, ऋष्टि, परशु, मुद्गर, त्रिशूल, भुसुण्डी वरदमुद्रा अभयमुद्रा धारण किये हुए लोहित एवं भैरवीसहित भैरव का ध्यान करना चाहिये । इस प्रकार ध्यान कर गुह्य बीज (=ब्रच्रीं) एवं 'वषट्' से उनका तीन बार पूजन करना चाहिये ॥ ७८-८२ ॥

[सुधादेव्याः ध्यानम्]

ततो ध्यायेत्सुधादेवीं चन्द्रकोट्यमृतप्रभाम् ।
हिमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम् ॥ ८३ ॥
अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्यताम् ।
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सम्मुखे ॥ ८४ ॥
गुह्यबीजैः सुधादेव्यै वौषट् सम्पूज्य पार्वति।

सुधादेवी का ध्यान—इसके बाद हे पार्वति ! करोड़ चन्द्र एवं अमृत की प्रभावाली, हिम कुन्द इन्दु के समान धवल, पाँच मुखों और तीन नेत्रों वाली, अट्ठारह भुजाओं से युक्त, सबको आनन्द प्रदान करने के लिये उद्यत (अथवा सर्वानन्द हाथ को ऊपर उठायी हुई), हँसती हुई, विशाल नेत्रों वाली देवाधिदेव के सम्मुख स्थित सुधा देवी का ध्यान एवं गुह्य बीजों (=ब्रच्रीं) एवं 'वौषट्' से पूजा करनी चाहिये ॥ ८३-८५ ॥

[त्रिकोणचक्रलेखनविध्यभिधानम्]

त्रिकोणचक्रं संलिख्य वामावर्त्तेन वै दले ॥ ८५ ॥
कोणाच्च दक्षिणादूर्ध्वं दक्षिणादुत्तरावधि ।
अकारादिक्षकारान्तं गुह्यबीजं त्रिवारकम् ॥ ८६ ॥
विलिख्य शाकिनीबीजं दशकृत्वो जपेत्तु तम् ।

त्रिकोणचक्र-लेखनविधि—(किसी) पत्र पर वामावर्त्त से त्रिकोण चक्र लिखकर दक्षिण कोण से ऊपर की ओर तथा दक्षिण से उत्तर की ओर अकार से लेकर क्षकार तक के (पचास) वर्णों को लिखना चाहिए । इसके बाद गुह्यबीज (=ब्रच्रीं) को तीन बार लिखकर शाकिनी बीज (=फ्रें) को दश बार लिखकर उसका तीन बार जप करना चाहिए ॥ ८५-८७ ॥

[अन्यकरणीयविध्यभिधानम्]

ध्यात्वामृतत्वं द्रव्येऽस्मिन् शिवशक्तिसमागमात् ॥ ८७ ॥
अमृतीकृत्य धेन्वा तद् वारुणं चाष्टधा जपेत् ।
कुर्यात्ततोऽमृतन्यासं न्यासराजं महोदयम् ॥ ८८ ॥
न्यासमेनं विना देवि द्रव्यशुद्धिर्न जायते ।
पञ्चविंशतितत्त्वानि तावन्त्येव स्थलानि च ॥ ८९ ॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण तेषु स्थानेषु विन्यसेत् ।
विधाय पुरतो वस्तु वामहस्तकनिष्ठया ॥ ९० ॥
तृतीयपर्वाङ्गुष्ठस्य योगान्मुद्राभिजायते ।
परमीनामतां स्पृष्ट्वा तया तत् तत् स्थलं न्यसेत् ॥ ९१ ॥
आदाविरां ततः स्वाङ्गं ततः शक्तिं ततो घटम् ।

मन्त्रपाठेन चैकेन न्यसेद् देवि चतुर्ष्वपि ॥ ९२ ॥
अयमेव विधिर्ज्ञेयो न्यासे निर्वाणनामनि ।
न्यासे तथा सामरस्ये किन्तु भिन्नं स्थलं भवेत् ॥ ९३ ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्त्र्यां महाकालसंहितायां पूजाविधिर्नाम दशमः पटलः ॥ १० ॥

...✿...

अन्य करणीय विधि—इस कुलद्रव्य में शिवशक्ति समागम के कारण अमृतत्व का ध्यान कर धेनुमुद्रा के द्वारा इसका अमृतीकरण कर वरुण बीज का आठ बार जप करे । इसके बाद न्यासों के राजा, महा उदय वाले अमृतन्यास का सम्पादन करना चाहिये । हे देवि! इस न्यास के बिना द्रव्यशुद्धि नहीं होती । पच्चीस तत्त्वों और उतने ही स्थलों का वक्ष्यमाण मन्त्र से उन स्थानों में न्यास करना चाहिये । वस्तु को (देवता के) सामने रखकर बायें हाथ की कनिष्ठा से अङ्गूठे के तीसरे पर्व को जोड़ने से परमीनामता मुद्रा बनती है । इसका स्पर्श कर उसके द्वारा तत्तत् स्थलों का न्यास करना चाहिये । पहले इरा (=मदिरा, कुलद्रव्य) इसके बाद अपने अङ्ग, तत्पश्चात् शक्ति, फिर घट, हे देवि! इन चारों का एक मन्त्रपाठ से न्यास करना चाहिये । निर्वाण नामक न्यास के विषय में यही विधि होती है । न्यास और सामरस्य में विधि यही रहती है किन्तु स्थान भिन्न-भिन्न होता है ॥ ८७-९३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकालसंहिता के कामकलाकाली खण्ड के पूजाविधि नामक दशम पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १० ॥

...✿...

एकादशतमः पटलः

महाकाल उवाच—

ततः परं प्रकुर्वीत न्यासं देव्यमृतान्वयम् ।
दोषनाशगुणाधिक्ये जायेते तेन निश्चितम् ॥ १ ॥
न्यासस्यास्यामृताख्यस्य कात्यायन ऋषिर्मतः ।
छन्दो विराडिति ख्यातं काली कामकला सुरी ॥ २ ॥
कामबीजं कीलकं स्याद् योगिनी शक्तिरुच्यते ।
वधूबीजमिह प्रोक्तं विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ३ ॥
आनन्दानुभवायोच्चैरथवा सर्वसिद्धये ।
पञ्चविंशतिपात्राणि पूर्वोक्तानि प्रकल्पयेत् ॥ ४ ॥
साधाराणि क्रमाद् देवि व्यत्यासं नैव कल्पयेत्।
एतन्न्यासे प्रात्यहिके प्रोक्तं मुक्त्वा समाचरेत् ॥ ५ ॥

महाकाल ने कहा—हे देवि! इसके बाद अमृतन्यास करना चाहिये । उससे दोषनाश और गुणों की अधिकता निश्चित रूप से होती है । इस अमृत न्यास के ऋषि कात्यायन हैं, छन्द विराट् है, कामकलाकाली देवता है, कामबीज कीलक है, योगिनी शक्ति है और वधू बीज है । यही इसका विनियोग है जो आनन्द के उच्च अनुभव अथवा सर्वसिद्धि के लिये किया जाता है । पूर्वोक्त पचीस पात्रों की प्रकल्पना करे । हे देवि! इनके आधार भी उसी क्रम से बनाये, उल्टा क्रम न करे । प्रत्यहिक (=प्रतिदिन किये जाने वाले प्रकरण) में उक्त न्यास को छोड़कर इस न्यास में पात्रों की कल्पना करणीय होती है ॥ १-५ ॥

ज्ञानेच्छाकृतिधर्माश्च वैराग्यैश्वर्य्यमित्यपि ।
शक्तिः कैवल्यमुत्साह धैर्य्यं गुह्यविवेककौ ॥ ६ ॥
विकारः सुखमानन्दः सञ्ज्ञा पुण्यं क्रिया तथा ।
विकृतिः प्रकृतिश्चैवाहङ्कारो महदादिकः ॥ ७ ॥
तन्मात्रं लिङ्गपरमात्मानौ चेति प्रकीर्तितौ ।
पुनस्तत्त्वान्तरं पञ्चविंशं देवि निशामय ॥ ८ ॥
शिवेश्वरौ शुद्धविद्ये लिङ्गजीवात्मसूक्ष्मकाः ।
अविद्या नियतिः कालः कला रागः कुलामृतम् ॥ ९ ॥
बुद्धिर्माया मनः कामो रजः सत्त्वं तमस्तथा ।
युक्तिः सिद्धिः सामरस्यं पञ्चविंशमिदं क्रमात् ॥ १० ॥
शिरो ललाटास्यकण्ठाः स्कन्धौ चापि कफोणिकौ ।

मणिबन्धावङ्गुलीनां मूलाग्रौ परिकीर्त्तितौ ॥ ११ ॥
वङ्क्षणौ जानुनी गुल्फौ पादाङ्गुल्यङ्घ्रिकाग्रकाः ।
व्यापकं सर्वशारीरं पञ्चविंशतमं प्रिये ॥ १२ ॥

ज्ञान, इच्छा, कृति, धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, शक्ति, कैवल्य, उत्साह, धैर्य, गुह्य, विवेक, विकार, सुख, आनन्द, सञ्ज्ञा, पुण्य, क्रिया, विकृति, प्रकृति, अहङ्कार, महत् आदि तन्मात्र, लिङ्ग, परमात्मा (ये पचीस तत्त्व हैं जिनका न्यास करना होता है) । हे देवि! अब दूसरे पचीस तत्त्वों को सुनो । शिव (शिवा या शक्ति) ईश्वर, शुद्धविद्या, लिङ्ग, जीवात्मा, सूक्ष्मतत्त्व, अविद्या, नियति, काल, कला, राग, कलामृत, बुद्धि, माया, मन, काम, रजस्, सत्त्व, तमस्, युक्ति, सिद्धि, सामरस्य (ये पचीस तत्त्व हैं) । शिर, ललाट, मुख, कण्ठ, दोनों कन्धे, दोनों कफोणिक (=कुहनी), दोनों मणिबन्ध (=कलाई), दोनों पादाङ्गुलियाँ के मूल, (उन अङ्गुलियों के) अग्रभाग, दोनों वङ्क्षण, दोनों घुटने, दोनों टखने, दोनों पैर, उनकी अङ्गुलियाँ, पैर का अग्रभाग, व्यापक समस्त शरीर । हे प्रिये! (ये पचीस अङ्ग हैं जिनमें तत्त्वों का न्यास करना चाहिये) ॥ ६-१२ ॥

तार वाग्भवह्रीकूर्चवधूलक्ष्मीमनोभुवाम् ।
पाशाङ्कुशमहाक्रोधभूतप्रासादविद्युताम् ॥ १३ ॥
पराचण्डामृतप्रेताः फेत्कारी शाकिनी रतिः ।
पञ्चकूटास्तात्पुरुषाश्चामुण्डाभैरवीविषाः ॥ १४ ॥
ब्रह्मवेतालभारुण्डा नीलद्रावणमानसाः ।
वज्रशाङ्करकापालरौद्रानन्दगरुत्मताम् ॥ १५ ॥
चत्वारिंशच्च बीजानामुद्धरेत् प्रथमं सुधीः ।
इदममृतीकृत्येति पदं दद्यात् ततः परम् ॥ १६ ॥
परमात्मनीति संलिख्य (पञ्च वा)रमितीरयेत् ।
जुषस्व वह्निजायान्त एकषष्ट्यक्षरो मनुः ॥ १७ ॥
प्रतिवारं मन्त्रपाठं सकृद्वापि प्रयोजयेत् ।
ज्ञानात्मने शिवायेति प्रोक्त्वा शीर्षं न्यसेत् प्रिये ॥ १८ ॥
एवं पूर्वोक्तविधिना त्रितयं त्रितयं वदेत् ।
प्रोक्षण्यादाय पीयूषं तत्तत्पात्रे निवेशयेत् ॥ १९ ॥
तेनैव मन्त्रेण सकृत्प्रतिवारमथापि वा ।
पुनरादाय षट्पात्राण्यन्यानि परिकल्पयेत् ॥ २० ॥

तार, वाग्भव, लज्जा, कूर्च, वधू, लक्ष्मी, काम, पाश, अङ्कुश, महाक्रोध, भूत, प्रासाद, विद्युत्, परा, चण्ड, अमृत, प्रेत, फेत्कारी, शाकिनी, रति, तत्पुरुष आदि पञ्चकूट, चामुण्डा, भैरवी, विष, ब्रह्म, बेताल, भारुण्ड, नील, द्रावण, मानस, वज्र, शङ्कर, कपाल, रौद्र, आनन्द, गरुड इन चालिस बीजाक्षरों का उद्धार विद्वान् पहले

करे । इसके बाद 'इदममृतीकृत्य' पद कहना चाहिये । इसके बाद 'परमात्मनि' लिखकर 'पञ्च वारं' कहे । तत्पश्चात् 'जुषस्व' कहकर अन्त में वह्निजाया कहे । यह मन्त्र इकसठ अक्षरों वाला है । मन्त्र—१.ॐ ऐं ह्रीं हूं स्त्रीं श्रीं क्लीं आं क्रों क्षूं स्क्रों ह्रौं ब्लौं स्हक्लह्रीं फ्रों ग्लूं स्हौः हस्ख्फ्रें फ्रें क्लूं क्षमब्लहकयह्रीं रजहलक्षमऊं हक्लह्वडकखऐं कसवहलक्षमऔं ब्रकम्लब्ल क्लऊं क्रैं सौः ज्रं रम्लब्रीं सफहलक्षूं प्रीं ज्रौं हम्रीं ह्रीं ध्रीं लक्षमहजरक्रव्यऊं थ्रीं द्रैं भ्रूं क्रौं ज्ञानात्मने शिवाय इदममृतीकृत्य परमात्मनि हत्वा स्वयं जुषस्व स्वाहा । (यह प्रथम मन्त्र हुआ जिससे शिर का न्यास होता है) इसी प्रकार—अन्य अङ्गों के न्यास के लिये चौबीस मन्त्र और हैं जिनका संक्षिप्त रूप निम्नलिखित है—

२. ॐ ऐं ह्रीं हूं... इच्छात्मने ईश्वराय इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति ललाटे ।
३. ॐ ऐं ह्रीं हूं... कृत्यात्मने शुद्धयै इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति मुखे ।
४. ॐ ऐं ह्रीं हूं... धर्मात्मने विद्यायै इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति कण्ठे ।
५. ॐ ऐं ह्रीं हूं... वैराग्यात्मने लिङ्गाय इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति दक्षस्कन्धे ।
६. ॐ ऐं ह्रीं हूं... ऐश्वर्यात्मने जीवाय इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति वामस्कन्धे ।
७. ॐ ऐं ह्रीं हूं... शक्त्यात्मने आत्मने इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति दक्षकफोणौ ।
८. ॐ ऐं ह्रीं हूं... कैवल्यात्मने सूक्ष्माय इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति वामकफोणौ ।
९. ॐ ऐं ह्रीं हूं... उत्साहात्मने अविद्यायै इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति दक्षमणिबन्धे ।
१०. ॐ ऐं ह्रीं हूं... धैर्यात्मने नियत्यै इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति वाममणि बन्धे ।
११. ॐ ऐं ह्रीं हूं... गुह्यात्मने कालाय इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति दक्षकराङ्गुलि मूले ।
१२. ॐ ऐं ह्रीं हूं... विवेकात्मने कलायै इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति वामकराङ्गुलि मूले।
१३. ॐ ऐं ह्रीं हूं... विकारात्मने रागाय इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति दक्ष कराग्रे ।
१४. ॐ ऐं ह्रीं हूं... सुखात्मने कुलाय इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति वामकराग्रे ।
१५. ॐ ऐं ह्रीं हूं... आनन्दात्मने अमृताय इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति दक्ष वङ्क्षणे ।
१६. ॐ ऐं ह्रीं हूं... सञ्ज्ञात्मने बुद्धयै इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति वामवङ्क्षणे ।
१७. ॐ ऐं ह्रीं हूं... पुण्यात्मने मायायै इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति दक्षजानौ ।
१८. ॐ ऐं ह्रीं हूं... क्रियात्मने मनसे इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति वाम जानौ ।
१९. ॐ ऐं ह्रीं हूं... विकृत्यात्मने कामाय इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति दक्ष गुल्फे ।
२०. ॐ ऐं ह्रीं हूं... प्रकृत्यात्मने रज से इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति वामगुल्फे ।
२१. ॐ ऐं ह्रीं हूं... अहङ्कारात्मने सत्त्वाय इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति दक्षपादे ।
२२. ॐ ऐं ह्रीं हूं... महदात्मने तमसे इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति वामपादे ।

२३. ॐ ऐं ह्रीं हूं... तन्मात्रात्मने युक्त्यै इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति दक्षपादाग्रे ।

२४. ॐ ऐं ह्रीं हूं... लिङ्गात्मने सिद्ध्यै इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति वामपादाग्रे ।

२५. ॐ ऐं ह्रीं हूं... परमात्मने सामरस्याय इदममृतीकृत्य... स्वाहा इति व्यापके ।

मन्त्र का पाठ प्रत्येक बार अथवा एक ही बार किया जाना चाहिये । हे प्रिये! 'ज्ञानात्मने शिवाय' कहकर शिर का न्यास करना चाहिये । इसी प्रकार पूर्वोक्त विधि से तीन-तीन बार कहना चाहिये । प्रोक्षणी को लेकर उसी मन्त्र से एक बार अथवा प्रत्येक बार पढ़ते हुए अमृत (=सुरा) को तत्तत् पात्रों में रखना चाहिये । फिर अन्य छह पात्रों को लेकर (न्यास के लिये) रखना चाहिये ॥ १३-२० ॥

वीरो भोगः शक्तिकुलं गुरुदैवतमेव च ।
तत्रैकषष्ट्यक्षरिणा प्रत्येकं मनुनार्च्चयेत् ॥ २१ ॥
सामरस्यं च निर्वाणमत्रैव समये चरेत् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण तद्वस्तु स्थापयेद् घटे ॥ २२ ॥
प्रणवः शाकिनी कूर्चं फेत्कारीभोगमन्मथाः ।
लज्जाप्रेतरमामैधसुधाकालीरतिक्रमाः ॥ २३ ॥
संहारानाख्यभासाज्ञाविशुद्ध्यनाहतप्रभाः ।
बृहद्रथन्तरज्येष्ठपुण्डरीकमहाव्रतान् ॥ २४ ॥
सौत्रामण्यश्वमेधैडाविश्वजित्सिद्धवारुणान् ।
कूटानष्टादशैतांस्तु प्रोच्चरेत्तदनन्तरम् ॥ २५ ॥
पञ्चामृतं समुद्धृत्य सुधारूपेण चोद्धरेत् ।
कुम्भेऽस्मिन् संविश द्वन्द्वं तिष्ठापि सन्निधिं कुरु ॥ २६ ॥
सप्तविंशत्सुधादीनि प्रतिलोमं ततो वदेत् ।
अन्तेऽस्त्रत्रितयं हार्दवह्निजायान्तगो मनुः ॥ २७ ॥

(इन पात्रों के नाम हैं—) वीर भोग शक्ति कुल गुरु और देवता । इकसठ अक्षरों वाले मन्त्र से प्रत्येक का पूजन करना चाहिये । इसी समय में सामरस्य और निर्वाण न्यास भी करना चाहिये । तत्पश्चात् वक्ष्यमाण मन्त्र से उस वस्तु को घट में रखे । मन्त्र—प्रणव शाकिनी कूर्च फेत्कारी भोग मन्मथ लज्जा प्रेत रमा मेधा सुधा काली रति क्रम संहार अनाख्या भासा विशुद्धि अनाहत प्रभा बृहद् रथन्तर ज्येष्ठ पुण्डरीक महाव्रत सौत्रामणी अश्वमेध एडा विश्वजित् सिद्ध वरुण इन अट्ठारह कूटबीजों का उच्चारण करे । उसके बाद 'पञ्चामृत' कहकर 'सुधारूपेण' कहे । 'कुम्भेऽस्मिन्' के बाद 'संविश' और 'तिष्ठ' को दो-दो बार कहे । इसके बाद सुधा आदि सत्ताईस वर्णों को उल्टे कहना चाहिये । अन्त में तीन अस्त्र और हृदय मन्त्र एवं स्वाहा कहे । (मन्त्र—ॐ फ्रें हूं हस्खफ्रें हस्खफ्रीं क्लीं ह्रीं स्हौः श्रीं ऐं ग्लूं क्रीं क्लूं भ्रीं स्हक्षमलव्रयऊँ क्षस्हम्लव्रयऊँ क्षह्मलव्रयऊँ क्षस्हम्लव्रयईऊँ क्षह्मलव्रयईऊँ क्षरहम्लव्रयऊँ सलहक्षचलहक्षजलहक्ष जक्षग्रैं स्हकहलह्रीं सक्लहकह्रीं सक्लह्रीं फ्लसहस्हव्रयऊँ

सक्ष्मह्लक्ष्म्लीं ग्लरक्षफ्रथ्रक्लीं ह्लस्लहसकह्लीं रलह्लक्षक्लस्ह्फ्रूं क्षक्षक्ष्लफ्रचक्षक्षौं ख्लह्लब्नमक्षरछ्रीं ह्लहलव्भ्रक्रऊँ पञ्चामृतं सुधारूपेण कुम्भेस्मिन् संविश संविश तिष्ठ तिष्ठ सन्निधिं कुरु कुरु सन्निधिं तिष्ठ तिष्ठ संविश संविशास्मिन् कुम्भे सुधारूपेण पञ्चामृतम् फट् फट् फट् नमः स्वाहा) ॥ २१-२७ ॥

इति संस्थाप्य पीयूषं कुम्भे आवाह्य कालिकाम्।
पुष्पस्त्रजाच्छाद्य घटमृत्विङ्नागाङ्कमण्डितम् ॥ २८ ॥
दशोपचारैः सम्पूज्य स्तुत्वा नत्वा विधूप्य च।
पञ्चविंशतिपात्राणां देव्या मध्ये च सस्मितम् ॥ २९ ॥
पात्रं संस्थाप्य साधारं योनिमुद्रां प्रदर्श्य च ।
भूमौ त्रिकोणमालिख्य तद्बहिश्चतुरस्त्रकम् ॥ ३० ॥
आधारशक्तिं सम्पूज्य पात्रं तस्योपरि न्यसेत् ।
मूलेन पात्रं संवीक्ष्य शाकिन्यस्त्रेण क्षालनम् ॥ ३१ ॥
तेनैव ताडनं कृत्वा कवचेनावगुण्ठयेत् ।
पुनरन्यघटस्थायिद्रव्यं दक्षिणतो न्यसेत् ॥ ३२ ॥
पात्रं वामकरे कृत्वा मनुनानेन पूजयेत् ।
ऊहः सर्वत्र कर्त्तव्यः स्वेष्टदेव्यास्तु नामनि ॥ ३३ ॥
तारं त्रपां तथा कूर्चं योगिनीं शाकिनीमपि ।
काकिनीं खेचरीं नागं भारुण्डां त्रिशिखामपि ॥ ३४ ॥
प्रोच्चार्य वामहस्ते तु देव्याः पात्रं निधापयेत् ।
ततस्तारं च मायां च शाकिनीं त्रिपुटां स्मरम् ॥ ३५ ॥
मोहाद्ध्युपात्राशनाय नम उच्चारयेत्सुधीः ।
डाकिनीह्रीरमाकालवेदिसानुबलिस्त्रियः ॥ ३६ ॥
उच्चार्य्य सोऽहं देव्यर्घ्यपात्राधारमितीरयेत् ।
साधयामि नमः प्रोच्य धूपयेत्संविदापुरैः ॥ ३७ ॥
सम्पूज्य पात्राधारं हि पात्रं सम्पूजयेत्ततः।

इस प्रकार कलश के अन्दर अमृत रख कर उसमें कालिका देवी का आवाहन करना चाहिये । ऊपर ऋत्विक् नाग अङ्क (=९८४) लिखे हुए घट को फूल की माला से ढँक कर दश उपचार से उसका पूजन करे । स्तुति-प्रणाम और धूपदान करने के बाद पचीस पात्रों के मध्य में देवी के पात्र को आधारसहित मन्द मुस्कान के साथ स्थापित करे । बाद में योनिमुद्रा का प्रदर्शन करे । भूमि पर त्रिकोण और उसके बाहर चतुर्भुज बनाये । तत्पश्चात् आधारशक्ति की पूजा कर उसके ऊपर पात्र को रखे । मूल मन्त्र से पात्र का संवीक्षण शाकिनी अस्त्र से उसका क्षालन करना चाहिये । उसी से ताडन कर कवच से अवगुण्ठन करना चाहिये । फिर अन्य घट में स्थित द्रव्य का दक्षिण में न्यास करना चाहिये । ततः पात्र को बायें हाथ पर रखकर

निम्नलिखित मन्त्र से पूजन करना चाहिये । अपने इष्ट देवता के नाम में सर्वत्र ऊह करना चाहिये । मन्त्र—तार, लज्जा, कूर्च, योगिनी, शाकिनी, काकिनी, खेचरी, नाग, भारुण्डा, त्रिशिखा का उच्चारण करे (ओं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें फ्रीं ख्फ्रौं ब्रीं प्रीं क्रीं) उक्त मन्त्र को पढ़कर देवी के बायें हाथ में पात्र रख दे । इसके बाद तार, माया, शाकिनी, त्रिपुटा, स्मर बीजों को कहने के बाद विद्वान् 'मोहाद्ध्युपात्राशनाय नमः' का उच्चारण कर 'सोऽहं देव्यर्घपात्राधारं साधयामि नमः' कहकर धूप दे । (मन्त्र—ओं ह्रीं फ्रें प्लूं क्लीं मोहाद्ध्यूपात्राशाय नमः । यह सन्धूपन मन्त्र है । इसके बाद पात्राधार मन्त्र इस प्रकार है—ख्फ्रें ह्रीं श्रीं जूं क्लीं रह्रीं रछ्रीं स्त्रीं सोऽहं कामकलाकाली-देव्यर्घपात्राधारं साधयामि नमः) संविदापुरों (=मन से कल्पित वस्तुओं के द्वारा अथवा ध्यान किये गये पुष्पों या गुग्गुलु के द्वारा?) पात्राधार की पूजा कर उसके बाद पात्र की पूजा करे ॥ २८-३८ ॥

डाकिनीं च त्रपां लक्ष्मीं तारकं कोणखेदकौ ॥ ३८ ॥
आग्नेयास्त्रं सवामश्रुक् कूटं बर्हिरथं तथा ।
धर्म्याग्निसोमसूर्यांश्च सकलान्नम ईरयेत् ॥ ३९ ॥
त्रपां रमां समुच्चार्य्याक्षरं य श हवर्गकम् ।
धूम्रार्चिर्नीलरक्ता च कपिला विस्फुलिङ्गिनी ॥ ४० ॥
ज्वालिन्यर्चिष्मती हव्यवाहिनी कव्यवाहिनी ।
रौद्री संहारिणी चेति कलां श्रीपादुकां नमः ॥ ४१ ॥
इत्याधारं पुनश्चार्घ्यपात्रगर्भं विधूपयेत् ।
वक्ष्यमाणेन विधिना सुगन्धिद्रव्यविस्तरैः ॥ ४२ ॥
तारं लज्जां च लक्ष्मीं च कामं मुक्तां नृसिंहकम् ।
सन्धूप्य विन्यसेत्पात्रं त्रिपाद्यां साधकोत्तमः ॥ ४३ ॥
लज्जां लक्ष्मीं स्मरं कूर्चं डाकिनीं शाकिनीं बलिम् ।
सोऽहमम्बार्घ्यपात्रमुक्त्वा स्थापयामि नमो वदेत् ॥ ४४ ॥

डाकिनी, लज्जा, लक्ष्मी, तारक, कोण, खेदक, आग्नेयास्त्र, वामश्रुक्, कूट, बर्हिरथ, धर्म्य, अग्नि, सोम और सूर्य सबको 'नमः' ऐसा कहना चाहिये । (मन्त्र—ख्फ्रें ह्रीं श्रीं रां रीं रूं रक्षम्लहकसछब्रऊं....वामश्रुक्, क्षलहक्षम्लक्लीं धर्म्याग्निसोम-सूर्यान् सकलान् नमः) इसके बाद त्रपा रमा बीजों का उच्चारण कर यवर्ग शवर्ग तथा ह का उच्चारण करे । इसके बाद धूम्रार्चि नीलरक्ता कपिला विस्फुलिङ्गिनी ज्वालिनी अर्चिष्मती हव्यवाहिनी कव्यवाहिनी य र ल व श ष स ह धूम्रार्चिनीलिरक्ताकपिला.... चेति कलां श्रीपादुका नमः । इससे आधारपात्र और अर्घ्यपात्र की धूप करनी चाहिये । यह धूपन वक्ष्यमाण मन्त्र से सुगन्धित अधिकाधिक द्रव्यों के द्वारा किया जाना चाहिये । तार, लज्जा, लक्ष्मी, काम, मुक्ता, नृसिंह इससे धूपित कर साधक पात्र को त्रिपादी में रखे (मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्ष्रीं क्ष्रौं) । इसके बाद लज्जा,

लक्ष्मी, काम, कूर्च, डाकिनी, शाकिनी, बलि बीजों का उच्चारण कर 'सोऽहमम्बार्घ्य-पात्रं स्थापयामि नमः' कहे (मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं श्रीं क्लीं हूँ खफ्रें फ्रें रछ्रीं सोऽहमम्बार्घ्यपात्रं स्थापयामि नमः) ॥ ३८-४४ ॥

अथ साधारमर्घ्यं तं पूजयेत् परमेश्वरि ।
लज्जां लक्ष्मीं रुषं कामं योगिनीं शाकिनीं सुधाम् ॥ ४५ ॥
क्षेत्रपालं गारुडञ्च कूटं च द्वादशाहकम् ।
सिद्धिप्रदद्वादशकलात्मने सूर्येति कीर्तयेत् ॥ ४६ ॥
मण्डलायार्घ्यपात्राय नम उच्चारयेत्ततः ।
त्रपां लक्ष्मीं स्मरं कूर्चं वक्ष्यमाणकलादिभिः ॥ ४७ ॥
श्रीपादुकां नम इति पूजयेत्तदनन्तरम् ।
तपिनी तापिनी चैव भ्रामरी क्लेदिनी तथा ॥ ४८ ॥
शोधिनी रोधिनी चैव वारुण्याकर्षिणी तथा ।
सुषुम्णा वृष्टिवाहा च ज्येष्ठा चैव हिरण्यका ॥ ४९ ॥
पूजयित्वा वामभागे सिन्दूरैर्मण्डलं चरेत् ।
उत्थाप्य दक्षिणाद्भागाद्वक्ष्यमाणमनुं वदन् ॥ ५० ॥
स्थापयेत् पूर्णकुम्भं तं वामभागस्थ मण्डले ।
प्रणवं वाग्भवं लज्जां लक्ष्मीं कामं च शाकिनीम् ॥ ५१ ॥
योगिनीं त्रिशिखां कूर्चं फेत्कारीजम्भपङ्क्तयः ।
सिन्दूरगन्धपुष्पाद्यैः कुलकुम्भं प्रपूजयेत् ॥ ५२ ॥

हे परमेश्वरि! इसके बाद आधारसहित अर्घ्य की पूजा करे । लज्जा लक्ष्मी, क्रोध, काम, योगिनी, शाकिनी, सुधा, क्षेत्रपाल, गरुड बीजों को कहकर 'द्वादशाहकं सिद्धिप्रदद्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलायार्घ्यपात्राय नमः' कहे । (मन्त्र—ह्रीं श्रीं हूं क्लीं, छ्रीं फ्रें ग्लूं क्षौं क्रौं क्षलहक्षम्लब्रौं सिद्धिप्रदद्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलायार्घ्यपात्राय नमः) । इसके बाद त्रपा लक्ष्मी स्मर कूर्च को कहकर 'वक्ष्यमाण कलादिभिः श्रीपादुकां नमः' से पूजा करनी चाहिये । (मन्त्र—ह्रीं श्रीं क्लीं हूं..... नमः । यहाँ पर एक-एक कला को लेकर मन्त्र पाठ होगा । उदाहरण के लिये ह्रीं श्रीं क्लीं हूं तपिनीकलां श्रीपादुकां नमः । इसी प्रकार तापिनी भ्रामरी आदि वक्ष्यमाण कलाओं के सन्दर्भ में भी पूजा मन्त्र बनेगा—ह्रीं...... तापिनी कलां...... नमः, ह्रीं...... भ्रामरी कलां..... नमः इत्यादि) । (कलाओं के नाम निम्नलिखित हैं—) तपिनी, तापिनी, भ्रामरी, क्लेदिनी, शोधिनी, रोधिनी, वारुणी, आकर्षिणी, सुषुम्णा, वृष्टिवाहा, ज्येष्ठा और हिरण्यका । इनकी पूजा करने के बाद वामभाग में सिन्दूर के द्वारा मण्डल बनाये । ततः दाहिने ओर से पूर्णकुम्भ को उठाकर वक्ष्यमाण मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसको वामभागस्थ मण्डल में रखना चाहिये । प्रणव, वाग्भव, लज्जा, लक्ष्मी, काम, शाकिनी, योगिनी, त्रिशिखा, कूर्च, फेत्कारी जम्भ और पङ्क्ति (मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ऐं ह्रीं

श्रीं क्लीं फ्रें छ्रीं क्रीं हूं हस्ख्फ्रें ख्फ्रौं रध्रौं) इस मन्त्र से कुलकुम्भ की पूजा सिन्दूर, गन्ध, पुष्प आदि से करनी चाहिये ॥ ४५-५२ ॥

सृष्ट्या स्थित्या च संहारानाख्याभासाख्यकूटकैः ।
ततो लज्जां रमां कूर्चं कूटं संहारमेव च ॥ ५३ ॥
हिरण्यगर्भकूटं च आनन्दभैरवाय च ।
वौषट् त्रिवारमुच्चार्य्य कराभ्यां कुम्भमुद्धरेत् ॥ ५४ ॥
तीर्थसंस्थापने कुम्भे पूर्वोक्तं मन्त्रमुच्चरन् ।
शतार्णं मन्त्रमथवा सहस्रार्णमथापि वा ॥ ५५ ॥
जपन्पात्रं पूरयीत निःशब्दं सूक्ष्मधारया ।
तारं मैधं त्रपां लक्ष्मीं स्मरकूर्चौ च शाकिनीम् ॥ ५६ ॥
उच्चार्य वक्ष्यमाणेन श्लोकेन पिहितं चरेत् ।
ब्रह्माण्डखण्डसम्भूतपीयूषसमतावह ॥ ५७ ॥
आपूरितमहापात्र त्वमशेषरसं वहेः ।

सृष्टि स्थिति संहार अनाख्या भासा नामक कूटों फिर लज्जा रमा कूर्च संहारकूट हिरण्यगर्भकूट के बाद 'आनन्दभैरवाय' कहे । फिर 'वौषट्' कहे । सम्पूर्ण मन्त्र का तीन बार उच्चारण करे (मन्त्र इस प्रकार है—रक्षख्रऊँ रक्षक्रूं स्हक्षम्लव्य्रऊं क्षस्हम्ल-व्य्रऊं क्षह्मलव्य्रऊं ह्रीं श्रीं हूं स्हक्षम्लव्य्रऊं स्हक्षम्लव्य्रईं आनन्दभैरवाय वौषट्) । कुम्भ में तीर्थ डालने के समय एक सौ या एक हजार वर्ण वाले मन्त्र का जप करता हुआ साधक निःशब्द सूक्ष्मधारा से घट को पूरित करे । इसके बाद तार मेधा त्रपा लक्ष्मी, स्मर, कूर्च, शाकिनी बीजों का उच्चारण कर वक्ष्यमाण श्लोक से उसको ढँक दे । (मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं फ्रें—)

ब्रह्माण्डखण्डसम्भूत पीयूषसमतावह ।
आपूरित महापात्र त्वमशेषरसं वहेः ॥

(हे ब्रह्माण्ड के खण्ड से उत्पन्न अमृत की तुल्यता वाले भरे गये महापात्र तुम समस्त रसों को धारण करो) ॥ ५३-५८ ॥

अमृतं नाभसं कूटं सिद्धकूटं समुच्चरन् ॥ ५८ ॥
संवेष्टयेत् ततः पात्रं मुद्रया लेलिहानया ।
पञ्चमुद्रां ततः पश्चाद् दर्शये........त्तथा ॥ ५९ ॥
स्तम्भनं चतुरस्त्रञ्च मत्स्यं गोक्षुरमेव च ।
योनिमुद्रा च विज्ञेया पञ्च मुद्रा महाफलाः ॥ ६० ॥
अस्मिन्नेव क्षणे देवि पञ्चविद्यां समुच्चरेत् ।

इसके बाद अमृत आकाशकूट तथा सिद्धकूट का उच्चारण करते हुए लेलिहान-मुद्रा के द्वारा पात्र को संवेष्टित करे (मन्त्र इस प्रकार है—ग्लूं टक्षसनरम्लैं खलह्व वनगक्षरछ्रीं) । इसके बाद निम्नलिखित पाँच मुद्राओं को दिखाये—स्तम्भन चतुरस्त्र

मत्स्य गोक्षुर और योनिमुद्रा। ये पाँच मुद्रायें महाफल देने वाली हैं। हे देवि! इसी समय पञ्चविद्यामन्त्र का उच्चारण करना चाहिये (इसके बाद पञ्चविद्या मन्त्र का वर्णन प्रस्तुत है—) ॥ ५८-६१ ॥

मैधत्रपारमामैधा अमृते अमृतोद्भवे ॥ ६१ ॥
अमृतवर्षिण्युच्चार्य्य कामार्णादमृतं वदेत्।
ततश्च स्रावयद्वन्द्वं भैरवीबीजमुच्चरेत् ॥ ६२ ॥
ततः सुधे शुक्रशापं मोचयेति प्रकीर्त्तयेत्।
चतुरन्वयिनां सिद्धिसामर्थ्यं दहयुग्मकम् ॥ ६३ ॥
उक्त्वा महाखेचरीति मुद्रां प्रकटय द्वयम्।
कूर्चस्वाहान्तगो मन्त्रः प्रथमः परिकीर्त्तितः॥ ६४ ॥

मेध, त्रपा, रमा, मेधा (बीजों को कहने के बाद) 'अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि' कहकर कामबीज के बाद 'अमृतं' कहना चाहिये। इसके बाद 'स्रावय' को दो बार फिर भैरवी बीज कहकर 'सुधे शुक्रशापं विमोचय चतुरन्वयिनां सिद्धिसामर्थ्यं' कहकर 'दह' को दो बार कहे। इसके बाद 'महाखेचरीमुद्रां' कहकर 'प्रकटय' को दो बार कहे। कूर्च बीज कहने के बाद अन्त में 'स्वाहा' कहे। यह प्रथम मन्त्र कहा गया (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ह्रीं श्रीं ऐं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि क्लीं अमृतं स्रावय स्रावय सौः सुधे शुक्रशापं मोचय चतुरन्वयिनां सिद्धिसामर्थ्यं दह दह महाखेचरी मुद्रां प्रकटय प्रकटय हूं स्वाहा) ॥ ६१-६४ ॥

मैधत्रयं हृषड्दीर्घसुधाकृत्स्नं ततः परम्।
शापं नाशय इत्युक्त्वा अमृतं स्रावयद्वयम्॥ ६५ ॥
मन्त्रो द्वितीयः स्वाहान्तस्तृतीयमवधारय।

मेधा बीज को तीन बार 'ह' को छह दीर्घ के साथ फिर 'सुधाकृत्स्नं' इसके बाद 'शापं नाशय' कहकर 'अमृतं' कहे। फिर 'स्रावय' को दो बार फिर अन्त में 'स्वाहा' कहे। यह द्वितीय मन्त्र है (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ऐं ऐं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं हः सुधाकृत्स्नं शापं नाशय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा) ॥ ६५-६६ ॥

मैधत्रयमुषस्तृष्णापराधान् परिकीर्त्तयेत् ॥ ६६ ॥
विकारशोधिनि प्रोच्य कुलद्रव्यस्य चेत्यपि।
विकारान् हर युग्माग्निवल्लभायं तृतीयकः ॥ ६७ ॥

मेधा बीज तीन बार कहने के बाद उषस् तृष्णा अपराध बीजों को कहे। फिर 'विकारशोधिनि कुलद्रव्यस्य विकारान्' कहने के बाद 'हर' को दो बार कहे। अन्त में 'स्वाहा'। यह तीसरा मन्त्र है (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ऐं ऐं छां छीं छूं विकारशोधिनि कुलद्रव्यस्य विकारान् हर हर स्वाहा) ॥ ६६-६७ ॥

चतुष्टयं वाग्भवस्य अमृते अमृतोद्भवे।

इत्युच्चार्य वदेदमृतवर्षिणीति ततः परम् ॥ ६८ ॥
महाप्रकाशयुक्ते च स्वाहान्तोऽयं चतुर्थकः।

वाग्भव का बीज 'अमृते अमृतोद्भवे' कहकर 'अमृतवर्षिणि' कहे । फिर 'महाप्रकाशयुक्ते' और अन्त में 'स्वाहा'—यह चतुर्थ मन्त्र है (मन्त्र—ऐं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि महाप्रकाशयुक्ते स्वाहा) ॥ ६८-६९ ॥

चतुः सारस्वतं सोमं त्रपाकूर्च्चस्मरस्त्रियः॥ ६९ ॥
तिरस्करिणि सम्बोध्य सकलेति जयेति च।
वाग्वादिनीति सकलात्ततः पशुजनेति च ॥ ७० ॥

सारस्वत बीज चार बार सोम त्रपा कूर्च स्मर स्त्री (बीजों को कहने के बाद) 'तिरस्करिणि सकलजये वाग्वादिनि सकलपशुजन.... । (मन्त्र—ऐं ऐं ऐं ऐं ग्लौं ह्रीं हूं क्लीं स्त्रीं तिरस्करिणि सकलजये वाग्वादिनि सकलपशुजन....) (इसके बाद का अंश अनुपलब्ध है । यहाँ 'दोषनाशिनि' या 'मुक्तिदायिनि स्वाहा' जैसा अंश जोड़ा जा सकता है ।) ॥ ६९-७० ॥

आभिस्तु पञ्चविद्याभिः सर्वदोषविघातिभिः ।

समस्त दोषों का नाश करने वाली इन पञ्चविद्याओं से...... (यहाँ भी अनुष्टुब् के दो चरण अनुपलब्ध है । सम्भवतः 'कलश का अभिमन्त्रण करना चाहिये' यह अंश जोड़ा जा सकता है) ॥ ७१ ॥

इति ते कथितो व्यासान्मन्त्रध्यानार्चनक्रियाः ॥ ७१ ॥
वैशेषिकाः क्रियायोगाः प्रयोगा औपचारिकाः ।
साम्प्रतं ब्रूहि मे किन्त्वमाकर्णयितुमिच्छसि॥ ७२ ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां
नानाप्रयोगकथनं नामैकादशतमः पटलः ॥ ११ ॥

...❀...

इस प्रकार मैंने तुमको विस्तार से मन्त्र, ध्यान एवं पूजन की क्रियायें विशेष क्रियायोग और उपचारों के प्रयोग बतलाये । अब बोलो तुम मुझसे और क्या सुनना चाहती हो ॥ ७१-७२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकाल-संहिता के कामकलाकाली खण्ड के नानाप्रयोगकथन नामक एकादश पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ ११ ॥

...❀...

द्वादशतमः पटलः

देव्युवाच—

त्वत्तः श्रुतं मया नाथ देवदेव जगत्पते ।
देव्याः कामकलाकाल्या विधानं सिद्धिदायकम् ॥ १ ॥
त्रैलोक्यविजयस्यापि विशेषेण श्रुतो मया ।
तत्प्रसङ्गेन चान्यासां मन्त्रध्याने तथा श्रुते ॥ २ ॥
इदानीं जायते नाथ शुश्रूषा मम भूयसी ।
नाम्नां सहस्त्रे त्रिविधमहापापौघहारिणि ॥ ३ ॥
श्रुतेन येन देवेश धन्या स्यां भाग्यवत्यपि ।

देवी ने कहा—हे देवाधिदेव ! हे नाथ ! हे जगत् के स्वामी ! आपसे मैंने देवी कामकलाकाली का सिद्धिदायक विधान सुना । त्रैलोक्यविजय का भी विधान विशेष-रूप से मेरे द्वारा सुना गया । उसी प्रसङ्ग में अन्य (देवियों) के मन्त्र और ध्यान मैंने सुने । हे नाथ ! अब मेरे अन्दर त्रिविध महापापपुञ्ज का हरण करने वाले (काली) सहस्त्रनाम को सुनने की इच्छा है । हे देवेश जिसको सुनकर मैं भाग्यवती और धन्य हो जाऊँगी ॥ १-४ ॥

महाकाल उवाच—

भाग्यवत्यसि धन्यासि सन्देहो नात्र भाविनि ॥ ४ ॥
सहस्त्रनामश्रवणे यस्मात्ते निश्चितं मनः ।
तस्या नाम्नां तु लक्षाणि विद्यन्ते चाथ कोटयः ॥ ५ ॥
तान्यल्पायुर्मतित्वेन नृभिर्द्धारयितुं सदा ।
अशक्यानि वरारोहे पठितुं च दिने दिने ॥ ६ ॥
तेभ्यो नामसहस्त्राणि साराण्युद्धृत्य शम्भुना ।
अमृतानीव दुग्धाब्धेर्भूदेवेभ्यः समर्पितम् ॥ ७ ॥
कानिचित्तत्र गौणानि गदितानि शुचिस्मिते ।
रूढाण्याकारहीनत्वाद् गौणानि गुणयोगतः ॥ ८ ॥
राहित्याद्रूढिगुणयोस्तानि साङ्केतिकान्यपि ।
त्रिविधान्यपि नामानि पठितानि दिने दिने ॥ ९ ॥
राधयन्तीप्सितानर्थान्ददत्यमृतमव्ययम् ।
क्षपयन्त्यपमृत्युं च मारयन्ति द्विषोऽखिलान् ॥ १० ॥
घ्नन्ति रोगानथोत्पातान्मङ्गलं कुर्वतेऽन्वहम् ।
किमुतान्यत् सदा सन्निधापयत्यर्थिकामपि ॥ ११ ॥

महाकाल ने कहा—हे भव की पत्नी ! तुम धन्य हो और भाग्यवती हो जो कि (काली)सहस्रनाम सुनने में तुम्हारा मन निश्चित हो गया है । उसके नाम तो लाखों हैं । किन्तु वे अल्प आयु और अल्पबुद्धि वाले मनुष्यों के द्वारा न तो याद रखे जा सकते और न प्रतिदिन पढ़े जा सकते हैं । जिस प्रकार क्षीरसागर से अमृत उसी प्रकार उन (लाखों नामों) में से सारभूत एक सहस्र नाम शम्भु ने उद्‌धृत कर ब्राह्मणों को दिया । हे शुचिस्मिते! उनमें से कुछ गौण हैं; कुछ आकारहीन होने से रूढ हैं। कुछ गुणों से युक्त होने के कारण गौण हैं । कुछ गुण और रूढ़ि दोनों से रहित होने से साङ्केतिक हैं । तीनों प्रकार के नाम प्रतिदिन पढ़े जाने पर इच्छित उद्देश्य को सिद्ध करते हैं; अव्यय अमृत देते हैं; अपमृत्यु को नष्ट करते हैं; समस्त शत्रुओं को मार देते हैं; रोगों और उत्पातों का घात करते हैं एवं प्रतिदिन मङ्गल करते हैं । यहाँ तक कि अर्थिका (=द्रव्य समूह?) को सन्निधापित करते हैं ॥ ४-११ ॥

त्रिपुरघ्नोऽप्यदो नामसहस्रं पठति प्रिये ।
तदाज्ञयाप्यहमपि कीर्त्तयामि दिने दिने ॥ १२ ॥
भवत्यपीदमस्मत्तः शिक्षित्वा तु पठिष्यति ।
भविष्यति च निर्णीतं चतुर्वर्गस्य भाजनम् ॥ १३ ॥
मनोऽन्यतो निराकृत्य सावधाना निशामय ।
नाम्नां कामकलाकाल्याः सहस्रं मुक्तिदायकम् ॥ १४ ॥

ॐ अस्य श्रीकामकलाकालीसहस्रनामस्तोत्रस्य श्रीत्रिपुरघ्नऋषिरनुष्टुप् छन्दस्त्रि-जगन्मयरूपिणी भगवती श्रीकामकलाकाली देवता क्लीं बीजं स्फ्रों शक्तिः हूं कीलकं क्ष्रौं तत्त्वं श्रीकामकलाकालीसहस्रनामस्तोत्रपाठे जपे विनियोगः ॐ तत्सत् ।

ॐ क्लीं कामकलाकाली कालरात्रिः कपालिनी।
कात्यायनी च कल्याणी कालाकारा करालिनी ॥ १५ ॥
उग्रमूर्तिर्महाभीमा घोररावा भयङ्करा ।
भूतिदा भयहन्त्री च भवबन्धविमोचिनी ॥ १६ ॥
भव्या भवानी भोगाढ्या भुजङ्गपतिभूषणा ।
महामाया जगद्धात्री पावनी परमेश्वरी ॥ १७ ॥
योगमाता योगगम्या योगिनी योगिपूजिता ।
गौरी दुर्गा कालिका च महाकल्पान्तनर्त्तकी ॥ १८ ॥
अव्यया जगदादिश्च विधात्री कालमर्द्दिनी ।
नित्या वरेण्या विमला देवाराध्यामितप्रभा ॥ १९ ॥
भारुण्डा कोटरी शुद्धा चञ्चला चारुहासिनी ।
अग्राह्यातीन्द्रियाऽगोत्रा चर्च्चरोर्ध्वशिरोरुहा ॥ २० ॥

हे प्रिये ! त्रिपुरारि भी इस सहस्रनाम को पढ़ते हैं । उनकी आज्ञा से मैं भी इसका प्रतिदिन पाठ करता हूँ । तुम भी हमसे सुनकर इसका पाठ करोगी तो निश्चित

रूप से चतुर्वर्ग को प्राप्त करोगी। मन को अन्यत्र से हटाकर सावधान होकर सुनो—

इस कामकलाकालीसहस्रनाम स्तोत्र के ऋषि त्रिपुरारि हैं। छन्द अनुष्टुप् है, त्रिजगन्मयरूपिणी भगवती श्रीकामकलाकाली देवता हैं; क्लीं बीज, स्फ्रों शक्ति, हूं कीलक, क्षौं तत्त्व है। सहस्रनाम स्तोत्र पाठ और जप के समय इसका विनियोग करना चाहिये।

(इसके बाद कामकलाकाली के एक हजार नाम इस प्रकार हैं—) क्लीं कामकलाकाली कालरात्रि कपालिनी कात्यायनी कल्याणि कालाकारा करालिनी उग्रमूर्त्ति महाभीमा घोररावा भयङ्करा भूतिदा भयहन्त्री भवबन्धविमोचिनी भव्या भवानी भोगाढ्या भुजङ्गपतिभूषणा महामाया जगद्धात्री पावनी परमेश्वरी योगमाता योगगम्या योगिनी योगिपूजिता गौरी दुर्गा कालिका महाकल्पान्तनर्त्तकी अव्यया जगदादि विधात्री कालमर्दिनी नित्या वरेण्या विमला देवाराध्या अमितप्रभा भारुण्डा कोटरी शुद्धा चञ्चला चारुहासिनी अग्राह्या अतीन्द्रिया अगोत्रा चर्चरा ऊर्ध्वशिरोरुहा ॥ १२-२० ॥

कामुकी कमनीया च श्रीकण्ठमहिषी शिवा।
मनोहरा माननीया मतिदा मणिभूषणा ॥ २१ ॥
श्मशाननिलया रौद्रा मुक्तकेश्यट्टहासिनी।
चामुण्डा चण्डिका चण्डी चार्वङ्गी चरितोज्ज्वला॥ २२ ॥
घोरानना धूम्रशिखा कम्पना कम्पितानना।
वेपमानतनुःभीदा निर्भया बाहुशालिनी॥ २३ ॥
उल्मुकाक्षी सर्प्पकर्णी विशोका गिरिनन्दिनी।
ज्योत्स्नामुखी हास्यपरा लिङ्गा लिङ्गधरा सती॥ २४ ॥
अविकारा महाचित्रा चन्द्रवक्त्रा मनोजवा।
अदर्शना पापहरा श्यामला मुण्डमेखला ॥ २५ ॥
मुण्डावतंसिनी नीला प्रपन्नानन्ददायिनी।
लघुस्तनी लम्बकुचा घूर्णमाना हराङ्गना॥ २६ ॥
विश्वावासा शान्तिकरी दीर्घकेश्यरिखण्डिनी।
रुचिरा सुन्दरी कम्रा मदोन्मत्ता मदोत्कटा॥ २७ ॥
अयोमुखी वह्निमुखी क्रोधनाऽभयदेश्वरी।
कुडम्बिका साहसिनी खङ्गकी रक्तलेहिनी ॥ २८ ॥
विदारिणी पानरता रुद्राणी मुण्डमालिनी।
अनादिनिधना देवी दुर्निरीक्ष्या दिगम्बरा ॥ २९ ॥
विद्युज्जिह्वा महादंष्ट्रा वज्रतीक्ष्णा महास्वना।
उदयार्कसमानाक्षी विन्ध्यशैलसमाकृतिः ॥ ३० ॥

कामुकी कमनीया श्रीकण्ठमहिषी शिवा मनोहरा माननीया मतिदा मणिभूषणा श्मशाननिलया रौद्रा मुक्तकेशी अट्टहासिनी चामुण्डा चण्डिका चण्डी चार्वङ्गी

चरितोज्ज्वला घोरानना धूम्रशिखा कम्पना कम्पितानना वेपमानतनु भीदा निर्भया बाहुशालिनी उल्मुकाक्षी सर्पकर्णी विशोका गिरिनन्दिनी ज्योत्स्नामुखी हास्यपरा लिङ्गा लिङ्गधरा सती अविकारा महाचित्रा चन्द्रवक्त्रा मनोजवा अदर्शना पापहरा श्यामला मुण्डमेखला मुण्डावतंसिनी नीला प्रपन्नानन्ददायिनी लघुस्तनी लम्बकुचा घूर्णमाना हराङ्गना विश्वावासा शान्तिकरी दीर्घकेशी अरिखण्डिनी रुचिरा सुन्दरी कम्रा मदोन्मत्ता मदोत्करा अयोमुखी वह्निमुखी क्रोधना अभयदा ईश्वरी कुडम्बिका साहसिनी खड्गकी रक्तलेहिनी विदारिणी पानरता रुद्राणी मुण्डमालिनी अनादिनिधना देवी दुर्निरीक्ष्या दिगम्बरा विद्युज्जिह्वा महादंष्ट्रा वज्रतीक्ष्णा महास्वना उदयार्कसमानाक्षी विन्ध्यशैल समाकृति ॥ २१-३० ॥

नीलोत्पलदलश्यामा नागेन्द्राष्टकभूषिता ।
अग्निज्वालकृतावासा फेत्कारिण्यहिकुण्डला॥ ३१ ॥
पापघ्नी पालिनी पद्मा पुण्या पुण्यप्रदा परा ।
कल्पान्ताम्भोदनिर्घोषा सहस्त्रार्कसमप्रभा ॥ ३२ ॥
सहस्त्रप्रेतराट्क्रोधा सहस्त्रेशपराक्रमा ।
सहस्त्रधनदैश्वर्य्या सहस्त्रांध्रिकराम्बिका ॥ ३३ ॥
सहस्त्रकालदुष्प्रेक्ष्या सहस्त्रेन्द्रियसञ्चया ।
सहस्त्रभूमिसदना सहस्त्राकाशविग्रहा ॥ ३४ ॥
सहस्त्रचन्द्रप्रतिमा सहस्त्रग्रहचारिणी ।
सहस्त्ररुद्रतेजस्का सहस्त्रब्रह्मसृष्टिकृत् ॥ ३५ ॥
सहस्त्रवायुवेगा च सहस्त्रफणकुण्डला ।
सहस्त्रयन्त्रमथिनी सहस्त्रोदधिसुस्थिरा ॥ ३६ ॥
सहस्त्रबुद्धकरुणा महाभागा तपस्विनी ।
त्रैलोक्यमोहिनी सर्वभूतदेववशङ्करी ॥ ३७ ॥
सुस्निग्धहृदया घण्टाकर्णा च व्योमचारिणी ।
शङ्खिनी चित्रिणीशानी कालसङ्कर्षिणी जया ॥ ३८ ॥
अपराजिता च विजया कमला कमलाप्रदा ।
जनयित्री जगद्योनिर्हेतुरूपा चिदात्मिका ॥ ३९ ॥
अप्रमेया दुराधर्षा ध्येया स्वच्छन्दचारिणी ।
शातोदरी शाम्भविनी पूज्या मानोन्नताऽमला ॥ ४० ॥

नीलोत्पलदलश्यामा नागेन्द्राष्टकभूषणा अग्निज्वालवृतावासा फेत्कारिणी अहि-कुण्डला पापघ्नी पालिनी पद्मा पुण्या पुण्यप्रदा परा कल्पान्ताम्भोदनिर्घोषा सहस्त्रार्क-समप्रभा सहस्त्रप्रेतराट्क्रोधा सहस्त्रेशपराक्रमा सहस्त्रधनदैश्वर्या सहस्त्रभूमिसदना सहस्त्रा-काशविग्रहा सहस्त्रचन्द्रप्रतिमा सहस्त्रग्रहचारिणी सहस्त्ररुद्रतेजस्का सहस्त्रब्रह्मसृष्टिकृत् सहस्त्रवायुवेगा सहस्त्रफणकुण्डला सहस्त्रयन्त्रमथिनी सहस्त्रोदधिसुस्थिरा सहस्त्रबुद्धकरुणा

महाभागा तपस्विनी त्रैलोक्यमोहिनी सर्वभूतदेववशङ्करी सुस्निग्धहृदया घण्टाकर्णा व्योमचारिणी शङ्खिनी चित्रिणी ईशानी कालसङ्कर्षिणी जया अपराजिता विजया कमला कमलाप्रदा जनयित्री जगद्योनिर्हेतुरूपा चिदात्मिका अप्रमेया दुराधर्षा ध्येया स्वच्छन्द-चारिणी शातोदरी शाम्भविनी पूज्या मानोन्नता अमला ॥ ३१-४० ॥

ॐ काररूपिणी ताम्रा बालार्क्कसमतारका ।
चलज्जिह्वा च भीमाक्षी महाभैरवनादिनी ॥ ४१ ॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी घर्घराऽचला ।
माहेश्वरी तथा ब्राह्मी कौमारी मानिनीश्वरा ॥ ४२ ॥
सौपर्णी वायवी चैन्द्री सावित्री नैर्ऋती कला।
वारुणी शिवदूती च सौरी सौम्या प्रभावती ॥ ४३ ॥
वाराही नारसिंही च वैष्णवी ललिता स्वरा ।
मैत्र्यार्य्यम्णी च पौष्णी च त्वाष्ट्री वासव्युमारतिः॥ ४४ ॥
राक्षसी पावनी रौद्री दास्त्री रोदस्युदुम्बरी।
सुभगा दुर्भगा दीना चञ्चुरीका यशस्विनी ॥ ४५ ॥
महानन्दा भगानन्दा पिच्छिला भगमालिनी।
अरुणा रेवती रक्ता शकुनी श्येनतुण्डिका ॥ ४६ ॥
सुरभी नन्दिनी भद्रा बला चातिबलामला ।
उलूपी लम्बिका खेटा लेलिहानान्त्रमालिनी ॥ ४७ ॥
वैनायिकी च वेताली त्रिजटा भृकुटी सती ।
कुमारी युवती प्रौढा विदग्धा घस्मरा तथा ॥ ४८ ॥
जरती रोचना भीमा दोलमाला पिचिण्डिला ।
अलम्बाक्षी कुम्भकर्णी कालकर्णी महासुरी ॥ ४९ ॥
घण्टारवाथ गोकर्णी काकजङ्घा च मूषिका ।
महाहनुर्महाग्रीवा लोहिता लोहिताशनी ॥ ५० ॥

ॐकाररूपिणी ताम्रा बालार्कसमतारका चलज्जिह्वा भीमाक्षी महाभैरवनादिनी सात्त्विकी राजसी तामसी घर्घरा अचला माहेश्वरी ब्राह्मी कौमारी मानिनीश्वरा सौपणी वायवी ऐन्द्री सावित्री नैर्ऋती कला वारुणी शिवदूती सौरी सौम्या प्रभावती वाराही नारसिंही वैष्णवी ललिता स्वरा मैत्रार्यम्णी पौष्णी त्वाष्ट्री वासवी उमारति राक्षसी पावनी रौद्री दास्त्री रोदसी उदुम्बरी सुभगा दुर्भगा दीना चञ्चुरीका यशस्विनी महानन्दा भगानन्दा पिच्छिला भगमालिनी अरुणा रेवती रक्ता शकुनी श्येनतुण्डिका सुरभी नन्दिनी भद्रा बला अतिबला अमला अलूपी लम्बिका खेटा लेलिहाना अन्त्रमलिनी वैनायिकी वेताली त्रिजटा भृकुटी सती कुमारी युवती प्रौढा विदग्धा घस्मरा जरती रोचना भीमा दोलमाला पिचिण्डिला अलम्बाक्षी कुम्भकर्णी कालकर्णी महासुरी घण्टारवा गोकर्णी काकजङ्घा मूषिका महाहनु महाग्रीवा लोहिता लोहिताशनी ॥ ४१-५० ॥

कीर्त्तिः सरस्वती लक्ष्मीः श्रद्धा बुद्धिः क्रिया स्थितिः ।
चेतना विष्णुमाया च गुणातीता निरञ्जना ॥ ५१ ॥
निद्रा तन्द्रा स्मिता छाया जृम्भा क्षुदशनायिता ।
तृष्णा क्षुधा पिपासा च लालसा क्षान्तिरेव च ॥ ५२ ॥
विद्या प्रज्ञा स्मृतिः कान्तिरिच्छा मेधा प्रभा चितिः ।
धरित्री धरणी धन्या धोरणी धर्मसन्ततिः ॥ ५३ ॥
हालाप्रिया हाररतिर्हारिणी हरिणेक्षणा ।
चण्डयोगेश्वरी सिद्धिकराली परिडामरी ॥ ५४ ॥
जगदान्या जनानन्दा नित्यानन्दमयी स्थिरा ।
हिरण्यगर्भा कुण्डलिनी ज्ञानं धैर्य्यं च खेचरी ॥ ५५ ॥
नगात्मजा नागहारा जटाभारा प्रतर्द्दिनी ।
खङ्गिनी शूलिनी चक्रवती बाणवती क्षितिः ॥ ५६ ॥
घृणिधर्त्री नालिका च कर्त्री मत्यक्षमालिनी ।
पाशिनी पर्शुहस्ता च नागहस्ता धनुर्धरा ॥ ५७ ॥
महामुद्गरहस्ता च शिवापोतधरापि च ।
नारखर्प्परिणी लम्बत्कचमुण्डप्रधारिणी ॥ ५८ ॥
पद्मावत्यन्नपूर्णा च महालक्ष्मीः सरस्वती ।
दुर्ग्गा च विजया घोरा तथा महिषमर्द्दिनी ॥ ५९ ॥
धनलक्ष्मी(-रलक्ष्मी)...... श्वाश्वारूढा जयभैरवी ।
शूलिनी राजमातङ्गी राजराजेश्वरी तथा ॥ ६० ॥

कीर्त्ति सरस्वती लक्ष्मी श्रद्धा बुद्धि क्रिया स्थिति चेतना विष्णु माया गुणातीता निरञ्जना निद्रा तन्द्रा स्मिता छाया जृम्भा क्षुत् अशनायिता तृष्णा क्षुधा पिपासा लालसा क्षान्ति विद्या प्रज्ञा स्मृति कान्ति इच्छा मेधा प्रभा चिति धरित्री धरणी धन्या धोरणी धर्मसन्तति हालाप्रिया हाररति हारिणी हरिणेक्षणा चण्डयोगेश्वरी सिद्धिकराली परिडामरी जगदान्या जनानन्दा नित्यानन्दमयी स्थिरा हिरण्यगर्भा कुण्डलिनी ज्ञान धैर्य खेचरी नगात्मजा नागहारा जटाभारा प्रतर्दिनी खङ्गिनी शूलिनी चक्रवती बाणवती क्षिति घृणि धर्त्री नालिका कर्त्री मत्यक्षमालिनी पाशिनी पर्शुहस्ता नागहस्ता धनुर्धरा महामुद्गरहस्ता शिवापोतधरा नारखर्परिणी लम्बत्कचमुण्डप्रधारिणी पद्मावती अन्नपूर्णा महालक्ष्मी सरस्वती दुर्गा विजया घोरा महिषमर्दिनी धनलक्ष्मी (अलक्ष्मी) अश्वारूढ जयभैरवी शूलिनी राजमातङ्गी राजराजेश्वरी ॥ ५१-६० ॥

त्रिपुटोच्छिष्टचाण्डाली अघोरा त्वरितापि च ।
राज्यलक्ष्मीर्जयमहाचण्डयोगेश्वरी तथा ॥ ६१ ॥
गुह्या महाभैरवी च विश्वलक्ष्मीररुन्धती ।
यन्त्रप्रमथिनी चण्डयोगेश्वर्य्यप्यलम्बुषा ॥ ६२ ॥

किराती महाचण्डभैरवी कल्पवल्लरी ।
त्रैलोक्यविजया सम्पत्प्रदा मन्थानभैरवी ॥ ६३ ॥
महामन्त्रेश्वरी वज्रप्रस्तारिण्यङ्गचर्पटा ।
जयलक्ष्मीश्चण्डरूपा जलेश्वरी कामदायिनी ॥ ६४ ॥
स्वर्णकूटेश्वरी रुण्डा मर्म्मरी बुद्धिवर्द्धिनी ।
वार्त्ताली चण्डवार्त्ताली जयवार्त्तालिका तथा ॥ ६५ ॥
उग्रचण्डा श्मशानोग्रा चण्डा वै रुद्रचण्डिका ।
अतिचण्डा चण्डवती प्रचण्डा चण्डनायिका ॥ ६६ ॥
चैतन्यभैरवी कृष्णा मण्डली तुम्बुरेश्वरी ।
वाग्वादिनी मुण्डमधुमत्यनर्घ्या पिशाचिनी ॥ ६७ ॥
मञ्जीरा रोहिणी कुल्या तुङ्गा पूर्णेश्वरी वरा ।
विशाला रक्तचामुण्डा अघोरा चण्डवारुणी ॥ ६८ ॥
धनदा त्रिपुरा वागीश्वरी च जयमङ्गला ।
दैगम्बरी कुब्जिका च कुडुक्का कालभैरवी ॥ ६९ ॥
कुक्कुटी सङ्कटा वीरा कर्प्पटा भ्रमराम्बिका ।
महार्णवेश्वरी भोगवती लङ्केश्वरी तथा ॥ ७० ॥

त्रिपुटा उच्छिष्टचाण्डालिनी अघोरा त्वरिता राज्यलक्ष्मी जय महाचण्डयोगेश्वरी गुह्या महाभैरवी विश्वलक्ष्मी अरुन्धती यन्त्रप्रमथिनी चण्डयोगेश्वरी अलम्बुषा किराती महाचण्डभैरवी कल्पवल्लरी त्रैलोक्यविजया सम्पत्प्रदा मन्थानभैरवी महामन्त्रेश्वरी वज्रप्रस्तारिणी अङ्गचर्पटा जयलक्ष्मी चण्डरूपा जलेश्वरी कामदायिनी स्वर्णकूटेश्वरी रुण्डा मर्मरी बुद्धिवर्धिनी वार्त्ताली चण्डवार्त्ताली जयवार्त्तालिका उग्रचण्डा श्मशानोग्रा चण्डा रुद्रचण्डिका अतिचण्डा चण्डवती प्रचण्डा चण्डनायिका चैतन्यभैरवी कृष्णा मण्डली तुम्बुरेश्वरी वाग्वादिनी मुण्डमधुमती अनर्घ्या पिशाचिनी मञ्जीरा रोहिणी कुल्या तुङ्गा पर्णेश्वरी वरा विशाला रक्तचामुण्डा अघोरा चण्डवारुणी धनदा त्रिपुरा वागीश्वरी जयमङ्गला दैगम्बरी कुब्जिका कुडुक्का कालभैरवी कुक्कुटी सङ्कटा वीरा कर्प्पटा भ्रमराम्बिका महार्णवेश्वरी भोगवती लङ्केश्वरी ॥ ६१-७० ॥

पुलिन्दी शबरी म्लेच्छी पिङ्गला शबरेश्वरी ।
मोहिनी सिद्धिलक्ष्मीश्च बाला त्रिपुरसुन्दरी ॥ ७१ ॥
उग्रतारा चैकजटा महानीलसरस्वती ।
त्रिकण्टकी छिन्नमस्ता महिषघ्नी जयावहा ॥ ७२ ॥
हरसिद्धानङ्गमाला फेत्कारी लवणेश्वरी ।
चण्डेश्वरी नाकुली च हयग्रीवेश्वरी तथा ॥ ७३ ॥
कालिन्दी वज्रवाराही महानीलपताकिका ।
हंसेश्वरी मोक्षलक्ष्मीर्भूतिनी जातरेतसा ॥ ७४ ॥

शातकर्णा महानीला वामा गुह्येश्वरी भ्रमिः ।
एकानंशाऽभया तार्क्षी बाभ्रवी डामरी तथा ॥ ७५ ॥
कोरङ्गी चर्च्चिका विन्ना संशिका ब्रह्मवादिनी ।
त्रिकालवेदिनी नीललोहिता रक्तदन्तिका ॥ ७६ ॥
क्षेमङ्करी विश्वरूपा कामाख्या कुलकुट्टनी ।
कामाङ्कुशा वेशिनी च मायूरी च कुलेश्वरी ॥ ७७ ॥
इभाक्षी घोणकी शार्ङ्गी भीमा देवी वरप्रदा ।
धूमावती महामारी मङ्गला हाटकेश्वरी ॥ ७८ ॥
किराती शक्तिसौपर्णी बान्धवी चण्डखेचरी ।
निस्तन्द्रा भवभूतिश्च ज्वालाघण्टाग्निमर्द्दिनी ॥ ७९ ॥
सुरङ्गा कौलिनी रम्या नटी नारायणी धृतिः ।
अनन्ता पुञ्जिका जिह्मा धर्माधर्मप्रवर्त्तिका ॥ ८० ॥

पुलिन्दी शबरी म्लेच्छी पिङ्गला शबरेश्वरी मोहिनी सिद्धिलक्ष्मी बाला त्रिपुरसुन्दरी उग्रतारा एकजटा महानीलसरस्वती त्रिकण्टकी छिन्नमस्ता महिषघ्नी जयावहा हरसिद्धा अनङ्गमाला फेत्कारी लवणेश्वरी चण्डेश्वरी नाकुली हयग्रीवेश्वरी कालिन्दी वज्रवाराही महानीलपताका हंसेश्वरी मोक्षलक्ष्मी भूतिनी जातरेतसा शातकर्णा महानीला वामा गुह्येश्वरी भ्रमि एका अनंशा अभया तार्क्षी बाभ्रवी डामरी कोरङ्गी चर्च्चिका विन्ना संशिका ब्रह्मवादिनी त्रिकालवेदिनी नीललोहिता रक्तदन्तिका क्षेमङ्करी विश्वरूपा कामाख्या कुलकुट्टनी कामाङ्कुशा वेशिनी मायूरी कुलेश्वरी इभाक्षी घोणकी शार्ङ्गी भीमा देवी वरप्रदा महामारी मङ्गला हाटकेश्वरी किराती शक्तिसौपर्णी बान्धवी चण्डखेचरी निस्तन्द्रा भवभूति ज्वालाघण्टा अग्निमर्दिनी सुरङ्गा कौलिनी रम्या नटी नारायणी धृति अनन्ता पुञ्जिका जिह्मा धर्माधर्मप्रवर्त्तिका ॥ ७१-८० ॥

वन्दिनी वन्दनीया च वेलाऽहस्करिणी सुधा ।
अरणी माधवी गोत्रा पताका वाङ्मयी श्रुतिः ॥ ८१ ॥
गूढा त्रिगूढा विस्पष्टा मृगाङ्का च निरिन्द्रिया ।
मेनानन्दकरी बोध्री त्रिनेत्रा वेदवाहना ॥ ८२ ॥
कलस्वना तारिणी च सत्यासत्यप्रियाऽजडा ।
एकवक्त्रा महावक्त्रा बहुवक्त्रा घनानना ॥ ८३ ॥
इन्दिरा काश्यपी ज्योत्स्ना शवारूढा तनूदरी ।
महाशङ्खधरा नागोपवीतिन्यक्षताशया ॥ ८४ ॥
निरिन्धना धराधारा व्याधिघ्नी कल्पकारिणी ।
विश्वेश्वरी विश्वधात्री विश्वेशी विश्ववन्दिता ॥ ८५ ॥
विश्वा विश्वात्मिका विश्वव्यापिका विश्वतारिणी ।
विश्वसंहारिणी विश्वहस्ता विश्वोपकारिका ॥ ८६ ॥

विश्वमाता विश्वगता विश्वातीता विरोधिता ।
त्रैलोक्यत्राणकर्त्री च कूटाकारा कटङ्कटा ॥ ८७ ॥
क्षामोदरी च क्षेत्रज्ञा क्षयहीना क्षरवर्ज्जिता।
क्षपा क्षोभकरी क्षेम्याऽक्षोभ्या क्षेमदुघा क्षिया ॥ ८८ ॥
सुखदा सुमुखी सौम्या स्वङ्गा सुरपरा सुधीः ।
सर्वान्तर्यामिनी सर्वा सर्वाराध्या समाहिता ॥ ८९ ॥
तपिनी तापिनी तीव्रा तपनीया तु नाभिगा ।
हैमी हैमवती ऋद्धिर्वृद्धिर्ज्ञानप्रदा नरा ॥ ९० ॥

वन्दिनी वन्दनीया वेला अहस्करिणी सुधा अरणी माधवी गोत्रा पताका वाङ्मयी श्रुति गूढा त्रिगूढा विस्पष्टा मृगाङ्का निरिन्द्रिया 'मेना'आनन्दकरी बोध्री त्रिनेत्रा वेदवाहना कलस्वना तारिणी सत्यप्रिया असत्यप्रिया अजडा एकवक्त्रा महावक्त्रा बहुवक्त्रा घनानना इन्दिरा काश्यपी ज्योत्स्ना शवारूढा तनूदरी महाशङ्खधरा नागोपवीतिनी अक्षताशया निरिन्धना धराधारा व्याधिघ्नी कल्पकारिणी विश्वेश्वरी विश्वधात्री विश्वेशी विश्ववन्दिता विश्वा विश्वात्मिका विश्वव्यापिका विश्वतारिणी विश्वसंहारिणी विश्वहस्ता विश्वोपकारिका विश्वमाता विश्वगता विश्वातीता विरोधिता त्रैलोक्यत्राणकर्त्री कूटाकारा कटङ्कटा क्षामोदरी क्षेत्रज्ञा क्षयहीना क्षरवर्जिता क्षपा क्षोभकरी क्षेम्या अक्षोभ्या क्षेमदुघा क्षिया सुखदा सुमुखी सौम्या स्वङ्गा सुरपरा सुधी सर्वान्तर्यामिनी सर्वा सर्वाराध्या समाहिता तपिनी तापिनी तीव्रा तपनीया नाभिगा हैमी हैमवती ऋद्धि वृद्धि ज्ञानप्रदा नरा ॥ ८१-९० ॥

महाजटा महापादा महाहस्ता महाहनुः ।
महाबला महारोषा महाधैर्य्या महाघृणा ॥ ९१ ॥
महाक्षमा पुण्यपापध्वजिनी घुर्घुरारवा ।
डाकिनी शाकिनी रम्या शक्तिः शक्तिस्वरूपिणी॥ ९२ ॥
तमिस्रा गन्धरा शान्ता दान्ता क्षान्ता जितेन्द्रिया।
महोदया ज्ञानिनीच्छा विरागा सुखिताकृतिः ॥ ९३ ॥
वासना वासनाहीना निवृत्तिर्निर्वृतिः कृतिः ।
अचला हेतुरुन्मुक्ता जयिनी संस्मृतिः च्युता ॥ ९४ ॥
कपर्द्दिनी मुकुटिनी मत्ता प्रकृतिरूर्जिता ।
सदसत्साक्षिणी स्फीता मुदिता करुणामयी ॥ ९५ ॥
पूर्वोत्तरा पश्चिमा च दक्षिणा विदिगुद्गता ।
आत्मारामा शिवारामा रमणी शङ्करप्रिया ॥ ९६ ॥
वरेण्या वरदा वेणी स्तम्भिन्याकर्षिणी तथा ।
उच्चाटनी मारणी च द्वेषिणी वशिनी मही ॥ ९७ ॥
भ्रमणी भारती भामा विशोका शोकहारिणी ।

सिनीवाली कुहू राकानुमतिः पद्मिनीतिह्वत् ॥ ९८ ॥
सावित्री वेदजननी गायत्र्याहुतिसाधिका ।
चण्डाट्टहासा तरुणी भूर्भुवःस्वःकलेवरा ॥ ९९ ॥
अतनुरतनुप्राणदात्री मातङ्गगामिनी ।
निगमाब्धिमणिः पृथ्वी जन्ममृत्युजरौषधी ॥ १०० ॥

महाजटा महापादा महाहस्ता महाहनु महाबला महाशेषा महाधैर्या महाघृणा महाक्षमा पुण्यपापध्वजिनी घुर्घुरारवा डाकिनी शाकिनी रम्या शक्ति शक्तिस्वरूपिणी तमिस्रा गन्धरा शान्ता दान्ता क्षान्ता जितेन्द्रिया महोदया ज्ञानिनी इच्छा विरागा सुखिताकृति वासना वासनाहीना निवृत्ति र्निवृति कृति अचला हेतु उन्मुक्ता जयिनी संस्मृति च्युता कपर्दिनी मुकुटिनी मत्ता प्रकृति ऊर्जिता सदसत्साक्षिणी स्फीता मुदिता करुणामयी पूर्वा उत्तरा पश्चिमा दक्षिणा विदिगुद्गता आत्मारामा शिवारामा रमणी शङ्करप्रिया वरेण्या वरदा वेणी स्तम्भिनी आकर्षिणी उच्चाटनी मारणी द्वेषिणी वशिनी मही भ्रमणी भारती भामा विशोका शोकहारिणी सिनीवाली कुहू राका अनुमति पद्मिनी ईतिह्वत् सावित्री वेदजननी गायत्री आहुति साधिका चण्डाट्टहासा तरुणी भूर्भुवस्वः-कलेवरा अतनु अतनुप्राणदात्री मातङ्गगामिनी निगमा अब्धिमणि पृथिवी जन्ममृत्यु-जरौषधी ॥ ९१-१०० ॥

प्रतारिणी कलालापा वेद्या च्छेद्या वसुन्धरा।
(अ)प्रक्षुण्णाऽवासिता कामधेनुर्वाञ्छितदायिनी ॥ १०१ ॥
सौदामिनी मेघमाला शर्वरी सर्वगोचरा ।
डमरुर्डमरुका च निःस्वरा परिनादिनी ॥ १०२ ॥
आहतात्मा हता चापि नादातीता बिलेशया ।
पराऽपरा च पश्यन्ती मध्यमा वैखरी तथा ॥ १०३ ॥
प्रथमा च जघन्या च मध्यस्थान्तविकासिनी ।
पृष्ठस्था च पुरःस्था च पार्श्वस्थोर्ध्वतलस्थिता ॥ १०४ ॥
नेदिष्ठा च दविष्ठा च बहिःष्ठा च गुहाशया ।
अप्राप्या बृंहिता पूर्णा पुण्यैर्वेद्या ह्यनामया ॥ १०५ ॥
सुदर्शना च त्रिशिखा बृहती सन्ततिर्विभा ।
फेत्कारिणी दीर्घ(सृ)क्का भावना भववल्लभा ॥ १०६ ॥
भागीरथी जाह्नवी च कावेरी यमुनाह्वया ।
शिप्रा गोदावरी वेल्ला विपाशा नर्मदा धुनी ॥ १०७ ॥
त्रेता स्वाहा सामिधेनी स्रुक्स्रुवा च ध्रुवावसुः ।
गर्विता मानिनी मेना नन्दिता नन्दनन्दिनी ॥ १०८ ॥
नारायणी नारकघ्नी रुचिरा रणशालिनी ।
आधारणाधारतमा धर्माध्वन्या धनप्रदा ॥ १०९ ॥

अभिज्ञा पण्डिता मूका बालिशा वाग्वादिनी ।
ब्रह्मवल्ली मुक्तिवल्ली सिद्धिवल्ली विपह्वी ॥ ११० ॥

प्रतारिणी कलालापा वेद्या छेद्या वसुन्धरा (अ)प्रक्षुणा (अ)वासिता कामधेनु वाञ्छितदायिनी सौदामिनी मेघमाला शर्वरी सर्वगोचरा डमरू डमरुका निःस्वरा परिनादिनी आहतात्मा नादातीता बिलेशया परा अपरा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी प्रथमा जघन्या मध्यस्था अन्तविकासिनी पृष्ठस्था पुरःस्था पार्श्वस्था ऊर्ध्वतल-स्थिता नेदिष्ठा दविष्ठा बहिःष्ठा गुहाशया अप्राप्या बृंहिता पूर्णा पुण्यैर्वेद्या अनामया सुदर्शना त्रिशिखा बृहती सन्तति विभा फेत्कारिणी दीर्घ(सृ)क्का भावना भवल्लभा भागीरथी जाह्नवी कावेरी यमुना शिप्रा गोदावरी वेल्ला विपाशा नर्मदा धुनी त्रेता स्वाहा सामिधेनी स्रुक् स्रुवा ध्रुवावसु गर्विता मानिनी मेनानन्दिता नन्दनन्दिनी नारायणी नारकघ्नी रुचिरा रणशालिनी आधारणा आधारतमा धर्माध्वन्या धनप्रदा अभिज्ञा पण्डिता मूका बालिशा वाग्वादिनी ब्रह्मवल्ली मुक्तिवल्ली सिद्धिवल्ली विपह्वी ॥ १०१-११० ॥

आह्लादिनी जितामित्रा साक्षिणी पुनराकृतिः ।
किर्म्मरी सर्वतोभद्रा स्वर्वेदी मुक्तिपद्धतिः ॥ १११ ॥
सुषमा चन्द्रिका वन्या कौमुदी कुमुदाकरा ।
त्रिसन्ध्याम्नायसेतुश्च चर्च्चाऽर्छापारिनैष्ठिकी ॥ ११२ ॥
कला काष्ठा तिथिस्तारा सङ्क्रान्तिर्विषुवत्तथा ।
मञ्जुनादा महावल्गु भग्नभेरीस्वनाऽरटा ॥ ११३ ॥
चिन्ता सुप्तिः सुषुप्तिश्च तुरीया तत्त्वधारणा ।
मृत्युञ्जया मृत्युहरी मृत्युमृत्युविधायिनी ॥ ११४ ॥
हंसी परमहंसी च बिन्दुनादान्तवासिनी ।
वैहायसी त्रैदशी च भैमी वासातनी तथा ॥ ११५ ॥
दीक्षा शिक्षा अनूढा च कङ्काली तैजसी तथा ।
सुरी दैत्या दानवी च नरी नाथा सुरीत्वरी ॥ ११६ ॥
माध्वा स्वना स्वरा रेखा निष्कला निर्ममा मृतिः ।
महती विपुला स्वल्पा क्रूरा क्रूराशयापि च ॥ ११७ ॥
उन्माथिनी धृतिमती वामनी कल्पचारिणी ।
वाडवी वडवाश्वोढा कोला पितृवनालया ॥ ११८ ॥
प्रसारिणी विशारा च दर्प्पिता दर्प्पणप्रिया ।
उत्तानाधोमुखी सुप्ता वञ्चन्याकुञ्चनी त्रुटिः ॥ ११९ ॥
क्रादिनी यातनादात्री दुर्ग्गा दुर्गतिनाशिनी ।
धराधरसुता धीरा धराधरकृतालया ॥ १२० ॥

आह्लादिनी जितामित्रा साक्षिणी पुनराकृति किर्मरी सर्वतोभद्रा स्वर्वेदी मुक्तिपद्धति सुषमा चन्द्रिका वन्या कौमुदी कुमुदाकरा त्रिसन्ध्या आम्नायसेतु चर्चा ऋच्छा

पारिनैष्ठिकी कला काष्ठा तिथि तारा सङ्क्रान्ति विषुवत् मञ्जुनादा महावल्गु भग्नभेरी-स्वना अरटा चिन्ता सुप्ति सुषुप्ति तुरीया तत्त्वधारणा मृत्युञ्जया मृत्युहरी मृत्युमृत्यु-विधायिनी हंसी परमहंसी बिन्दुनादान्तवासिनी वैहायसी त्रैदशी भैमी वासातनी दीक्षा शिक्षा अनूढा कङ्काली तैजसी सुरी दैत्या दानवी नरी नाथा सुरी इत्वरी माध्वी स्वना स्वरा रेखा निष्कला निर्ममा मृति महती विपुला स्वल्पा क्रूरा क्रूराशया उन्माथिनी धृतिमती वामनी कल्पचारिणी वाडवी वडवा अश्वोढा कोला पितृवनालया प्रसारिणी विशारा दर्पिता दर्पणप्रिया उत्ताना अधोमुखी सुप्ता वञ्चनी आकुञ्चनी त्रुटि क्रादिनी यातनादात्री दुर्ग्गा दुर्गतिनाशिनी धराधरसुता धीरा धराधरकृतालया ॥ १११-१२० ॥

सु (च)रित्री तथात्री च पूतना प्रेतमालिनी ।
रम्भोर्वशी मेनका च कलिहृत्कालकृत्कशा ॥ १२१ ॥
हरीष्टदेवी हेरम्बमाता हर्य्यक्षवाहना ।
शिखण्डिनी कोण्डपिनी वेतुण्डी मन्त्रमय्यपि ॥ १२२ ॥
वज्रेश्वरी लोहदण्डा दुर्विज्ञेया दुरासदा ।
जालिनी जालपा याज्या भगिनी भगवत्यपि ॥ १२३ ॥
भौजङ्गी तुर्वरा बभ्रु महनीया च मानवी ।
श्रीमती श्रीकरी गार्द्धी सदानन्दा गणेश्वरी ॥ १२४ ॥
असन्दिग्धा शाश्वता च सिद्धा सिद्धेश्वरीडिता ।
ज्येष्ठा श्रेष्ठा वरिष्ठा च कौशाम्बी भक्तवत्सला॥ १२५ ॥
इन्द्रनीलनिभा नेत्री नायिका च त्रिलोचना ।
वार्हस्पत्या भार्गवी च आत्रेय्याङ्गिरसी तथा ॥ १२६ ॥
धुर्य्याधिहर्त्री धारित्री विकटा जन्ममोचिनी ।
आपदुत्तारिणी दृप्ता प्रमिता मितिवर्जिता ॥ १२७ ॥
चित्ररेखा चिदाकारा चञ्चलाक्षी चलत्पदा ।
वलाहकी पिङ्गसटा मूलभूता वनेचरी ॥ १२८ ॥
खगी करन्धमा ध्माक्ष्यी(क्षी) संहिता केररीन्धना ।
अपुनर्भविनी वान्तरिणी(च) यमगञ्जिनी ॥ १२९ ॥
वर्णातीताश्रमातीता मृडानी मृडवल्लभा ।
दयाकरी दमपरा दम्भहीनादृतिप्रिया॥ १३० ॥
निर्वाणदा च निर्बन्धा भावाभावविधायिनी ।
नैःश्रेयसी निर्विकल्पा निर्बीजा सर्वबीजिका ॥ १३१ ॥
अनाद्यन्ता भेदहीना बन्धोन्मूलिन्यबाधिता ।
निराभासा मनोगम्या सायुज्यामृतदायिनी ॥ १३२ ॥

सुचरित्री तथात्री पूतना प्रेतमालिनी रम्भा उर्वशी मेनका कलिहृत् कालकृत् कशा हरीष्टदेवी हेरम्बमाता हर्यक्षवाहना शिखण्डिनी कोण्डपिनी वेतुण्डी मन्त्रमयी वज्रेश्वरी

लोहदण्डा दुर्विज्ञेया दुरासदा जालिनी जालपा याज्या भगिनी भगवती भौजङ्गी तुर्वरा बभ्रु महनीया मानवी श्रीमती श्रीकरी गार्द्धी सदानन्दा गणेश्वरी असन्दिग्धा शाश्वता सिद्धा सिद्धेश्वरीडिता ज्येष्ठा श्रेष्ठा वरिष्ठा कौशाम्बी भक्तवत्सला इन्द्रनीलनिभा नेत्री नायिका त्रिलोचना वार्हस्पत्या भार्गवी आत्रेयी आङ्गिरसी धुर्याधिहर्त्री धारित्री विकटा जन्ममोचिनी आपदुत्तारिणी दृप्ता प्रमिता मितिवर्जिता चित्ररेखा चिदाकारा चञ्चलाक्षी चलत्पदा वलाहकी पिङ्गसटा मूलभूता वनेचरी खगी करन्धमा ध्माक्षी संहिता केररीन्धना अपुनर्भविनी वान्तरिणी यमगञ्जिनी वर्णातीता आश्रमातीता मृडानी मृडवल्लभा दयाकरी दमपरा दम्भहीना आहुतिप्रिया निर्वाणदा निर्बन्धा भावा भावविधायिनी नैःश्रेयसी निर्विकल्पा निर्बीजा सर्वबीजिका अनाद्यन्ता भेदहीना बन्धोन्मूलिनी अबाधिता निराभासा मनोगम्या सायुज्या अमृतदायिनी[1] ॥ १२१-१३२॥

इतीदं नामसाहस्त्रं नामकोटिशताधिकम् ।
देव्याः कामकलाकाल्या मया ते प्रतिपादितम् ॥ १३३ ॥
नानेन सदृशं स्तोत्रं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
यद्यप्यमुष्य महिमा वर्णितुं नैव शक्यते ॥ १३४ ॥
प्ररोचनातया कश्चित्तथापि विनिगद्यते ।
प्रत्यहं य इदं देवि कीर्त्तयेद्वा शृणोति वा ॥ १३५ ॥
गुणाधिक्यमृते कोऽपि दोषो नैवोपजायते ।
अशुभानि क्षयं यान्ति जायन्ते मङ्गलान्यथ ॥ १३६ ॥
पारत्रिकामुष्मिकौ द्वौ लोकौ तेन प्रसाधितौ ।
ब्राह्मणो जायते वाग्मी वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १३७ ॥
ख्यातः सर्वासु विद्यासु धनवान् कविपण्डितः ।
युद्धे जयी क्षत्रियः स्याद् दाता भोक्ता रिपुञ्जयः ॥ १३८ ॥
आहर्ता चाश्वमेधस्य भाजनं परमायुषाम् ।
समृद्धो धनधान्येन वैश्यो भवति तत्क्षणात् ॥ १३९ ॥
नानाविधपशूनां हि समृद्ध्या स समृद्धते ।
शूद्रः समस्तकल्याणमाप्नोति श्रुतिकीर्तनात् ॥ १४० ॥
भुङ्क्ते सुखानि सुचिरं रोगशोकौ परित्यजन् ।

देवी कामकलाकाली का यह सहस्त्रनाम जो कि (अन्य) सौ करोड़ (नामों) से अधिक (महत्त्व वाला) है मैंने तुमको बतला दिया । इसके सदृश स्तोत्र तीनों लोक

१. (क) उपर्युक्त समस्त नामों की सङ्ख्या किसी भी प्रकार से एक हजार नहीं हो रही है। लगता है, नाम बतलाने वाले कुछ श्लोक उपलब्ध नहीं हुए हैं। अथवा—
(ख) सहस्त्रनाम उपलक्षण है । नाम एक हजार से कम भी हो सकते हैं और अधिक भी। पाठ करने से सम्पूर्ण फल मिलता है—ऐसा भास्करराय का मत है ।
(ग) पद्य और गद्य दोनों के द्वारा वर्णित नामों को मिला देने पर एक हजार की सङ्ख्या पूरी हो जाती है । कुछ नाम अधिक भी हैं ।

में नहीं है । यद्यपि इस (स्तोत्र) की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता तथापि प्ररोचना के कारण कुछ बतला रहा हूँ । हे देवि! इसको जो प्रतिदिन पढ़ता या सुनता है गुणाधिक्य को छोड़कर उसमें कोई दोष नहीं उत्पन्न होता । अशुभ नष्ट हो जाते हैं; मङ्गल उपस्थित होते हैं । (जिसने इसका पाठ या श्रवण किया) उसने इस लोक और परलोक दोनों को सिद्ध कर लिया । ब्राह्मण (यदि श्रवण पठन करता है तो वह) वाग्मी और वेदवेदाङ्ग का पारदृश्वा हो जाता है । वह समस्त विद्याओं में ख्यात, धनवान् कवि और पण्डित हो जाता है । क्षत्रिय युद्ध में विजयी, दाता भोक्ता रिपुञ्जय, अश्वमेध का फल प्राप्त करने वाला परमायु का पात्र होता है । वैश्य तत्क्षण धन-धान्य से समृद्ध होता है । एवं अनेक प्रकार के पशुओं की वृद्धि से समृद्ध होता है । शूद्र श्रवण और कीर्त्तन से समस्त कल्याण प्राप्त करता है एवं रोग-शोक से रहित हुआ बहुत काल तक सुख भोग करता है ॥ १३३-१४१ ॥

एवं नार्य्यपि सौभाग्यं भर्तृहार्दं सुतानपि ॥ १४१ ॥
प्राप्नोति श्रवणादस्य कीर्तनादपि पार्वति ।
स्वस्वाभीष्टमथान्येऽपि लभन्तेऽस्य प्रसादतः ॥ १४२ ॥
आप्नोति धार्मिको धर्मानर्थानाप्नोति दुर्गतः ।
मोक्षार्थिनस्तथा मोक्षं कामुकाः कामिनीं वराम् ॥ १४३ ॥
युद्धे जयं नृपाः क्षीणाः कुमार्य्यः सत्पतिं तथा ।
आरोग्यं रोगिणश्चापि तथा वंशार्थिनः सुतान् ॥ १४४ ॥
जयं विवादे कलिकृत् सिद्धीः सिद्धीच्छुरुत्तमाः ।
वियुक्ता बन्धुभिः सङ्गं गतायुश्चायुषाञ्चयम् ॥ १४५ ॥
सदा य एतत्पठति निशीथे भक्तिभावितः ।
तस्यासाध्यमथाप्राप्यं त्रैलोक्ये नैव विद्यते ॥ १४६ ॥
कीर्त्तिं भोगान् स्त्रियः पुत्रान् धनं धान्यं हयान् गजान् ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं पशून् भूमिं राजवश्यं च मान्यताम् ॥ १४७ ॥
लभते प्रेयसि क्षुद्रजातिरप्यस्य कीर्त्तनात् ।
नास्य भीतिर्न दौर्भाग्यं नाल्पायुष्यं न रोगिता ॥ १४८ ॥
न प्रेतभूताभिभवो न दोषो ग्रहजस्तथा ।
जायते पतितो नैव क्वचिदप्येष सङ्कटे ॥ १४९ ॥

हे पार्वति! इसी प्रकार नारी भी इसके श्रवण और कीर्त्तन से सौभाग्य, पति का प्रेम एवं पुत्र प्राप्त करती है । अन्यलोग भी इसकी कृपा से अपने-अपने अभीष्ट प्राप्त करते हैं । धार्मिक धर्म प्राप्त करता है दरिद्र धन पाता है । मोक्षार्थी जन मोक्ष और कामुक लोग सुन्दर कामिनी प्राप्त करते हैं । हारे हुए राजा युद्ध में विजय, कुमारियाँ उत्तम पति, रोगी लोग आरोग्य तथा वंश चाहने वाले पुत्र प्राप्त करते हैं । कलह करने वाला पुरुष विवाद में विजय, सिद्धि चाहने वाला उत्तम सिद्धियाँ,

बन्धुओं से वियुक्त व्यक्ति उनका साथ और गतायु पुरुष आयुष्य प्राप्त करता है । जो व्यक्ति इसको भक्तिभाव से सदा आधीरात को पढ़ता है उसके लिये त्रैलोक्य में कुछ भी असाध्य और अप्राप्य नहीं है । हे प्रेयसि! छोटी जाति वाला भी इस (स्तोत्र) के कीर्त्तन से कीर्त्ति, भोग, स्त्री, पुत्र, भूति, राजवश्यता और सम्मान प्राप्त करता है । इसको न तो (किसी से) भय, न दुर्भाग्य, न अल्पायु न रोग, न भूत प्रेत से बाधा, न ग्रहज दोष होता है । यह कभी भी सङ्कट में नहीं पड़ता ॥ १४१-१४९ ॥

यदीच्छसि परं श्रेयस्तर्त्तुं सङ्कटमेव च ।
पठान्वहमिदं स्तोत्रं सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ॥ १५० ॥
न सास्ति भूतले सिद्धिः कीर्त्तनाद् या न जायते ।
श्रृणु चान्यद्वरारोहे कीर्त्त्यमानं वचो मम ॥ १५१ ॥
महाभूतानि पञ्चापि खान्येकादश यानि च ।
तन्मात्राणि च जीवात्मा परमात्मा तथैव च ॥ १५२ ॥
सप्तार्णवाः सप्तलोका भुवनानि चतुर्दश ।
नक्षत्राणि दिशः सर्वाः ग्रहाः पातालसप्तकम् ॥ १५३ ॥
सप्तद्वीपवती पृथ्वी जङ्गमाजङ्गमं जगत् ।
चराचरं त्रिभुवनं विद्याश्चापि चतुर्दश ॥ १५४ ॥
सांख्यं योगस्तथा ज्ञानं चेतना कर्मवासना ।
भगवत्यां स्थितं सर्वं सूक्ष्मरूपेण बीजवत् ॥ १५५ ॥
सा चास्मिन् नामसाहस्रे स्तोत्रे तिष्ठति बद्धवत् ।
पठनीयं विदित्वैवं स्तोत्रमेतत् सुदुर्लभम् ॥ १५६ ॥
देवीं कामकलाकालीं भजन्तः सिद्धिदायिनीम् ।
स्तोत्रं चादः पठन्तो हि साधयन्तीप्सितान् स्वकान्॥ १५७ ॥

हे सुरेश्वरि ! यदि तुम परम श्रेयस् (=मोक्ष) चाहती हो और सङ्कट से पार जाना चाहती हो तो इस स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करो । यह सत्यवचन है । भूतल पर कोई भी ऐसी सिद्धि नहीं है जो (इसके) कीर्त्तन से प्राप्त न होती हो । हे वरारोहे ! अब मेरा दूसरा वचन सुनो—पाँच महाभूत, ग्यारह इन्द्रियाँ, तन्मात्रायें, जीवात्मा, परमात्मा, सातसमुद्र, सातलोक, चौदह भुवन, नक्षत्र, सभी दिशायें, ग्रह, सात पाताल, सात द्वीप वाली पृथिवी, चराचर जगत्, चराचर त्रिभुवन, चौदह विद्यायें, सांख्य, योग, ज्ञान, चेतना, कर्मवासना सब कुछ इस भगवती में बीज के समान सूक्ष्मरूप से स्थित है और वह (बीज) इस सहस्रनामस्तोत्र में बद्ध की भाँति स्थित है। ऐसा समझकर सुदुर्लभ इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिये । सिद्धिदायिनी देवी कामकलाकाली की सेवा करने वाले तथा इस स्तोत्र का पाठ करने वाले लोग अपना इष्ट सिद्ध कर लेते हैं ॥ १५०-१५७ ॥

॥ इति महाकालसहितायां कामकलाकालीसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

महाकाल उवाच—

अथ वक्ष्ये महेशानि महापातकनाशनम् ।
गद्यं सहस्रनाम्नस्तु सञ्जीवनतया स्थितम् ॥ १ ॥
पठन् यत्सफलं कुर्य्यात्प्राक्तनं सकलं प्रिये ।
अपठन् विफलं तत्तत्तद्वस्तु कथयामि ते ॥ २ ॥

महाकाल ने कहा—हे महेशानि! अब मैं सञ्जीवन के रूप में स्थित एवं महापापनाशक गद्य-सहस्रनाम को बतलाऊँगा जिसको पढ़ने वाला व्यक्ति हे प्रिये! प्राक्तन समस्त (जन्मों) को सफल बना लेता तथा नहीं पढ़ने वाले का समस्त (जन्मकर्म) विफल रहता है उस वस्तु को मैं तुमसे कह रहा हूँ— ॥ १-२ ॥

ॐ फ्रें जय जय कामकलाकालि कपालिनि सिद्धिकरालि सिद्धिविकरालि महाबलिनि त्रिशूलिनि नरमुण्डमालिनि शववाहिनि कात्यायनि महाट्टहासिनि सृष्टि-स्थितिप्रलयकारिणि दितिदनुजमारिणि श्मशानचारिणि । महाघोररावे अध्यासितदावे अपरिमितबलप्रभावे । भैरवीयोगिनीडाकिनीसहवासिनि जगद्धासिनि स्वपदप्रकाशिनि । पापौघहारिणि आपदुद्धारिणि अपमृत्युवारिणि । बृहन्मद्यमानोदरि सकलसिद्धिकरि चतुर्दशभुवनेश्वरि । गुणातीतपरमसदाशिवमोहिनि अपवर्गरसदोहिनि रक्तार्णवलोहिनि । अष्टनागराजभूषितभुजदण्डे आकृष्टकोदण्डे परमप्रचण्डे । मनोवागगोचरे मखकोटि-मन्त्रमयकलेवरे महाभीषणतरे प्रचलजटाभारभास्वरे सजलजलदमेदुरे जन्ममृत्युपाश-भिदुरे । सकलदैवतमयसिंहासनाधिरूढे गुह्यातिगुह्यपरापरशक्तितत्त्वरूढे वाङ्मयी-कृतमूढे । प्रकृत्यपरशिवनिर्वाणसाक्षिणि त्रिलोकीरक्षणि दैत्यदानवभक्षिणि । विकट-दीर्घदंष्ट्रसञ्चूर्णितकोटिब्रह्मकपाले चन्द्रखण्डाङ्कितभाले देहप्रभाजितमेघजाले । नवपञ्च-चक्रनयिनि महाभीमषोडशशयिनि सकलकुलाकुलचक्रप्रवर्त्तिनि निखिलरिपुदल-कर्त्तिनि महामारीभयनिवर्त्तिनि लेलिहानरसनाकरालिनि त्रिलोकीपालिनि त्रयस्त्रिंश-त्कोटिशस्त्रास्त्रशालिनि । प्रज्वलप्रज्वलनलोचने भवभयमोचने निखिलागमादेशित (सुष्ठु)रोचने । प्रपञ्चातीतनिष्कलतुरीयाकारे अखण्डानन्दाधारे निगमागमसारे । महा-खेचरीसिद्धिविधायिनि निजपदप्रदायिनि महामायिनि घोराट्टहाससन्त्रासितत्रिभुवने चरणकमलद्वयविन्यासखर्व्वीकृतावने विहितभक्तावने ।

ओं फ्रें जय जय कामकलाकालि (हाथ में), कपालवाली, सिद्धिकराली, सिद्धि-विकराली, महाबलवाली, त्रिशूलिनी, नरमुण्ड की माला पहनी हुई, शव पर आरूढ, कतगोत्र में उत्पन्न, महा अट्टहास करने वाली, सृष्टिस्थिति प्रलय करने वाली, दैत्यों और दानवों को मारने वाली, श्मशान में सञ्चरण करने वाली, महाघोरशब्द करने वाली (अपने तेजोमय रूप से), दावाग्नि का अध्यास कराने वाली, अपरिमित बल और अपरिमित प्रभाव वाली, भैरवी-योगिनी-डाकिनी के साथ रहने वाली, जगत् को प्रसन्न रखने वाली, अपने पद (=स्थान या पैर) को प्रकाशित करने वाली, पापसमूह को दूर करने वाली, आपत्ति से उद्धार करने वाली, अपमृत्यु को हटाने वाली, बड़े

एवं मद्यमान (मद से पूर्ण) उदर वाली, समस्तसिद्धि देने वाली, चौदह भुवनों की स्वामिनी, गुणातीत परम सदाशिव को मुग्ध करने वाली, मुक्तिरस का दोहन करने वाली, रक्तसमुद्र के समान रक्तवर्णवाली, भुजाओं में आठ नागराज धारण की हुई, धनुष खींचकर रखने वाली, परम, प्रचण्ड, मन-वाणी की अगोचर करोड़ों यज्ञ एवं मन्त्रमय शरीर वाली, महाभीषण, चलती हुई जटा के भार से भास्वर सजल बादल के समान काली, जन्म-मृत्यु पाश का भेदन करने वाली, समस्त देवताओं से युक्त सिंहासन पर बैठी हुई, गुह्य अतिगुह्य पर-अपर शक्ति तत्त्व वाली, मूर्ख को वाग्मी बना देने वाली, प्रकृति एवं अपर शिव के निर्वाण की साक्षी, त्रिलोक की रक्षा करने वाली, दैत्यदानव का भक्षण करने वाली, विकट एवं लम्बे दाँतों से करोड़ों ब्रह्मा के कपालों को चूर्णित करने वाली, भाल पर चन्द्रखण्ड वाली, देह की कान्ति से मेघमाला को पराजित करने वाली, चौदह चक्र नव चक्र[१] और पाँच चक्र (=मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत और शाकिनी [विशुद्धि]) की नायिका अर्थात् अधिष्ठात्री, षोडश[२] के शयन वाली, समस्त कुल-अकुल चक्र का प्रारम्भ करने वाली, समस्त शत्रुसमूह का नाश करने वाली, महामारी के भय को हटाने वाली, लपलपाती हुई जीभ के कारण भयङ्कर त्रिलोक का पालन करने वाली, तैंतीस करोड़ शस्त्र-अस्त्र से शोभायमान, जलती हुई अग्नि के समान नेत्रों वाली, भवभय से मुक्त करने वाली, समस्त आगमों में रुचि रखने वाली, प्रपञ्च से परे निष्कल तुरीय आकार वाली, अखण्ड आनन्द की आधार निगम और आगम की सार, महाखेचरी सिद्धि देने वाली, अपना पद देने वाली, महामायाविनी, घोर अट्टहास से त्रिभुवन को सन्त्रस्त करने वाली, दोनों चरणों के न्यास से पृथिवी को छोटी कर देने वाली, भक्तों की रक्षा करने वाली।

ॐ क्लीं क्रों स्फ्रों हूँ ह्रीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें भगवति प्रसीद प्रसीद जय जय जीव जीव ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हस हस नृत्य नृत्य क छ भगमालिनि भगप्रिये भगातुरे भगाङ्किते भगरूपिणि भगप्रदे भगलिङ्गद्राविणि। संहारभैरवसुरतरसलोलुपे व्योम-केशि पिङ्गकेशि महाशङ्खसमाकुले खर्प्परविहस्तहस्ते रक्तार्णवद्वीपप्रिये मदनोन्मादिनि। शुष्कनरकपालमालाभरणे विद्युत्कोटिसमप्रभे नरमांसखण्डकवलिनि। वमदग्निमुखि फेरुकोटिपरिवृते करतालिकात्रासितत्रिविष्टपे। नृत्यप्रसारितपादाघातपरिवर्तितभूवलये। पदभारावनम्रीकृतकमठशेषाभोगे। कुरुकुल्ले कुञ्चतुण्डि रक्तमुखि यमघण्टे चर्च्चिके दैत्यासुरदैत्यराक्षसदानवकुष्माण्डप्रेतभूतडाकिनीविनायकस्कन्दघोणकक्षेत्रपाल-पिशाचब्रह्मराक्षसवेतालगुह्यकसर्प्पनागग्रहनक्षत्रोत्पातचौराग्निस्वापदयुद्धवज्रोपलाश-निवर्षविद्युन्मेघविषोपविषकपटकृत्याभिचारद्वेषवशीकरणोच्चाटनोन्मादापस्मारभूतप्रेत-पिशाचावेशनदनदीसमुद्रावर्त्तकान्तारघोरान्धकारमहामारीबालग्रहहिंस्त्रसर्वस्वापहारिमाया-

---

१. नव चक्र की चर्चा योगिनीहृदय में द्रष्टव्य है।

२. षोडश शब्द षोडशमातृका का वाचक है। कामकलाकाली षोडश मातृकाओं की आधारभूता है अथवा षोडश मातृकाओं के अन्दर तत्त्वरूप में रहने वाली है।

विद्युद्दस्युवञ्चकदिवाचररात्रिञ्चरसंध्याचरशृङ्गिनखिदंष्ट्रिविद्युदुल्कारण्यदरप्रान्तरादिनाना-विधमहोपद्रवभञ्जनि सर्वमन्त्रतन्त्रयन्त्रकुप्रयोगप्रमर्द्दिनि षडाम्नायसमयविद्याप्रकाशिनि श्मशानाध्यासिनि। निजबलप्रभावपराक्रमगुणवशीकृतकोटिब्रह्माण्डवर्तिभूतसङ्घे। विराड्रूपिणि सर्वदेवमहेश्वरि सर्वजनमनोरञ्जनि सर्वपापप्रणाशिनि अध्यात्मिकाधि-दैविकाधिभौतिकादिविविधहृदयाधिनिर्द्दलिनि कैवल्यनिर्वाणबलिनि दक्षिणकालि भद्रकालि चण्डकालि कामकलाकालि कौलाचारव्रतिनि कौलाचारकूजिनि कुल-धर्मसाधनि जगत्कारणकारिणि महारौद्रि रौद्रावतारे अबीजे नानाबीजे जगद्बीजे कालेश्वरि कालातीते त्रिकालस्थायिनि महाभैरवे भैरवगृहिणि जननि जनजनन-निवर्त्तिनि प्रलयानलज्वालाजालजिह्वे विखर्वोरु फेरुपोतलालिनि मृत्युञ्जयहृदयानन्द-करि विलोलव्यालकुण्डलउलूकपक्षच्छत्रमहाडामरि नियुतवक्त्रबाहुचरणे सर्वभूत-दमनि नीलाञ्जनसमप्रभे योगीन्द्रहृदयाम्बुजासनस्थितनीलकण्ठदेहार्द्धहारिणि षोडश-कलान्तवासिनि हकारार्द्धचारिणि कालसङ्कर्षिणि कपालहस्ते मदघूर्णितलोचने निर्वाणदीक्षाप्रसादप्रदे निन्दानन्दाधिकारिणि मातृगणमध्यचारिणि त्रयस्त्रिंशत्कोटि-त्रिदशतेजोमयविग्रहे प्रलयाग्निरोचिनि विश्वकर्त्रि विश्वाराध्ये विश्वजननि विश्वसंहारिणि विश्वव्यापिके विश्वेश्वरि निरुपमे निर्विकारे निरञ्जने निरीहे निस्तरङ्गे निराकारे परमेश्वरि परमानन्दे परापरे प्रकृतिपुरुषात्मिके प्रत्ययगोचरे प्रमाणभूते प्रणवस्वरूपे संसारसारे सच्चिदानन्दे सनातनि सकले सकलकलातीते सामरस्यसमयिनि केवले कैवल्यरूपे कल्पनातिगे काललोपिनि कामरहिते कामकलाकालि भगवति—

ओं क्लीं क्रों स्फ्रों हूं ह्रीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें भगवति प्रसीद प्रसीद जय जय जीव जीव ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल हस हस नृत्य नृत्य क छ भगमालिनि[1] भगप्रिये भगातुरे भगाङ्कित भगरूपिणी भगप्रदे भग और लिङ्ग को द्रवित करने वाली, संहारभैरव के साथ सुरत करने से उत्पन्न आनन्द की लोलुप. शिव की पत्नी पिङ्गकेश वाली महाशङ्ख (=नरकपाल) से घिरी हुई, खप्पर हाथ में ली हुई, रक्तसमुद्र और रक्तद्वीप को चाहने वाली, मदन को उन्मत्त करने वाली, शुष्क नरकपाल की माला के आभूषण को धारण करने वाली, करोड़ों बिजली के समान चमक वाली, नरमांस के टुकड़ों को ग्रहण करने वाली, मुख से अग्नि-वमन करने वाली, करोड़ शृगालिनियों से परिवृत, हाथ की ताली से स्वर्ग को त्रस्त कर देने वाली; नृत्य के लिये फैलाये गये पैर के आघात से पृथिवी को मोड़ देने वाली; पैर के भार से कच्छप और शेषनाग के फण को नत कर देने वाली; कुरुकुल्ले सङ्कुचित मुखवाली, रक्तपूर्ण मुख वाली, यमघण्टा चर्च्चिका दैत्य असुर दैत्यराक्षस दानव कुष्माण्ड प्रेत भूत डाकिनी विनायक स्कन्द घोणक क्षेत्रपाल पिशाच ब्रह्मराक्षस वेताल गुह्यक सर्प्प नाग ग्रह-नक्षत्र के उत्पात चोर अग्नि स्वापद (=जन्तु) से युद्ध वज्र उपल अशनि की वर्षा विद्युत्

१. भग शब्द के दो अर्थ है—१.स्त्रीजननेन्द्रिय २.समग्रऐश्वर्य; वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य— ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

मेघ विष उपविष कपटकृत्य अभिचार द्वेष वशीकरण उच्चाटन उन्माद अपस्मार (=मिर्गी) भूत-प्रेत-पिशाच का आवेश नद-नदी-समुद्र के आवर्त्त कान्तार (=घने जंगल) अन्धकार-महामारी-बालग्रह हिंसक सर्वस्व का अपहरण करने वाले मायावी डाकू ठग दिवाचर (=लुटेरा) रात्रिञ्चर (=चोर) सन्ध्याचर, सींग, नख दाँत वाले जीव, विद्युत् उल्का अरण्य उसके समीप का स्थान आदि अनेक प्रकार के उपद्रव का नाश करने वाली; समस्त मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र के दुष्प्रयोग को नष्ट करने वाली, (पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण-ऊर्ध्व और अधः नामक) आम्नाय के सिद्धान्त और ज्ञान का प्रकाश करने वाली, श्मशान में निवास करने वाली; अपने बल, प्रभाव, पराक्रम और गुणों के कारण कोटि (=असङ्ख्य) ब्रह्माण्ड में रहने वाले प्राणियों को वश में करने वाली; विराट रूप वाली, सम्पूर्ण देवताओं की अधीश्वरी, सभी जनों का मनोरञ्जन करने वाली, सबके पापों को नष्ट कर देने वाली, आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक आदि विविध हृदय की पीड़ा का नाश करने वाली, कैवल्य निर्वाण प्रदान करने वाली दक्षिणकाली, भद्रकाली, चण्डकाली, कामकलाकाली, कौलाचारव्रत करने वाली, कौलाचार का प्रचार करने वाली, कुलधर्म की साधना करने वाली, जगत् के कारण की कारण, महारौद्री रौद्रावतार बीज रहित (=स्वयम्भू) नानाबीज (=अनेक कार्यों की कारण), जगत् की कारण भूता, काल की स्वामिनी, काल से परे, त्रिकालस्थापिनी महाभैरव (=भयङ्कर), भैरव की गृहिणी, जननी मनुष्य के जन्मबन्धन को दूर करने वाली, प्रलयाग्नि की ज्वाला के समूह के समान जिह्वा वाली, छोटी जाँघ वाली, शृगाल के शिशु का पालन करने वाली, मृत्युञ्जय महादेव के हृदय को आनन्दित करने वाली, चञ्चल सर्प का कुण्डल और उल्लू के पङ्ख का छत्र धारण करने से महाभयङ्कर, नियुत (=दश हजार करोड़) मुख-बाहु और चरण वाली, समस्त भूतों का दमन करने वाली, नील अञ्जन के समान प्रभा वाली, योगिजनों के हृदयकमलरूपी आसन पर स्थित नीलकण्ठ के अर्धदेह को धारण करने वाली, सोलह कलाओं के अन्त (=अमृताकला) में निवास करने वाली, हकार के अर्ध (=विसर्ग—:) में सञ्चरण करने वाली, कालसङ्कर्षिणी, हाथ में कपाल धारण की हुई, मद से घूर्णित आँखों वाली, निर्वाण दीक्षारूपी प्रसाद देने वाली, निन्दा और आनन्द दोनों की अधिकारिणी, मातृसमूह के मध्य में विचरण करने वाली, तैंतीस करोड़ देवताओं के तेज के शरीर वाली, प्रलयकालीन अग्नि के समान कान्तिवाली, विश्व का नाश करने वाली, विश्व के द्वारा आराध्य, विश्व की सृष्टि करने वाली, विश्व का संहार करने वाली, विश्वव्यापिनी, विश्व की ईश्वरी, उपमारहित विकारशून्य कलङ्कवर्जित इच्छारहित निस्तरङ्ग निराकार परमेश्वरी परम आनन्दस्वरूपा परापरा प्रकृतिपुरुष स्वरूप ध्यान से ज्ञेय, प्रमाणस्वरूपा प्रणवस्वरूपा संसार की तत्त्वभूत सत् चित् आनन्दस्वरूपा सनातनी कलायुक्त समस्त कलाओं से परे सामरस्य सिद्धान्तवाली, केवल कैवल्यस्वरूपा कल्पनातीत काल का लोप करने वाली, कामरहित कामकलाकाली भगवती—

ॐ ख्फ्रें ह्सौः सौः श्रीं ऐं ह्लौं क्रों स्फ्रों सर्वसिद्धिं देहि देहि मनोरथान् पूरय पूरय मुक्तिं नियोजय नियोजय भवपाशं समुन्मूलय समुन्मूलय जन्ममृत्यू तारय तारय परविद्यां प्रकाशय प्रकाशय अपवर्गं निर्माहि निर्माहि संसारदुःखं यातनां विच्छेदय विच्छेदय पापानि संशमय संशमय चतुर्वर्गं साधय साधय ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लैं ह्लौं यान् वयं द्विष्मो ये चास्मान् विद्विषन्ति तान् सर्वान् विनाशय विनाशय मारय मारय शोषय शोषय क्षोभय क्षोभय मयि कृपां निवेशय निवेशय फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रें हसख्फ्रें हूं स्फ्रों क्लीं ह्रीं जय जय चराचरात्मकब्रह्माण्डोदरवर्त्तिभूतसङ्घाराधिते प्रसीद प्रसीद तुभ्यं देवि नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।

(उक्त मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है अतः अनुवाद आवश्यक नहीं है)

इतीदं गद्यमुदितं मन्त्ररूपं वरानने ।
सहस्रनामस्तोत्रस्य आदावन्ते च योजयेत् ॥ ३ ॥
अशक्नुवानौ द्वौ वारौ पठेच्छेष इमं स्तवम् ।
सहस्रनामस्तोत्रस्य तदैव प्राप्यते फलम् ॥ ४ ॥
अपठन् गद्यमेतत्तु तत्फलं न समाप्नुयात् ।
यत्फलं स्तोत्रराजस्य पाठेनाप्नोति साधकः ॥ ५ ॥
तत्फलं गद्यपाठेन लभते नात्र संशयः ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां गद्यकथनं नाम द्वादशतमः पटलः ॥ १२ ॥

हे वरानने ! इस प्रकार यह मन्त्ररूप गद्य कहा गया । इसे सहस्रनामस्तोत्र के आदि और अन्त में जोड़ देना चाहिये । यदि कोई दो बार (इस गद्य मन्त्र का) पाठ न कर सके तो अन्त में इस स्तोत्र को पढ़े । उसी समय सहस्रनाम- स्तोत्र का फल प्राप्त हो जाता है । जो पुरुष इस गद्य का पाठ नहीं करता वह उस (सहस्रनामस्तोत्र पाठ) का फल नहीं प्राप्त करता । साधक स्तोत्रराज के पाठ का जो फल प्राप्त करता है गद्यपाठ से भी उस फल को प्राप्त करता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३-६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकालसंहिता के कामकलाकाली खण्ड के गद्यकथन नामक द्वादश पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १२ ॥

त्रयोदशतमः पटलः

[कामकलाकाल्या विविधमन्त्राणामवतरणम्]

देव्युवाच—

भगवन् देव देवेश भक्तानां वाञ्छितप्रद ।
त्वत्प्रसादात् श्रुतं सर्वं कामकाल्या विधानकम् ॥ १ ॥
सहस्रनामस्तोत्रं च तस्य गद्यमनुत्तमम् ।
त्रैलोक्यविजयं चापि कवचं परमाद्भुतम् ॥ २ ॥
स्तोत्राणां स्तोत्रराजं भुजङ्गप्रयातमद्भुतम् ।
एकाक्षरं समारभ्य यावन्तो मनवः पुनः ॥ ३ ॥
कामकलामहादेव्यास्तान्मनून् श्रोतुमुत्सहे ।
कथ्यतां मयि (हे)नाथ यदि तेऽस्ति स्नेहो मम ॥ ४ ॥

देवी ने कहा—हे देव ! हे देवेश ! भक्तों को वाञ्छित फल देने वाले ! आपकी कृपा से मैंने कामकला काली का समस्त विधान सुना । सहस्रनामस्तोत्र, उसका उत्तम गद्य, अद्भुत त्रैलोक्यविजय कवच, भुजङ्गप्रयात (छन्द में उपनिबद्ध) स्तोत्रों का स्तोत्रराज भी सुना । अब कामकला देवी के एकाक्षर से लेकर जितने मन्त्र हैं उन मन्त्रों को सुनने का उत्साह हो रहा है । हे नाथ ! यदि आपका मेरे प्रति स्नेह है तो मुझे उसको बतलाइये ॥ १-४ ॥

महाकाल उवाच—

[मरीचिसमुपासिताया मन्त्रः]

साधु धन्ये महाभागे श्रूयतां वाञ्छितं तव ।

महाकाल ने कहा—हे महाभागे ! हे धन्ये ! ठीक है । जो तुम्हारा वाञ्छित है, अब मुझसे उसको सुनो ॥ ५ ॥

तारमैधत्रपालक्ष्मीकालीकामरुषः क्रमात् ॥ ५ ॥
योगिनीं प्रमदां चैव शाकिनीमङ्कुशं तथा ।
प्रासादक्षेत्रपालौ च पाशभूतौ समुद्धरेत् ॥ ६ ॥
ततोऽग्निस्त्री सप्तदशी मरीचिसमुपासिता ।
कर्दमोऽस्य ऋषिः प्रोक्तो बृहती छन्द उच्यते ॥ ७ ॥
देवी कामकलाकाली ह्रीं शक्तिः ह्रूं च कीलकम् ।

मरीचिसमुपासिता काली का मन्त्र—तार मेधा त्रपा लक्ष्मी काली काम क्रोध

योगिनी प्रमदा शाकिनी अङ्कुश प्रासाद क्षेत्रपाल पाश भूत बीजों तथा इसके बाद अग्निस्त्री कहना चाहिये (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें क्रों हौं क्षौं आं स्फ्रें स्वाहा)। मरीचि के द्वारा समुपासित यह सत्रह अक्षरों वाला मन्त्र है। इसके ऋषि कर्दम और छन्द बृहती है। देवी कामकला काली शक्ति ह्रीं और कीलक हूं है ॥ ५-८ ॥

[कपिलोपासिताया मन्त्रः]

ह्रींशाकिन्यङ्कुशसुधायोगिनीप्रमदाक्रुधः ॥ ८ ॥
भूतडाकिनीकल्पान्तफेत्कारीनरसिंहकाः ।
प्रेतास्त्रशिरसः प्रोक्ताः कपिलोपास्यषोडशी॥ ९ ॥
सनकोऽस्य ऋषिर्ज्ञेयः प्रतिष्ठा छन्द ईरितम् ।
देवता कामकाली च ह्यमृते शक्तिकीलके॥ १० ॥

कपिल के द्वारा उपासिता का मन्त्र—(यह मन्त्र) ह्रीं शाकिनी अङ्कुश सुधा योगिनी प्रमदा क्रोध भूत डाकिनी कल्पान्त फेत्कारिणी नरसिंह प्रेत अस्त्र शिर (इन बीजाक्षरों से निर्मित है) (मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं फ्रें क्रों ग्लूं छ्रीं स्त्रीं हूं स्फ्रें खफ्रें ह्स्ख्फ्रें क्ष्रौं स्हौः फट् स्वाहा)। कपिल के द्वारा उपास्य यह सोलह अक्षरों वाला मन्त्र है। इसके ऋषि सनक, छन्द प्रतिष्ठा, देवता कामकला काली, शक्ति और कीलक अमृत हैं ॥ ८-१० ॥

[हिरण्याक्षोपासिताया मन्त्रः]

डाकिनीसानुतुङ्गा हि सचूडामणिमेखलाः ।
बलिजम्भौ सभोगास्त्रौ हिरण्याक्षनवाक्षरी ॥ ११ ॥
ऋषी रुचिश्छन्द उष्णिग् देवता कामकालिका ।
डाकिनीमेखले शक्तिकीलके परिकीर्त्तिते ॥ १२ ॥

हिरण्याक्षोपासिता का मन्त्र—डाकिनी सानु तुङ्ग चूड़ामणि मेखला बलि जम्भ भोग और अस्त्र (इनसे बना मन्त्र) हिरण्याक्षोपास्या काली का मन्त्र है (मन्त्र इस प्रकार है—ख्फ्रें रह्रीं रज्रीं रक्रीं रक्ष्रीं रछ्रीं रफ्रीं ह्स्खफ्रें फट्) इस मन्त्र में नव अक्षर हैं। इसके ऋषि रुचि, छन्द उष्णिक्, देवता काम काली, शक्ति डाकिनी (=ख्फ्रें) और कीलक मेखला (=रक्ष्रीं) कहे गये हैं ॥ ११-१२ ॥

[लवणोपासिताया मन्त्रः]

त्रपाद्या डाकिनी कूर्चभूतमन्मथयोगिनीः ।
वधूश्च शाकिनी स्वाहा लवणस्य दशाक्षरी ॥ १३ ॥
छन्दः पङ्क्तिरथर्वऋषिर्देवी कामकलापि च ।
शाकिन्यनङ्गौ विज्ञेयौ मनोर्वै शक्तिकीलके ॥ १४ ॥

लवणासुरोपासिता का मन्त्र—त्रपा डाकिनी कूर्च भूत मन्मथ योगिनी वधू

शाकिनी और स्वाहा यह मन्त्र लवणासुर की काली का है (मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं ख्फ्रें हूं स्फ्रें क्लीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें स्वाहा) । इस मन्त्र का छन्द पङ्क्ति, ऋषि अथर्वा, देवी कामकला, शाकिनी (=फ्रें) शक्ति और अनङ्ग (=क्लीं) कीलक हैं ॥ १३-१४ ॥

[वैवस्वतोपासिताया मन्त्रः]

कूर्चास्त्रशाकिनी प्रोच्य ततः कामकला इति।
कालिकायै ततः प्रोच्य हार्दमन्त्रोऽग्निवल्लभा॥ १५ ॥
वैवस्वतस्य हि मनोर्मनुः पञ्चदशाक्षरी ।
ऋषिरत्रिः समुद्दिष्टो छन्दो मध्या प्रकीर्तिता ॥ १६ ॥
देवीयं शाकिनी कूर्चौ कीर्तिते शक्तिकीलके।

वैवस्वतोपासिता का मन्त्र—कूर्च अस्त्र शाकिनी बीजों को कहने के बाद 'कामकलाकालिकायै' कहकर हार्द मन्त्र तथा अग्निवल्लभा—यह वैवस्वत मनु के द्वारा उपासित काली का मन्त्र है (मन्त्र इस प्रकार है—हूं फट् फ्रें कामकलाकालिकायै नमः स्वाहा) । इसमें दश अक्षर हैं । इसके ऋषि अत्रि, छन्द मध्या, यही देवी, शाकिनी शक्ति और कूर्च (=हूं) कीलक है ॥ १५-१७ ॥

[दत्तात्रेयोपासिताया मन्त्रः]

वेदादिमैधयोगिन्यः शाकिनीकामयोषितः ॥ १७ ॥
भूतक्रोधत्रपा ज्ञेया दत्तात्रेयेण राधिता ।
ऋषिर्वसन्तवटुकोऽनुष्टुप् छन्द उदीरितम् ॥ १८ ॥
एषैव देवता ज्ञेया ह्रीमैंधे शक्तिकीलके ।

दत्तात्रेयोपासिता का मन्त्र—वेदादि मेधा योगिनी शाकिनी काम योषित् भूत क्रोध और त्रपा यह दत्तात्रेय के द्वारा आराधित विद्या है । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ऐं छ्रीं फ्रें क्लीं स्त्रीं स्फ्रों हूं ह्रीं) इसमें नव अक्षर है । इसके ऋषि वसन्तवटुक, छन्द अनुष्टुप्, यही (=कामकला काली) देवता, ह्रीं शक्ति ऐं कीलक है ॥ १७-१९ ॥

[दुर्वासस उपासिताया मन्त्रः]

श्रृणिर्भूतः शाकिनी च डाकिनी भूतपञ्चमा ॥ १९ ॥
दुर्वासःसाधिता ज्ञेया महापञ्चाक्षरी प्रिये।
गोतमोऽस्य ऋषिर्ज्ञेयश्छन्दस्त्रिष्टुबुदीरितम् ॥ २० ॥
देवतैषा भूतश्रृणी शक्तिकीलकनामकौ ।

दुर्वासा से उपासिता का मन्त्र—श्रृणि भूत शाकिनी डाकिनी भूत इस महापञ्चाक्षरी विद्या को दुर्वासा के द्वारा साधित जानना चाहिये । (मन्त्र इस प्रकार है—क्रों स्फ्रों फ्रें ख्फ्रें स्फ्रों) । इसके ऋषि गौतम, छन्द त्रिष्टुप्, देवता यही, भूत (=स्फ्रों), शक्ति और श्रृणि (=क्रों) कीलक है ॥ १९-२१ ॥

[उत्तङ्कोपासिताया मन्त्रः]

मैधप्रणवशाकिन्यो डाकिनी प्रलयान्विता ॥ २१ ॥
फेत्कारीह्रीरमानङ्गयोगिनीस्त्रीरुषश्च हृत् ।
चतुर्दशाक्षरो मन्त्र उत्तङ्कसमुपासितः ॥ २२ ॥
अस्य ऋषिर्दक्षिणामूर्त्तिः सुतलं छन्द उच्यते ।
देवी देवी कामकला रुप्रमे शक्तिकीलके ॥ २३ ॥

उत्तङ्क-उपासिता का मन्त्र—मेधा प्रणव शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी ह्री रमा अनङ्ग योगिनी स्त्री क्रोध हृदय इस चौदह अक्षरों वाले मन्त्र की उत्तङ्क ने उपासना की। (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ओं फ्रें ख्फ्रें ह्स्फ्रीं ह्स्ख्फ्रें ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं नमः (हूं) स्वाहा) इसके ऋषि दक्षिणामूर्त्ति, छन्द सुतल, देवी कामकला, देवी, क्रोध शक्ति और रमा बीज कीलक है ॥ २१-२३ ॥

[कौशिकोपासिताया मन्त्रः]

रुग्व्रीडाशाकिनी हार्दा विकराला पदं सङे ।
कामडाकिनीभूतान्ते हृच्छीर्षौ कौशिकेश्वरी ॥ २४ ॥
ऋषिर्नारद एतस्य शक्वरी छन्द ईरितम् ।
देव्येषैव स्मरो भूतः शक्तिः कीलकमिष्यते ॥ २५ ॥

कौशिक-उपासिता का मन्त्र—क्रोध लज्जा शाकिनी हार्द चतुर्थ्यन्त विकराला पद काम डाकिनी भूत हृदय शिर यह कौशिकेश्वरी विद्या कही गयी है है (मन्त्र इस प्रकार है—हूं ह्रीं फ्रें नमो विकरालायै क्लीं ख्फ्रें स्फ्रें नमः फट्) । इस मन्त्र के ऋषि नारद है छन्द शक्वरी और देवी यही (=कामकलाकाली) है । शक्ति स्मर और कीलक भूतबीज है ॥ २४-२५ ॥

[और्वोपासिताया मन्त्रः]

व्रीडायोगिनिकूर्चस्त्रीशाकिनीः पञ्च चोद्धरेत् ।
भगवत्यै इति प्रोच्य ततः कामकला इति ॥ २६ ॥
कालिकायै तारमेधाङ्कुशकालीरमास्मराः ।
भूतास्त्रयोर्युगं वह्निस्त्रीत्यूनत्रिंशौर्वराधिता ॥ २७ ॥
ऋषिर्वत्सस्त्रिवृच्छन्दो देवीयं शक्तिरङ्कुशः ।
शाकिनी कीलकं ज्ञेयं योगिनीतत्त्वमित्यपि ॥ २८ ॥

और्व-उपासिता का मन्त्र—लज्जा योगिनी कूर्च स्त्री शाकिनी कहकर 'भगवत्यै कामकलाकालिकायै कहने के बाद तार मेधा अङ्कुश काली रमा काम भूत और अस्त्र को दो बार कहने पर 'स्वाहा' कहे । और्व के द्वारा आराधित यह उन्तीस अक्षरों वाली विद्या है । (मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें भगवत्यै कामकलाकालिकायै ओं ऐं क्रों क्रीं श्रीं क्लीं स्फ्रें स्फ्रें फट् फट् स्वाहा) । इसके ऋषि वत्स, छन्द त्रिवृत्,

देवी यह, शक्ति अङ्कुश, कीलक शाकिनी एवं योगिनीबीज है ॥ २६-२८ ॥

[पराशरोपासिताया मन्त्रः]

योगिनीभूतरुट्कामा अस्त्रं पाराशरी मता ।
अङ्गिराश्चापि गायत्री ऋषिश्छन्दश्च कीर्त्यते ॥ २९ ॥
देवीयं डाकिनीभूतौ विज्ञेयौ शक्तिकीलकौ ।

पराशर-उपासिता का मन्त्र—योगिनी भूत क्रोध काम अस्त्र यह पाराशरी विद्या कही गयी है (मन्त्र—छ्रीं स्फ्रें हूं क्लीं फट्) इसके ऋषि अङ्गिरा छन्द गायत्री देवता यही शक्ति डाकिनी और कीलक भूत बीज है ॥ २९-३० ॥

[भगीरथोपासिताया मन्त्रः]

आदौ परापरं कूटं बृहत्कूटं द्वितीयकम् ॥ ३० ॥
कूटं राथन्तरं पश्चात् ज्ञेया भागीरथी प्रिये ।
छन्दस्त्रिष्टुवृषिर्व्यासो देव्येषा शक्तिकीलकौ ॥ ३१ ॥
फेत्कारीप्रलयौ ज्ञेयौ डाकिनीतत्त्वमित्यपि ।

भगीरथ-उपासिता का मन्त्र—पहले परापर फिर वृहत् तत्पश्चात् रथन्तर कूट कहे । हे प्रिये ! यही भगीरथ विद्या है । (मन्त्र—हस्लक्षकमहब्रूं हलहीं सक्लहकहीं) । इसके ऋषि व्यास, छन्द त्रिष्टुप्, देवता यही, फेत्कारी और प्रलय तथा डाकिनी तत्त्व शक्ति और कीलक हैं ॥ ३०-३२ ॥

[बल्युपासिताया मन्त्रः]

ह्रीभूतक्रोधडाकिन्यः कामफेत्कारिसंयुताः ॥ ३२ ॥
षडक्षरा बल्युपास्या देवी कामकला प्रिये ।
ऋषिः कात्यायनो ह्यस्य छन्दः ख्यातं बृहत्यपि॥ ३३ ॥
अधिष्ठात्री त्वियं देवी स्त्रीकामौ शक्तिकीलकौ।

बलि-उपासिता का मन्त्र—हे प्रिये ! बलि के द्वारा उपास्य कामकला देवी ह्रीं भूत क्रोध डाकिनी काम फेत्कारी से युक्त छह अक्षरों वाली है (मन्त्र—ह्रीं स्फ्रें हूं ख्फ्रें क्लीं हस्फ्रें) । इसके ऋषि कात्यायन, छन्द वृहती, अधिष्ठात्री देवता यह देवी, स्त्री शक्ति और काम (=क्लीं) कीलक हैं ॥ ३२-३४ ॥

[संवर्तोपासिताया मन्त्रः]

कामलक्ष्मीत्रपाकूर्चयोगिनीभिस्तु शाकिनी ॥ ३४ ॥
डाकिनीमहदामर्षामृतप्रासाददक्षिणाः ।
शृणिकालीतारमैधाः संवर्त्तोपास्यषोडशी ॥ ३५ ॥
छन्दः पङ्क्तिर्ऋषिश्चात्रिर्देवी कामकलापि च।
शक्तिर्हारावलिः कीलः कर्णिकातत्त्वमीरितम् ॥ ३६ ॥

संवर्त्तोपासिता का मन्त्र—काम लक्ष्मी, त्रपा, कूर्च, योगिनी के साथ शाकिनी, डाकिनी, महत्, आमर्ष, अमृत, प्रासाद, दक्षिण शृणि काली तार मेधा यह सोलह अक्षरों वाली विद्या संवर्त्त के द्वारा उपास्य है (मन्त्र इस प्रकार है—क्लीं श्रीं ह्रीं हूं छ्रीं फ्रें ख्फ्रें क्ष्रूं ग्लूं हूं हौं रफ्रें क्रों क्रीं ओं ऐं) । इसके ऋषि अत्रि, छन्द पङ्क्ति, देवी कामकला काली, शक्ति हारावली (=ह्क्षम्लै) और कीलक कर्णिकातत्त्व (=क्षरह्रीं) कहा गया है ॥ ३४-३६ ॥

[नारदोपासितायाः मन्त्रः]

वेदादिसारस्वतकामभूताः
लज्जा ततो डाकिनि योगिनी च ।
कल्यान्तरामे तदनु प्रकीर्त्त्यें
फेत्कारिकूर्चौ तदनु प्रदेयौ ॥ ३७ ॥
वेतालमस्त्रमथ वह्निनितम्बिनी च
प्रोक्तं प्रिये नारदपञ्चदश्याम् ।
विरूपाक्ष ऋषिः प्रोक्तो जगतीच्छन्द इत्यपि ।
अधिष्ठात्री कामकाली बीजशक्ती त्रपारुषौ ॥ ३८ ॥
शक्तितत्त्वे रमानङ्गौ प्रयोगः सर्वसिद्धये ।

नारद-उपासिता का मन्त्र—वेद का आदि सरस्वती काम भूत लज्जा डाकिनी, योगिनी कल्पान्त रामा फेत्कारी कूर्च वेताल अस्त्र और वह्निजाया के बीजों वाली नारद की पञ्चदशाक्षरी विद्या कही गयी है । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ऐं क्लीं स्फ्रें ह्रीं ख्फ्रें छ्रीं ह्स्फ्रीं स्त्रीं ह्स्ख्फ्रें हूं स्फ्ल्क्ष्ं फट् स्वाहा) । इसके ऋषि विरूपाक्ष, छन्द जगती, अधिष्ठात्री देवता कामकला काली, बीज त्रपा (=ह्रीं), शक्ति रोष (=हूं), शक्तितत्त्व रमा (=श्रीं) और काम (=क्लीं) है । सर्वसिद्धि के लिये इसका प्रयोग (=विनियोग) होता है ॥ ३७-३९ ॥

[गरुडोपासितायाः मन्त्रः]

आदौ च शाम्भवं कूटं लज्जाबीजं द्वितीयकम् ॥ ३९ ॥
ततः पाशुपतं कूटं योगिनी तदनन्तरम् ।
ततो माहेश्वरं कूटं कूर्मशाङ्करकूटकौ ॥ ४० ॥
वधू श्रीकण्ठकूटौ च शाकिनी स्यात्ततः परम् ।
पुण्डरीकाश्वमेधौ च ततोऽस्त्रं हृच्छिरोऽपि च ॥ ४१ ॥
गरुडोपासिता ज्ञेया महासप्तदशी त्वियम् ।
प्रचेता ऋषिरस्य स्यात् सुतलं छन्द ईरितम् ॥ ४२ ॥
देवी कामकला काली फेत्कारी बीजमुच्यते ।
शक्तिकीलकतत्त्वानि त्रपाकूर्चस्मराः क्रमात् ॥ ४३ ॥

गरुड-उपासिता का मन्त्र—पहले शाम्भव कूट, फिर लज्जाबीज, इसके बाद पाशुपत कूट, फिर योगिनी, तत्पश्चात् माहेश्वर कूट, फिर कूर्म एवं शङ्कर कूट, फिर वधू और श्रीकण्ठकूट, तत्पश्चात् शाकिनी ततः पुण्डरीक एवं अश्वमेध और अन्त में अस्त्र हृदय और शिरोमन्त्र—इस प्रकार यह महासप्तदशी विद्या गरुड के द्वारा उपासित जाननी चाहिये (मन्त्र इस प्रकार है—स्हजहलक्ष्म्लवनऊं ह्रीं सग्लक्षमहरहूंछ्रीं क्वलह्झकह्नसक्लईं घ्रीं स्हजहलक्ष्म्लवनऊं स्त्री क्लक्षसहमव्य्रऊं फ्रें फ्लक्षह्स्ह्व्यऊं ह्सलहसकह्रीं फट् नमः स्वाहा)। इसके ऋषि प्रचेता, छन्द सुतल, देवी कामकला काली, बीज फेत्कारी (=ह्स्फ्रें), शक्ति त्रपा (=ह्रीं), कीलक कूर्च (=हूं) और तत्त्व स्मर (=क्लीं) है ॥ ३९-४३ ॥

[परशुरामोपासिताया मन्त्रः]

लक्ष्मीर्लज्जाकामबीजं योगिनीभीरुकालिकाः ।
फडन्ता पर्शुरामेण साधिता परमेश्वरि ॥ ४४ ॥
तस्यर्षिः कश्यपो ज्ञेयः प्रतिष्ठा च्छन्द उच्यते ।
प्रोक्ता देवी कामकाली शाकिनीबीजमुच्यते ॥ ४५ ॥
रमाकाल्यौ शक्तिकीलौ ज्ञेयौ सप्ताक्षरीमनौ ।

परशुराम-उपासिता का मन्त्र—हे परमेश्वरि ! लक्ष्मी लज्जा काम योगिनी भीरु काली बीजों के बाद अन्त में 'फट्'—यह पर्शुराम के द्वारा साधित विद्या है (मन्त्र इस प्रकार है—श्रीं ह्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं क्रीं फट्)। इस सात अक्षर वाले मन्त्र के ऋषि कश्यप, छन्द प्रतिष्ठा, देवी कामकला काली, बीज शाकिनी, शक्ति रमा, कीलक काली है ॥ ४४-४६ ॥

[भार्गवोपासिताया मन्त्रः]

तारपाशाङ्कुशान् दत्वा प्रासादं महतीं ध्रुवम् ॥ ४६ ॥
अमृतं शाकिनीं रामायोगिनीवह्निवल्लभाः ।
उद्धरेद् भार्गवीं कामकालीमेकादशाक्षरीम् ॥ ४७ ॥
ब्रह्मर्षिः शक्वरीछन्दो देव्येषा बीजमङ्कुशम् ।
शक्तिकीलौ सुधापाशौ षडङ्गो मनुरीरितः ॥ ४८ ॥

भार्गव-उपासिता का मन्त्र—तार, पाश, अङ्कुश, प्रासाद, महती, ध्रुव, अमृत, शाकिनी, स्त्री, योगिनी और अग्निवल्लभा—यह भार्गव की कामकला काली कुल ग्यारह अक्षरों वाली बतलायी गयी है। (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होता है—ओं आं क्रों हौ क्ष्रूं ग्लूं फ्रें स्त्रीं छ्रीं स्वाहा)। इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द शक्वरी, देवता यही, बीज अङ्कुश (=क्रों), शक्ति सुधा (=ग्लूं), कीलक पाश (=आं) है। यह मन्त्र उक्त प्रकार से छह अङ्गों (=ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति और कीलक) वाला बतलाया गया ॥ ४६-४८ ॥

[सहस्रबाहूपासिताया मन्त्रः]

मेधाङ्कुशौ तथा भूतं शाकिनी डाकिनी तथा ।
प्रलयश्चापि फेत्कारी फट्त्रयं हृदयं शिरः ॥ ४९ ॥
द्वाभ्यां सहस्रबाहुभ्यां साधितेयं चतुर्दशी ।
प्रोक्तः सम्मोहनोऽस्यर्षिर्गायत्रं छन्द उच्यते ॥ ५० ॥
मनोर्देवी कामकला चक्रास्त्रं बीजमुच्यते ।
विज्ञेयौ दक्षिणाजम्भौ शक्तिकीलौ मनोः प्रिये ॥ ५१ ॥

सहस्रबाहु-उपासिता का मन्त्र—मेधा, अङ्कुश, भूत शाकिनी, डाकिनी, प्रलय फेत्कारी तीन 'फट्' हृदय और शिर-यह मन्त्र है जो चौदह अक्षरों वाला है (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं क्रों स्क्रों फ्रें ख्फ्रें हस्फ्रीं हस्ख्फ्रें फट् फट् फट् नमः स्वाहा) यह दोनों सहस्रबाहुओं[१] के द्वारा आराधित है । हे प्रिये! इसके ऋषि सम्मोहन, छन्द गायत्री, देवी कामकला काली, बीज चक्रास्त्र (=रक्ष्रब्रप्रभ्रमनूऊं) शक्ति दक्षिणा (=र्फ्रें) और कीलक जम्भ (=र्फ्रीं) है ॥ ४९-५१ ॥

[पृथूपासिताया मन्त्रः]

कामभूतौ भूतकामौ फडन्तौ पृथुराधिता ।
पञ्चाक्षरी परिज्ञेया कामकाल्या वरानने ॥ ५२ ॥
ऋषिर्मनोर्वीतहव्यो जागतं छन्द इत्यपि ।
देवता कामकाली च नाराचो बीजमुच्यते ॥ ५३ ॥
कुन्तसृष्टी शक्तिकीलौ मन्त्रस्य परिकीर्तितौ ।

पृथु-उपासिता का मन्त्र—काम भूत भूत काम और अन्त में 'फट्' कामकला काली की यह पञ्चाक्षरी विद्या पृथु के द्वारा सिद्ध की गयी । (मन्त्र इस प्रकार है—क्लीं स्फ्रें स्फ्रें क्लीं फट्) । इसके ऋषि वीतहव्य, छन्द जगती, देवता कामकला काली, बीज नाराच (=द्रां) शक्ति कुन्त (=क्रीं) कीलक सृष्टि (=उं) है ॥ ५२-५४॥

[हनूमदुपासिताया मन्त्रः]

तारयोर्मध्यगौ पाशमैधावादौ प्रयोजयेत् ॥ ५४ ॥
कलातारत्रपाकूर्चलक्ष्मीकामांस्ततः परम् ।
काल्याः कराल्याः सम्बुद्धिं विकराल्यास्ततः परम् ॥ ५५ ॥
द्वाविंशत्यक्षरीं विद्यां त्रिफडन्तां समुद्धरेत् ।
एषैव हि परिज्ञेया हनूमत्समुपासिता ॥ ५६ ॥
ऋषिः सनातनश्चोक्तश्छन्दो ज्ञेयञ्च बार्हतम् ।
देवता कामकाली च काकिनीबीजमिष्यते ॥ ५७ ॥

---

१. सहस्रबाहु नाम दो व्यक्तियों के लिये प्रयुक्त होता है—(क) राजा कार्त्तवीर्य (ख) बाणासुर । इसका प्रयोग विष्णु के लिये भी है—'सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ।' (गीता-११ अध्याय)

नागः शक्तिः क्षमा कीलं नासत्यौ तत्त्वमिष्यते ।

हनूमान्-उपासिता का मन्त्र—दो तारों के मध्य में पाश और मेधा को रखना चाहिये । तत्पश्चात् कला तार त्रपा कूर्च लक्ष्मी काम (बीजों को रखकर) 'करालिकालि विकरालि' कहने के बाद अन्त में तीन 'फट्' कहना चाहिये (मन्त्र—ओं आं ऐं ओं ईं ओं ह्रीं हूं श्रीं क्लीं कालि करालि विकरालि फट् फट् फट्) यह बाईस अक्षरों वाली विद्या है । इसी की हनूमान् ने उपासना की थी । इसके ऋषि सनातन, छन्द वृहती, देवता कामकला काली, बीज काकिनी (=क्रीं) शक्ति नाग (=व्रीं) कीलक क्षमा (=ज्रूं) और नासत्यद्वय तत्त्व हैं ॥ ५४-५८ ॥

[कामकलाकाल्याः शताक्षरमन्त्रः]

महाकाल उवाच—

शताक्षरसमुद्धारमथाकर्णय भाविनि ॥ ५८ ॥
येन विज्ञातमात्रेण सर्वसिद्धिः करे स्थिता ।
आदौ त्रपाकामकूर्चान्हृन्मन्त्रान्तान्समुद्धरेत् ॥ ५९ ॥
ततः कामकलेत्युक्त्वा कालिकायै समुद्धरेत् ।
मेधाङ्कुशरमाकालीयोगिनीभीरुशाकिनीः ॥ ६० ॥
डाकिन्यन्ताः समुद्धृत्य सकचेति पदं ततः ।
नरमुण्ड इति प्रोच्य कुण्डलायै इतीरयेत् ॥ ६१ ॥
भोगं सृष्टिं च फेत्कारीं त्रेतां कृत्यां तथोद्धरेत् ।
महेति विकरालेति वदनायै इतीरयेत् ॥ ६२ ॥
महाप्रलय इत्युक्त्वा समयेत्युद्धरेत् प्रिये ।
ब्रह्माण्डनिष्पेषणतः करायै इत्यपीरयेत् ॥ ६३ ॥
सान्विष्टिदक्षिणाध्यानचञ्चून् कूर्चास्त्रियोस्त्रयम् ।
भयङ्करेति संलिख्य रूपायै तदनन्तरम् ॥ ६४ ॥
हारं वैधं कर्णिकां च नालीकं हाकिनीमपि ।
कौरजानुत्तमाङ्गास्थिभेदिनोत्रितयं पुनः ॥ ६५ ॥
संविद्द्वयं हृच्छिरसी (वि)निर्ज्ञेयं शताक्षरी ॥ ६६ ॥
अस्या ऋषिः समुद्दिष्टो लोमपादो वरानने ।
छन्दो विराट् क्रमो बीजं देवता कामकालिका ॥ ६७ ॥
शक्तिः सौत्रामणीकूटं नागास्त्रं कीलकं भवेत् ।

कामकला काली का शताक्षरमन्त्र—हे भव की पत्नि ! अब शताक्षर मन्त्र का उद्धार सुनो । जिसके जान लेने से समस्त सिद्धियाँ हस्तगत हो जाती हैं । पहले त्रपा काम कूर्च बीजों को कहकर हृन्मन्त्र कहे । इसके बाद 'कामकलाकालिकायै' कहे । मेधा अङ्कुश रमा काली योगिनी भीरु शाकिनी डाकिनी को कहकर 'सकचनरमुण्ड-कुण्डलायै' कहे । अनन्तर भोग सृष्टि फेत्कारी के बाद त्रेता कृत्या का उद्धार करे ।

फिर 'महाविकरालवदनायै' कहे । तत्पश्चात् 'महाप्रलयसमयब्रह्माण्डनिष्पेषणकरायै' कहे । फिर सानु इष्टि दक्षिणा ध्यान चञ्चु के बाद कूर्च और अस्त्र को तीन बार पढ़े । तदनन्तर 'भयङ्कररूपायै' कहने के बाद हार वैध कर्णिका नालीक हाकिनी कौरज के बाद उत्तमाङ्ग अस्थिभेदी को तीन-तीन बार फिर संविद् को दो बार फिर हृदय और शिर कहो यह शताक्षरी विद्या है (मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं क्लीं हूं नमः कामकलाकालिकायै ऐं क्रों श्रीं क्रीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें सकचनरमुण्डकुण्डलायै हस्खफ्रीं हस्खफ्रूं हस्खफ्रें हस्खफ्रैं हस्खफ्रों महाविकरालवदनायै महाप्रलयसमयब्रह्माण्ड-निष्पेषकरायै र्ह्रीं र्श्रीं र्फ्रें वूः र्स्फ्रों हूं हूं हूं फट् फट् फट् भयङ्कररूपायै ह्क्ष्म्लै लक्षों क्ष्र्ह्रीं क्ष्रस्त्रीं रक्षश्रीं खं रध्रें सैं टं टं टं ठं ठं ठं फें फें नमः स्वाहा) इसे शताक्षरी विद्या जानना चाहिये । हे वरानने ! इसके ऋषि लोमपाद, छन्द विराट्, बीज क्रम, देवता कामकला काली, शक्ति सौत्रामणी का कूट (=ग्ल्ट्क्ष्फ्र्थ्र्क्लीं) और कीलक नागास्त्र (=व्रीं) है ॥ ५८-६८ ॥

[कामकलाकाल्याः सहस्राक्षरमन्त्रः]

देव्युवाच—

मन्त्रोद्धाराः सकलाः कामकलाया निशामितास्त्वत्तः ।
अधुना वद शशिशेखर दयित सहस्राक्षरोद्धारम् ॥ ६८ ॥

कामकला काली का सहस्राक्षर मन्त्र—देवी ने कहा—हे प्रिये! हे शशिशेखर! आपसे मैंने कामकलाकाली के समस्त मन्त्रोद्धारों को सुना । अब सहस्राक्षर मन्त्र का उद्धार बतलाइये ॥ ६८ ॥

महाकाल उवाच—

प्रणव नमो भगवत्यै कामकलाकालिकायै च ।
तारत्रपारमास्मररुड्योगिनि योषितां पञ्च ॥ ६९ ॥
प्रत्येकं संलेख्यं ततश्च संहारभैरवेत्यपि च ।
सुरतरसलोलुपायै चतुर्दशान्तां च पञ्चकम् ॥ ७० ॥
आदौ शार्णं बीजं प्रासादं शाकिनीं तदनु ।
डाकिनिमहारुषावपि भूतप्रेतामृतान्यपि च ॥ ७१ ॥
क्षेत्रपचण्डौ कालीं गारुडकालौ रतिं चापि ।
प्रकटविकटानुदशनविकरालवदना ङेऽन्तैव ॥ ७२ ॥
घनविद्युद्धनदानां मानसभारुण्डयोश्चापि ।
द्रावणतत्त्वपवीनां प्रत्येकं पञ्च चोद्धृत्य ॥ ७३ ॥
सृष्टिस्थितिसंहारकारिण्यै इत्यपि ब्रूयात् ।
तदनु मदनातुरायै चामुण्डां चापि कापालम् ॥ ७४ ॥
उग्रं ब्रह्म च शक्तिं चानन्दं रौद्रकं पञ्च ।
प्रत्येकं संलेख्यं भयङ्करेति प्रयोज्यमस्यानु ॥ ७५ ॥

दंष्ट्रायुगलान्मुखरं रसनायै तदनु च ब्रूयात् ।
कूर्मानन्तहयग्रीवदानवक्ष्वेडसूरतपिनीः ॥ ७६ ॥
तस्य त्रिशक्तिगणपतिकुमारकान् पञ्चशो विलिखेत्।
सकचनरमुण्डशब्दा ङेऽन्ता कृतकुला चापि ॥ ७७ ॥
त्रिकूटा सिंहसमाधीन् यक्षविरिञ्ची सुदर्शनं चापि ।
गान्धर्वं च निरञ्जनमेषां वै वारपञ्चकं लेख्यम् ॥ ७८ ॥

महाकाल ने कहा—प्रणव 'नमो भगवत्यै कामकलाकालिकायै' के बाद तार त्रपा रमा स्मर क्रोध योगिनी और योषित को पाँच-पाँच बार कहे । इसके बाद 'संहारभैरव-सुरतरसलोलुपायै' कहे । इसके बाद शृणि प्रासाद शाकिनी डाकिनी महाक्रोध भूत प्रेत अमृत क्षेत्रप चण्ड काली गरुड काल रति के बीजों को उद्धृत करे । तदनन्तर चतुर्थ्यन्त 'प्रकटविकटदशनविकरालवदना' कहे । बाद में घन विद्युत् धनद मानस भारुण्ड द्रावण तत्त्व पवि में से प्रत्येक को पाँच-पाँच बार कहकर 'सृष्टिस्थिति-संहारकारिण्यैं' कहे । उसके बाद 'मदनातुरायै' कहकर चामुण्डा कपाल उग्र ब्रह्म शक्ति आनन्द रौद्र बीजों को पाँच-पाँच बार लिखकर 'भयङ्करदंष्ट्रायुगलमुखररसंनायै' कहे । ततः कूर्म अनन्त हयग्रीव दानव क्ष्वेड सुरतपिनी और उसके बाद त्रिशक्ति गणपति कुमारकों को पाँच-पाँच बार लिखे । फिर 'सकचनरमुण्डकृतकुण्डला' को ङेन्त कहे । तत्पश्चात् त्रिकूट सिंह समाधि यक्ष विरिञ्चि सुदर्शन गन्धर्व निरञ्जन बीजों को पाँच-प्राँच बार लिखे ॥ ६९-७८ ॥

तदनु महाकल्पान्तकान् ब्रह्माण्डचर्वणेत्यपि च ।
विलिखेत्ततः करायै समाधिनादौ च दक्षिणं चक्षुः ॥ ७९ ॥
स्थाणुं तत्त्वं तारकगणपाप्सरसां च पञ्चशो विलिखेत्।
युगभेदभिन्नगुह्यकाल्येकान्मूर्त्तितोऽपि च धरायै ॥ ८० ॥
शाकिनिडाकिनिप्रलयाः फेत्कारीकर्णिकाहाराः ।
सानुः समेखलोऽपि च जम्भो भासाख्यकूटश्च ॥ ८१ ॥
एते च पञ्चकृत्वः क्रमशो लेख्यास्ततो दयिते ।
शतवदनान्तरितैकाद् वदनायै फट्त्रयं प्रणवः ॥ ८२ ॥
तुरु तारं मुरु च तारं हिलि तारं किलि ततो विलिखेत्।
ह्ः सर्वदीर्घयुक्तस्ततो महाघोररावे च कालि च ॥ ८३ ॥
कापालि ततो महा च कापालि विकटदंष्ट्रे च ।
शोषिणि सम्मोहिनितः करालवदने ततो वाच्यम् ॥ ८४ ॥
मदनोन्मादिनिशब्दाज्ज्वालामालिन्यपि ब्रूयात् ।
तदनु शिवारूपि वै भगमालिनितो भगप्रिये चापि ॥ ८५ ॥
उद्धृत्य भैरवीति चामुण्डाशब्दतो विलिखेत् ।
योगिन्यादिशतादनु कोटिगणात् परिवृते चापि ॥ ८६ ॥

प्रत्यक्षं च परोक्षं मां द्विषतो भवति तस्यान्ते ।
युगलं सप्तविंशत्या वदेत्तदनु देवेशि ॥ ८७ ॥
जहि नाशयानु त्रासय मारय उच्चाटयेत्यपि च ।
स्तम्भय विध्वंसय हन त्रुटतो विद्रावय छिन्धि ॥ ८८ ॥
पच शोषय मोहय चोन्मूलय भस्मीकुरु दहेति ।
क्षोभय हरतः प्रहरात्पातयतो मर्दय दमेति ॥ ८९ ॥

इसके बाद 'महाकल्पान्तब्रह्माण्डचर्वणकरायै' का उल्लेख करे । फिर समाधि नाद दक्षिण चक्षु स्थाणु तत्त्व तारक गणेश अप्सर बीजों को पाँच-पाँच बार लिखे । बाद में 'युगभेदभिन्नगुह्यकाल्येकमूर्त्तिधरायै' कहना चाहिए । फिर शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी कर्णिका हार सानु मेखला जम्भ भासा कूटों को क्रम से पाँच बार लिखना चाहिए । हे दयिते! तत्पश्चात् 'शतवदनान्तरितैकवदनायै' कहने के बाद तीन 'फट्' प्रणव तुरु तार मुरु तार हिलि तार किलि कहे । फिर 'ह' को सभी दीर्घस्वरों के साथ कहे । इसके बाद 'महाघोररावे कालि कापालि महाकापालि विकटदंष्ट्रे शोषिणि सम्मोहिनि करालवदने मदनोन्मादिनि ज्वालामालिनि शिवारूपिणि भगमालिनि भगप्रिये भैरवीचामुण्डायोगिन्यादिशतकोटिगणपरिवृते' कहे । इसके बाद 'प्रत्यक्षं परोक्षं च मां द्विषतो' के बाद निम्नलिखित सत्ताईस शब्दों को दो-दो बार कहे । वे शब्द हैं—जहि नाशय त्रासय मारय उच्चाटय स्तम्भय विध्वंसय हन त्रुट विद्रावय छिन्धि पच शोषय मोहय उन्मूलय भस्मीकुरु दह क्षोभय हर प्रहर पातय मर्दय दम मथ स्फोटय जम्भय भ्रामय ॥ ७९-८९ ॥

मथतः स्फोटय जम्भय तस्यान्ते भ्रामयेत्यपि च ।
उद्धृत्य सर्वभूताद् भयङ्करि स्याच्च सर्वजनशब्दः॥ ९० ॥
तदनु वशङ्करि सर्व वदेच्छत्रुक्षयङ्करीत्यपि च ।
प्रणवो व्रीडा तारः कामो वेदादिकूर्चौ च ॥ ९१ ॥
गायत्रीमुखभूतावागमशीर्षाङ्कुशौ तदनु ज्वलयुग्मम्।
प्रज्वलयुक्तह हसयुग्मं ततो विलिखेत् ॥ ९२ ॥
राज्यधनायुः प्रोक्त्वा तदनु सुखैश्वर्यमित्यपि च ।
देहिद्वितयं दापययुगलं पश्चात् कृपाकटाक्षं च ॥ ९३ ॥
मयि च वितरयुगलं योगिन्यबला च शाकिन्यः ।
द्रावणमानसवक्त्रं कापालं चापि भारुण्डा ॥ ९४ ॥
कालीस्मराध्वमनसः कूर्चं मुण्डे सुमुण्डे च ।
चामुण्डे इत्युक्त्वा प्रवदेद्वै मुण्डमालिनि पदं च ॥ ९५ ॥
मुण्डावतंसिकेऽपि च ततश्च मुण्डासनेऽमृतं बीजम् ।
शक्तिः निर्मलबीजं तदनु शवारूढ इत्यपि च ॥ ९६ ॥
षोडशभुजे सोद्यते पाशपदात्परशुनागेति ।

चापानु मुद्गरशिवापोतानु च खर्प्परानु च नरेति ॥ ९७ ॥
मुण्डाक्षादपि माला कर्त्रीतो नानाङ्कुशशवेति ।
चक्रत्रिशूलकरवालधारिणि प्रोच्चरेत्पश्चात् ॥ ९८ ॥
स्फुरयुगलं तदनु वदेत् प्रस्फुरयुग्मं मम हृदि प्रोच्य ।
तिष्ठद्वितयं निगदेत् स्थिरा भव त्वं तममरेशि ॥ ९९ ॥
सारस्वतागमशिरः कुलिकस्मरभूतबीजानि ।
त्रितयं कौरजपदवीमनोरुषां जययुग्मं पश्चात् ॥ १०० ॥
विजयद्वितयादस्त्रत्रितयं हृदयं च शीर्षञ्च ।
इत्येषा कथिता तव देवि सहस्राक्षरी शुभदा ॥ १०१ ॥
कालाग्निरुद्रऋषिरिह महापरो जागतं छन्दः ।
देवी कामकलापि च कूर्चो बीजं स्मरः कीलः ॥ १०२ ॥
शक्तिर्भूतः शृणिरपि तत्त्वं सप्ताङ्गको मन्त्रः ।

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां त्रयोदशतमः पटलः ॥ १३ ॥

इसके बाद 'सर्वभूतभयङ्करि सर्वजनवशङ्करि सर्वशत्रुक्षयङ्करि' कहे । फिर प्रणव लज्जा तार काम वेदादि कूर्च गायत्रीमुख भूत आगमशीर्ष और अङ्कुश बीजों को कहने के बाद 'ज्वल प्रज्वल हस' को दो दो-दो बार लिखे । बाद में 'राज्यधनआयुः-सुखैश्वर्यम्' कहकर 'देहि दापय' को दो-दो बार कहे । 'कृपाकटाक्षं मयि' के बाद 'वितर' को दो बार लिखे । योगिनी अबला शाकिनी द्रावण मानस वक्त्र कपाल भारुण्डा काली काम अध्वा मन कूर्च बीजों के बाद 'मुण्डे सुमुण्डे चामुण्डे मुण्डमालिनि मुण्डावतंसिके मुण्डासने' कहकर अमृत शक्ति निर्मल बीजों को लिखे । उसके बाद 'शवारूढे षोडशभुजे सोद्यते पाशपरशुनागचापमुद्गरशिवापोतखर्परनर-मुण्डाक्षमलाकर्त्रीनानाङ्कुशशवचक्रत्रिशूलकरवालधारिणि' कहे । पश्चात् 'स्फुर प्रस्फुर' दो बार कहे । 'मम हृदि' के बाद 'तिष्ठ' को दो बार बोले । 'स्थिरा भव त्वं अमरेशि' कहे । सरस्वती आगम शिर कुलिक स्मर भूत बीजों को कहकर फिर कौरज पदवी मनोरुष को तीन-तीन बार कहे, तदनन्तर 'जय' को दो बार फिर शीर्ष कहे । हे देवि ! यह शुभदा सहस्राक्षरा विद्या तुमको बतलायी गयी ।

[कामकलाकाल्याः सहस्राक्षरमन्त्रोद्धारः]

ओं नमो भगवत्यै कामकलाकालिकायै ओं ओं ओं ओं ओं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं हूं हूं हूं हूं हूं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं छ्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं संहारभैरवसुरतरसलोलुपायै क्रों क्रों क्रों क्रों क्रों हौं हौं हौं हौं हौं फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें खफ्रें खफ्रें खफ्रें खफ्रें खफ्रें क्षूं क्षूं क्षूं क्षूं क्षूं स्फ्रों स्फ्रों स्फ्रों स्फ्रों स्फ्रों स्हौः स्हौः

स्हौं: स्हौं: स्हौं: ग्लूं ग्लूं ग्लूं ग्लूं ग्लूं क्षौं क्षौं क्षौं क्षौं क्षौं फ्रों फ्रों फ्रों फ्रों फ्रों क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रौं क्रौं क्रौं क्रौं क्रौं जूं जूं जूं जूं जूं क्लूं क्लूं क्लूं क्लूं क्लूं प्रकटविकटदशनविकरालवदनायै क्लौं क्लौं क्लौं क्लौं क्लौं ब्लौं ब्लौं ब्लौं ब्लौं ब्लौं क्षूं क्षूं क्षूं क्षूं क्षूं ट्रीं ट्रीं ट्रीं ट्रीं ट्रीं प्रीं प्रीं प्रीं प्रीं प्रीं हभ्रीं हभ्रीं हभ्रीं हभ्रीं हभ्रीं स्हें स्हें स्हें स्हें स्हें घ्रीं घ्रीं घ्रीं घ्रीं घ्रीं सृष्टिस्थितिसंहारकारिण्यै मदनातुरायै क्रैं क्रैं क्रैं क्रैं क्रैं थ्रीं थ्रीं थ्रीं थ्रीं थ्रीं ढ्रीं ढ्रीं ढ्रीं ढ्रीं ढ्रीं ठौं ठौं ठौं ठौं ठौं ब्लूं ब्लूं ब्लूं ब्लूं ब्लूं भ्रूं भ्रूं भ्रूं भ्रूं भ्रूं फहलक्षां फहलक्षां फहलक्षां फहलक्षां फहलक्षां भयङ्करदंष्ट्रायुगलमुखररसनायै घ्रीं घ्रीं घ्रीं घ्रीं घ्रीं खैं खैं खैं खैं खैं क्रूं क्रूं क्रूं क्रूं क्रूं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं चफलक्रों चफलक्रों चफलक्रों चफलक्रों चफलक्रों.......... (सुरतपिनी) क्रूं क्रूं क्रूं क्रूं क्रूं गं गं गं गं गं हूः हूः हूः हूः हूः सकचनरमुण्डकृत(कुण्डलायै) कुलायै ल्यूं ल्यूं ल्यूं ल्यूं ल्यूं णूं णूं णूं णूं णूं हैं हैं हैं हैं हैं क्लौं क्लौं क्लौं क्लौं क्लौं ब्रूं ब्रूं ब्रूं ब्रूं ब्रूं स्की: स्की: स्की: स्की: स्की: ब्जं ब्जं ब्जं ब्जं ब्जं स्हीं स्हीं स्हीं स्हीं स्हीं महाकल्पान्तब्रह्माण्ड-चर्वणकरायै हैं हैं हैं हैं हैं अं अं अं अं अं इं इं इं इं इं उं उं उं उं उं स्हें स्हें स्हें स्हें स्हें रां रां रां रां रां गं गं गं गं गं गां गां गां गां गां युगभेदभिन्नगुह्यकाल्येकमूर्तिधरायै फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें फ्रें खफ्रें खफ्रें खफ्रें खफ्रें खफ्रें हसफ्रीं हसफ्रीं हसफ्रीं हसफ्रीं हसफ्रीं हसखफ्रें हसखफ्रें हसखफ्रें हसखफ्रें हसखफ्रें क्षरह्रीं क्षरह्रीं क्षरह्रीं क्षरह्रीं क्षरह्रीं ह्क्षम्लैं ह्क्षम्लैं ह्क्षम्लैं ह्क्षम्लैं ह्क्षम्लैं (जरक्रीं जरक्रीं जरक्रीं जरक्रीं जरक्रीं?) रह्रीं रह्रीं रह्रीं रह्रीं रह्रीं रक्ष्रीं रक्ष्रीं रक्ष्रीं रक्ष्रीं रक्ष्रीं रफ्रीं रफ्रीं रफ्रीं रफ्रीं रफ्रीं क्षह्म्लव्य्रऊं क्षह्म्लव्य्रऊं क्षह्म्लव्य्रऊं क्षह्म्लव्य्रऊं क्षह्म्लव्य्रऊं शतवदनान्तरितैकवदनायै फट् फट् फट् ओं तुरु ओं मुरु ओं हिलि ओं किलिं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रः महाघोररावे कालि कापालि महाकापालि विकटदंष्ट्रे शोषिणि सम्मोहिनि करालवदने मदनोन्मादिनि ज्वालामालिनि शिवारूपि भगमालिनि भगप्रिये भैरवीचामुण्डायोगिन्यादिशतकोटिगणपरिवृते प्रत्यक्षं परोक्षं मां द्विषतो जहि जहि नाशय नाशय त्रासय त्रासय मारय मारय उच्चाटय उच्चाटय स्तम्भय स्तम्भय विध्वंसय विध्वंसय हन हन त्रुट त्रुट विद्रावय विद्रावय छिन्धि छिन्धि पच पच शोषय शोषय मोहय मोहय उन्मूलय उन्मूलय भस्मीकुरु भस्मीकुरु दह दह क्षोभय क्षोभय हर हर प्रहर प्रहर पातय पातय मर्दय मर्दय दम दम मथ मथ स्फोटय स्फोटय जम्भय जम्भय भ्रामय भ्रामय सर्वभूतभयङ्करि सर्वजनवशङ्करि सर्वशत्रुक्षयङ्करि ओं ह्रीं ओं क्लीं ओं हूं ओं क्रों ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल कह कह हस हस राज्यधनायु:सुखैश्वर्यं देहि देहि दापय दापय कृपाकटाक्षं मयि वितर वितर छ्रीं स्त्रीं फ्रें हभ्रीं ट्रीं भ्रीं थ्रीं प्रीं क्रीं क्लीं ह्रां ह्रीं हूं मुण्डे सुमुण्डे चामुण्डे मुण्डमालिनि मुण्डावतंसिके मुण्डासने ग्लूं ब्लूं ज्लूं शवारूढे षोडशभुजे सोद्यते पाशपरशुनागचापमुद्गरशिवापोतखर्परनरमुण्डाक्षमालाकर्त्रीनानाङ्कुशशवचक्रत्रिशूलकरवाल-धारिणि स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर मम हृदि तिष्ठ तिष्ठ स्थिरा भव त्वं ऐं ओं स्वाहा स्हौ: क्लीं स्फ्रों खं खं खं खां खां खां (पदवी) हीं हीं हीं हूं हूं हूं जय जय विजय विजय फट् फट् फट् नम: स्वाहा ।

(दक्षाक्षरत्रुटिरिह कथं पूरणीय इति जिज्ञासाशान्तिः साधकैः सुधीभिः विचार्योहेन कर्तव्या ।)

......हे देवि ! इसके ऋषि कालाग्निरुद्र, छन्द जगती, देवी कामकला काली, बीज कूर्च बीज, कीलक स्मर बीज, शक्ति भूत बीज, तत्त्व शृणि है । यह मन्त्र सात अङ्गों वाला है ॥ ९०-१०३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकालसंहिता के कामकलाकाली खण्ड के त्रयोदश पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १३ ॥

चतुर्दशतमः पटलः

[कामकलाकाल्या अयुतक्षरमन्त्रोत्पत्तिकथा]

महाकाल उवाच—

मनोमन्त्रं कामकलाकाल्यास्त्वमयुताक्षरम् ।
पृष्टवत्यसि मां देवि तं चाहं नावदं त्वयि ॥ १ ॥
किञ्चित्कारणमस्त्यत्र तन्निशामय सादरम् ।
नातः परतरः कोऽपि मन्त्र उग्रोऽस्ति भूतले ॥ २ ॥
न चास्य वेत्ता नो जापी न स्मर्त्ता न च साधकः ।
नोद्धर्त्ता नोपदेष्टा च न प्रष्टा न जिघृक्षुकः ॥ ३ ॥
षट्स्वाम्नायेषु ये मन्त्राः प्रोक्ताः सन्ति वरानने ।
वर्तन्ते तेऽखिलाः सर्वनद्यम्बून्यर्णवे यथा ॥ ४ ॥
उत्पत्तिमयुताक्षर्य्यास्त्वमादौ शृणु सोत्सुका ।
ततः श्रोष्यसि तं मन्त्रमुग्रादुग्रतरं प्रिये ॥ ५ ॥

दश हजार अक्षर वाले मन्त्र की उत्पत्ति—महाकाल ने कहा—हे देवि! तुमने मुझसे कामकला काली के अयुताक्षर मन्त्र को पूछा है । उसे मैंने तुमको नहीं बतलाया इसमें कुछ कारण है, उसको आदर के साथ सुनो । इस पृथ्वीतल पर इससे बढ़कर उग्र कोई दूसरा मन्त्र नहीं है । इसका ज्ञाता जापक स्मर्त्ता साधक उद्धारक उपदेशक प्रष्टा और ग्रहणेच्छु (भी कोई) नहीं है । हे वरानने ! छहों आम्नायों में जो मन्त्र कहे गये हैं वे सब उसी प्रकार हैं जैसे समस्त नदियों के पानी समुद्र में (समाहित) रहते हैं । पहले तुम उत्साह के साथ अयुताक्षरी विद्या की उत्पत्ति सुनो । हे प्रिये ! इसके बाद उग्र से भी उग्रतर मन्त्र को सुनना ॥ १-५ ॥

अहं नारायणश्चापि कल्पे ऋष्यन्तराह्वये ।
सर्गादौ त्रिपुरघ्नेनास्मद्भक्त्या तोषमीयुषा ॥ ६ ॥
त्रैलोक्याकर्षणेनोपदिष्टौ स्यावो वरानने ।
शिक्षयित्वा विधानानि ध्यानपूजादिकानि हि ॥ ७ ॥
दत्ताभ्यनुज्ञौ गुरुणा मिथः सम्मन्त्र्य सत्वरम् ।
संसिषाधयिषू आवाम् मन्त्रराजं महत्तरम् ॥ ८ ॥
अगच्छाव रहो ज्ञात्वा पुष्करद्वीपमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षां च प्रसन्नां च चिकीर्षू तामहर्निशम् ॥ ९ ॥
तपावहे तपो घोरं दिव्यानां शरदां शतम् ।
ततः प्रसन्ना भगवत्यागत्य पुरतः स्थिता ॥ १० ॥

ऋष्यन्तर नामक कल्प में मैंने और नारायण ने सृष्टि के आदि में त्रिपुरारि को प्रसन्न किया। हे वरानने! हमारी भक्ति से प्रसन्न होकर उन्होंने हम दोनों को त्रैलोक्याकर्षण कवच का उपदेश दिया। इस मन्त्र का विधान ध्यान पूजा आदि की शिक्षा लेकर हम दोनों ने गुरु (=त्रिपुरारि) से आज्ञा प्राप्त की। शीघ्र ही आपस में परामर्श कर महत्तर मन्त्रराज की सिद्धि की इच्छा से एकान्त समझ कर उसको प्रसन्न और प्रत्यक्ष करने की इच्छा से हम दोनों उत्तम पुष्करद्वीप चले गये। वहाँ हम दोनों ने दिव्य सौ वर्षों तक रात-दिन घोर तपस्या की। इसके बाद प्रसन्न होकर भगवती आकर हमारे सामने खड़ी हो गयी ॥ ६-१० ॥

तां महोग्रतराकारां द्रष्टुमेव न शक्नुवः।
मीलिताक्षौ नम्रशीर्षावतिष्ठाव क्षणं प्रिये ॥ ११ ॥
भीतावावां परिज्ञायाम्बा सौम्यं वपुराददे।
तत उन्मील्य नेत्राणि पादयोरपताव हि ॥ १२ ॥
कराभ्यां सा समुत्थाप्य प्रार्थयेतां युवां वरम्।
इत्युवाच जगद्धात्री भक्तिप्रवणकन्धरौ ॥ १३ ॥
आवामवोचाव ततः कृताञ्जलिपुटौ शिवाम्।
देवि त्वयैव जगतां स्थितिसंहारकारकौ ॥ १४ ॥
कृतावावां त्वत्प्रसादात्प्राप्तयुद्धपराजयौ।
प्राप्तदेवाधिपत्यौ च स्वेच्छाकर्मविहारिणौ ॥ १५ ॥
ब्रह्माणं च तृणं मन्यावन्येषाञ्च वरप्रदौ।
किञ्चिदप्यवशिष्टं नावयोस्त्वत्करुणावशात् ॥ १६ ॥

हे प्रिये! महाभयङ्कर आकार वाली उस देवी को हम लोग (अपनी आँखों से) देखने में समर्थ नहीं हुए इसलिये आँख बन्द कर शिर झुका कर एक क्षण के लिये खड़े हो गये। हम लोगों को डरा हुआ जानकर अम्बा ने सौम्य रूप धारण किया। उसके बाद आँखों को खोलकर हम दोनों उसके पैरों पर गिर पड़े। उस जगत्धात्री ने दोनों हाथों से हमें उठाकर कहा—तुम दोनों वर माँगो। भक्ति से नम्र कन्धर वाले हम दोनों ने हाथ जोड़कर शिवा से कहा—हे देवि! तुम्हारे ही द्वारा हम दोनों संसार के संहारक एवं स्थितिकारक बनाये गये। आपकी कृपा से युद्ध में शत्रुओं के पराजय प्राप्त कर हम दोनों देवाधिपत्य प्राप्त कर इच्छानुसार कर्म करते हुए विहरण कर रहे हैं। ब्रह्मा को हम दोनों तिनके के बराबर समझते हैं और अन्य लोगों को वरदान देते हैं। आपकी कृपा से हम दोनों के लिये कुछ भी शेष नहीं है ॥ ११-१६ ॥

आवयोर्देवता त्वं हि देवेष्वावां च देवताः।
देवा देवा द्विजातीनां द्विजाः शेषस्य देवताः ॥ १७ ॥
वरं दित्सस्यावयोश्च तदेकं देहि नौ वरम्।
मूर्त्तीनां कतिभेदास्ते सौम्योग्राणां महेश्वरि ॥ १८ ॥

तान् परिज्ञातुमिच्छावः समन्त्रान् जगदम्बिके ।
एकस्यां तव मूर्त्तौ चोपासितायां धरेश्वरि ॥ १९ ॥
उपासितास्ता भवन्ति चण्डिके तद्वदावयोः ।
श्रुत्वा तदावयोर्वाक्यं स्मितं कृत्वावदच्छिवा ॥ २० ॥

तुम हम दोनों की देवता हो । हम दोनों शेष देवताओं के देवता हैं । वे देवतागण ब्राह्मणों के देव हैं और ब्राह्मणलोग शेष (ब्राह्मणेतर) लोगों के देवता हैं । यदि आप हमदोनों को वर देना चाहती हैं तो हम दोनों को एक वर दीजिये । हे जगदम्बिके ! आपकी सौम्य और उग्र मूर्त्तियों के कितने भेद हैं उनको मन्त्रों के सहित हम दोनों जानना चाहते हैं । हे धरा की ईश्वरि! हे चण्डिके! आपकी एक मूर्त्ति की उपासना होने पर उन सबकी उपासना हो जाती है उसी प्रकार हम दोनों की (एक मूर्त्ति की उपासना होने पर हमारी भी समस्त मूर्त्तियों की उपासना हो जाती है) । हम दोनों के वाक्य को सुनकर शिवा ने मुस्कुरा कर कहा ॥ १७-२० ॥

महाकाल्युवाच—

अन्तो न मम मूर्त्तीनां सौम्योग्राणां सुरेश्वरौ ।
न च तन्मन्त्रभेदानां सङ्ख्यास्ति जगतीतले ॥ २१ ॥
आगमादिपुराणेषु याः काश्चिच्छिवशक्तयः ।
श्रूयन्ते वाथ दृश्यन्ते मूर्त्तयो हि ममैव ताः ॥ २२ ॥
सुरैर्भवदिदृक्षार्थं तत्र काश्चन मूर्त्तयः ।
मयैव निर्मिता देवौ सौम्याग्राश्चित्स्वरूपया ॥ २३ ॥
रक्षोदानवदैत्यानां मारणाय भयानकाः ।
सौम्याः परशिवस्यापि मोहार्थमुपपादिताः ॥ २४ ॥
एता मूर्त्यनुकारिण्यः कृताश्चान्या सुमूर्त्तयः ।
सौम्यानां कोटिमूर्त्तीनां सौन्दर्य्यमयताजुषाम् ॥ २५ ॥
या मूर्त्तिर्मम विख्याता नाम्ना त्रिपुरसुन्दरी ।
सर्वासामेव मध्ये सा विज्ञेया परमावधिः ॥ २६ ॥

महाकाली ने कहा—हे सुरेश्वरद्वय! इस धरती तल पर मेरी सौम्य और उग्र मूर्त्तियों का अन्त नहीं है । उसी प्रकार उन (मूर्त्तियों) के मन्त्रभेदों की सङ्ख्या भी नहीं है । आगम आदि तथा पुराणों में जो कोई शिवशक्तियाँ सुनी या देखी जाती हैं वे सब मेरी ही मूर्त्तियाँ हैं । देवताओं के द्वारा भव (=शिव) को देखने के लिये कुछ मूर्त्तियों का निर्माण चित्स्वरूपा मैंने ही किया है । राक्षस दानव दैत्य को मारने के लिये भयानक तथा परशिव को मोह में डालने के लिये सौम्य मूर्त्तियों को मैंने ही बनाया । इन मूर्त्तियों की अनुकृति अन्य मूर्त्तियाँ भी बनायी गयीं । सौन्दर्य से भरी करोड़ों सौम्यमूर्त्तियों में जो प्रसिद्ध मेरी मूर्त्ति है जिसका नाम त्रिपुरसुन्दरी है वह सबके मध्य में अन्तिम सीमा है (अर्थात् उससे बढ़कर कोई मूर्त्ति नहीं है) ॥ २१-२६ ॥

उग्रावन्ध्या मूर्त्तयो मे सन्ति कोट्यष्टसम्मिताः ।
घोरघोरतराकाराः शक्यन्ते या न वीक्षितुम् ॥ २७ ॥
चामुण्डा भैरवी भीमा गुह्यकाली च दक्षिणा ।
छिन्नमस्ता चैकजटा कालसङ्कर्षणी तथा ॥ २८ ॥
श्मशानकाली कोरङ्गी भद्रकाली च कुब्जिका ।
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥ २९ ॥
चण्डा चण्डवती चण्डचण्डा चण्डी च चण्डिका ।
वाभ्रवी शिवदूती च कात्यायन्यर्द्धमस्तका ॥ ३० ॥
काल्योऽन्याः पञ्चपञ्चाशन् मुख्याः सर्वागमेषु याः ।
सतीषु तासु घोरासु मूर्त्तिषु प्रथितासु मे ॥ ३१ ॥
नहि कामकलाकाली सदृश्युग्रा जगत्त्रये ।
उग्राणां मम मूर्त्तीनामियं हि परमावधिः ॥ ३२ ॥

मेरी आठ करोड़ मूर्त्तियाँ उग्र एवं अवन्ध्य हैं । घोर घोरतर आकार की ये मूर्त्तियाँ देखी नहीं जा सकती । चामुण्डा भैरवी भीमा गुह्यकाली दक्षिणाकाली छिन्नमस्ता एकजटा कालसङ्कर्षिणी श्मशानकाली कोरङ्गी भद्रकाली कुब्जिका उग्रचण्डा प्रचण्डा चण्डोग्रा चण्डनायिका चण्डा चण्डवती चण्डचण्डा चण्डी चण्डिका बाभ्रवी शिवदूती कात्यायनी अर्धमस्तका तथा अन्य पचपन मुख्य कालियाँ जो समस्त आगमों में कही गयी हैं मेरी उन प्रसिद्ध घोर मूर्त्तियों में कामकला काली के समान उग्र मूर्त्ति त्रिलोक में नहीं है । मेरी उग्र मूर्त्तियों में यह (कामकला काली) अन्तिम सीमा है ॥२७-३२॥

सौम्योग्रा मूर्त्तयः सन्ति यावत्यो मे सुरेश्वरौ ।
तावतीनामपि ध्यानं मन्त्रः पूजा च वर्त्तते ॥ ३३ ॥
नान्योऽस्ति जगतीमध्ये तासां वेत्ता शिवं विना ।
अत एव षडाम्नायान् परिज्ञाय चकार सः ॥ ३४ ॥
तत्तन्मन्त्रध्यानभेदन्यासपूजाविधीनपि ।
प्रोक्तवान् स हि सर्वज्ञः सर्वं विज्ञाय तत्त्वतः ॥ ३५ ॥
उत्तरोर्द्ध्वाधःप्रतीचीपूर्वदक्षिणसञ्ज्ञकाः ।
आम्नायास्तु षडेवैते शिववक्त्रविनिर्गताः ॥ ३६ ॥
यामला डामरास्तन्त्रसंहितास्तस्य मध्यगाः ।
स्वस्वभक्तिविशेषेण तत्तत्कार्यादिसिद्धये ॥ ३७ ॥
दैवतैर्ऋषिभिः सिद्धैरसुरैर्दैत्यदानवैः ।
गुह्यकैरप्सरोभिश्च किन्नरोरगराक्षसैः ॥ ३८ ॥
सोमसूर्य्यान्वयोद्भूतैर्भूपालैरितरैर्नरैः ।
दृष्टप्रतीतिभिर्मर्त्यैः सा सा मूर्त्तिरुपास्यते ॥ ३९ ॥

हे सुरेश्वरद्वय ! मेरी जितनी सौम्य और उग्र मूर्त्तियाँ हैं उन सबके ध्यान मन्त्र

और पूजा (पृथक्-पृथक्) हैं । शिव को छोड़कर इस संसार में उनका कोई दूसरा ज्ञाता नहीं है । ऐसा जानकर ही उन (शिव) ने छह आम्नायों का प्रवर्त्तन किया । उन सर्वज्ञ (शिव) ने सबको तत्त्वतः जानकर तत्तत् मन्त्र ध्यान भेद न्यास पूजा विधि को बतलाया । उत्तर ऊर्ध्व अधः पश्चिम पूर्व और दक्षिण नाम वाले छह आम्नाय शिव के मुख से ही निकले हैं । यामल डामर तन्त्र संहितायें उसके मध्यवर्त्ती हैं । देवता ऋषि सिद्ध असुर दैत्य दानव गुह्यक अप्सरायें किन्नर उरग राक्षस चन्द्रवंशी सूर्यवंशी राजा एवं अन्य लोग जो कि प्रत्यक्षवादी हैं । वे सब तत्तत् कार्य आदि की सिद्धि के लिये उस-उस मूर्त्ति की उपासना करते हैं ॥ ३३-३९ ॥

युगशेषे कलौ क्षीणे नरा अल्पायुषोऽलसाः ।
निरुत्साहा दरिद्राश्च भक्तिहीनाः कुमार्ग(गाः) ॥ ४० ॥
आसामुपासका नैव भविष्यन्ति विशेषतः ।
ध्यानमन्त्रादिकं तासां तदा लुप्तं भविष्यति ॥ ४१ ॥
तासां सौम्योग्रमूर्त्तीनां भिन्नाम्नायजुषां सदा ।
एकत्रावस्थितिर्नैव तिमिरालोकयोरिव ॥ ४२ ॥
उपासितायामेकस्यां कथं ताः समुपासिताः ।
भवेयुरित्यपि महद्दुर्घटं प्रतिभाति मे ॥ ४३ ॥
ममैको वर्तते किन्तु महामन्त्रोऽयुताक्षरः ।
षडाम्नायस्थिता मन्त्राः प्रायशः सन्ति तत्र हि ॥ ४४ ॥

युगों के शेष कलियुग के क्षीण होने पर अल्पायु आलसी निरुत्साह दरिद्र भक्तिहीन कुमार्गगामी मनुष्य इनके उपासक नहीं होंगे तब इन मूर्त्तियों का ध्यान मन्त्र आदि लुप्त हो जायगा । भिन्न-भिन्न आम्नायों से सम्बद्ध उन सौम्य और उग्र मूर्त्तियों का अन्धकार और प्रकाश की भाँति एक स्थान और एक काल में अवस्थान नहीं होगा । इस प्रकार एक की उपासना होने पर उन सबकी उपासना कैसे होगी यह मुझे महा दुर्घट लग रहा है । किन्तु दश हजार अक्षरों वाला एक मेरा महामन्त्र है । छह आम्नायों में स्थित प्रायः समस्त मन्त्र उसमें है ॥ ४०-४४ ॥

सौम्योग्राणां च मूर्त्तीनां भेदो नामानि सन्ति वै ।
एतत्परो न मन्त्रोऽस्ति क्वापि त्रिजगतीतले ॥ ४५ ॥
महामहोग्रोग्रतरः सर्वसिद्ध्येकसाधकः ।
त्रैलोक्याकर्षणश्चायं तुल्यावेतौ मतौ मम ॥ ४६ ॥
नदीजलौघा जलधिं यथा सर्वे विशन्ति हि ।
षडाम्नायस्थिताः मन्त्रास्तथैवानुविशन्ति तम् ॥ ४७ ॥
मेरुर्यथा पर्वतानां गङ्गा च सरितां यथा ।
तीर्थानां च यथा काशी शस्त्राणामशनिर्यथा ॥ ४८ ॥
अश्वमेधोऽध्वराणां च तपस्यानामुपोषणम् ।

समीरणो बलवतां कामधेनुर्गवां यथा ॥ ४९ ॥
शिवो यथा देवतानां देवीनाञ्च यथाप्यहम् ।
सर्वेषामेव मन्त्राणां तथायमयुताक्षरः ॥ ५० ॥
आराधितायामेतेन मन्त्रेणैव मयि ध्रुवम् ।
सर्वा आराधिता हि स्युः षडाम्नायस्य शक्तयः ॥ ५१ ॥

उसमें सौम्य और उग्र मूर्त्तियों के नाम तथा भेद हैं । तीनों लोकों में इससे बढ़ कर मन्त्र कहीं भी नहीं है । महामहा उग्रतर एवं समस्त सिद्धियों का एकमात्र साधक यह मन्त्र तथा त्रैलोक्याकर्षण कवच दोनों मेरी दृष्टि में समान हैं । जिस प्रकार नदी का समस्त जलसमूह समुद्र में प्रविष्ट हो जाता है उसी प्रकार छहों आम्नायों में स्थित मन्त्र इस (एक मन्त्र) में प्रविष्ट हैं । जिस प्रकार पर्वतों में सुमेरु, नदियों में गङ्गा, तीर्थों में काशी, शस्त्रों में वज्र, यज्ञों में अश्वमेध, तपस्याओं में उपवास, बलवानों में वायु, गायों में कामधेनु, देवताओं में शिव और देवियों में मैं हूँ उसी प्रकार मन्त्रों में यह अयुताक्षर (मन्त्र सर्वोपरि) है । इस मन्त्र के द्वारा मेरे आराधित होने पर निश्चित रूप से षडाम्नाय की समस्त शक्तियाँ आराधित हो जाती हैं ॥ ४५-५१ ॥

आरिराधयिषू चेन्मां सौम्योग्रास्ताश्च देवताः ।
कुरुतं यत्नमेतस्मिन् मालामन्त्रेऽयुताक्षरे ॥ ५२ ॥
प्रविशन्ति यथेभानां पादेऽन्येषां पदानि हि ।
यथेतरेषां हि पदे विशेदिभपदं न च ॥ ५३ ॥
मन्त्राः सर्वे तथामुष्मिन् प्रविशन्ति सुरोत्तमौ ।
न च प्रवेशः क्वाप्यस्य प्रकारैरपि भूरिभिः ॥ ५४ ॥
बीजकूटोपकूटाश्च यावन्तश्चागमोद्भूताः ।
ते सर्वे तत्र तिष्ठन्ति मयि त्रिभुवनं यथा ॥ ५५ ॥
आम्नायानां यथा षण्णामुपदेशो भवेत्तदा ।
अस्याधिकारी भवति नो चेन्नार्हत्यमुं मनुम् ॥ ५६ ॥
महिमानममुष्याहं वेद्मि वेद शिवोऽथवा ।
गुरूपदेशाधिगतेस्तन्मन्त्रस्य नरस्य हि ॥ ५७ ॥
पुरस्तिष्ठामि सततं भवामि वशवर्त्तिनी ।
यथाकर्षन्ति सूत्रेण खगमाराद्विहङ्गमम् ॥ ५८ ॥
तथामुनैव मन्त्रेण मामाकर्षन्ति साधकाः ।
इत्येतत्कथितं यत्तद्भवद्भ्यां पृष्टवत्यहम् ॥ ५९ ॥
समासाद्विस्तराद् वक्तुं मम शक्तिर्न विद्यते ।

यदि तुम दोनों मेरी तथा सौम्य और उग्र उन देवताओं की आराधना करना चाहते हो तो इस अयुताक्षर मालामन्त्र के विषय में प्रयत्न करो । जिस प्रकार हाथी के पैर में सभी के पैर समाहित हो जाते हैं किन्तु हाथी का पैर किसी के पैर में

समाहित नहीं होता उसी प्रकार हे सुरोत्तमद्वय! समस्त मन्त्र इस मन्त्र में प्रविष्ट हो जाते हैं किन्तु अनेक प्रकार से भी यह मन्त्र किसी में भी प्रविष्ट नहीं हो सकता। आगमशास्त्र में जितने भी बीज कूट उपकूट उद्धृत हैं वे सब इसमें उसी प्रकार स्थित हैं जैसे मेरे अन्दर त्रिभुवन। जब किसी को छह आम्नायों को उपदेश हो जाता है तब वह इसका अधिकारी होता है नहीं तो इस मन्त्र (के उपदेश) की योग्यता नहीं रखता। इस मन्त्र की महिमा को मैं जानता हूँ अथवा शिव जानते हैं। गुरु के उपदेश से ज्ञात इस मन्त्र वाले पुरुष के समक्ष मैं निरन्तर रहती हूँ। उसकी वशवर्त्तिनी हो जाती हूँ। जिस प्रकार रस्सी से आकाशचारी पक्षी को लोग पास में खींच लेते हैं। वैसे ही साधक इस मन्त्र के द्वारा मुझे आकृष्ट कर लेते हैं। इस प्रकार जो आप दोनों ने मुझसे पूछा उसे मैंने संक्षेप में बतला दिया विस्तार से वर्णन करने की शक्ति मुझमें नहीं है ॥ ५२-६० ॥

महाकाल उवाच—

श्रुत्वा देव्या वचः सर्वमावाभ्यां पुनरीरितम् ॥ ६० ॥
यदि देवि प्रसन्नासि तदा ह्युपदिश स्वयम्।
इति विज्ञापिता देवी प्राहावां सस्मितानना ॥ ६१ ॥
कृताञ्जलिपुटौ देवौ गदत्या गदतां मनुम्।
इति देव्या वचः श्रुत्वा तथैवाकरवावहि ॥ ६२ ॥
एवं देव्युपदिश्यावां क्षणादन्तर्द्धिमागता।
एवं प्रकारेणावाभ्यां लब्धोऽयमयुताक्षरः ॥ ६३ ॥
अदाद्विष्णुर्नारदाय सनकाय च तोषितः।
दुर्वासाः कश्यपो दत्तात्रेयश्च कपिलस्तथा ॥ ६४ ॥
चत्वार एते मच्छिष्या मता मन्त्रस्य पार्वति।
एतैः शिष्यप्रशिष्याश्च बहवो विहिताः स्वकाः ॥ ६५ ॥

महाकाल ने कहा—देवी के पूरे वाक्य को सुनने के बाद हम दोनों ने फिर कहा—हे देवि! यदि तुम हमारे ऊपर प्रसन्न हो तो स्वयं उपदेश करो। ऐसा कहने पर प्रसन्नमुख देवी ने हम दोनों से कहा कि—हे देवद्वय! मन्त्र बोलती हुई मेरे पीछे-पीछे मन्त्र बोलो। देवी के इस वचन को सुनकर हम दोनों ने वैसा ही किया। इस प्रकार देवी ने हम दोनों को उपदेश देकर एक क्षण में अन्तर्हित हो गयी। इस प्रकार हम दोनों ने इस अयुताक्षर मन्त्र को प्राप्त किया। (आराधना से सन्तुष्ट) विष्णु ने इसे नारद और सनक को दिया। हे पार्वति! दुर्वासा कश्यप दत्तात्रेय और कपिल ये चार इस मन्त्र के सन्दर्भ में मेरे शिष्य माने गये हैं। इन्होंने अपने बहुत से शिष्य प्रशिष्य बनाये ॥ ६०-६५ ॥

इत्थं परम्पराप्राप्तो ह्यस्मिंल्लोके प्रतिष्ठितः।
नाम्ना मृत्युञ्जयप्राणो मालामन्त्रोऽयुताक्षरः ॥ ६६ ॥

एवमेतस्य महिमा वर्णितुं केन शक्यते ।
यत्रैवमवदद् देवी तत्रान्यस्य हि का कथा ॥ ६७ ॥
शाम्भवाद्याश्च ये कूटास्ताराद्या बीजसञ्चयाः ।
सर्वे तत्रैव तिष्ठन्ति ब्रह्मणीव जगत्त्रयम् ॥ ६८ ॥
यथोर्णनाभिः सूत्राणि वमत्यपि गिलत्यपि ।
तथैवायं सृजत्यत्ति विश्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ ६९ ॥
जन्मकोटिसहस्राणां लक्षेणापि न लभ्यते ।
विना देवीप्रसादेन तथैवानुग्रहं गुरोः ॥ ७० ॥
जिघृक्षुरिममध्यायं पठित्वा प्रथमं प्रिये ।
ततो मृत्युञ्जयप्राणं शनैः स्पष्टमुदीरयेत् ॥ ७१ ॥
समाप्य सकलं मन्त्रं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ।
मृत्युञ्जयप्राणदात्रे सर्वस्वं गुरवेऽर्पयेत् ॥ ७२ ॥
अथवा येन सन्तोषं गुरुर्व्रजति तच्चरेत् ।

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां अयुताक्षर-मन्त्रप्रशंसाकथनं नाम चतुर्दशतमः पटलः ॥ १४ ॥

इस प्रकार परम्पराप्राप्त यह अयुताक्षर मालामन्त्र इस लोक में मृत्युञ्जयप्राण नाम से प्रतिष्ठित हुआ । इस प्रकार इस मन्त्र की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है । जहाँ देवी ने ऐसा कहा वहाँ दूसरे की क्या बात । शाम्भव आदि कूट तार आदि बीजसमूह सबके सब उसी में स्थित हैं जैसे कि ब्रह्म में तीनों लोक । जिस प्रकार मकड़ी तन्तु को उगलती और निगलती है उसी प्रकार यह मन्त्र स्थावर जगमात्मक विश्व की सृष्टि और संहार करता है । बिना देवी की कृपा और गुरु के अनुग्रह के यह मन्त्र करोड़ हजार लाख जन्म में भी नहीं प्राप्त हो सकता । हे प्रिये! मन्त्र का ग्रहणेच्छु योगी साधक पहले इस अध्याय को पढ़कर मृत्युञ्जयप्राण का धीरे-धीरे स्पष्ट उच्चारण करे । सम्पूर्ण मन्त्र को समाप्त कर पृथ्वी पर दण्ड के समान नत होकर मृत्युञ्जयप्राण के दाता गुरु को (यह पाठ) अर्पित कर दे । अथवा गुरु जिससे सन्तुष्ट हो वह करे ॥ ६६-७३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकाल-संहिता के कामकलाकाली खण्ड के अयुताक्षरमन्त्रप्रशंसाकथन नामक चतुर्दश पटल की आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी कृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १४ ॥

पञ्चदशतमः पटलः

[कामकलाकाल्या अयुतक्षरमन्त्रनिर्देशः]

महाकाल उवाच—

शृणुष्व हिमवत्पुत्रि षष्ठकाल्ययुताक्षरम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥ १ ॥
तारवाग्भवमायाश्च लक्ष्मीर्ह्रीः स्मर एव च ।
क्रोधश्च योगिनी चैव वधूश्च शाकिनी तथा ॥ २ ॥
अङ्कुशं च प्रासादं च क्षौंकारं पाशमेव च ।
स्फ्रोंकारं च समुच्चार्य्य वह्निजायां ततो वदेत् ॥ ३ ॥
ततः कामकलाकालि मायाकाल्यौ ततो वदेत् ।
मायात्रयं समुच्चार्य क्रोधद्वयं समुच्चरेत् ॥ ४ ॥
दक्षिणकालिके चैव क्रोधद्वयं तथा पुनः ।
भुवनेशीत्रयं चोक्त्वा कालीत्रयं द्विठस्तथा ॥ ५ ॥
ततो दक्षिणकालिके वाक्काल्यौ च समाहरेत् ।
त्रपा क्रोधाबला चैव शाकिनीबीजमुद्धरेत् ॥ ६ ॥
वधूबीजं योगिनीं च ख्फ्रेंकारं भद्रकाल्यपि ।
हूंद्वितयं समुच्चार्य्य चास्त्रद्वयं नमः पुनः ॥ ७ ॥
वह्निजाया भद्रकालि...

महाकाल ने कहा—हे हिमालय की पुत्रि ! षष्ठ[1] काली के अयुताक्षर मन्त्र को सुनो जिसके स्मरणमात्र से समस्त सिद्धि होती है—

तार वाग्भव माया लक्ष्मी लज्जा काम क्रोध योगिनी वधू शाकिनी अङ्कुश प्रासाद बीज के बाद क्षौंकार फिर पाश बीज फिर स्फ्रोंकार का उच्चारण कर वह्निजाया कहे (मन्त्र—ओं ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें क्रों हौं क्षौं आं स्फ्रों स्वाहा) । इसके बाद 'कामकलाकालि मायाकालि' कहकर तीन बार माया बीज और दो बार क्रोध बीज का उच्चारण करे । फिर 'दक्षिणकालिके' उसके बाद क्रोध बीज दो बार फिर भुवनेशी बीज और काली बीज तीन-तीन बार 'ठः' को दो बार फिर 'दक्षिणकालिके'

---

१. काली के नव प्रकार हैं—१.दक्षिणकाली, २.भद्रकाली, ३.श्मशानकाली, ४.कालकाली, ५.गुह्यकाली, ६.कामकलाकाली, ७.धनकाली, ८.सिद्धिकाली, ९.चण्डकाली । द्रष्टव्य—म.का.सं.का. खं. १।४२-४४ । तारं माये क्रोधौ तथा द्वादशकाली की भी चर्चा शास्त्रों में मिलती है ।

कहे । पुन: वाक् बीज काली बीज कहे । फिर त्रपा क्रोध अबला शाकिनी वधू योगिनी बीज फिर 'ख्फ्रें' फिर 'भद्रकालि' उसके बाद दो बार 'हूँ' फिर दो अस्त्र और नम: तथा वह्निजाया तथा भद्रकालि कहे (मन्त्र—कामकलाकालि मायाकालि ह्रीं ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ दक्षिणकालिके हूँ ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं ठ: ठ: दक्षिणकालिके ऐं क्रीं ह्रीं हूँ स्त्रीं फ्रें स्त्रीं छ्रीं ख्फ्रें भद्रकालि हूं हूं फट् फट् नम: स्वाहा भद्रकालि) ॥ १-८ ॥

...तारं माये क्रोधौ तथा ।
भगवति ततः प्रोच्य ततः श्मशानकाल्यपि ॥ ८ ॥
नरकङ्कालमालाधारिणि च ततो वदेत् ।
भुवनेशी कालीबीजं कुणपभोजिनि तथा ॥ ९ ॥
शाकिनीद्वितयं प्रोच्य ततो वह्नितिम्बिनी ।

'तार दो माया दो क्रोध फिर 'भगवति श्मशानकालि नरकङ्कालमालाधारिणि' कहे। भुवनेश्वरी काली बीज को कहकर 'कुणपभोजिनि' कहने के बाद शाकिनी बीज दो बार कहकर 'वह्नितिम्बिनी' कहे (मन्त्र—भद्रकालि ओं ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ भगवति श्मशानकालि नरकङ्कालमालाधारिणि ह्रीं क्रीं कुणपभोजिनि फ्रें फ्रें स्वाहा) ॥ ८-१० ॥

श्मशानकालि सम्प्रोच्य कालीक्रोधौ तथोच्चरेत् ॥ १० ॥
मायावधूरमाकामफट्स्वाहा कालकालि च ।
तारं च शाकिनी चैव सिद्धिकरालि च वदेत् ॥ ११ ॥
मायाबीजं समुच्चार्य योगिनीबीजमुच्चरेत् ।
क्रोधवधूशाकिन्यश्च हृल्लेखा वह्निवल्लभा ॥ १२ ॥
गुह्यकालि समुच्चार्य्य...

'श्मशानकालि' कहकर काली क्रोध माया वधू रमा काम बीजों के बाद 'फट् स्वाहा' कहे । 'कालकालि' तार शाकिनी 'सिद्धिकरालि' मायाबीज योगिनीबीज क्रोध वधू शाकिनी हृल्लेखा अग्निवल्लभा तथा 'गुह्यकालि' कहे (मन्त्र इस प्रकार है— श्मशानकालि क्रीं हूं ह्रीं स्त्रीं श्रीं क्लीं फट् स्वाहा कालकालि ओं फ्रें सिद्धिकरालि ह्रीं छ्रीं हूँ स्त्रीं फ्रें नम: स्वाहा गुह्यकालि) ॥ १०-१३ ॥

...तारमन्त्रद्वयं चरेत् ।
हूङ्कारं ह्रींकारं चैव फ्रेंकारं छ्रींकारं पुनः ॥ १३ ॥
स्त्रीकारं च रमाबीजमङ्कुशं हृदयं वदेत् ।
ङेऽन्ता धनकालि च विकरालरूपिण्यपि ॥ १४ ॥
सम्बोधनान्ता बोद्धव्या सर्वत्रैव सुरेश्वरी ।
धनं चोक्त्वा देहिद्वयं दापय दापयेति च ॥ १५ ॥
क्षेत्रपालं तथोच्चार्य इन्द्रस्वरविभूषितम् ।
बिन्दुनादसमायुक्तमङ्कुशं पाशमेव च ॥ १६ ॥
मायाक्रोधहृदां द्वे चास्त्रद्वे वह्निवल्लभा ।
ततो धनकालिके च...

'गुह्यकालि' कहकर तार मन्त्र को दो बार कहे । फिर हूं ह्रीं फ्रें छ्रीं स्त्रीं रमाबीज अङ्कुश और हृदय कहे। 'धनकालि' को चतुर्थ्यन्त और 'विकरालरूपिणी' तथा 'सुरेश्वरी' को सम्बोधनान्त कहकर 'धनं' कहने के बाद 'देहि' को दो बार फिर 'दापय दापय' कहे । 'क्षेत्रपाल' बीज को इन्द्रस्वर (=सोलह स्वर) से विभूषित एवं विन्दुनाद से समायुक्त कर अङ्कुश पाश माया क्रोध के बाद हृदय और अस्त्र को दो बार फिर अग्निवल्लभा तथा 'धनकालि' कहे (मन्त्र इस प्रकार है—गुह्यकाली ओं औं हूं ह्रीं फ्रें छ्रीं स्त्रीं श्रीं क्रों नमो धनकाल्यै विकरालरूपिणि सुरेश्वरि धनं देहि देहि दापय दापय क्षं क्षां क्षिं क्षीं क्षुं क्षूं क्षृं क्षॄं क्ष्लृं क्ष्लॄं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्रों क्रों आं ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ नमो नमः फट् फट् स्वाहा धनकालि) ॥ १३-१७ ॥

...तारवाग्भवमन्मथाः ॥ १७ ॥
लज्जाक्रोधौ सिद्धिकाल्यै हृदयं सिद्धिकालि च ।
ततो मायां समुच्चार्य्य वदेच्चण्डाट्टहासिनि ॥ १८ ॥
ततो जगद्ग्रसनकारिणि तु समुच्चरेत् ।
नरमुण्डमालिनि च प्रवदेच् चण्डकालिके ॥ १९ ॥
कामरमाक्रोधानुक्त्वा शाकिनी त्वङ्गनापि च ।
योगिनी फट्द्वयं प्रोच्य वह्निस्त्री चण्डकालिके ॥ २० ॥

'धनकालिके' तार वाग्भव मन्मथ लज्जा क्रोध को कहने के बाद 'सिद्धिकाल्यै' फिर हृदय तत्पश्चात् 'सिद्धिकालि' फिर माया का उच्चारण कर 'चण्डाट्टहासिनि' कहे । इसके बाद 'जगद्ग्रसनकारिणि नरमुण्डमालिनि चण्डकालिके' के बाद काम रमा क्रोध शाकिनी अङ्गना योगिनी बीजों को कहे । फिर दो 'फट्' कहकर अग्निस्त्री तथा 'चण्डकालिके' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—धनकालिके ओं ऐं क्लीं ह्रीं हूं सिद्धि-काल्यै नमः सिद्धिकालि ह्रीं चण्डाट्टहासिनि जगद्ग्रसनकारिणि नरमुण्डमालिनि चण्ड-कालिके क्लीं श्रीं हूँ फ्रें स्त्रीं छ्रीं फट् फट् स्वाहा चण्डकालिके) ॥ १७-२० ॥

नमः कमलवासिन्यै स्वाहालक्ष्मि तथोच्चरेत् ।
तारं च लक्ष्मीबीजं च माया च कमला पुनः ॥ २१ ॥
कमले च ततश्चोक्त्वा प्रवदेत्कमलालये ।
प्रसीद द्वितयं चोक्त्वा रमा लज्जा रमा पुनः ॥ २२ ॥
महालक्ष्म्यै नमः प्रोच्य महालक्ष्मि मायां वदेत् ।
नमो भगवति चोक्त्वा माहेश्वरि ततो वदेत् ॥ २३ ॥
अन्नपूर्णे वह्निजाया अन्नपूर्णे तथोच्चरेत् ।

'नमः कमलवासिन्यै स्वाहा लक्ष्मि' कहे । पुनः तार लक्ष्मीबीज माया कमलाबीज फिर 'कमले कमलालये' कहकर 'प्रसीद' को दो बार कहने के बाद रमा लज्जा रमा बीज पुनः 'महालक्ष्म्यै महालक्ष्मि' मायाबीज कहे। फिर 'नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे' के बाद वह्निजाया कहे (मन्त्र—चण्डकालिके नमः कमलवासिन्यै स्वाहा

लक्ष्मि ओं श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद स्त्रीं ह्रीं स्त्रीं महालक्ष्म्यै महालक्ष्मि ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा अन्नपूर्णे) ॥ २१-२४ ॥

तारमायाक्रोधान् प्रोच्य उत्तिष्ठ पुरुषि वदेत् ॥ २४ ॥
किं स्वपिषि भयं चोक्त्वा ततो मे समुपस्थितम् ।
यदि शक्यमशक्यं वा क्रोधदुर्गे ततो वदेत् ॥ २५ ॥
भगवति ततश्चोक्त्वा शमय वह्निसुन्दरी ।

तार माया क्रोध कहकर 'उत्तिष्ठ पुरुषि किं' स्वपिषि भयं से समुपस्थितं यदि शक्यमशक्यं वा' कहने के बाद 'क्रोधदुर्गे' कहे। इसके बाद 'भगवति शमय' कहकर वह्निसुन्दरी कहे। (मन्त्र—अन्नपूर्णे ओं ह्रीं हूँ उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं में समुपस्थितं यदि शक्य मशक्यं वा क्रोधदुर्गे भगवति शमय स्वाहा) ॥ २४-२६ ॥

क्रोधलज्जातारानुक्त्वा वनदुग्र्गे मायां वदेत् ॥ २६ ॥
स्फुर द्वे प्रस्फुर द्वे च घोरघोरतरेत्यपि ।
तनुरूपे समुच्चार्य्य चट द्वे प्रचटद्वयम् ॥ २७ ॥
कह कह रम रम बन्ध बन्ध ततो वदेत् ।
घातय द्वितयं चोक्त्वा क्रोधमस्त्रं ततः स्मरेत्॥ २८ ॥
ततश्च विजयाघोरे माया पद्मावति वदेत् ।
वह्निजायां ततः स्मृत्वा ततः पद्मावति स्मरेत्॥ २९ ॥
महिषमर्दिनि स्वाहा महिषमर्दिनि स्मरेत् ।

क्रोध लज्जा तार को कहकर 'वनदुर्गे' फिर माया बीज फिर 'स्फुर और प्रस्फुर' को दो-दो बार 'घोरघोरतरतनुरूपे' कहकर 'चट प्रचट' को दो-दो बार कहकर कह कह 'रम रम बन्ध बन्ध' कहे। 'घातय' को दो बार कहकर क्रोध और अस्त्र कहे। इसके बाद 'विजयाघोरे' फिर मायाबीज फिर 'पद्मावति महिषमर्दिनि स्वाहा महिष-मर्दिनि' कहे। (मन्त्र—हूँ ह्रीं ओं वनदुर्गे ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोरघोरतरतनु-रूपे चट चट प्रचट प्रचट कह कह रम रम बन्ध बन्ध घातय घातय हूँ फट् विजया-घोरे ह्रीं पद्मावति स्वाहा पद्मावति महिषमर्दिनि स्वाहा महिषमर्दिनि) ॥ २६-३० ॥

तारं चोक्त्वा दुर्गे द्वयं रक्षिणि वह्निकामिनी ॥ ३० ॥
जय दुर्गे समुच्चार्य तारमाये समुच्चरेत् ।
दुं दुर्गायै स्वाहा चोक्त्वा वाङ्मायाविष्णुवल्लभाः ॥ ३१ ॥
तारं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि संस्मरेत् ।
सर्वस्त्रीपुरुषेत्युक्त्वा वशङ्करि ततो वदेत् ॥ ३२ ॥
सर्वदुष्टमृगेत्युक्त्वा वशङ्करि ततो वदेत् ।
सर्वग्रहवशङ्करि सर्वसत्त्ववशङ्करि ॥ ३३ ॥
सर्वजनमनोहरि सर्वमुखरञ्जिनि च ।
सर्वराजवशङ्करि ततः स्मरेच्च साधकः ॥ ३४ ॥

सर्वलोकममुं मे वशमानय ततो वदेत् ।
वह्निस्त्री च तथा...

'महिषमर्दिनि' और तार को कहकर 'दुर्गे' दो बार 'रक्षिणि' फिर वह्निकामिनी कहे । फिर 'जयदुर्गे' कहकर तार और माया बीज का उच्चारण करे । 'दुं दुर्गायै स्वाहा' कहकर वाणी माया विष्णुवल्लभा तार 'नमो भगवति मातङ्गेश्वरि' कहे । 'सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगसर्वग्रहवशङ्करि सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वजनमनोहरि सर्वमुख-रञ्जिनि सर्वराजवशङ्करि सर्वलोकं (अमुं) में वशमानय' कहने के बाद वह्निस्त्री कहे । (मन्त्र—महिषमर्दिनि ओं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा जयदुर्गे ओं ह्रीं दुं दुर्गायै स्वाहा ऐं ह्रीं श्रीं ओं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वग्रहवशङ्करि सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वजनमनोहरि सर्वमुखरञ्जिनि सर्वराजवशङ्करि सर्वलोकममुं मे वशमानय स्वाहा) ॥ ३०-३५ ॥

...राजमातङ्गि साधकोत्तमः ॥ ३५ ॥
तथोच्छिष्टमातङ्गिनि चान्ते क्रोधबीजं स्मरेत् ।
एवं मायां ततस्तारं ततो मन्मथमेव च ॥ ३६ ॥
वह्निजायोच्छिष्टेत्युक्त्वा मातङ्गि समुदाहरेत् ।
तथोच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि देवि संवदेत् ॥ ३७ ॥
महापिशाचिनि माया त्रिठं द्विबिन्दुकं स्मरेत् ।
तथोच्छिष्टचाण्डालिनि तारं च समुदाहरेत् ॥ ३८ ॥

उत्तम साधक 'राजमातङ्गि उच्छिष्टमातङ्गिनि' कहने के बाद अन्त में क्रोध बीज माया तार मन्मथ वह्निजाया कहे । फिर 'उच्छिष्टमातङ्गि उच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि' कहकर माया बीज तीन ठ का दो बिन्दुसहित स्मरण करना चाहिए । तदनन्तर 'उच्छिष्टचाण्डालिनि' कहना चाहिए । (मन्त्र इस प्रकार है—राजमातङ्गि उच्छिष्टमातङ्गिनि उच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः ठः उच्छिष्टचाण्डालिनि) ॥ ३५-३८ ॥

महासेनो धरासंस्थो वामनेत्रविभूषितः ।
बिन्दुनादसमायुक्तो वगलामुखि चोद्धरेत् ॥ ३९ ॥
सर्वेत्युक्त्वा च दुष्टानां मुखं वाचं समीरयेत् ।
ततश्च स्तम्भय जिह्वां कीलय द्वितयं वदेत् ॥ ४० ॥
बुद्धिं नाशय संस्मृत्य पूर्वबीजं ततः स्मरेत् ।
तारपूर्वा वह्निजाया वगले...

तार, धरा (=ल) से युक्त महासेन (=ह) वामनेत्र (ई) से विभूषित विन्दुनाद से युक्त (=ह्लीं) 'वगलामुखि' कहे । तदनन्तर 'सर्व' कहकर 'दुष्टानां मुखं वाचं (पदं) स्तम्भय जिह्वां' कहकर फिर 'कीलय' को दो बार कहे । 'बुद्धिं नाशय' कहकर पूर्वबीज (=ह्लीं) का उच्चारण करना चाहिए । तारपूर्वक वह्नि जाया फिर 'वगले' का

उच्चारण करे। (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ह्लीं वगलामुखि सर्वदुष्टानां मुखं वाचं (पदं) स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशय ह्लीं ओं स्वाहा वगले) ॥ ३९-४१ ॥

...वाग्भवं वदेत् ॥ ४१ ॥
रमामायास्मरान् स्मृत्वा धनलक्ष्मि वदेत्ततः।
तारलज्जावाग्भवाश्च मायां तारं स्मरेत्ततः॥ ४२ ॥
सरस्वत्यै नमः स्मृत्वा सरस्वति वदेत्ततः।
पाशं मायां क्रोधं चोक्त्वा भुवनेश्वरि चेत्यपि ॥ ४३ ॥
तारत्रपाविष्णुजायाक्रोधकामपाशास्ततः ।
तथा चाश्वारूढायै च फट्द्वयं वह्निवल्लभा ॥ ४४ ॥
अश्वारूढे समाभाष्य...

वाग्भव रमा माया स्मर को कहकर 'धनलक्ष्मि' के बाद तार लज्जा वाग्भव माया तार का स्मरण कर 'सरस्वत्यै नमः' कहकर 'सरस्वति' कहे। पाश माया क्रोध के बाद 'भुवनेश्वरि कहे फिर तार त्रपा विष्णुजाया क्रोध काम पाश के बाद 'अश्वारूढायैं कहकर दो फट् स्वाहा और अश्वारूढ कहे। (मन्त्र—ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं धनलक्ष्मि ओं ह्रीं ऐं ह्रीं ओं सरस्वत्यै नमः सरस्वति आं ह्रीं हूं भुवनेश्वरि ओं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं आं अश्वारूढायै फट् फट् स्वाहा अश्वारूढे) ॥ ४१-४५ ॥

...तारवाग्भवलज्जकाः ।
नित्यक्लिग्ने मदद्रवे वाङ्माया वह्निसुन्दरी ॥ ४५ ॥
नित्यक्लिग्ने समाभाष्य सुन्दरीबीजमुद्धरेत् ।
ततश्च भैरवीकूटं बालाकूटं ततः स्मरेत् ॥ ४६ ॥
बगलाकूटमुच्चार्य्य त्वरिताकूटमुद्धरेत् ।
जय भैरवि सम्प्रोच्य रमात्रपावाग्भवं स्मरेत् ॥ ४७ ॥
ब्लूङ्कारं च ततश्चोक्त्वा चन्द्रश्च सविसर्गकः ।
अकारं च आकारं च इकारं संस्मरेत्ततः ॥ ४८ ॥
बिन्दुनादसमायुक्तं वाचयेत् साधकोत्तमः ।
राजदेवी राजलक्ष्मी क्रमशस्तु ततः स्मरेत् ॥ ४९ ॥

तार वाग्भव लज्जा कहे फिर 'नित्यक्लिन्ने मदद्रवे' वाक् माया बीज फिर वह्निसुन्दरी 'नित्यक्लिन्ने' कहकर सुन्दरीबीज कहे। इसके बाद भैरवीकूट बालाकूट वगलाकूट त्वरिताकूट को उद्धृत करे। 'जय भैरवि' कहकर रमा त्रपा वाग्भव का स्मरण कर ब्लूङ्कार कहे। विसर्ग के सहित चन्द्र कहने के बाद अकार आकार इकार को विन्दुनाद के सहित कहे। फिर साधकोत्तम राजदेवी राजलक्ष्मी का क्रमशः स्मरण करे। (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ऐं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ऐं ह्रीं स्वाहा नित्यक्लिन्ने स्त्रीं क्षमकलह्रहसव्र्यूं (बालाकूट) (वगलाकूट) (त्वरिता कूट) जय भैरवि श्रीं ह्रीं ऐं ब्लूं ग्लौः अं आं इं राजदेवि राजलक्ष्मि) ॥ ४५-४९ ॥

चतुर्दशस्वरोपेतबिन्दुद्वयविभूषितः ।
चन्द्रबीजं समुच्चार्य्य स्वर्णकूटं समाहरेत् ॥ ५० ॥
वाङ्मायाकाममातृश्च राजराजेश्वरि ततः ।
ज्वल ज्वल समाभाष्य शूलिनि दुष्टग्रहं वै ॥ ५१ ॥
ग्रस स्वाहा समुच्चार्य्य शूलिनि च वदेत् सुधीः ।

चौदह स्वर से युक्त दो बिन्दु से अलङ्कृत चन्द्रबीज का उच्चारण कर स्वर्णकूट कहना चाहिये । वाक् माया काम माता के बाद 'राजराजेश्वरि' फिर 'ज्वल ज्वल' कहकर 'शूलिनि दुष्टग्रहं ग्रस स्वाहा' कहे । फिर 'शूलिनि' कहे । (मन्त्र—ग्लं ग्लां ग्लिं ग्लीं ग्लुं ग्लूं ग्लृं ग्लॄं ग्लृं ग्लें ग्लैं ग्लौं ग्लः क्लीं भ्रीं ध्रीं ऐं ह्रीं क्लीं पौं राजराजेश्वरि ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्टग्रहं ग्रस स्वाहा शूलिनि) ॥ ५०-५२ ॥

माया महाचण्डयोगेश्वरि ध्रींकारमुद्धरेत् ॥ ५२ ॥
दान्ततान्तौ वह्निसंस्थौ तुरीयस्वरभूषितौ ।
नादबिन्दुसमायुक्तौ ततोऽस्त्रपञ्चकं स्मरेत् ॥ ५३ ॥
जय महाचण्डयोगेश्वरि विष्णुनितम्बिनी ।
त्रपा कामत्रिपुटे च वाङ्मायानङ्गमातरः ॥ ५४ ॥
क्षींकारं क्लींकारं चैव सिद्धिलक्ष्म्यै नमस्ततः ।
काममाता भुवनेशी वाग्भवश्च स्मरेत्ततः ॥ ५५ ॥
राज्यसिद्धिलक्ष्मि...

माया बीज 'महाचण्डयोगेश्वरि' के बाद 'ध्रीं' कहे । चतुर्थस्वर से संयुक्त दान्त और तान्त वह्निबीज के साथ तथा नादबिन्दुसहित (=थ्रीं प्रीं) कहना चाहिये । इसके बाद पाँच अस्त्र का स्मरण करे । 'जय महाचण्डयोगेश्वरि' कहने के बाद विष्णुप्रिया त्रपा काम त्रिपुटा वाक् माया काम मातृबीज के बाद श्रीं क्लीं कहकर 'सिद्धिलक्ष्यै नमः' क्लीं पीं ह्रीं ऐं 'राज्यसिद्धिलक्ष्मि' काम, माता भुवनेश्वरी वाग्भव के बाद 'राज्यसिद्धिलक्ष्मि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं महाचण्डयोगेश्वरि ध्रीं थ्री प्रीं फट् फट् फट् फट् फट् जयमहाचण्डयोगेश्वरि श्रीं ह्रीं क्लीं प्लूं ऐं ह्रीं क्लीं पौं क्षीं क्लीं सिद्धिलक्ष्म्यै नमः राज्यसिद्धिलक्ष्मि) ॥ ५२-५६ ॥

...चोक्त्वा ॐकारं शम्भुवल्लभा ।
क्रोधपाशौ क्रोंकारं च स्त्रींकारं क्रोधमुच्चरेत् ॥ ५६ ॥
क्षौंकारं ह्राङ्कारं चैव फट्कारं त्वरितं स्मरेत् ।
नक्षत्रकूटमुच्चार्य्य चन्द्रकूटं ततः स्मरेत् ॥ ५७ ॥
ततो ग्रहकूटं चैव तदन्ते च दिवाकरम् ।
काम्यकूटं ततोऽपि स्यात्ततः कालकूटं चरेत् ॥ ५८ ॥
तदुत्तरं पार्श्वकूटं कामकूटं तदुत्तरम् ।
ततः पश्चात् धराकूटं वारुणं तदनन्तरम् ॥ ५९ ॥

चक्रकूटं समाभाष्य पद्मकूटमनन्तरम् ।
शङ्खवराहकूटौ दर्शनान्मुक्तिदायकौ ॥ ६० ॥
ततः स्मरेन्नृसिंहकूटं सर्वफलप्रदम् ।
इन्द्रकूटं समाराध्य इन्द्रलोके महीयते ॥ ६१ ॥
मत्स्यकूटं ततोऽपि स्यात्ततो ज्ञेयं त्रिशूलकम् ।
शक्तिकूटं तथोच्चार्य्य शिवलोके वसेद् ध्रुवम् ॥ ६२ ॥
वैष्णवकूटं तथा ज्ञेयं केवलं विष्णुरूपिणम् ।

ओंकार शम्भुवल्लभा क्रोध पाश क्रों स्त्रीं क्रोधबीज क्षौं ह्रां फट्... (त्वरिता कूट)... (नक्षत्रकूट)... का उच्चारण कर... (चन्द्रकूट)... के बाद... (ग्रहकूट) उसके बाद... (सूर्यकूट)... (काम्यकूट)... उसके बाद कालकूट... (पार्श्वकूट)...(धराकूट)... (वरुणकूट)... (चक्रकूट)... (पद्मकूट)... कहना चाहिये । (शङ्खकूट)... और... (वराहकूट)... ये दोनों दर्शन से ही मुक्तिदायक हैं । इसके बाद सर्वफलप्रद नृसिंहकूट का स्मरण करना चाहिये । इन्द्रकूट की आराधना कर इन्द्रलोक में पूजित होता है । मत्स्यकूट और त्रिशूल को भी जानना चाहिये । शक्तिकूट का उच्चारण कर निश्चित् रूप से शिवलोक में वसता है । वैष्णव कूट को केवल विष्णुरूप जानना चाहिये । (मन्त्र—ओं क्र: हूं आं क्रों स्त्रीं हूं क्षौं ह्रां फट्... सकहलमक्षखव्रूं... म्लकह्लक्षरस्त्रीं... यम्लव्रीं... ग्लक्षकमहव्य्रऊं ह्लह्लव्य्रकऊं मफ्रलहलहखफ्रूंम्लव्य्रवऊं... म्लक्षकसहहूं क्षम्लव्रसहस्हक्षक्लस्त्रीं रक्षलहमसहकब्रूं... झसखग्रमऊं ग्लफक्षफ्रक्षीं) ॥ ५६-६३ ॥

त्रपालज्जाक्रोधकामयोषितो वाग्भवं तथा ॥ ६३ ॥
गारुडं योगिनीं चैव शाकिनीं कालिकां चरेत् ।
ततो धराकूटं ज्ञेयं क्रोधबीजं ततश्चरेत् ॥ ६४ ॥
ततोऽघोरे सिद्धिं मे वै देहि दापय संस्मरेत् ।
वह्निजाया अघोरे च...

त्रपा लज्जा क्रोध काम स्त्री वाग्भव गरुड योगिनी शाकिनी कालिका बीजों का उच्चारण करना चाहिये । तत्पश्चात् धराकूट फिर क्रोधबीज कहकर 'अघोरे सिद्धिं में वै देहि दापय' के बाद वह्निजाया और 'अघोरे' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं ह्रीं हूं क्लीं स्त्रीं ऐं क्रौं छ्रीं फ्रें क्रीं ग्लक्षकमहव्य्रऊं हूं अघोरे सिद्धिं मे वै देहि दापय स्वाहा अघोरे) ॥ ६३-६५ ॥

...ॐकारं नम इत्यपि ॥ ६५ ॥
चामुण्डे च तथोच्चार्य्य करङ्किणि वदेत्ततः ।
करङ्कमालाधारिणि च किं किं विलम्बसे ततः ॥ ६६ ॥
भगवति ततश्चोक्त्वा शुष्कानने ततः स्मरेत् ।
खद्वयं च ततः प्रोच्य चान्त्रकरावनेति च ॥ ६७ ॥
भो भो वल्ग इति प्रोच्य वल्गेति वदेत्ततः ।

कृष्णभुजङ्गवेष्टिततनुलम्बकपाले वै ॥ ६८ ॥
हृष्ट हृष्ट इति प्रोच्य हट्ट हट्ट तदन्तरम् ।
पत पत समुच्चार्य्य पताका च ततो वदेत् ॥ ६९ ॥
हस्ते ज्वल ज्वल प्रोच्य ज्वालामुखि ततो वदेत्।
अनलनखखट्वाङ्गधारिणि च तथोच्चरेत् ॥ ७० ॥

'ओं नमः चामुण्डे' कहकर 'करङ्किणि' कहे । फिर 'करङ्कमालाधारिणि किं किं विलम्बसे भगवति शुष्काननि' के बाद 'खं' को दो बार कहकर 'अन्त्रकरावनद्धे भो भो वल्गे वल्ग कृष्णभुजङ्गवेष्टिततनुलम्बकपाले हृष्ट हृष्ट हट्ट हट्ट पत पत' कहकर 'पताकाहस्ते ज्वल ज्वल ज्वालामुखि' कहे । फिर 'अनलनखखट्वाङ्गधारिणि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं नमश्चामुण्डे करङ्किणि करङ्कमालाधारिणि किं किं बिलम्बसे भगवति शुष्काननि खं खं अन्त्रकरावनद्धे भो भो वल्गे वल्ग कृष्ण भुजङ्गवेष्टिततनुलम्बकपाले हृष्ट हृष्ट हट्ट हट्ट पत पत पताकाहस्ते ज्वल ज्वल ज्वालामुखि अनलनखखट्वाङ्गधारिणि) ॥ ६५-७० ॥

हा हा चट्ट चट्ट इति हूं हूं अट्टाट्टहासिनि ।
उड्ड उड्ड ततोऽपि स्याद्धेवेतालमुखि इति ॥ ७१ ॥
अकि अकि स्फुलिङ्गेति पिङ्गलाक्षि ततोऽपि च ।
चल चल चालयेति चालयेति तथोच्चरेत् ॥ ७२ ॥
करङ्कमालिनि प्रोच्य नमोऽस्तु ते स्वाहा ततः ।

उसके बाद 'हा हा चट्ट चट्ट हूं हूं हासिनि उड्ड उड्ड हे वेतालमुखि अकि अकि स्फुलिङ्ग पिङ्गलाक्षि चल चल चालय चालय' कहे । फिर 'करङ्कमालिनि' कहकर 'नमोऽस्तु ते स्वाहा' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—हा हा चट्ट चट्ट हूं हूं अट्टाट्टहासिनि उड्ड उड्ड हे वेतालमुखि अकि अकि स्फुलिङ्ग पिङ्गलाक्षि चल चल चालय चालय करङ्कमालिनि नमोऽस्तु ते स्वाहा) ॥ ७१-७३ ॥

विश्वलक्ष्मि ततश्चोक्त्वा तारमाये समुच्चरेत् ॥ ७३ ॥
क्षेत्रपालो वह्निसंस्थो चतुर्थस्वरमस्तकः ।
नादबिन्दुसमायुक्तो बीजं समुच्चरेत् सुधीः ॥ ७४ ॥
दादिरेवं समुच्चार्य्य रान्तश्चैवं समाहरेत् ।
एवं शान्तः समाहार्य्यः कालीक्रोधौ पुनर्वदेत् ॥ ७५ ॥
अस्त्रं यन्त्रप्रमथिनि ख्फ्रेंकारं च ततः स्मरेत् ।
ततो धरां समाहृत्य बीजं शृणु मनोहरम् ॥ ७६ ॥
रेफश्चैव जकारश्च तदन्तश्च क्रमाल्लिखेत् ।
वह्निरूढं बीजं ज्ञेयं तुरीयस्वरपूजितम् ॥ ७७ ॥

'विश्वलक्ष्मि' कहकर तार माया के बाद विद्वान् साधक क्षेत्रपाल को चतुर्थ स्वर और वह्नि के साथ नाद बिन्दु से युक्त का उच्चारण करे । दादि रान्त शान्त का

उच्चारण कर काली क्रोध बीजों को कहे । अस्त्र 'यन्त्रप्रमथिनि' ख्फ्रें के बाद धराबीज कहकर मनोहर बीज को सुनो—रेफ जकार वह्निरूढ और चतुर्थस्वर भूषित समझना चाहिये । (मन्त्र इस प्रकार है—विश्वलक्ष्मि ओं ह्रीं क्ष्रीं द्रीं शीं क्रीं हूं फट् यन्त्रप्रमथिनि ख्फ्रें ळीं ज्रीं) ॥ ७३-७७ ॥

नादबिन्दुशिरोबीजमुच्चरेद् बीजमुत्तमम् ।
तारत्रपे समाभाष्य फ्रेंकारं समुदीरितम् ॥ ७८ ॥
चण्डयोगेश्वरि कालि शाकिनी हृदयं तथा ।
चण्डयोगेश्वरि लज्जाक्रोधास्त्राणि विनिर्दिशेत् ॥ ७९ ॥
महाचण्डभैरवि च भुवनेशीं वदेत्ततः ।
क्रोधास्त्रं वह्निजायां च महाचण्डभैरवी वै ॥ ८० ॥

नाद बिन्दु शिरोबीज का उच्चारण करे । तार त्रपा कहे । पुनः फ्रेंकार कहकर 'चण्डयोगेश्वरि कालि' के बाद शाकिनी और हृदयबीज फिर 'चण्डयोगेश्वरि' लज्जा क्रोध अस्त्र का निर्देश करे । फिर 'महाचण्डभैरवि' के बाद भुवनेश्वरी बीज फिर क्रोध अस्त्र और वहिजाया, को कहे । फिर 'महाचण्डभैरवि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—अं ओं ह्रीं फ्रें चण्डयोगेश्वरि कालि फ्रें नमः चण्डयोगेश्वरि, ह्रीं हूं फट् महाचण्डभैरवि ह्रीं हूं फट् स्वाहा महाचण्डभैरवि) ॥ ७८-८० ॥

वाग्भुवनेश्वरी कामशाकिनी वाग्भवानपि ।
लज्जा रमा तथा चैव उद्धरेत्कोविदो जनः ॥ ८१ ॥
त्रैलोक्यविजया ङेन्ता हृदयं वह्निवल्लभा ।
त्रैलोक्यविजये चैव वाग्लज्जालक्ष्मीमन्मथाः ॥ ८२ ॥
प्रासादं जयलक्ष्मि च युद्धे मे विजयं वदेत् ।
देहि चेत्युच्य प्रासादं पाशमङ्कुशफट्त्रयम् ॥ ८३ ॥
वह्निस्त्री जयलक्ष्मि च अतिचण्डं तथोच्चरेत् ।
तथा महाप्रचण्डेति भैरवि च ततः स्मरेत् ॥ ८४ ॥
क्रोधचण्डं समाभाष्य अतिचण्डटकारकौ ।
योगबीजं समाभाष्य फ्रटं स्मरेत्ततोऽपि च ॥ ८५ ॥

साधक विद्वान् वाक् भुवनेश्वरी काम शाकिनी वाग्भव लज्जा रमा का उद्धार करे । फिर चतुर्थ्यन्त 'त्रैलोक्यविजया' शब्द, फिर हृदय और अग्निवल्लभा का उच्चारण करे । ततः 'त्रैलोक्यविजये' कहना चाहिए । वाक् लज्जा लक्ष्मी मन्मथ प्रासाद 'जयलक्ष्मि युद्धे मे विजयं' कहना चाहिए । 'देहि' कहकर फिर प्रासाद पाश अङ्कुश तीन फट् वह्निस्त्री को कहने के बाद 'जयलक्ष्मि' कहना चाहिए । तदनन्तर 'अतिचण्ड महाप्रचण्ड भैरवि' का उच्चारण करना चाहिए । फिर क्रोध चण्ड को कहकर अतिचण्ड और टकार तथा योगबीज को कहकर 'फ्रटं' कहना चाहिए । (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ह्रीं क्लीं फ्रें ऐं ह्रीं श्रीं त्रैलोक्यविजयायै नमः स्वाहा त्रैलोक्यविजये

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं आं जयलक्ष्मि । अतिचण्ड महाप्रचण्ड भैरवि हूं फ्रों अतिचण्ड अतिचण्ड फ्रंट) ॥ ८१-८५ ॥

विलिखेच्च ततो याम्यकूटं परमसिद्धिदम् ।
फान्तफस्थो वह्निसंस्थस्ततश्च ठादिमुच्चरेत् ॥ ८६ ॥
तदन्ते च महाकूटमीशसञ्ज्ञं समुच्चरेत् ।
रेफमुच्चार्य्य धीरेन्द्र फ्रटं स्मरेत्तदन्तरम् ॥ ८७ ॥
महामन्त्रेश्वरि चैव तारत्रपारमास्मरान् ।
प्रासादक्रोधौ वज्रं च वदेत् प्रस्ताविनि द्विठम्॥ ८८ ॥
वज्रप्रस्तारिणि चोक्त्वा...

इसके बाद परम सिद्धिदायक याम्यकूट लिखे । 'फ' के अन्त वाला (=ब) तथा 'फ' में स्थित वह्निबीज ठादि को कहना चाहिये । उसके बाद ईशकूट का उच्चारण करना चाहिये । हे धीरेन्द्र! रेफ का उच्चारण कर फ्रट का स्मरण करना चाहिये । फिर 'महामन्त्रेश्वरि' कह कर तार त्रपा रमा स्मर प्रासाद क्रोध 'वज्रप्रस्तारिणि' फिर दो 'ठ' फिर 'वज्रप्रस्तारिणि' का उच्चारण करना चाहिए । (मन्त्र इस प्रकार है—हम्लब्रीं बफ्रटं ब्रकम्लब्लक्लऊं रफ्रटं महामन्त्रेश्वरि ओं ह्रीं श्रीं क्लीं हौं हूं वज्रप्रस्तारिणि ठः ठः वज्रप्रस्तारिणि) ॥ ८६-८९ ॥

...तारं ह्रीं हृदयं वदेत् ।
परमभीषणे चोक्त्वा क्रोधद्वयं क्रमाल्लिखेत्॥ ८९ ॥
नरकङ्कालमालिनि चोक्त्वा वै शाकिनीद्वयम्।
कात्यायनि व्याघ्रचर्मावृतकटि वदेदिति ॥ ९० ॥
कालीद्वयं समुच्चार्य्य श्मशानचारिणि वदेत् ।
नृत्य नृत्य गाय गाय हस हस क्रोधद्वयम् ॥ ९१ ॥
कार(नादि)नि संलेख्य चाङ्कुशद्वितयमपि ।
शववाहिनि संलेख्य मां रक्ष रक्ष चेत्यपि ॥ ९२ ॥
अस्त्रद्वयं क्रोधद्वयं हृल्लेखा वह्निकामिनी ।
कात्यायनी त्विति प्रोच्य...

तार ह्रीं और हृदय कहना चाहिये । 'परम भीषणे' कहकर क्रोधद्वय लिखे । फिर 'नरकङ्कालमालिनि' कहकर दो शाकिनी फिर 'कात्यायनि व्याघ्रचर्मावृतकटि' कहे । दो काली बीज का उच्चारण कर 'श्मशानचारिणि' कहे । फिर 'नृत्य नृत्य गाय गाय हस हस' कहकर दो क्रोध कहे । 'कारनादिनि' कहकर दो अङ्कुश कहना चाहिए । 'शववाहिनि' कहकर 'मां रक्ष रक्ष' कहने के बाद दो अस्त्र दो क्रोध हृल्लेखा और वह्निजाया कहने के बाद कात्यायनि कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ह्रीं नमः परमभीषणे हूं हूं नरकङ्कालमालिनि फ्रें फ्रें कात्यायनि व्याघ्रचर्मावृतकटि क्रीं क्रीं श्मशानचारिणि नृत्य नृत्य गाय गाय हस हस हूं हूङ्कारनादिनि क्रों क्रों शववाहिनि मां रक्ष रक्ष फट् फट् हूं हूं नमः स्वाहा कात्यायनि) ॥ ८९-९३ ॥

...वाङ्माया हरिसुन्दरी ॥ ९३ ॥
शान्तः षान्तश्च पान्तश्च यान्तो भगविभूषितः ।
नादबिन्दुस्वलङ्कृत्य वदेद्बीजमनुत्तमम् ॥ ९४ ॥
बिन्दुहीनं प्रेतबीजं शान्तं पाशसमन्वितम् ।
बिन्दुनादभूषितं तु वदेद्बीजं तदुत्तरम् ॥ ९५ ॥
भान्तं बिन्दुयुतं चैव तुरीयस्वरभूषितम् ।
दादिं बिन्दुयुतं स्मृत्वा वामकर्णविभूषितम् ॥ ९६ ॥
नकुलीशो वह्निसंस्थो पाशबिन्दुसमन्वितः ।
बीजं स्मृत्वा तथा मायां तथा दीर्घतनुच्छदम् ॥ ९७ ॥
योगिनीकूटमुच्चार्य्य फेत्कारीकूटमुच्चरेत् ।
शिवशक्तिसमरसचण्डकापालेश्वरि ततः ॥ ९८ ॥
क्रोधं हृदयमुच्चार्य्य चण्डं वदेत्तदन्तरम् ।
कापालेश्वरि चोच्चार्य्य वाक्कालीमारमातरः ॥ ९९ ॥
ततश्च खेचरीकूटं कूटानां कूटमुत्तमम् ।
सुवर्णद्वितयं प्रोच्य महासुवर्ण इत्यपि ॥ १०० ॥
कूटेश्वरि समाभाष्य व्यूहकूटं ततः स्मरेत् ।
रमा त्रपा वाग्भवश्च हृल्लेखा वह्निसुन्दरी ॥ १०१ ॥
स्वर्णकूटेश्वरि...

वाक् माया हरिसुन्दरी के बाद शान्त षान्त पान्त यान्त को भग (=ऐं) से विभूषित एवं नादविन्दु से अलङ्कृत कर कहना चाहिये । प्रेतबीज को बिन्दु से रहित और शान्त को पाश से युक्त तथा बिन्दु नाद से समन्वित कर कहना चाहिये । भान्त को बिन्दु और चतुर्थ स्वर से युक्त, दादि को वामकर्ण और बिन्दु से युक्त कर कहे । नकुलीश को वह्नि पाश और बिन्दु से संयुक्त कहकर माया तथा दीर्घतनुच्छद (=हूं) फिर योगिनीकूट का उच्चारण कर फेत्कारीकूट का निर्वचन करे । फिर 'शिवशक्तिसमरसचण्डकापालेश्वरि' कहने के बाद क्रोध और हृदय का उच्चारण कर 'चण्डकापालेश्वरि' कहकर वाक् काली मार माता का उच्चारण कर कूटों में उत्तम खेचरीकूट कहे । सुवर्ण कूट को दो बार कहकर 'महासुवर्णकूटेश्वरि' कहकर व्यूहकूट का स्मरण करे । रमा त्रपा वाग्भव हृल्लेखा वह्निसुन्दरी के बाद स्वर्णकूटेश्वरि कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ह्रीं श्रीं षैं सैं फैं रैं स्हौः षां मीं धूं ह्रां ह्रीं हूं... हसखफ्रें शिवशक्तिसमरसचण्डकापालेश्वरि हूं नमश्चण्डकापालेश्वरि ऐं क्रीं क्लीं पौं सखक्लक्ष्मध्रयब्लीं क्लीं भ्रीं ध्रीं क्लीं भ्रीं ध्रीं महासुवर्णकूटेश्वरि कमलक्षसहब्ल्रूं श्रीं ह्रीं ऐं नमः स्वाहा स्वर्णकूटेश्वरि) ॥ ९३-१०२ ॥

...प्रोच्य वाग् लज्जा कृष्णभार्य्यका ।
पाशमुच्चार्य्य देवेशि ब्रह्मणस्तृतीयं वदेत् ॥ १०२ ॥

बिन्दुयुक्तं धरासंस्थं वामकर्णसमन्वितम् ।
बीजमेतत्समुच्चार्य्य ईंकारं पाशमेव च ॥ १०३ ॥
ततो नादं समुच्चार्य्य हृल्लेखा भगवति वदेत् ।
वार्त्तालि द्वितयं प्रोच्य वाराहि द्वितयं वदेत् ॥ १०४ ॥
वराहमुखि तथैवोक्त्वा ऐंकारं ग्लूङ्कारं तथा ।
अन्धे अन्धिनि हृदयं रुन्धे रुन्धिनि सञ्चरेत् ॥ १०५ ॥
हृल्लेखा जम्भे जम्भिनि च हृदयं मोहे मोहिनि स्मरेत्।
नमः स्तम्भे स्तम्भिनि च नमः सर्वदुष्टे चेत्यपि ॥ १०६ ॥
प्रदुष्टानां ततश्चोक्त्वा सर्वेषां सर्ववाक्चित्त ।
चक्षुः श्रोत्रमुखगतिजिह्वास्तम्भं कुरुद्वयम् ॥ १०७ ॥
शीघ्र वशं कुरु कुरु शीघ्रं वशं कुरुद्वयम् ।

वाक् लज्जा कृष्ण की स्त्री पाश का उच्चारण कर हे देवेशि! ब्रह्म का तृतीय वर्ण बिन्दुयुक्त धरा एवं वामकर्ण से समन्वित कर कहे । ईंकार पाश नाद का उच्चारण कर हृल्लेखा, फिर 'भगवति, वार्त्तालि' को दो बार 'वाराहि' को दो बार उसी प्रकार 'वराहमुखि' को दो बार कहकर ऐं ग्लूं कहे । 'अन्धे अन्धिनि' कहकर 'रुन्धे रुन्धिनि' कहे । हृल्लेखा के बाद 'जम्भे जम्भिनि' फिर हृदय फिर 'मोहे मोहिनि' फिर 'नमः' फिर 'स्तम्भे स्तम्भिनि' फिर 'नमः' फिर 'स्र्वदुष्टे प्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्चित्तचक्षुःश्रोत्रमुखगतिजिह्वास्तम्भं' कहकर 'कुरु' को दो बार कहने के बाद 'शीघ्रं वशं कुरु कुरु शीघ्रं वशं' के बाद दो 'कुरु' कहे । (मन्त्र—ऐं ह्रीं श्रीं आं ग्लीं ईं आं अं नमो भगवति वार्त्तालि वार्त्तालि वाराहि वाराहि वराहमुखि वराहमुखि ऐं ग्लूं अन्धे अन्धिनि नमः रुन्धे रुन्धिनि नमः जम्भे जम्भिनि नमः मोहे मोहिनि नमः स्तम्भे स्तम्भिनि नमः सर्वदुष्टे प्रदुष्टानां सर्ववाक्चित्तचक्षुःश्रोत्रमुखगतिजिह्वास्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रं वशं कुरु कुरु) ॥ १०२-१०८ ॥

वाग्भवं कालीबीजं च श्रीबीजं तदनन्तरम् ॥ १०८ ॥
ठपञ्चकं समाभाष्य तारहेतुं क्रोधमुच्चरेत् ।
अस्त्रं द्विठं वार्त्तालि च भवेद् द्वादशिकामपि ॥ १०९ ॥
ग्लुं ह्रीं बीजं समुच्चार्य्य वार्त्तालि वाराहि वदेत् ।
ह्रीं ग्लुं तावनुस्मृत्य द्वादशिकं बीजमुल्लिखेत् ॥ ११० ॥
चण्डवार्त्तालि सम्प्रोच्य वाङ्मायाविष्णुवल्लभाः।
आङ्कारं ग्लूङ्कारं चैव ईंकारं वार्त्तालिद्वयम् ॥ १११ ॥
वाराहिद्वितयं प्रोच्य शत्रून् दह दहेति च ।
ग्रस ग्रसेति संलेख्य चतुर्थबीजमुच्चरेत् ॥ ११२ ॥
तत आं च ततो ग्लुं च ततो हूं च फटं तथा ।
जय वार्त्तालि सम्भाष्य वाङ्माया हरिवल्लभा ॥ ११३ ॥

वाग्भव काली बीज श्रीबीज पाँच ठ तार हेतु क्रोध अस्त्र दो ठ 'वार्त्तालि द्वादशिका' ग्लुं ह्लीं बीज का उच्चारण कर 'वार्त्तालि वाराहि' कहना चाहिये । ह्रीं ग्लुं के बाद उन दोनों का स्मरण कर द्वादशिक बीज का उल्लेख करे । 'चण्डवार्त्तालि' कहकर वाक् माया विष्णुवल्लभा आङ्कार ग्लूङ्कार ईंकार फिर 'वार्त्तालि' को दो बार 'वाराही बीज' (=ईं) का उच्चारण करे । इसके बाद आं ग्लुं हूं फट् 'जय वार्त्तालि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं क्रीं श्रीं ठः ठः ठः ठः ठः ओं ऐं हूं फट् ठः ठः वार्त्तालि ऐं ग्लुं ह्लीं वार्त्तालि वाराहि ह्रीं ग्लुं वार्त्तालि वाराहि ऐं चण्डवार्त्तालि ऐं ह्रीं श्रीं आं ग्लूं ईं वार्त्तालि वार्त्तालि वाराहि वाराहि शत्रून् दह दह ग्रस ग्रस ईं आं ग्लुं हूं फट् जयवार्त्तालि) ॥ १०८-११३ ॥

महाबीजं समुच्चार्य्य प्रेतबीजं समुच्चरेत् ।
तारमायाक्रोधाश्चैव शाकिनीबीजमुच्चरेत् ॥ ११४ ॥
राज्यप्रदे समाभाष्य ख्फ्रेंकारबीजमुच्चरेत् ।
फेत्कारीबीजमुच्चार्य्य उग्रचण्डे स्मरेत् पुनः ॥ ११५ ॥
रणमर्द्दिनि सम्भाष्य क्रोधं च शाकिनीं वदेत्।
योगिनीं च वधूबीजं सदेति रक्ष रक्ष च ॥ ११६ ॥
त्वं रूपं मां रूपं च जूं सं सर्गान्तमेव च ।
मृत्युहरे नमः प्रोच्य वह्निजायां...

वाक् माया हरिवल्लभा महाबीज प्रेतबीज तार माया क्रोध शाकिनीबीज का उच्चारण करे । 'राज्यप्रदे' कहकर 'ख्फ्रें' कहे । फेत्कारी बीज का उच्चारण कर 'उग्रचण्डे रणमर्दिनि' कहकर क्रोध और शाकिनी बीज कहे । योगिनी और वधू बीज कहकर 'सदा रक्ष रक्ष त्वं रूपं मां रूपं च जूं सः मृत्युहरे नमः' कहकर वह्नि जाया कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ह्रीं श्रीं श्रूं? स्हौः ओं ह्रीं हूं फ्रें राज्यप्रदे ख्फ्रें हसख्फ्रें उग्रचण्डे रणमर्दिनि हूं फ्रें छ्रीं स्त्रीं सदा रक्ष रक्ष त्वं रूपं मां रूपं च जूं सः मृत्युहरे नमः स्वाहा) ॥ ११४-११७ ॥

...द्विबिन्दुकं ॥ ११७ ॥
स्मरेदुग्रचण्डे चैव वाग्भवं (ह्रीं स्मरं) पुनः ।
योगिनीकूटमुच्चार्य्य फेत्कारीकूटमुद्धरेत् ॥ ११८ ॥
वामनेत्रयुतं बीजं भजतां कामदं महत् ।
तारमाया हसफ्रें क्रोधं च शाकिनीं चरेत् ॥ ११९ ॥
उग्रचण्डे समाभाष्य बीजं चण्डेश्वरं ततः ।
महाप्रेतं समाभाष्य वह्नेर्भार्यां लिखेत्ततः ॥ १२० ॥
श्मशानोग्रचण्डे इत्युक्त्वा वाग्भवपञ्चकं वदेत्।
ततश्च फेत्कारीकूटं वामनेत्रयुतं स्मरेत् ॥ १२१ ॥
अमृताख्यं ततः स्मृत्वा डाकिनीं वामनेत्रिकाम्।

फेत्कारीं च ततो देवि वामनेत्रविभूषिताम् ॥ १२२ ॥
रुद्रचण्डा चतुर्थ्यन्ता सानुहृद्वह्निवल्लभा ।
सम्बुद्ध्यन्ता रुद्रचण्डा...

दो बिन्दु (=अ:) 'उग्रचण्डे' वाग्भव (ह्रीं और स्मर) पुन: योगिनीकूट का उच्चारण कर फेत्कारीकूट को कहे । महान् कामद को वामनेत्र से युक्त कर कहना चाहिये । तार माया हस्फ्रें क्रोध शाकिनी को कहकर 'उग्रचण्डे' फिर चण्डेश्वर बीज फिर महाप्रेत को कहकर वह्निभार्या को कहे । फिर 'श्मशानोग्रचण्डे' कहकर पाँच वाग्भव बीज कहे । इसके बाद फेत्कारी कूट को वामनेत्र से युक्त कर कहना चाहिये । अमृत डाकिनी वामनेत्र वाली, वाम-नेत्रविभूषित फेत्कारी रुद्रचण्डा को चतुर्थ्यन्त फिर हृदय और अग्निवल्लभा को कहना चाहिये । पुन: 'रुद्रचण्डा' का सम्बोधन कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—अ: उग्रचण्डे ऐं ह्रीं क्लीं योगिनीकूट... हसख्फ्रें हसख्फ्रीं ओं ह्रीं हस्फ्रें हूं फ्रें उग्रचण्डे चण्डेश्वरबीज... महाप्रेत चण्डकूटे ख्फ्रें ग्लक्षकमहव्र्यीं रुद्र-चण्डायै रह्रीं नम: स्वाहा रुद्रचण्डे) ॥ ११७-१२३ ॥

...वाग्भवपञ्चकं पुनः ॥ १२३ ॥
फेत्कारीकूटं ततो देवि वामनेत्रविभूषितम् ।
चण्डकूटे समाभाष्य डाकिनीं बीजमुद्धरेत् ॥ १२४ ॥
धराकूटं समाभाष्य तुरीयस्वरभूषितम् ।
प्रचण्डायै ततश्चोक्त्वा हृदयं वह्निवल्लभा ॥ १२५ ॥
प्रचण्डे...

पाँच वाग्भव वामनेत्र विभूषित फेत्कारीकूट फिर 'चण्डकूटे' कहकर डाकिनी बीज कहना चाहिये । तुरीयस्वरविभूषित धराकूट कहे । फिर 'प्रचण्डायै' कहकर हृदय और अग्निवल्लभा के बाद 'प्रचण्डे' कहना चाहिये । (मन्त्र—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं... चण्डकूटे ख्फ्रें ग्लक्षकमहव्र्यीं प्रचण्डायै नम: स्वाहा प्रचण्डे) ॥ १२३-१२६ ॥

....वाग्भवं पञ्च फेत्कारीं मायया युताम् ।
सन्धिकूटं ततश्चोक्त्वा ङेन्ता हि चण्डनायिका ॥ १२६ ॥
त्रूङ्कारं च समुच्चार्य्य नमः स्वाहे ततः परम् ।
ततश्चण्डनायिके च वाग्भवपञ्चकं ततः ॥ १२७ ॥
तथैव फेत्कारीकूटं कूटं च ब्रह्मनिर्मितम् ।
चण्डेश्वरं ततो देवि वामाक्षि बिन्दुसंयुतम् ॥ १२८ ॥
महाप्रेतं समुच्चार्य क्लीं हृद्वह्निवल्लभा ।
चण्डे चोक्त्वा महादेवि...

पाँच वाग्भव मायासहित फेत्कारी सन्धिकूट कहकर चतुर्थ्यन्त चण्डनायिका, फिर त्रूङ्कार के बाद 'नम: स्वाहा' कहे । पुन: 'चण्डनायिके' फिर पाँच वाग्भव फिर फेत्कारीकूट फिर ब्रह्मकूट उसके बाद वामाक्षिबिन्दुयुक्त चण्डेश्वरकूट तत्पश्चात् महाप्रेत

बीज का उच्चारण कर क्लीं हृदय और अग्निवल्लभा का उच्चारण कर 'चण्डे' कहना चाहिये। (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसख्क्रें ह्रीं... चण्डनायिकायै त्रूं नमः स्वाहा चण्डनायिके ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसख्क्रें हसखफ्रूं... महाप्रेतबीज क्लीं नमः स्वाहा चण्डे) ॥ १२६-१२९ ॥

...वाग्भवपञ्चकं वदेत् ॥ १२९ ॥
फेत्कारीकूटं तथेशानि नादं वामाक्षि संयुतम्।
चण्डवत्यै ततश्चोक्त्वा क्ष्म्लूंकारं हृदयं तथा ॥ १३० ॥
स्वाहा चण्डवति चोक्त्वा वाग्भवपञ्चकं पुनः।
फेत्कारीकूटं तथा देवि वायुकूटं ततो वदेत् ॥ १३१ ॥
डाकिनीं च ततो देवि वामनेत्रविभूषिताम् ।
अतिप्रेतं समाराध्य चातिचण्डां महेश्वरि ॥ १३२ ॥
चतुर्थ्यन्तां च हृदयममृतं बीजमुद्धरेत् ।
नमःस्वाहे चातिचण्डे वाग्भवपञ्चकं चरेत् ॥ १३३ ॥

'महादेवि' उसके बाद पाँच वाग्भव कहे। फिर हे ईशानि! फेत्कारीकूट को वामाक्षिसंयुक्त नाद के साथ कहे। फिर 'चण्डवत्यै' कहकर 'क्ष्म्लूं' तथा हृदय कहे। 'स्वाहा चण्डवति' कहकर फिर पाँच वाग्भव पुनः फेत्कारीकूट फिर वायुकूट उसके बाद वामनेत्रविभूषित डाकिनी पुनः अतिप्रेत को कहकर हे महेश्वरि! चतुर्थ्यन्त अतिचण्डा कहने के बाद हृदय और अमृतबीज का उद्धार करना चाहिये। फिर 'नमः स्वाहा अतिचण्डे' कहे। (मन्त्र—महादेवि ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रीं चण्डवत्यै क्ष्म्लूं नमः स्वाहा चण्डवति, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रें क्षम्लकस्हरयब्रूं ख्फ्रीं अतिप्रेत अतिचण्डायै नमः ग्लूं नमः स्वाहा अतिचण्डे) ॥ १२९-१३३ ॥

फेत्कारीकूटं देवेशि श्मशानकूटक पुनः ।
डाकिनीं च समाभाष्य वामनेत्रविभूषिताम् ॥ १३४ ॥
महाप्रेतं तथोच्चार्य चण्डिकायै स्मरेत्ततः ।
रौद्रबीजं समुच्चार्य्य नमःस्वाहे ततः परम् ॥ १३५ ॥
चण्डिके च तथोच्चार्य्य वाग्भवपञ्चकं पुनः ।
फेत्कारीकूटं चोच्चार्य्य स्हफ्रींकारं तदनन्तरम् ॥ १३६ ॥
कामक्रोधौकारश्च क्लह्रींकारं तदनन्तरम् ।
कात्यायन्यै ख्फ्रेंकारं च कामदायिन्यै ततः परम् ॥ १३७ ॥
हूङ्कारं च नमःस्वाहे ज्वालाकात्यायनि ततः ।
वाग्भवान् पञ्च संलिख्य कामक्रोधौ रमा ततः ॥ १३८ ॥
द्रावणं च समुच्चार्य्य महिषमर्दिनि ततः।

पाँच वाग्भव फेत्कारीकूट श्मशानकूट वामनेत्रविभूषितडाकिनी महाप्रेत का उच्चारण कर 'चण्डिकायै' कहकर पाँच वाग्भव फिर फेत्कारी कूट का उच्चारण कर

'स्हफ्रीं' कहे । उसके बाद काम क्रोध फिर क्ल ह्रीं फिर 'कात्यायन्यै ख्फ्रें कामदायिन्यै हूं नमः स्वाहा ज्वालाकात्यायनि' कहे । फिर पाँच वाग्भव लिखकर काम क्रोध रमा द्रावण बीजों का उच्चारण कर 'महिषमर्दिनि' कहे । (मन्त्र—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसख्फ्रें श्मशानकूट... ख्फ्रीं महाप्रेत चण्डिकायै द्रैं नमः स्वाहा चण्डिके ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसख्फ्रें स्हफ्रीं क्लीं हूं क्लह्रीं कात्यायन्यै ख्फ्रें कामदायिन्यै हूं नमः स्वाहा ज्वालाकात्यायनि ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं क्लीं हूं श्रीं हभ्रीं महिषमर्दिनि) ॥ १३४-१३९ ॥

श्रीकारं चैव देवेशि वाग्भवाः पञ्च एव च ॥ १३९ ॥
उन्मत्तमहिषमर्दिनि च ततः परम् ।
ततो वाग्भवान् पञ्च नक्षत्रकूटं संलिखेत् ॥ १४० ॥
शङ्खकूटं ततश्चोक्त्वा महामहेश्वरि वदेत् ।
ततश्च तुम्बुरेश्वरि वह्निजाया ततः परम् ॥ १४१ ॥
तुम्बुरेश्वरि ततश्चोक्त्वा तारत्रपे ततः परम् ।
कामक्रोधामृतांश्चैव पाशं वाग्भवमेव च ॥ १४२ ॥
क्रोधप्रेतौ शाकिनी च चैतन्यभैरवि तथा ।
शाकिनी च प्रेताङ्कुशौ पाशवागमृतक्रोधाः ॥ १४३ ॥
काममाये तारास्त्रे च द्विठश्चैतन्यभैरवि ।

हे देवेशि ! श्रीङ्कार पाँच वाग्भव फिर 'उन्मत्तमहिषमर्दिनि' तत्पश्चात् पाँच वाग्भव फिर नक्षत्रकूट... शङ्खकूट... कहकर 'महामहेश्वरि' कहे । फिर 'तुम्बुरेश्वरि' कहकर वह्निजाया कहे । पुनः 'तुम्बुरेश्वरि' कहने के बाद तार त्रपा काम क्रोध अमृत पाश वाग्भव क्रोध प्रेत शाकिनी बीजों को कहकर 'चैतन्यभैरवि' कहे । अनन्तर शाकिनी प्रेत अङ्कुश पाश वाक् अमृत क्रोध काम माया तार अस्त्र दो ठ फिर 'चैतन्यभैरवि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—श्रीं ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं उन्मत्तमहिषमर्दिनि ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं नक्षत्रकूट... शङ्खकूट... महामहेश्वरि तुम्बुरेश्वरि स्वाहा तुम्बुरेश्वरि ओं ह्रीं क्लीं हूं ग्लूं आं ऐं हूं स्हौः फ्रें चैतन्यभैरवि फ्रें फ्रें स्हौः क्रों आं ऐं ग्लूं हूं क्लीं ह्रीं ओं फट् ठः ठः चैतन्यभैरवि) ॥ १३९-१४४ ॥

वाग्भवाः पञ्च च तदा तदा मुण्डमधुमती ॥ १४४ ॥
चतुर्थ्यन्ता समुच्चार्य्या तथैव शक्तिभूतिनी ।
ततो मायात्रयं चोक्त्वा फट्कारं मधुमत्यपि ॥ १४५ ॥
सम्बुद्ध्यन्ता समुच्चार्य्य वद वद ततः परम् ।
वाग्वादिनि प्रेतबीजं बिन्दुनादसमन्वितम् ॥ १४६ ॥
विसर्गहीनं चोच्चार्य्य क्लिन्नक्लेदिनि ततः परम् ।
महाक्षोभं कुरु तदा प्रेतबीजमतः परम् ॥ १४७ ॥
वाग्वादि(नि) भैरवि च माया च शाकिनी तथा ।
ख्फ्रेंकारञ्च समुच्चार्य्य कामबीजं ततः परम् ॥ १४८ ॥

पूर्णेश्वरि सर्वकामान् पूरयानु तारं लिखेत् ।
अस्त्रं स्वाहा पूर्णेश्वरि सम्बोध्यन्ता ततः परम्॥ १४९ ॥

पाँच वाग्भव उसके बाद चतुर्थ्यन्त 'मुण्डमधुमती' उसी प्रकार 'शक्तिभूतिनी' का उच्चारण करे । इसके बाद तीन मायाबीज फट्कार और सम्बोधनान्त 'मधुमती' को कहने के बाद 'वद वद वाग्वादिनि' फिर बिन्दुनादयुक्त प्रेतबीज तत्पश्चात् 'वाग्वादिनि भैरवि' कहे । फिर माया शाकिनी ख्फ्रेंकार कामबीज कहने पर 'पूर्णेश्वरि सर्वकामान् पूरय' के बाद तार अस्त्र स्वाहा, फिर सम्बोधनान्त 'पूर्णेश्वरि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं मुण्डमधुमत्यै शक्तिभूतिन्यै ह्रीं ह्रीं ह्रीं फट् मधुमति वद वद वाग्वादिनि स्हौं क्लिन्नक्लेदिनि महाक्षोभं कुरु स्हौः वाग्वादिनि भैरवि ह्रीं फ्रें ख्फ्रें क्ली पूर्णेश्वरि सर्वकामान् पूरय ओं फट् स्वाहा पूर्णेश्वरि) ॥ १४४-१४९ ॥

वाग्भवपञ्चकं चैव रक्तरक्ते ततो लिखेत् ।
महारक्तचामुण्डेश्वरि चैव ततः परम् ॥ १५० ॥
अवतरद्वयं चैव वह्निपत्नी तदा प्रिये ।
ततो रक्तचामुण्डेश्वरि संलिख्य माहेशि ॥ १५१ ॥
तारत्रपारमास्त्रिपुरावागीश्वरी तथा ।
ङेऽन्ता नमः समुच्चार्य्य पुरा वागीश्वरि तथा ॥ १५२ ॥
हसें बीजं तदा देवि कूटं मारं तथा परम् ।
महाप्रेतं ततः कालभैरवि च ततः परम् ॥ १५३ ॥
निशाकूटकूर्च्चकूटौ तुङ्गप्रतुङ्गकूटकौ ।
चण्डवारुणि सम्प्रोच्य तारमघोरे च तदा ॥ १५४ ॥
पाशयुक्तं हकारञ्च घोरे तदनु वदेत् ।
त्रपा घोरघोरतरे दीर्घं तनुच्छदं ततः ॥ १५५ ॥
सर्वतः शर्वशर्वे च ह्रेंकारं च ततः प्रिये ।
नमस्ते रुद्ररूपे च ह्रविसर्गौ ततः शृणु ॥ १५६ ॥

पाँच वाग्भव के बाद 'रक्तरक्ते' लिखे । उसके बाद 'महारक्तचामुण्डेश्वरि' कहने के बाद दो बार 'अवतर' कहे । हे प्रिये ! उसके बाद वह्निपत्नी फिर 'रक्तचामुण्डेश्वरि' लिखकर 'माहेशि' तार त्रपा रमा के बाद चतुर्थ्यन्त त्रिपुरावागीश्वरी का उच्चारण कर हसें बीज, फिर मारकूट फिर महाप्रेत तत्पश्चात् 'कालभैरवि' के बाद निशाकूट कूर्चकूट तुङ्गकूट प्रतुङ्गकूट कहना चाहिए । फिर 'चण्डवारुणि' कहकर तार फिर 'अघोरे' तत्पश्चात् पाशयुक्त हकार फिर 'घोरे' कहे । त्रपा 'घोरघोरतरे' दीर्घ तनुच्छद फिर 'सर्वतः शर्वशर्वे' ह्रेंकार 'नमस्ते रुद्ररूपे' फिर विसर्गसहित ह्र कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं रक्तरक्ते महारक्तचामुण्डेश्वरि अवतर अवतर स्वाहा रक्तचामुण्डेश्वरि माहेशि ओं ह्रीं श्रीं त्रिपुरावागीश्वर्यै हसें मारकूट... महाप्रेतबीज... कालभैरवि निशाकूट... कूर्चकूट... तुङ्गप्रतुङ्गकूट... चण्डवारुणि ओं अघोरे हा हा घोरे

घोरघोरतरे हूं सर्वत: शर्वशर्वे ह्लें नमस्ते रुद्ररूपे ह्र:) ॥ १५०-१५६ ॥

प्रणवं च तथा घोरे त्रपालक्ष्म्यङ्कुशा अपि ।
कामाङ्गना वाग्भवाश्च गारुडं योगिनी प्रिये ॥ १५७ ॥
शाकिनी च कालीबीजं फेत्कारी तदनन्तरम् ।
क्रोधबीजं अघोरे च सिद्धिं मे देहि दापय ॥ १५८ ॥
वह्निजायां ततो दद्याद्धनदानु घोरे वदेत् ।
तारमाये शाकिनी च क्रोधबीजं च पार्वति ॥ १५९ ॥
महादिग्वीर तदा वाग्रमास्मरपाशका: ।
मुक्तकेशि चण्डाट्टहासिनि योगिनी तथा ॥ १६० ॥
वधूकाल्यमृतान्युक्त्वा मुण्डमालिनि संवेदत् ।
ततस्तारं वह्निजायां दिगम्बरि च तारकम् ॥ १६१ ॥
वाक्त्रपाकामकमलाकालेश्वरि ततो हरेत् ।
सर्वमुखस्तम्भिनि च सर्वजनमनोहरि ॥ १६२ ॥
सर्वजनवशङ्करि सर्वदुष्टनिमर्द्दिनि ।
सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि छिन्धि शृङ्खलां तत: ॥ १६३ ॥
त्रोटयद्वितयं प्रोच्य सर्वशत्रून् वदेत् प्रिये ।
जम्भयद्वितयं चोक्त्वा द्विषां निर्द्दलयद्वयम् ॥ १६४ ॥
सर्वान् स्तम्भय द्वितयं मोहनास्त्रेण द्वेषिण: ।
उच्चाटयद्वयं प्रोक्त्वा सर्ववश्यं कुरुद्वयम् ॥ १६५ ॥
वह्निपत्नी देहि युगं तत: सर्वं स्मरेत्प्रिये ।
कालरात्र्यै कामिन्यै च गणेश्वर्य्यै नमस्तदा ॥ १६६ ॥

हे प्रिये ! प्रणव 'घोरे' त्रपा लक्ष्मी अङ्कुश कामाङ्गना वाग्भव गरुड़ योगिनी शाकिनी काली फेत्कारी क्रोध बीजों के बाद 'अघोरे सिद्धिं मे देहि दापय' के बाद वह्निजाया कहे । धनदाबीज 'घोरे' कहकर हे पार्वति! तार माया शाकिनी क्रोध्र बीज महादिग्वीर फिर वाक् रमा स्मर पाश बीज के बाद 'मुक्तकेशि चण्डाट्टहासिनि' को कहकर योगिनी वधू काली अमृत बीजों को कहकर 'मुण्डमालिनि' कहे । इसके बाद तार वह्निजाया बीज फिर 'दिगम्बरि' के बाद तार वाक् त्रपा काम कमला के बाद 'कालेश्वरि' कहे । फिर 'सर्वमुखस्तम्भिनि सर्वजनमनोहरि सर्वजनवशङ्करि सर्वदुष्ट-निमर्दिनि सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि छिन्धि शृङ्खलां' कहने के बाद 'त्रोटय' दो बार कहकर 'सर्वशत्रून्' कहे । फिर 'जम्भय' दो बार फिर 'द्विषान्' फिर 'निर्दलय' दो बार फिर 'सर्वान्' कहे । 'स्तम्भय' दो बार कहने के बाद 'मोहनास्त्रेण द्वेषिण:' का उच्चारण करे । 'उच्चाटय' दो बार कहकर 'सर्ववश्यं' के बाद 'कुरु' को दो बार कहे । फिर वह्निपत्नी फिर 'देहि' को दो बार फिर 'सर्वम्' का स्मरण करना चाहिये । हे प्रिये इसके बाद 'कालरात्र्यै कामिन्यै गणेश्वर्यै नम: कालरात्रि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—

ओं घोरे ह्रीं श्रीं क्रों क्लूं ऐं क्रौं छ्रीं फ्रें क्रीं ख्फ्रें हूं अघोरे सिद्धिं मे देहि दापय स्वाहा क्ष्रूं अघोरे ओं ह्रीं फ्रें हूं महादिग्वीरे (महादिगम्बरि) ऐं श्रीं क्लीं आं मुक्तकेशि चण्डाट्टहासिनि छ्रीं स्त्रीं क्रीं ग्लौं मुण्डमालिनि ओं स्वाहा । दिगम्बरि ओं ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं कालेश्वरि सर्वमुखस्तम्भिनि सर्वजनमनोहरि सर्वजनवशङ्करि सर्वदुष्टनिमर्दिनि सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि छिन्धि शृङ्खलां त्रोटय त्रोटय सर्वशत्रून् जम्भय जम्भय द्विषान् निर्दलय निर्दलय सर्वान् स्तम्भय स्तम्भय मोहनास्त्रेण द्वेषिण उच्चाटयोच्चाटय सर्ववश्यं कुरु कुरु स्वाहा देहि देहि सर्वं कालरात्र्यै कामिन्यै गणेश्वर्यै नमः कालरात्रि) ॥१५७-१६६॥

कालरात्रि ततश्चोक्त्वा तारवाग्भवपाशकाः ।
ततः कलारामकलां सबिन्दुं शृणु पार्वति ॥ १६७ ॥
एह्येहि भगवति ततः किरातेश्वरि ततः परम् ।
विपिनकुसुमावतंसिनि कर्णे ततः प्रिये ॥ १६८ ॥
भुजगनिर्मोचकञ्चुकिनि मायाद्वयं ततः ।
सबिन्दुकं ह्लद्वयञ्च कहद्वयं ज्वलद्वयम् ॥ १६९ ॥
प्रज्वलद्वितयं देवि सर्वसिद्धिं ददद्वयम् ।
देहिद्वयं दापय च सर्वशत्रून् दहद्वयम् ॥ १७० ॥
बन्धद्वयं प(च)द्वयं मथद्वयं महेश्वरि ।
विध्वंसयद्वयं प्रोच्य कवचत्रितयं ततः ॥ १७१ ॥
अस्त्रहृद्वह्निभार्य्या च किरातेश्वरि संवदेत् ।

हे पार्वति ! तार वाग्भव पाश के बाद कला राम कला को बिन्दुसहित कहे । 'एहि एहि भगवति' कहने के बाद 'किरातेश्वरि विपिनकुसुमावतंसिनि कर्णे भुजगनिर्मोककञ्चुकिनि' कहे । फिर दो माया बीज बिन्दुयुक्त दो ह्ल, फिर कह दो बार, ज्वल दो बार, प्रज्वल दो बार के बाद 'सर्वसिद्धिं' कहकर दो-दो बार 'दद देहि और दापय' कहे । 'सर्वशत्रून्' कहने के बाद 'दह बन्ध पच मथ विध्वंसय' को दो-दो बार कहकर कवच को तीन बार कहने के उपरान्त अस्त्र हृदय और वह्निभार्या को कहकर 'किरातेश्वरि' कहना चाहिए । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ऐं आं ईं णं ईं एहि एहि भगवति किरातेश्वरि विपिनकुसुमावतंसिनि कर्णे भुजगनिर्मोककञ्चुकिनि ह्रीं ह्रीं ह्लं ह्लं कह कह ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल सर्वसिद्धिं दद दद देहि देहि दापय दापय सर्वशत्रून् दह दह बन्ध बन्ध पच पच मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय हूं हूं हूं फट् नमः स्वाहा किरातेश्वरि) ॥ १६७-१७२ ॥

वाग्भवपञ्च च तथा वज्रकुब्जिके ततः स्मरेत् ॥ १७२ ॥
प्रलयबीजं प्राणेशि त्रैलोक्याकर्षिणि ततः ।
त्रपाकामाङ्गद्राविणि स्मराङ्ग(ने) ततोऽनघे ॥ १७३ ॥
महाक्षोभकारि(णि) ततो वाग्भवो मीनकेतनः ।
द्विबिन्दुकश्चन्द्रबीजश्चतुर्दशस्वरान्वितः ॥ १७४ ॥

द्विबिन्दुकं पुनश्चन्द्रं ततो वज्रकुब्जिके च ।
नमो भगवति तदा ततो घोरे महेश्वरि ॥ १७५ ॥
भोगबीजं ततो देवि श्रीकुब्जिके ततः परम् ।
सानुबीजं सकारञ्च जीवारूढं रेफान्वितम् ॥ १७६ ॥
कलया भूषितं ज्ञेयं तदुत्तरं शृणु प्रिये ।
बीजं तत्परमेशानि वामकर्णविभूषितम् ॥ १७७ ॥
ङ ञ ण न म उच्चार्य अघोरामुखि तत्परम् ।
छकारं बिन्दुसहितमाद्यदीर्घत्रयान्वितम् ॥ १७८ ॥
क्रमेण त्रीणि बीजानि संलिख्य प्राणवल्लभे ।
किलिद्वयं ततो विच्चे पादुकां पूजयाम्यपि ॥ १७९ ॥
नमः समयकुब्जिके...

पाँच वाग्भव फिर 'वज्रकुब्जिके' फिर प्रलयबीज 'प्राणेशि त्रैलोक्याकर्षिणि' के बाद त्रपा काम बीज फिर 'अङ्गद्राविणि स्मराङ्गने' फिर 'अनघे महाक्षोभकारिणि' कहे । फिर वाग्भव कामबीज दो बिन्दुओं वाला तथा चौदह स्वरों से युक्त चन्द्रबीज फिर दो बिन्दुओं वाला चन्द्रबीज फिर 'वज्रकुब्जिके नमो भगवति घोरे महेश्वरि' फिर भोगबीज फिर 'श्रीकुब्जिके' फिर सानुबीज जीव पर आरूढ और रेफयुक्त सकार कला से भूषित जानना चाहिये । उसके बाद हे प्रिये ! वामकर्ण (=ॐ) से विभूषित वह बीज कहकर ङ ञ ण न म का उच्चारण कर 'अघोरामुखि' कहे । फिर बिन्दु एवं प्रथम तीन दीर्घसहित छह का उच्चारण कर हे प्राणवल्लभे ! क्रम से तीन बीज लिखे । उसके बाद किलि को दो बार 'विच्चे' को कहकर 'पादुकां पूजयामि नमः समयकुब्जिके' कहना चाहिये (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं वज्रकुब्जिके हसखफ्रीं प्राणेशि त्रैलोक्याकर्षिणि ह्रीं क्लीं अङ्गद्राविणि स्मराङ्गने अनघे महाक्षोभकारिणि ऐं क्लीं ग्लौः ग्लं ग्लां ग्लिं ग्लीं ग्लुं ग्लूं ग्लृं ग्लॄं ग्लल्रृं ग्लें ग्लैं ग्लों ग्लौं ग्लः ग्लौः ग्लौं वज्रकुब्जिके नमो भगवति घोरे महेश्वरि हंसखफ्रीं देवि श्रीकुब्जिके रह्लीं स्त्रीं स्त्रूं ङ ञ ण न म अघोरामुखि छां छीं छूं किलि किलि विच्चे पादुकां पूजयामि नमः समयकुब्जिके) ॥ १७२-१८० ॥

...तारमैधत्रपास्मराः ।
शाकिनी प्रलयश्चैव फेत्कारी तदनन्तरम् ॥ १८० ॥
भाषाख्यकूटं ततो देवि चतुर्थस्वरभूषितम् ।
षष्ठस्वरविहीनं च भगवति वदेत्ततः ॥ १८१ ॥
विच्चे घोरे ततोऽपि स्यात्फेत्कारी वाग्भवान्विता ।
श्रीकुब्जिके ततः पश्चात्सानुबीजं ततः परम् ॥ १८२ ॥
तदेव षष्ठस्वरेण समुद्धरेन्महेश्वरि ।
प्रेतबीजं विसर्गहीनं ङ ञ ण न म इत्यपि ॥ १८३ ॥

अघोरामुखि तदा छस्य बीजत्रयं तथा ।
किलि किलि ततो विच्चे कामिनी क्रोध एव च ॥ १८४ ॥
प्रेतबीजं पादुकां च पूजयामि नमः स्वाहा ।

तार मेधा त्रपा स्मर शाकिनी प्रलय फेत्कारी बीज उसके बाद चतुर्थस्वर से युक्त और षष्ठ स्वर से रहित भासा नामक कूट को कहे । इसके बाद 'भगवति' कहे । तत्पश्चात् 'विच्चे घोरे' कहने के पश्चात् फेत्कारी वाग्भव को कहना चाहिए । 'श्रीकुब्जिके' कहने के बाद सानुबीज को षष्ठस्वर से युक्त कर कहे । विसर्गरहित प्रेतबीज फिर ङ ञ ण न म को कहे । फिर 'अघोरामुखि' और छह का बीज कहे । तत् पश्चात् 'पादुकां पूजयामि नमः स्वाहा' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ऐं ह्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रीं हसख्फ्रें क्षह्रम्लव्र्यीं भगवति विच्चे घोरे हसख्फ्रें ऐं श्रीं कुब्जिके रह्रीं रह्रूं स्हौं ङ ञ ण न म अघोरामुखि छां छीं छूं किलि किलि विच्चे स्त्रीं हूं स्हौः पादुकां पूजयामि नमः स्वाहा) ॥ १८०-१८५ ॥

मोक्षकुब्जिके ततोऽपि स्यान्नमो भगवति तथा॥ १८५ ॥
सिद्धे तदा महेशानि प्रलयत्रयमुद्धरेत् ।
दीर्घाद्यत्रयसंयुक्तं कुब्जिके तदनन्तरम् ॥ १८६ ॥
सानुत्रयं तथा देवी दीर्घत्रयविभूषितम् ।
खगे ततो वाग्भवश्च अघोरे तदनन्तरम् ॥ १८७ ॥
अघोरामुखि ततः किलिद्वयं तथोद्धरेत् ।
विच्चे पादुकां चोक्त्वैव पूजयामि नमस्ततः ॥ १८८ ॥
भोगकुब्जिके तथैव...

'मोक्षकुब्जिके' फिर 'नमो भगवति सिद्धे महेशानि' के बाद प्रथम तीन दीर्घ स्वर प्रलय बीज को तीन बार कहे । इसके बाद 'कुब्जिके' कहे । फिर तीन दीर्घस्वर से युक्त तीन सानुबीज कहे । 'खगे' कहने के बाद वाग्भव फिर 'अघोरे अघोरामुखि' फिर 'किलि' को दो बार कहे । 'विच्चे' और 'पादुकां' को कहकर 'पूजयामि नमः भोगकुब्जिके' कहना चाहिये । (मन्त्र इस प्रकार है—मोक्षकुब्जिके नमो भगवति सिद्धे महेशानि हसफ्रां हसफ्रीं हसफ्रूं कुब्जिके रह्रां रह्रीं रह्रूं खगे ऐं अघोरे अघोरामुखि किलि किलि विच्चे पादुकां पूजयामि नमः भोगकुब्जिके) ॥ १८५-१८९ ॥

...मैधत्रपारमास्तथा ।
फेत्कारी च जीवषान्तौ वह्न्यारूढौ तारान्वितौ॥ १८९ ॥
भगवत्यम्ब ततः कूटं प्राभातिकं ततः ।
पुनस्तदेव कूटं स्यात्सकाराद्यं च चिन्तयेत् ॥ १९० ॥
कुब्जिकायै तथोच्चार्य्य नकुलीशसकारकौ ।
ब्रह्मेन्द्रगौरी च तदा बिन्दुं च कलयान्वितम् ॥ १९१ ॥
जीवश्चन्द्रश्च ब्रह्मा च एकादशस्वरस्तथा ।

गौरीबीजं परे दत्वा षष्ठस्वरविभूषितम् ॥ १९२ ॥
ततो ङञणनमेति अघोरामुखि संलिखेत् ।
पूर्ववत्त्रीणि बीजानि छकारस्य समुद्धरेत् ॥ १९३ ॥
किलि किलि ततो विच्चे मानुषान्तौ रेफारूढौ ।
तारान्वितौ फेत्कारी च रमा माया मेधा अपि ॥ १९४ ॥
ततो जय कुब्जिके हि मैधमायारमास्तथा ।
ततः साद्यप्रलयं च प्रेतं विसर्गहीनकम् ॥ १९५ ॥
बिन्दुयुक्तं ततः पश्चाद् भगवत्यम्ब इत्यपि ।
ततः प्राभातिकं कूटं साद्येन तद्द्वितीयकम् ॥ १९६ ॥
वामकर्णविहीनं च कलया मण्डितं प्रिये ।
कुब्जिके च ततश्चोक्त्वा बालाकूटं ततः परम् ॥ १९७ ॥
तत्कूटं च द्वयं लेख्यं तुरीयषष्ठभूषितम् ।
ततो ङञणनम अघोरामुखि संवदेत् ॥ १९८ ॥
छां छीं किलि किलि ततो विच्चेऽस्त्रं वह्निवल्लभा ।

मेधा त्रपा रमा फेत्कारी वह्नि और तार से युक्त जीव षान्त कहकर 'भगवति अम्बे' कहे । उसके बाद प्राभातिक कूट फिर वही कूट लिखकर सकाराद्य कहना चाहिये । 'कुब्जिकायै' कहकर नकुलीश और सकार कहे । फिर 'ब्रह्मेन्द्रगौरी' को बिन्दु कला से युक्त कहना चाहिये । जीव चन्द्र ब्रह्मा एवं एकादश स्वर फिर गौरीबीज को षष्ठ स्वर से विभूषित कर कहना चाहिये । इसके बाद 'ङ ञ ण न म अघोरामुखि' लिखे । पूर्व की भाँति छकार बीज को तीन बार लिखे । 'किलि किलि' के बाद रेफयुक्त मानुषान्त कहना चाहिये । तत्पश्चात् फेत्कारी रमा माया मेधा के बाद 'जयकुब्जिके' कहने के पश्चात् मेधा माया रमा कहे । उसके बाद विसर्गहीन बिन्दुयुक्त साद्यप्रलय के पश्चात् 'भगवत्यम्बे' कहे । फिर... (प्राभातिककूट)... (साद्य के साथ प्राभातिककूट) को वामकर्ण से रहित, कला से मण्डित कर कहना चाहिये । फिर 'कुब्जिके' कहकर... (बालाकूट)... (ईकारयुक्त बालाकूट)... (ऊकारयुक्त बालाकूट) फिर ङ ञ ण न म अघोरामुखि छां छीं किलि किलि विच्चे कहने के बाद अस्त्र और अग्निवल्लभा कहना चाहिये । (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें श्ग्रों श्ग्रों भगवत्यम्ब... (प्राभातिककूट)... (सकारादियुक्त प्राभातिककूट) कुब्जिकायै हसकल क्रीं यां ग्लौं ठौं... ऐं क्रूं ङ ञ न म अघोरामुखि छां छीं छूं किलि किलि विच्चे म्रों श्ग्रों हसखफ्रें श्रीं ह्रीं ऐं जयकुब्जिके सहसखफ्रीं स्हौं भगवत्यम्बं... (प्राभातिककूट)... (सकारादियुक्त प्राभातिककूट ईकारयुक्त) कुब्जिके... (बालाकूट)... (ईकारयुक्त बालाकूट)... (ऊकारयुक्त बालाकूट) ङ ञ ण न म अघोरामुखि छां छीं किलि किलि विच्चे फट् स्वाहा) ॥ १८९-१९९ ॥

क्रोधास्त्रं वह्निपत्नी च हृद्वाक्त्रितयं ततः ॥ १९९ ॥

ततः सिद्धिकुब्जिके (च) मैधमायारमा अपि।
प्रलयं प्रेतबीजं ततो देविकूटं वाराहिकं ततः॥ २०० ॥
साद्यं तदेव कूटं स्याद् द्वितीयं परमेश्वरि ।
रेफस्थाः सह पान्ताश्च कलाबिन्दुसमन्विताः ॥ २०१ ॥
षष्ठस्वरविहीनं तु कलाबीजेन भूषितम् ।
एतद्बीजं समाभाष्य कुब्जिके तदनन्तरम्॥ २०२ ॥

क्रोध अस्त्र अग्निपत्नी हृदय के बाद तीन वाग्बीज फिर 'सिद्धिकुब्जिके' के बाद मेधा माया रमा प्रलय प्रेतबीज फिर देवीकूट तदनन्तर वाराहीकूट फिर साद्य वहीकूट दूसरी बार कहना चाहिये । रेफ से युक्त स ह और पान्त (=फ) को षष्ठ स्वरविहीन कला बिन्दु से युक्त कर कहना चाहिये । इस बीज को कहकर 'कुब्जिके' कहना चाहिये । (मन्त्र इस प्रकार है—हूं फट् स्वाहा नमः ऐं ऐं ऐं सिद्धिकुब्जिके ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रीं स्हौः म्लक्षकसहहूं सम्लक्षकसहहूं सहफ्रीं... [षष्ठ स्वररहित कलास्वर युक्त बीज कुब्जिके]) ॥ १९९-२०२ ॥

मायाद्वयमागच्छद्वयं तत्र विचिन्तयेत् ।
आवेशयद्वयं प्रोच्य वेधयद्वयमाहरेत् ॥ २०३ ॥
मायाद्वयं तथैवोक्त्वा द्वितीयं च वाराहिकम् ।
संलिख्य द्वितीयं कूटं मूलवाराहिकं ततः ॥ २०४ ॥
नमःस्वाहे तथा चोक्त्वा आवेशकुब्जिके ततः ।
माहेन्द्राख्यं ततः कूटं फेत्कारीबीजमुद्धरेत् ॥ २०५ ॥
पित्स(?) कूटं ततो भद्रे मार्ज्जाराख्यं ततः प्रिये।
मणिकूटमृषिकूटं कूटं सारङ्गकं ततः ॥ २०६ ॥
वाग्भवपञ्चकं ततः कालि कालि ततः परम् ।
महाकालि मांस इति शोणितभोजिनि ततः ॥ २०७ ॥
ह्रां ह्रीं ह्रूं रक्तकृष्णमुखि समुद्धरेत्ततः ।
देवि मा मां पश्यन्त्विति शत्रव इति संवदेत् ॥ २०८ ॥

दो मायाबीज फिर दो बार 'आगच्छ' कहना चाहिये । 'आवेशय' को दो बार कहकर 'वेधय' को दो बार कहना चाहिये । फिर दो मायाबीज कहकर द्वितीय वाराही बीज को लिखकर द्वितीयकूट को मूलवाराही के साथ कहना चाहिये । 'नमः स्वाहा' कहकर 'आवेशकुब्जिके' कहे । फिर माहेन्द्र कूट को कहकर फेत्कारी बीज को उद्धृत करना चाहिये । हे प्रिये ! इसके बाद पित्सकूट फिर मार्जाकूट मणिकूट ऋषिकूट सारङ्गकूट कहने के बाद वाग्भव को पाँच बार, फिर 'कालि कालि महाकालि मांसशोणित भोजिनि' कहने के बाद 'ह्रां ह्रीं ह्रूं रक्तकृष्णमुखि' कहना चाहिये । फिर 'देवि मा मां पश्यन्तु शत्रवः' कहना चाहिये (मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं ह्रीं आगच्छ आगच्छ आवेशय आवेशय वेधय वेधय ह्रीं ह्रीं सम्लक्ष कस ह हूं

म्लक्षकसहहूं नमः स्वाहा आवेशकुब्जिके.... (महेन्द्र कूट)...हसखफ्रें....(पित्सकूट)... (मार्जीर मणि ऋषि सारङ्ग कूट)... ऐं ऐं ऐं ऐं कालि कालि महाकालि मांसशोणित भोजिनि ह्रां ह्रीं हूं रक्तकृष्णमुखि देवि मां मां पश्यन्तु शत्रवः) ॥ २०३-२०८ ॥

श्रीहृदयशिवदूति श्रीपादुकां ततः परम् ।
पूजयामि ह्राङ्कारं च हृदयाय नमस्ततः ॥ २०९ ॥
हृदय शिवदूति च मैधपञ्चकमुद्धरेत् ।
नमो भगवति तदा दुष्टचाण्डालिनि ततः ॥ २१० ॥
रुधिरमांसभक्षिणि कपालखट्वाङ्ग तथा ।
ततः पश्चाद्धारिणि च हनयुग्मं वदेत्ततः ॥ २११ ॥
दहयुग्मं पचयुग्मं मम शत्रून् ग्रसद्वयम् ।
मारयद्वितयं प्रोच्य क्रोधत्रयं ततः प्रिये ॥ २१२ ॥
फट्शिरः शिवदूतीति श्रीपादुकां पूजयामि ।
ह्रीं शिरसे ततः स्वाहा शिरः शिवदूति ततः ॥ २१३ ॥

'श्रीहृदयशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि ह्रां हृदयाय नमः' कहे । उसके बाद 'हृदयशिवदूति' कहकर पाँच बार मेधाबीज को उद्धृत करे । फिर 'नमो भगवति दुष्टचाण्डालिनि रुधिरमांसभक्षिणि कपालखट्वाङ्ग' के बाद 'धारिणि' कहे । दो बार 'हन' दो बार 'दह' दो बार 'पच' कहकर 'मम शत्रून्' कहे । फिर 'ग्रस' को दो बार 'मारय' को दो बार कहकर हे प्रिये ! क्रोध बीज को तीन बार कहे । 'फट् शिरः शिवदूति' कहकर 'श्रीपादुकां पूजयामि ह्रीं शिरसे स्वाहा' कहे । फिर शिरः के बाद 'शिवदूति' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—श्रीहृदय शिवदूति ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं नमो भगवति दुष्टचाण्डालिनि रुधिरमांसभक्षिणि कपालखट्वाङ्गधारिणि हन हन दह दह पच पच मम शत्रून् ग्रस ग्रस मारय मारय हूं हूं हूं फट् स्वाहा शिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि ह्रीं शिरसे स्वाहा शिवदूति) ॥ २०९-२१३ ॥

वाग्भवपञ्चकं ततः प्रलयत्रयमाहरेत् ।
आद्यदीर्घत्रयं कृत्वा महापिङ्गल ततः ॥ २१४ ॥
जटाभारे विकटरसनाकराले संवदेत् ।
सर्वसिद्धिं देहि देहि दापयद्वितयं वदेत् ॥ २१५ ॥
शिखाशिवदूति ततः श्रीपादुकां पूजयामि ।
दीर्घतनुच्छदं ततः शिखायै च वषट् ततः ॥ २१६ ॥
शिखाशिवदूति...

पाँच वाग्भवबीज फिर प्रथम तीन दीर्घ स्वरों के साथ तीन प्रलयबीज 'महापिङ्गलजटाभारे विकटरसनाकराले' कहना चाहिये । 'सर्वसिद्धिं देहि देहि' के बाद 'दापय' को दो बार कहना चाहिये । 'शिखा शिवदूति' फिर 'श्रीपादुकां पूजयामि' दीर्घतनुच्छद (=हूं) फिर 'शिखायै' फिर 'वषट्' तत्पश्चात् 'शिखाशिवदूति' इसके बाद

पाँच वाग्भवबीज कहना चाहिये। (मन्त्र—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूं महापिङ्गलजटाभारे विकटरसनाकराले सर्वसिद्धिं देहि देहि दापय दापय शिखाशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि हूं शिखायै वषट् शिखाशिवदूति) ॥ २१४-२१७ ॥

...ततो वाग्भवपञ्चकं ततः।
महाश्मशानवासिनि घोराट्टहासिनि ततः ॥ २१७ ॥
विकटतुङ्गकोकामुखि मायास्मरौ तथा।
हरिजायामहापातालतुलितोदरि संवदेत् ॥ २१८ ॥
भूतवेतालसहचारिणि संलिख्य चानघे।
कवचशिवदूति च श्रीपादुकां ततः स्मरेत् ॥ २१९ ॥
पूजयामि कवचाय क्रोधबीजं स्मरेत्ततः।
कवचशिवदूति हि मैधानां पञ्च एव च ॥ २२० ॥
लेलिहानरसना तु भयानके वदेत्ततः।
विस्रस्तचिकुरभारभासुरे संवदेत् प्रिये ॥ २२१ ॥
चामुण्डा भैरवी ततो डाकिनीगण चेत्यपि।
परिवृते शाकिनी च डाकिनी क्रोध एव च॥ २२२ ॥
आगच्छ द्वितयं प्रोच्य सान्निध्यं कल्पयद्वयम्।
त्रैलोक्यडामरे तथा महापिशाचिनि ततः॥ २२३ ॥
नेत्रशिवदूति तदा श्रीपादुकां तथा प्रिये।
पूजयामि नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्र इत्यपि ॥ २२४ ॥
शिवदूति समाभाष्य...

'ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं महाश्मशानवासिनि घोराट्टहासिनि' के बाद 'विकटतुङ्गकोकामुखि' फिर माया एवं काम बीज फिर लक्ष्मीबीज कहने के बाद 'महापातालतुलितोदरि कहे। हे अनघे! 'भूतवेतालसहचारिणि' लिखकर 'कवच शिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि कवचाय' कह कर क्रोधबीज कहे। फिर 'कवचशिवदूति' के बाद पाँच वाग्भवबीज के पश्चात् 'लेलिहानरसनाभयानके' कहना चाहिये। हे प्रिये! फिर 'विस्रस्तचिकुरभार-भासुरे' कहना चाहिये। उसके बाद 'चामुण्डाभैरवीडाकिनीगणपरिवृते शाकिनीडाकिनी' कहकर क्रोध बीज के बाद 'आगच्छ' को दो बार 'सान्निध्यं' के पश्चात् 'कल्पय' को दो बार कहना चाहिये। 'त्रैलोक्यडामरे महापिशाचिनि नेत्रशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्र शिवदूति' कहना चाहिये। (मन्त्र—महाश्मशानवासिनि घोराट्ट-हासिनि विकटतुङ्गकोकामुखि ह्रीं क्लीं श्रीं महापातलतुलितोदरि भूतवेतालसहचारिणि कवचशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि कवचाय हूं कवच शिवदूति ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं लेलिहानरसनाभयानके विस्रस्तत्रिकुरभारभासुरे चामुण्डाभैरवीडाकिनीगणपरिवृते शाकिनी डाकिनी हूं आगच्छ आगच्छ सान्निध्यं कल्पय कल्पय त्रैलोक्यडामरे महापिशाचिनि नेत्रशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रशिवदूति) ॥ २१७-२२५ ॥

...वाग्भवपञ्चकं ततः ।
गुह्यातिगुह्यकुब्जिके त्रिक्रोधमस्त्रमेव च ॥ २२५ ॥
मम सर्वोपद्रवान् मन्त्रतन्त्र ईति तदा ।
यन्त्रचूर्णप्रयोगादिकान् परकृतान् तदा ॥ २२६ ॥
करिष्यन्ति तान् सर्वान् हनयुग्मं तथोत्तरम् ।
मथयुग्मं मर्दययुगं युगलं परिकीर्तितम् ॥ २२७ ॥
दंष्ट्राकरालि शाकिनी च क्रोधास्त्रे च ततः परम् ।
गुह्यातिगुह्यकुब्जिके ततोऽस्त्रशिवदूति च ॥ २२८ ॥
श्रीपादुकां पूजयामि अस्त्राय फट् तदन्तरम् ।
अस्त्रशिवदूति...

पाँच वाग्भव फिर 'गुह्यातिगुह्यकुब्जिके' के बाद तीन क्रोधबीज फिर अस्त्र के बाद 'मम सर्वोपद्रवान् मन्त्रतन्त्रईतियन्त्रचूर्णप्रयोगादिकान् परकृतान् करिष्यन्ति तान् सर्वान्' कहकर 'हन' को दो बार कहना चाहिये । 'मथ' को दो बार 'मर्दय' को दो बार कहना चाहिये । 'दंष्ट्राकरालि' के बाद शाकिनीबीज क्रोध और अस्त्रबीज कहने के बाद 'गुह्यातिगुह्यकुब्जिके' फिर 'अस्त्रशिवदूति' श्रीपादुकां पूजयामि अस्त्राय फट् 'अस्त्रशिवदूति' कहना चाहिये (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं गुह्यातिगुह्यकुब्जिके हूं हूं हूं फट् मम सर्वोपद्रवान् मन्त्रतन्त्रईतियन्त्रचूर्णप्रयोगादिकान् परकृतान् करिष्यन्ति तान् सर्वान् हन हन मथ मथ मर्दय मर्दय दंष्ट्राकरालि फ्रें हूं फट् गुह्यातिगुह्यकुब्जिके अस्त्रशिवदूति) ॥ २२५-२२९ ॥

...ततो वाग्भवपञ्चकं तथा ॥ २२९ ॥
क्रोधानां पञ्च आहृत्य कारघोरनादेति च ।
विद्राविद्राविजगत्त्रये ततो मायात्रयं हरेत् ॥ २३० ॥
प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते ।
स्मरत्रयं पदविन्यासत्रासित इति स्मरन् ॥ २३१ ॥
सकलं पाताले रमात्रयं ततो वदेत् ।
व्यापकशिवदूति च ततो वदेज्जितेन्द्रिय ॥ २३२ ॥
परमशिवपर्यङ्कशायिनि तदनन्तरम् ।
ततः क्रमेण देवेशि योगिनीत्रयमुद्धरेत् ॥ २३३ ॥
गलद्रुधिरमुण्डमालाधारिणि संवदेत् ।
घोरघोरतररूपिणि संवदेत्ततः ॥ २३४ ॥
ततः परं शाकिन्यास्तु क्रमेण त्रयमाहरेत् ।
ज्वालामालिपिङ्गजटाजूटे वदेच्च साधकः ॥ २३५ ॥
अचिन्त्यमहिमबलप्रभावे तदनन्तरम् ।
कामिनीत्रयमुद्धृत्य दैत्यदानव इत्यपि ॥ २३६ ॥

निकृन्तनि ततोऽपि स्यात् शृणुष्व परमेश्वरि ।
सकलसुरासुरकार्यसाधिके तदनन्तरम् ॥ २३७ ॥
त्रितारं फट् नमः स्वाहा व्यापकशिवदूति ततः ।

इसके बाद पाँच वाग्भव पाँच क्रोधबीज के बाद 'हूं कारघोरनादविद्राविद्रावि जगत्त्रये' के बाद तीन माया बीज कहना चाहिये । 'प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते' कहने के बाद तीन स्मरबीज फिर 'पदविन्यासत्रासितसकलपाताले' के बाद तीन बार रमाबीज कहना चाहिये । इसके बाद 'व्यापकशिवदूति जितेन्द्रियपरमशिवपर्यङ्कशायिनि' के बाद 'देवेशि' कहकर तीन योगिनीबीज कहना चाहिये । तत्पश्चात् 'गलद्रुधिर-मुण्डमालाधारिणि' कहना चाहिये । उसके बाद 'घोरघोरतररूपिणि' कहे । इसके पश्चात् क्रम से तीन शाकिनीबीज कहना चाहिये । साधक 'ज्वालामालिपिङ्गजटाजूटे अचिन्त्यमहिमाबलप्रभावे' कहे । तदनन्तर तीन कामिनीबीज को उद्धृत कर 'दैत्य-दानवनिकृन्तनि सकलसुरासुरकार्यसाधिके' के बाद तीन तार फट् नमः स्वाहा व्यापक-शिवदूति कहे । (मन्त्र—ऐ ऐं ऐं ऐं ऐं हूं हूं हूं हूं हूङ्कारघोरनादविद्राविद्राविजगत्त्रये ह्रीं ह्रीं ह्रीं प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते क्लीं क्लीं क्लीं पदविन्यासत्रासितसकलपाताले श्रीं श्रीं श्रीं व्यापकशिवदूति जितेन्द्रियपरमशिवपर्यङ्कशायिनि देवेशि छ्रीं छ्रीं छ्रीं गलद्रुधिरमुण्डमालाधारिणि घोरघोरतररूपिणि फ्रें फ्रें फ्रें ज्वालामालिपिङ्गजटाजूटे अचिन्त्यमहिमबलप्रभावे स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं दैत्यदानवनिकृन्तनि सकलसुरासुरकार्यसाधिके ओं ओं ओं फट् नमः स्वाहा व्यापकशिवदूति) ॥ २२९-२३८ ॥

तारत्रपारमाकामवाग्भवाङ्कुशलज्जकाः ॥ २३८ ॥
पाशक्रोधौ महापुरुषप्रासादौ तदनन्तरम् ।
अमृतं गारुडं चैव फेत्कारी तदनन्तरम् ॥ २३९ ॥
चण्डहयग्रीवौ ततो योगिनी शाकिनी तथा ।
मेघो विद्युद्रतिश्चैव प्रेतं स्फ्रेंकारमेव च ॥ २४० ॥
खेचर्य्यनेहसौ चैव भौजङ्गमस्तथापरः ।
कालसङ्कर्षिणि तदा क्रोधौ च वह्निवल्लभा ॥ २४१ ॥
कालसङ्कर्षिणि...

तार त्रपा रमा काम वाग्भव अङ्कुश लज्जा पाश क्रोध महापुरुष प्रासाद अमृत गरुड फेत्कारी चण्ड हयग्रीव योगिनी शाकिनी मेघ विद्युत् रति प्रेत स्फेंकार खेचरी अनेहस भुजङ्गम बीजों को कहने के बाद 'कालसङ्कर्षिणि' कहे । फिर क्रोध अग्निवल्लभा के बाद 'कालसङ्कर्षिणि' कहना चाहिए । (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं क्रों ह्रीं आं हूं एं।गं।सं हौं ग्लूं क्रौं हसखफ्रें फ्रों क्रूं छ्रीं फ्रें क्लौं क्लौं क्लूं स्हौः स्फ्रें ख्रौं जूं ब्रीं कालसङ्कर्षिणि हूं हूं स्वाहा कालसङ्कर्षिणि) ॥ २३८-२४२ ॥

...पुनर्मैधमायारमास्मराः ।

फेत्कारी क्रोधौ तदनु कुक्कुटि क्रींकारं तदा ॥ २४२ ॥
पाशाङ्कुशौ शाकिनी च चण्डबीजं ततः परम् ।
अस्त्रद्वयं वह्निजाया कुक्कुटि तदनु स्मरेत् ॥ २४३ ॥

मेधा माया रमा स्मर फेत्कारी क्रोध बीज उसके बाद 'कुक्कुटि' क्रींकार पाश अङ्कुश शाकिनी चण्डबीज दो अस्त्र वह्निजाया फिर कुक्कुटि कहना चाहिये । (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हसखफ्रें हूं कुक्कुटि क्रीं आं क्रों फ्रें फ्रों फट् फट् स्वाहा कुक्कुटि) ॥ २४२-२४३ ॥

तारं माया ततः कामः कामिनी शाकिनी तथा।
भ्रमराम्बिके तदनु शत्रुमर्दिनि संवदेत् ॥ २४४ ॥
पाशाङ्कुशप्रासादाश्च क्रोधश्च योगिनी तथा ।
अस्त्रद्वयं हृदयं च वह्न्यङ्गना तारा तथा ॥ २४५ ॥
भ्रमराम्बिके तदनु चण्डबीजं ततः स्मरेत् ।
धनदे भुवनेशी च सां सीं सूं तदनन्तरम् ॥ २४६ ॥
ततश्च सङ्कटादेवि सङ्कटेभ्यो मां तथा ।
तारयद्वयं रमाकामौ प्रासादौ क्रोध एव च ॥ २४७ ॥
पाशास्त्रे च वह्न्यबला सङ्कटादेवि तत्परम् ।

तार माया काम कामिनी शाकिनी बीजों के बाद 'भ्रमराम्बिके शत्रुमर्दिनि' कहना चाहिये । फिर पाश अङ्कुश प्रासाद क्रोध योगिनी दो अस्त्र हृदय वह्निस्त्री तारा 'भ्रमराम्बिके' के बाद चण्डबीज कहना चाहिये । फिर 'धनदे भुवनेशि सां सीं सूं' के बाद 'सङ्कटादेवी सङ्कटेभ्यो मां' के बाद दो तार रमा काम प्रासाद क्रोध पाश अस्त्र वह्निस्त्री सङ्कटादेवि कहना चाहिये । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ह्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें भ्रमराम्बिके शत्रुमर्दिनि आं क्रों हौं हूं छ्रीं फट् फट् नमः स्वाहा ओं भ्रमराम्बिके फ्रों धनदे ह्रीं सां सीं सूं सङ्कटादेवि सङ्कटेभ्यो मां तारय तारय श्रीं क्लीं हौं हूं आं फट् स्वाहा सङ्कटादेवि) ॥ २४४-२४८ ॥

पाशाङ्कुशप्रासादाश्च भोगवति ततः परम् ॥ २४८ ॥
तारमाये समुच्चार्य षादिक्षान्तं समुद्धरेत् ।
बिन्दुनादसमायुक्तं नव बीजं क्रमेण हि ॥ २४९ ॥
क्रोधश्च हृदयं चैव भगवति वदेत्ततः ।
महार्णवेश्वरि ततस्त्रैलोक्यग्रसनेति च ॥ २५० ॥
शीले पाशं कलाबीजं वामकर्णं सबिन्दुकम् ।
अस्त्रं च वह्निपत्नी च महार्णवेश्वरि ततः ॥ २५१ ॥

उसके बाद पाश अङ्कुश प्रासाद के बाद 'भोगवति' कहे । फिर तार और माया का उच्चारण कर 'ष' से लेकर 'क्ष' तक के वर्णों को उद्धृत करे । फिर बिन्दु और नाद से युक्त नव बीजों को क्रम से कहना चाहिये । क्रोध हृदय के बाद 'भगवति'

कहे । फिर 'महार्णवेश्वरि त्रैलोक्यग्रसनशीले' कहे । फिर पाश वामकर्ण और बिन्दुसहित कलाबीज अस्त्र वह्निजाया के बाद 'महार्णवेश्वरि' कहे (मन्त्र—ओं क्रों हौं भोगवति ओं ह्रीं षं सं हं क्षं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं हूं नमः भगवति महार्णवेश्वरि त्रैलोक्यग्रसनशीले आं ईं ऊं फट् स्वाहा महार्णवेश्वरि) ॥ २४८-२५१ ॥

तारबीजं क्षींकारं च पींकारं चूङ्कारं तदा ।
ततो भगवति ततो जान्तः षष्ठस्वरान्वितः ॥ २५२ ॥
बिन्दुयुक्तौ महेशानि कूटं प्राभातिकं ततः ।
ततो वाराहिकं कूटं सर्वतन्त्रसुगौपितम् ॥ २५३ ॥
चण्डझङ्कारकापालिनि जय कङ्केश्वरि नमः ।
द्विठो जयकङ्केश्वरि तारमायापाशास्तथा ॥ २५४ ॥
ङेऽन्ता च शबरेश्वरी नमश्च शबरेश्वरि ।

तारबीज क्षीकार पींकार चूङ्कार के बाद 'भगवति' फिर छठें स्वर एवं बिन्दु से युक्त जान्त फिर प्राभातिक कूट फिर सर्वतन्त्र सुगोपित वाराही कूट फिर 'चण्डझङ्कार कापालिनि जय कङ्केश्वरि नमः' फिर दो 'ठ' फिर 'जयकङ्केश्वरि' तार माया पाश बीज फिर चतुर्थ्यन्त शबरेश्वरी नमः शबरेश्वरि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं क्षीं पीं चूं भगवति झूं... (प्रभातकूट)... म्लक्षकसहहूं चण्डझङ्कारकापालिनि जयकङ्केश्वरि ठः ठः जयकङ्केश्वरि ओं ह्रीं आं शबरेश्वर्यै नमः शबरेश्वरि) ॥ २५२-२५५ ॥

प्रणवं मैधपाशौ च त्रपारमास्मरास्ततः ॥ २५५ ॥
क्रोधश्च शाकिनीबीजं डाकिनी फेत्कारी तथा।
पिङ्गले पिङ्गले ततो महापिङ्गले ततः परम् ॥ २५६ ॥
कालीबीजं क्रोधबीजं शाकिनी योगिनी तथा ।
प्रेतकाल्यावङ्कुशं च शाकिनी कामिनी तथा ॥ २५७ ॥
रमाचण्डानेहसां च विद्युत्पन्नगद्विठाः पुनः ।
सिद्धिलक्ष्मि ततस्तारं वाक्त्रपाश्रीस्मरा अपि ॥ २५८ ॥
भगवति महा तदा मोहिनि तदनन्तरम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवादिसकलेति वदेत्ततः ॥ २५९ ॥
सुरासुरमोहिनि सकलं प्रवदेत्ततः ।
जनं मोहय मोहय वशीकुरुद्वयं वदेत् ॥ २६० ॥
कामाङ्गद्राविणि ततः कामाङ्कुशे ततः परम् ।
त्रिकामिनी कामरमे त्रपा मैधं तारं तथा ॥ २६१ ॥
महामोहिनि...

प्रणव मेधा पाश त्रपा रमा स्मर क्रोध शाकिनीबीज डाकिनी फेत्कारी के बाद 'पिङ्गले पिङ्गले महापिङ्गले' के बाद कालीबीज क्रोधबीज शाकिनी योगिनी प्रेतकाली अङ्कुश शाकिनी कामिनी रमा चण्ड अनेहस् विद्युत् पन्नग तथा दो ठ के बाद

'सिद्धिलक्ष्मी' के बाद तार वाक् त्रपा श्री स्मर बीजों के पश्चात् 'भगवति महामोहिनि' ब्रह्मविष्णुशिवादिसकलसुरासुरमोहिनि सकल कहे । फिर 'जनं मोहय मोहय' कहकर 'वशीकुरु' को दो बार कहे । 'कामाङ्गद्राविणि कामाङ्कुशे' के बाद तीन कामिनी काम रमा त्रपा मेधा तार महामोहिनि कहे (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ऐं आं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं फ्रें ख्फ्रें हसखफ्रे पिङ्गले पिङ्गले महापिङ्गले क्रीं हूं फ्रें छ्रीं स्हौः क्रीं क्रों फ्रें स्त्रीं श्रीं फ्रों ब्लौं बीं ठः ठः सिद्धिलक्ष्मि ओं ऐं ह्रीं क्लीं भगवति महामोहिनि ब्रह्मविष्णुशिवादि-सकलसुरासुरमोहिनि सकलं जनं मोहय मोहय वशीकुरु वशीकुरु कामाङ्गद्राविणि कामाङ्कुशे स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ओं महामोहिनि) ॥ २५५-२६२ ॥

...तदनु वाक्स्मरौ कुलिका तथा ।
ततो बाले हकारं च सकलाश्च स्वरूपकाः ॥ २६२ ॥
मायाबीजं समुद्धार्य्य हसकहलह्रीं ततः ।
सकलह्रीं तदनु त्रिपुरसुन्दरि ततः ॥ २६३ ॥
हूं नमो मूकाम्बिकायै वादिनो मूकयद्वयम् ।
पाशबीजं कामबीजं मायाबीजं ततः परम् ॥ २६४ ॥
बिन्दुविसर्गसहितं रुद्रस्वरविहीनकम् ।
तत्त्वबीजं आदित्यश्च शक्रस्वरविभूषितम् ॥ २६५ ॥
वह्न्यङ्गना च तदनु मूकाम्बिके ततः प्रिये ।
माया च नाकुलं चैव क्रोधास्त्रे तदनन्तरम् ॥ २६६ ॥
एकजटे ततः पश्चात् त्रपानाकुलक्रोधकाः ।
नीलसरस्वति ततस्तारत्रपा ततः परम् ॥ २६७ ॥
नाकुलेर्ष्ये च तदनु फट्कारं तदनन्तरम् ।
उग्रतारे च तदनु ताररमामायास्तथा ॥ २६८ ॥
मैधं वज्रवैरोचनीये ईर्ष्याद्वयं ततः परम् ।
अस्त्रद्विठे...

वाक् स्मर कुलिका के बाद दो बालाबीज फिर हकार के सभी रूप मायाबीज को समुद्धृत कर 'हसकलह्रीं सकलह्रीं' के बाद 'त्रिपुरसुन्दरि हूं नमो मूकाम्बिकायै वादिनो' कहने के बाद 'मूकय' को दो बार कहे । पाशबीज कामबीज मायाबीज, उसके बाद बिन्दुविसर्गसहित तथा रुद्रस्वरविहीन तत्त्वबीज शक्रस्वरविभूषित आदित्य फिर वह्निपत्नी उसके बाद 'मूकाम्बिके' उसके बाद माया नाकुल क्रोध अस्त्र बीज फिर 'एकजटे' पश्चात् त्रपा नाकुल क्रोधबीज फिर 'नीलसरस्वति' उसके बाद तार त्रपा नाकुल ईर्ष्या तदनन्तर फट्कार उसके बाद 'उग्रतारे' फिर तार रमा माया मेधा 'वज्रवैरोचनीये' दो ईर्ष्या, इसके बाद अस्त्र दो ठ कहना चाहिये । (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं क्लीं यं क्ष्स्त्रीं हं हां हिं हीं हुं हूं हं हृं हलं ह्लृं हें हैं हों हौं हं हः ह्रीं ह सकहलह्रीं सकलह्रीं त्रिपुरसुन्दरि हूं नमो मूकाम्बिकायै वादिनो मूकय मूकय आं क्लीं ह्रीं स्हें स्हः सौः स्वाहा मूकाम्बिके ह्रीं क्रौं हूं फट् एकजटे ह्रीं क्रीं हूं नीलसरस्वति ओं ह्रीं क्रों वीं फट्

उग्रतारे ओं श्रीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये वीं वीं फट् ठः ठः) ॥ २६२-२६९ ॥

...छिन्नमस्ते तारं हृदयमेव च ॥ २६९ ॥
भगवत्यै पीताम्बरायै त्रपे सुमुखि ततः ।
वगले विश्वं मे वशं कुरु कुरु तथा ॥ २७० ॥
द्विठो वश्यवगले च हूं रक्ष तदनन्तरम् ।
त्रिकण्टकि तदनु च ताराङ्कुशस्मरा अपि ॥ २७१ ॥
कमला हरपत्नी च पाशं जाया क्रोधं तथा ।
जयदुर्गे तदनु च रक्ष रक्ष स्वाहा ततः ॥ २७२ ॥
सङ्ग्रामजयदुर्गे च त्रपास्मररुषस्तथा ।
विजयप्रदे तदनु प्रणवं पाशमेव च ॥ २७३ ॥
प्रासादामृतगारुडाः पन्नगास्त्रे ततः परम् ।
ब्रह्माणि...

'छिन्नमस्ते' तार हृदय 'भगवत्यै पीताम्बरायै' के बाद दो त्रपा फिर 'सुमुखि' उसके बाद 'वगले विश्वं में वंश कुरु कुरु' के बाद दो ठ, फिर 'वश्यवगले हूं रक्ष त्रिकण्टकि' के बाद तार अङ्कुश स्मर कमला हरपत्नी पाश जाया क्रोध, बीज फिर 'जयदुर्गे रक्ष रक्ष स्वाहा', फिर 'सङ्ग्रामजयदुर्गे' के बाद त्रपा स्मर क्रोध बीज, उसके बाद 'विजयप्रदे' तत्पश्चात् प्रणव पाश प्रासाद अमृत गरुड पन्नग अस्त्र के बाद 'ब्रह्माणि' कहना चाहिये । (मन्त्र इस प्रकार है—छिन्नमस्ते ओं नमः भगवत्यै पीताम्बरायै ह्रीं ह्रीं सुमुखि वगले विश्वं मे वशं कुरु कुरु ठः ठः वश्य वगले हूं रक्ष त्रिकण्टकि ओं क्रों क्लीं श्रीं क्रः आं स्त्रीं हूं जयदुर्गे रक्ष रक्ष स्वाहा सङ्ग्रामजयदुर्गे ह्रीं क्लीं हूं विजयप्रदे ओं ऐं हौं ग्लूं क्रों व्रीं फट् ब्रह्माणि) ॥ २६९-२७४ ॥

...तारप्रासादौ ग्लूं आं ह्रीं तदनन्तरम् ॥ २७४ ॥
रमेर्ष्ये च ततोऽपि स्यान्माहेश्वरि वदेत्ततः ।
भुजङ्गविद्युज्जलदाः शाकिनीरतिकालिकाः ॥ २७५ ॥
चण्डकालौ ग्लूङ्कारं च प्रेतं क्रोधं तथैव च ।
क्रोधमस्त्रद्वयं ततो वह्निजाया ततः परम् ॥ २७६ ॥
माहेश्वरि...

तार प्रासाद ग्लूं आं ह्रीं उसके बाद रमा ईर्ष्यां फिर 'माहेश्वरि' कहना चाहिये । भुजङ्ग विद्युत् जलद शाकिनी रति काली चण्डकाल के बाद ग्लूङ्कार प्रेत क्रोध क्रोध दो अस्त्र इसके बाद वह्निजाया कहना चाहिये । तत्पश्चात् 'माहेश्वरि' कहना चाहिए । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं हौं ब्लूं आं ह्रीं श्रीं वीं माहेश्वरि व्रीं ब्लौं क्लौं फ्रें क्लूं क्रीं फ्रों जूं ग्लूं स्हौः हूं हूं फट् फट् स्वाहा माहेश्वरि) ॥ २७४-२७६ ॥

...तदनु त्रपावाणीस्मरास्तथा ।
तारं कौमारि तदनु मयूरवाहिनि ततः ॥ २७७ ॥

शक्तिहस्ते ततः क्रोधं शाकिनी तदनन्तरम्।
वधूबीजमस्त्रद्वयं वह्निजाया ततः परम् ॥ २७८ ॥
कौमारि तत्परस्तारं नमो नारायण्यै ततः ।
जगत्स्थितिकारिण्यै त्रिकामस्त्रिरमास्ततः ॥ २७९ ॥
पाशकालद्विठानुक्त्वा वैष्णवि...

त्रपा वाणी स्मर तार 'कौमारि' के बाद 'मयूर वरवाहिनि शक्तिहस्ते' के बाद क्रोध शाकिनी वधू बीज दो अस्त्र वह्निजाया के बाद 'कौमारि' कहना चाहिए । इसके बाद तार 'नमो नारायण्यै जगत् स्थितिकारिण्यै' कहे । फिर तीन बार काम तीन बार रमा के बाद पाश काल दो ठ कहकर 'वैष्णवि' कहना चाहिये (मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं ऐं क्लीं ओं कौमारि मयूरवरवाहिनि शक्ति हस्ते हूं फ्रें स्त्रीं फट् फट् स्वाहा कौमारि । ॐ नमो नारायण्यै जगत् स्थिति कारियै क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं आं जूं ठः ठः वैष्णवि) ॥ २७७-२८० ॥

...प्रणवं ततः ।
हृदयं भगवत्यै वराहरूपिण्यै ततः परम् ॥ २८० ॥
चतुर्दशभुवनाधिपायै भूपतित्वं वदेत्ततः ।
मे देहि दापय स्वाहा वाराहि तदनु प्रिये ॥ २८१ ॥
तारपाशाङ्कुशक्रोधकालमायास्मरस्त्रियः ।
महाक्रोधः क्षेत्रपाली चण्डकालौ च शाकिनी ॥ २८२ ॥
जिह्वासटाघोररूपे दंष्ट्राकराले ततः स्मृतम् ।
नारसिंहि त्रिप्रासादं ततः क्रोधत्रयं भवेत् ॥ २८३ ॥
अस्त्रद्वयं वह्निजाया नारसिंहि ततोऽप्यनु ।

प्रणव हृदय के बाद 'भगवत्यै वराहरूपिण्यै' इसके बाद 'चतुर्दशभुवनाधिपायै भूपतित्वं' कहे । फिर 'मे देहि दापय स्वाहा वाराहि' कहे । हे प्रिये ! उसके बाद तार पाश अङ्कुश क्रोध काल माया स्मर स्त्री महाक्रोध क्षेत्रपाली चण्ड काल शाकिनी के बाद 'जिह्वासटाघोररूपे दंष्ट्राकराले' के बाद 'नारसिंहि' कहे । फिर तीन प्रासाद तीन क्रोध दो अस्त्र वह्निजाया के बाद 'नारसिंहि कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं नमो भगवत्यै वराहरूपिण्यै चतुर्दशभुवनाधिपायै भूपतित्वं देहि दापय स्वाहा वाराहि । ओं आं क्रों हूं जूं ह्रीं क्लीं स्त्रीं क्षूं क्षौं फ्रों जूं फ्रें जिह्वासटाघोररूपे दंष्ट्राकराले नारसिंहि हौं हौं हौं हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा नारसिंहि) ॥ २८०-२८४ ॥

तारमाररमाक्रोधा इन्द्राणि तदनन्तरम् ॥ २८४ ॥
मायायुग्मं जयद्वन्द्वं क्षेत्रपालिद्वयं ततः ।
अस्त्रद्वयं वह्निजाया इन्द्राणि तदनन्तरम् ॥ २८५ ॥
प्रणवाङ्कुशकाल्यश्च शाकिनी चण्ड एव च ।
योगिनी खेचरी चैव असूया फेत्कारी तथा ॥ २८६ ॥

विद्युत्कालौ रतिश्चैव मायासर्पमहारुषः ।
गारुडं च ततो बीजं चामुण्डे तदनन्तरम् ॥ २८७ ॥
ज्वलयुग्मं हिलियुग्मं किलियुग्मं ततः परम् ।
मम शत्रूंस्ततश्चोक्त्वा त्रासयद्वन्द्वमेव च ॥ २८८ ॥
मारययुगलं ततो हन पच द्वयं द्वयम् ।
भक्षययुगलं ततः कालीयुग्मं ततो हरेत् ॥ २८९ ॥
मायाद्वन्द्वं क्रोधद्वन्द्वमस्त्रद्वन्द्वं द्विठस्ततः ।
चामुण्डे...

तार मार रमा क्रोध बीजों के बाद 'इन्द्राणि' कहे । तदनु दो बार माया दो बार 'जय' कहकर दो क्षेत्रपाली दो अस्त्र वह्निजाया 'इन्द्राणि' कहे । प्रणव अङ्कुश काली शाकिनी चण्ड योगिनी खेचरी असूया फेत्कारी विद्युत् काल रति माया सर्प महाक्रोध गारुडबीज फिर 'चामुण्डे' कहने के बाद 'ज्वल हिलि किलि' को दो-दो बार 'मम शत्रून्' कहकर 'त्रासय' को दो बार कहना चाहिये । फिर 'मारय हन पच भक्षय' को दो-दो बार कहकर काली बीज को दो बार कहे । माया क्रोध अस्त्र ठ को दो-दो बार कहकर 'चामुण्डे' कहे (मन्त्र इस प्रकार है—ओं क्लीं श्रीं हूं इन्द्राणि ह्रीं ह्रीं जय जय क्षौं क्षौं फट् फट् स्वाहा इन्द्राणि । ओं क्रों क्रीं फ्रें फ्रों छ्रीं ख्रौं णीं हसखफ्रें ब्लौं जूं क्लूं ह्री त्रीं क्षूं क्रौं चामुण्डे ज्वल ज्वल हिलि हिलि किलि किलि मम शत्रून् त्रासय त्रासय मारय मारय हन हन पच पच भक्षय भक्षय क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं फट् फट् ठः ठः चामुण्डे) ॥ २८४-२९० ॥

...तारहृदये कामेश्वरि पदं ततः ॥ २९० ॥
कामाङ्कुशे कामप्रदायिके भगवति ततः ।
नीलपताके भगान्तिके पदद्वयं महेश्वरि ॥ २९१ ॥
रतिहृन्मन्त्रोऽस्तु ते ततः परमान्ते गुह्ये तदा ।
ईर्ष्यात्रयं मदने हि मदनान्तदेहे तदा ॥ २९२ ॥
त्रैलोक्यमावेशयेति च क्रोधास्त्रे वह्निवल्लभा।
नीलपताके...

तार हृदय फिर 'कामेश्वरि' पद, तत्पश्चात् कामाङ्कुशे के बाद 'कामप्रदायिके भगवति नीलपताके भगान्तिके' के बाद 'महेश्वरि' कहे । फिर रति हृदयमन्त्र के बाद 'अस्तु ते' कहे । फिर 'परम' के अन्त में 'गुह्ये' कहे । ततः तीन ईर्ष्याबीज के बाद 'मदने मदनान्तदेहे' कहे । तत्पश्चात् 'त्रैलोक्यमावेशय' क्रोध अस्त्र अग्निवल्लभा 'नीलपताके' कहे । (मन्त्र—ओं नमोऽस्तु कामेश्वरि कामाङ्कुशे कामप्रदायिके भगवति नीलपताके भगान्तिके महेश्वरि क्लूं नमोऽस्तु ते परगुह्ये वीं वीं वीं हूं हूं हूं मदने मदनान्तदेहे त्रैलोक्यमावेशय हूं फट् स्वाहा नीलपताके) ॥ २९०-२९३ ॥

...ततः पश्चात् कालीद्वयं ततः प्रिये ॥ २९३ ॥

चत्वारः क्रोधास्तदनु चाङ्कुशानां त्रयं तदा ।
रमायुग्मं त्रपायुग्मं योगिनी शाकिनी तदा ॥ २९४ ॥
कामिनीचण्डघण्टे च शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय।
मारय मारय तदा क्रोधास्त्रे वह्निवल्लभा ॥ २९५ ॥
चण्डघण्टे ततः शत्रून् स्तम्भयद्वितयं हरेत् ।
मारयद्वितयं क्रोधमस्त्रस्वाहे तथोच्चरेत् ॥ २९६ ॥
चण्डघटे...

दो काली चार क्रोध तीन अङ्कुश दो रमा दो त्रपा योगिनी शाकिनी कामिनी 'चण्डघण्टे' कहे । 'शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय मारय मारय' कहे । फिर क्रोध अस्त्र और अग्निवल्लभा फिर 'चण्डघण्टे' फिर 'शत्रून्' को कहकर 'स्तम्भय मारय' को दो-दो बार फिर क्रोध अस्त्र 'स्वाहा' कहे । फिर 'चण्डघण्टे' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है— क्रीं क्रीं हूं हूं हूं हूं क्रों क्रों क्रों श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं चण्डघण्टे शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय मारय मारय हूं फट् स्वाहा चण्डघण्टे शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय मारय मारय हूं फट् स्वाहा चण्डघण्टे) ॥ २९३-२९६ ॥

...तारमायारमाक्रोधाङ्कुशास्तथा ।
काली च कामिनी चैव मन्मथस्तदनन्तरम् ॥ २९७ ॥
ततश्च शाम्भवं कूटमुमाकूटं ततः परम् ।
शम्भुकूटं ततः पश्चात्परापरं च कूटकम् ॥ २९८ ॥
सर्प्पकूटं ततः पश्चाच्चण्डेश्वरि ततः परम् ।
खेचरी योगिनी चैव शाकिनी गारुडं तदा ॥ २९९ ॥
क्रोधद्वन्द्वमस्त्रद्वन्द्व स्वाहा चण्डेश्वरि ततः ।

तार माया रमा क्रोध अङ्कुश काली कामिनी मन्मय शाम्भवकूट उमाकूट शम्भुकूट परापरकूट सर्पकूट के पश्चात् 'चण्डेश्वरि' कहे । खेचरी योगिनी शाकिनी गारुड के बाद क्रोध अस्त्र को दो-दो बार फिर स्वाहा 'चण्डेश्वरि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार बतलाया गया है—ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रों क्रीं स्त्रीं क्लीं स्हजहलक्ष्मलवनऊं... (उमाकूट) लक्षमहजरक्रव्य्रऊं हस्ल्क्षकमहव्रूं म्लकहक्षरस्त्रै चण्डेश्वरि ख्रौं छ्रीं फ्रें क्रौं हूं हूं फट् फट् स्वाहा चण्डेश्वरि) ॥ २९७-३०० ॥

तारमैधपाशमायाक्रोधाङ्कुशा अपि प्रिये ॥ ३०० ॥
क्षेत्रपाली च काली च गारुडं शाकिनी तथा।
अनङ्गमाले ततः स्त्रियमाकर्षयद्वयं ततः ॥ ३०१ ॥
त्रुटयुग्मं छेदययुग्मं क्रोधयुग्मं स्मरेत्ततः ।
अस्त्रयुग्मं वह्निजायाऽनङ्गमाले ततः परम् ॥ ३०२ ॥
तारवाग्भवमायाश्च रमा स्मरश्च कालिका ।
पाशाङ्कुशौ चण्डक्रोधौ महासूया च फेत्कारी॥ ३०३ ॥

शाकिनीहरसिद्धे च सर्वसिद्धिं कुरुद्वयम्।
देहिद्वन्द्वं दापय च युग्मं क्रोधत्रयं ततः ॥ ३०४ ॥
अस्त्रद्वयं वह्निजाया हरसिद्धे ततः परम् ।

तार मेधा पाश माया क्रोध अङ्कुश क्षेत्रपाली काली गारुड शाकिनी के बाद 'अनङ्गमाले', उसके बाद 'स्त्रियम्' फिर 'आकर्षय' को दो बार 'त्रुट' और 'छेदय' को दो-दो बार क्रोधबीज को दो बार कहना चाहिये । दो अस्त्र वह्निजाया के बाद 'अनङ्गमाले' कहना चाहिये । तार वाग्भव माया रमा स्मर कालिका पाश अङ्कुश चण्ड क्रोध महासूया फेत्कारी शाकिनी के बाद 'हरसिद्धे सर्वसिद्धिं' कहे । फिर 'कुरु' 'देहि' 'दापय' को दो-दो बार क्रोध को तीन बार अस्त्र दो बार वह्निजाया और 'हरसिद्धे' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ऐं आं ह्रीं हूं क्रों क्षौं क्रीं क्रौं फ्रें अनङ्गमाले स्त्रियमाकर्षयाकर्षय त्रुट त्रुट छेदय छेदय हूं हूं फट् फट् स्वाहा अनङ्गमाले । ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं क्रीं आं क्रों फ्रों हूं क्ष्रूं हसखफ्रें फ्रें हरसिद्धे सर्वसिद्धिं कुरु कुरु देहि देहि दापय दापय हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा हरसिद्धे) ॥ ३००-३०५ ॥

प्रणवाङ्कुशगारुडाः फेत्कारी क्रोधमेव च ॥ ३०५ ॥
योगिनी फेत्कारी सम्बुद्ध्यन्ता ततः परम् ।
ददयुग्मं देहि दापय स्वाहा ततः परम् ॥ ३०६ ॥
फेत्कार्य्याः पूर्वरूपं च वाग्रमापाशमेव च ।
प्रासादक्रोधौ तदनु भूतं प्रेतं तथैव च ॥ ३०७ ॥
शाकिनी योगिनी चैव कामिनी मानसं तथा ।
पविभारुण्डकापालाः सिद्धिस्तारं तथैव च ॥ ३०८ ॥
लवणेश्वरि तदनु हराङ्गना च योगिनी ।
क्रोधस्त्रीशाकिनी चैव नाकुलि तदनु स्मरेत् ॥ ३०९ ॥

प्रणव अङ्कुश गारुड फेत्कारी क्रोध योगिनी सम्बुद्धयन्ता फेत्कारी फिर 'दद' को दो बार, उसके बाद 'देहि दापय' को दो-दो बार फिर 'स्वाहा' कहना चाहिये । फेत्कारी का पूर्वरूप (=सम्बोधन) वाक् रमा पाश प्रासाद क्रोध भूत प्रेत शाकिनी योगिनी कामिनी मानस पवि भारुण्ड कापाल सिद्धि तार के बाद 'लवणेश्वरि' फिर हराङ्गना योगिनी क्रोध स्त्री शाकिनी के बाद 'नाकुलि' कहना चाहिये । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं क्रों क्रौं हसखफ्रें हूं छ्रीं फेत्कारि दद दद देहि देहि दापय दापय स्वाहा फेत्कारि ऐं श्रीं आं हौं हूं स्फ्रों स्हौः फ्रें छ्रीं स्त्रीं ठ्रीं ध्रीं प्रीं थ्रीं क्रां ओं लवणेश्वरि क्रः छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नाकुलि) ॥ ३०५-३०९ ॥

तारमैधपाशक्रोधा मायारमाक्रोधस्मराः ।
कालबीजं च तदनु मृत्युहारिणि तत्परम् ॥ ३१० ॥
तारवाग्भवमायाश्च क्रोधश्च हृदयं तथा ।
भगवति रुद्रवाराहि रुद्रतुण्डप्रहारे च ॥ ३११ ॥

जयबीजयुगं देव्याः सिद्धयुग्मं ततः परम् ।
सर्वोत्पातान् प्रशमय प्रशमय तथा परम् ॥ ३१२ ॥
हरेः पुत्रस्ततो जाया योगिनी स्त्री च शाकिनी ।
हृदयं वह्निजाया च वज्रवाराहि ततः परम् ॥ ३१३ ॥
तारमाये क्षेत्रपाली अङ्कुशं हंत्रयं तथा ।
हयग्रीवेश्वरि ततश्चतुर्वेदमयि तदा ॥ ३१४ ॥
शाकिनी योगिनी चैव कामिनी क्रोधमेव च ।
सर्वविद्यानां मय्यधिष्ठानं कुरुद्वयं ततः स्वाहा ॥ ३१५ ॥
हयग्रीवेश्वरि...

तार मेधा पाश क्रोध माया रमा क्रोध स्मर कालबीज के बाद 'मृत्युहारिणि' उसके बाद तार वाग्भव माया क्रोध हृदय बीजों को कहे । पश्चात् 'भगवति रुद्रवाराहि रुद्रतुण्डप्रहारे' कहे । फिर जयबीज सिद्धबीज को दो बार फिर 'सर्वोत्पातान् प्रशमय प्रशमय' कहे । तदनु हरि का पुत्र फिर जाया योगिनी स्त्रीं शाकिनो हृदय वह्निजाया 'वज्रवाराहि' कहे । तार माया क्षेत्रपाली अङ्कुश हं को तीन बार, फिर 'हयग्रीवेश्वरि चतुर्वेदमयि' कहे । फिर शाकिनी योगिनी कामिनी क्रोध बीजों के बाद 'सर्वविद्यानां मयि अधिष्ठानं' कहकर 'कुरु' को दो बार फिर 'स्वाहा हयग्रीवेश्वरि' कहे । (मन्त्र— ओं ऐं आं हूं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं जूं मृत्युहारिणि ओं ऐं ह्रीं हूं नमो भगवति रुद्रवाराहि रुद्रतुण्डप्रहारे क्रं क्रं क्रां क्रां सर्वोत्पातान् प्रशमय प्रशमय क्लीं श्रीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा वज्रवाराहि । ओं ह्रीं क्षौं क्रों हं हं हं हयग्रीवेश्वरि चतुर्वेदमयि फ्रें छ्रीं स्त्रीं हूं सर्वविद्यानां मय्यधिष्ठानं कुरु कुरु स्वाहा हयग्रीवेश्वरि) ॥ ३१०-३१६ ॥

...ततो वेदाद्या वाग्भवस्तथा ।
पाशं माया तत्त्वबीजं एहीनं च द्विबिन्दुकम् ॥ ३१६ ॥
परमहंसेश्वरि तदा कैवल्यं साधय स्वाहा ।
परमहंसेश्वरि पुनस्तारं माया रमात्रयम् ॥ ३१७ ॥
स्मरयुग्मं निर्विकारस्थचिदानन्दघनेति च ।
रूपायै मोक्षलक्ष्म्यै च अमितानन्त इत्यपि ॥ ३१८ ॥
शक्तितत्त्वायै तदनु स्मरयुग्मं रमात्रयम् ।
मायातारौ मोक्षलक्ष्मि तारकाल्यौ नमस्ततः ॥ ३१९ ॥
ङेऽन्ता ब्रह्मवादिनी च काली तारं मनस्तथा ।
वह्निजाया मायाबीजं कामक्रोधौ च शाकिनी ॥ ३२० ॥
शातकर्णि महाघोररूपिणि तारमेव च ।
कमलायोगिनीरामाः फट्द्वन्द्वं वह्निसुन्दरी ॥ ३२१ ॥
शातकर्णि...

वेदाद्य वाग्भव पाश माया एहीन तथा दो बिन्दु वाला तत्त्वबीज फिर 'परमहंसेश्वरि

कैवल्यं साधय स्वाहा परमहंसेश्वरि' कहे । तार माया तीन रमा दो स्मर के बाद 'निर्विकारस्थचिदानन्दघनरूपायै मोक्षलक्ष्म्यै अमितानन्तशक्तितत्त्वायै' कहे । उसके बाद दो स्मर तीन रमा माया तार फिर 'मोक्षलक्ष्मि' फिर तार काली बीज के बाद 'नमः' वह्निजाया मायाबीज काम क्रोध शाकिनी चतुर्थ्यन्त 'ब्रह्मवादिनी' काली तारबीज के बाद 'नमः' फिर वह्निजाया मायाबीज काम क्रोध शाकिनी के बाद 'शातकर्णि महाघोररूपिणि' कहे। तार कमलायोगिनी रामा दो फट् वह्निसुन्दरी के बाद 'शातकर्णि' कहे। (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ऐं आं ह्रीं स्हः परमहंसेश्वरि कैवल्यं साधय स्वाहा परमहंसेश्वरि । ओं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं क्लीं क्लीं निर्विकारस्थचिदानन्दघनरूपायै मोक्षलक्ष्म्यै अमितानन्तशक्तितत्त्वायै क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं ह्रीं ओं मोक्षलक्ष्मि ओं क्रीं नमो ब्रह्मवादिन्यै क्रीं ओं नमः स्वाहा । ह्रीं क्लीं हूं फ्रें शातकर्णि महाघोररूपिणि ॐ श्रीं छ्रीं स्त्रीं फट् फट् स्वाहा शातकर्णि) ॥ ३१६-३२२ ॥

...ततस्तारे ज्वलयुग्मं ततः परम् ।
प्रज्वलद्वितयं ततो महेश्वरि शृणुष्व मे ॥ ३२२ ॥
सर्वमुखरूपे तदा जातवेदसि तदनन्तरम् ।
ब्रह्मास्त्रेण नाशयेति सचराचरं ततः परम् ॥ ३२३ ॥
जगत्स्वाहा तदनु जातवेदसि ततः परम् ।
तारपाशवाग्भवाश्चाङ्कुशकालीरमास्तथा ॥ ३२४ ॥
कामक्रोधौ शाकिनी च महानीले ततः परम्।
प्रलयाटोपघोरेति नादघुर्घुरे वदेत्ततः ॥ ३२५ ॥
आत्मानमुपशमय जूँ सः स्वाहा ततः परम् ।
महानीले ततस्तारं कामसिद्धस्मरास्ततः ॥ ३२६ ॥
ततो नु ब्रह्मविद्ये च जगद्ग्रसनशीले तु ।
महाविद्ये ततो माया क्रोधं ह्रीं च ततः परम्॥ ३२७ ॥
विष्णुमाये समाभाष्य क्षोभयद्वितयं हरेत् ।
कमाङ्कुशपाशाश्चापि निरञ्जनं ततः शिवे ॥ ३२८ ॥
सर्वास्त्राणि ग्रस ग्रस हूं फट् तारं तथैव च।
निरञ्जनं समाभाष्य वगलामुखि ततः परम्॥ ३२९ ॥
सर्वशत्रून् स्तम्भय स्तम्भयेति लिखेत्परम्।
तथा ब्रह्मशिरसे ब्रह्मास्त्रायेति संस्मरेत् ॥ ३३० ॥
क्रोधकामनिरञ्जनास्तारं हृद्वह्निसुन्दरी।
विष्णुमाये...

तार 'ज्वल प्रज्वल को दो-दो बार 'महेश्वरि सर्वमुखरूपे जातवेदसि' के बाद 'ब्रह्मास्त्रेण नाशय सचराचरं जगत् स्वाहा' के बाद 'जातवेदसि' कहे । तार पाश वाग्भव अङ्कुश काली रमा काम क्रोध शाकिनी बीजों के बाद 'महानीले

प्रलयाटोपघोरनादघुर्घुरि' कहना चाहिये । उसके बाद 'आत्मानमुपशमय जूं सः स्वाहा महानीले' कहे । उसके बाद तार काम सिद्ध स्मर के बाद 'ब्रह्मविद्ये जगद्ग्रसनशीले महाविद्ये' कहे । बाद में माया क्रोध ह्रीं के बाद 'विष्णुमाये कहकर 'क्षोभय' को दो बार कहे । काम अङ्कुश पाश निरञ्जन के बाद 'शिवे सर्वास्त्राणि ग्रस ग्रस हूं फट्' कहे । तार निरञ्जन को कहकर 'वगलामुखि सर्वशत्रून् स्तम्भय स्तम्भय' लिखना चाहिये । बाद में 'ब्रह्मशिरसे ब्रह्मास्त्राय' कहकर क्रोध काम निरञ्जन तार हृदय वह्नि-सुन्दरी कहकर 'विष्णुमाये' कहना चाहिये । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल महेश्वरि सर्वमुखरूपे जातवेदसि ब्रह्मास्त्रेण नाशय सचराचरं जगत् स्वाहा जातवेदसि । ओं आं ऐं क्रों क्रीं श्रीं क्लीं हूं फ्रें महानीले प्रलयाटोपघोरनादघुर्घुरि आत्मानमुपशमय जूं सः स्वाहा महानीले । ओं क्लीं क्रां क्लीं ब्रह्मविद्ये जगद्ग्रसन-शीले महाविद्ये ह्रीं हूं ह्रीं विष्णुमाये क्षोभय क्षोभय क्लीं क्रों आं स्हीं शिवे सर्वास्त्राणि ग्रस ग्रस हूं फट् । ओं स्हीं वगलामुखि सर्वशत्रून् स्तम्भय स्तम्भय ब्रह्मशिरसे ब्रह्मास्त्राय हूं क्लीं स्हीं ओं नमः स्वाहा विष्णुमाये) ॥ ३२२-३३१ ॥

...तदनु च तारं ह्रीं शाकिनी तथा ॥ ३३१ ॥
डाकिनी च रमाबीजं कामक्रोधौ च योगिनी।
कामिनी च गुह्येश्वरि महागुह्येति संवदेत् ॥ ३३२ ॥
विद्यासम्प्रदायबोधिके पाशाङ्कुशामृतान्यपि ।
अस्त्रं कृष्णलोहिततनूदरि प्रासादमेव च ॥ ३३३ ॥
अध्वा चैव मनोऽस्त्रं च हृदयं द्विठमेव च ।
गुह्येश्वरि ततश्चैव तारं हृदयमेव च ॥ ३३४ ॥
श्वेतपुण्डरीकासनायै प्रतिसमरेति च ।
विजयप्रदायै भगवत्यै अपराजितायै ततः परम् ॥ ३३५ ॥
हरपत्नी हरिपत्नी हरिपुत्रस्ततः परम् ।
फट्कारं च वह्निनारी प्रणवं चापराजिते ॥ ३३६ ॥
सम्बोध्यान्ते च प्रणवं माया हं बीजमुत्तमम् ।
अध्वा चैव महाविद्ये मोहय विश्वकर्मकम् ॥ ३३७ ॥
वाग्रमाकामबीजं च त्रैलोक्यमावेशयेति च ।
क्रोधमस्त्रद्वयं चोक्त्वा महाविद्ये ततः परम् ॥ ३३८ ॥
वाग्भवः प्रेतबीजं च डाकिनी तदनन्तरम् ।
मनःकूटं समाभाष्य एह्येहि भगवति ततः॥ ३३९ ॥
वाभ्रवि तदनुस्मृत्य महाप्रलय चेत्यपि ।
ताण्डवकारिणि तदा गगनग्रासिनि ततः ॥ ३४० ॥

तार ह्रीं शाकिनी डाकिनी रमाबीज काम क्रोध योगिनी कामिनी बीजों के बाद 'गुह्येश्वरि महागुह्यविद्यासम्प्रदायबोधिके' के अनन्तर पाश अङ्कुश अमृत अस्त्र के बाद 'कृष्णलोहितनूदरि' प्रासाद अध्वा मन अस्त्र हृदय दो 'ठ' के बाद 'गुह्येश्वरि' कहना

चाहिये । तार हृदय बीजों के बाद 'श्वेतपुण्डरीकासनायै प्रतिसमरविजयप्रदायै भगवत्यै अपराजितायै' कहे। फिर हरपत्नी हरिपत्नी हरिपुत्र फट्कार वह्निनाडी प्रणव 'अपराजिते' कहे । प्रणव माया हं बीज अध्वा के बाद 'महाविद्ये मोहय विश्वकर्मकम्' कहे । वाक् रमा कामबीज के बाद 'त्रैलोक्यमावेशय' कहने के बाद क्रोध और दो अस्त्र कहकर 'महाविद्ये' उसके बाद वाग्भव प्रेतबीज डाकिनी मनःकूट कहकर 'एहि एहि भगवति वाभ्रवि महाप्रलयताण्डवकारिणि गगनग्रसिनि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ह्रीं फ्रें ख्फ्रें श्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं गुह्येश्वरि महागुह्यविद्यासम्प्रदायबोधिके आं क्रों ग्लूं फट् कृष्णलोहिततनूदरि ह्रौं ह्रां ह्रीं फट् नमः ठः ठः गुह्येश्वरि । ओं नमो श्वेतपुण्डरीकासनायै प्रतिसमयविजयप्रदायै भगवत्यै अपराजितायै क्रः श्रीं क्लीं फट् स्वाहा ओं अपराजिते । ओं ह्रीं हं हां महाविद्ये मोहय विश्वकर्मकम् ऐं श्रीं क्लीं त्रैलोक्यमावेशय हूं फट् फट् महाविद्ये ऐं स्हौः ख्फ्रें डलखल हक्षखमब्र्यूं एह्येहि भगवति वाभ्रवि महाप्रलयताण्डवकारिणि गगनग्रासिनि) ॥ ३३१-३४० ॥

रमाक्रोधौ योगिनी च कामिनी शाकिनी तथा।
शत्रून् हन हन चेति सर्वैश्वर्य्यं दद द्वयम् ॥ ३४१ ॥
महोत्पातान् विध्वंसय विध्वंसयेति चाहरन् ।
सर्वरोगान्नाशय नाशयेति ततः परम् ॥ ३४२ ॥
वेदमस्तककमलाकामप्रासादपाशकाः ।
महाकृत्याभिचारग्रहदोषान्निवारय ॥ ३४३ ॥
निवारय मथ द्वन्द्वमङ्कुशं कालमेव च ।
अमृतं प्रलयं चैव फेत्कारी तदनन्तरम् ॥ ३४४ ॥
वह्न्यङ्गना वाभ्रवि च तारमायारमास्तथा ।
क्रोधं भगवति ततो महाडामरि तत्परम् ॥ ३४५ ॥
डमरुहस्ते तदनु नीलपीतमुखि ततः ।
जीवब्रह्मगलनिष्पेषिणि ततो हरेत्सुधीः ॥ ३४६ ॥
योगिनी कामिनी चैव शाकिनी डाकिनी तथा।
महाश्मशानरङ्गचर्च्चरीगायिके ततः ॥ ३४७ ॥
तुरुयुग्मं मर्दयुग्मं मर्दययुगमेव च ।
फेत्कारी वह्निजाया च डामरि तदनु स्मरेत् ॥ ३४८ ॥

रमा क्रोध योगिनी कामिनी शाकिनी फिर 'शत्रून् हन हन सर्वैश्वर्यं' के पश्चात् 'दद' को दो बार फिर 'महोत्पातान् विध्वंसय विध्वंसय' कहते हुए''सर्वरोगान् नाशय नाशय' कहे । वेद मस्तक कमला काम प्रासाद पाश बीजों के बाद 'महाकृत्याभिचार-ग्रहदोषान् निवारय निवारय' कहे । 'मथ' को दो बार कहे । अङ्कुश काल अमृत प्रलय फेत्कारी वह्निजाया 'वाभ्रवि' कहे । तार माया रमा क्रोध के बाद 'भगवति महाडामरि डमरुहस्ते नीलपीतमुखि जीवब्रह्मगलनिष्पेषिणि' कहना चाहिये । योगिनी कामिनी

शाकिनी डाकिनी बीजों के बाद 'महाश्मशानरङ्गचर्चरीगायिके' कहने के पश्चात् 'तुरु मर्द मर्दय' को दो-दो बार कहे । फिर फेत्कारी वह्निजाया और 'डामरि' कहना चाहिए। (मन्त्र इस प्रकार है—श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें शत्रून् हन हन सर्वैश्वर्यं दद दद महोत्पातान् विध्वसंय विध्वंसय सर्वरोगान् नाशय नाशय ओं श्रीं क्लीं हौं आं महाकृत्याभिचारग्रहदोषान् निवारय निवारय मथ मथ क्रों जूं क्लूं हसखफ्रीं ख्फ्रें स्वाहा वाभ्रवि । ओं छ्रीं श्रीं हूं भगवति महाडामरि डमरुहस्ते नीलपीतमुखि जीवब्रह्मगल-निष्पेषिणि छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें महाश्मशानरङ्गचर्चरीगायिके तुरु तुरु मर्द मर्द मर्दय मर्दय हसख्फ्रें स्वाहा डामरि) ॥ ३४१-३४८ ॥

तारमाया शाकिनी च वेतालमुखि तत्परम् ।
चर्च्चिके तदनु क्रोधं योगिनी कामिनी तथा ॥ ३४९ ॥
ज्वालामालि ततः पश्चाद्विस्फुलिङ्गरमणि हि ।
महाकापालिनि तदा कात्यायनि ततः परम् ॥ ३५० ॥
रमास्मरौ डाकिनी च कहयुग्मं धमद्वयम् ।
ग्रसद्वन्द्वं ततः पाशाङ्कुशौ प्रासादमेव च ॥ ३५१ ॥
नरमांसरुधिरपरिपूरितकपाले च ।
पीयूषघनशक्तीनां क्रमेण बीजमाहरेत् ॥ ३५२ ॥
असूयात्रितयं चास्त्रद्वयं चानलभामिनि ।
चर्च्चिके...

तार माया शाकिनी के बाद 'वेतालमुखिचर्चिके' कहे । उसके बाद क्रोध योगिनी कामिनी बीजों को कहकर 'ज्वालामालि विस्फुलिङ्गरमणि महाकापालिनि कात्यायनि' कहे । रमा स्मर डाकिनी बीज के बाद 'कह धम ग्रस' को दो-दो बार कहने के पश्चात् पाश अङ्कुश प्रासाद बीज. फिर 'नरमांसरुधिरपरिपूरितकपाले' कहकर अमृत धन शक्ति बीजों को क्रम से कहना चाहिये । तीन असूया दो अस्त्र अग्निजाया के बाद 'चर्चिके' कहे (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ह्रीं फ्रें वेतालमुखिचर्चिके हूं छ्रीं स्त्रीं ज्वाला-मालि विस्फुलिङ्गरमणि महाकापालिनि कात्यायनि श्रीं क्लीं खफ्रें कह कह धम धम ग्रस ग्रस आं क्रों हौं नरमांसरुधिरपरिपूरितकपाले ग्लूं क्लौं ब्लूं णीं णीं णीं फट् फट् स्वाहा चर्चिके) ॥ ३४९-३५३ ॥

...तदनु मायाद्वयं महामङ्गले ततः॥ ३५३ ॥
महामङ्गलदायिनि अभये भयहारिणि ।
वह्निस्त्री च ततः पश्चादभये तदनन्तरम् ॥ ३५४ ॥
तारवाग्भवचामुण्डाः प्रासादं प्रेतमेव च ।
उत्तानपादे तदनु एकवीरे ततः परम् ॥ ३५५ ॥
हसयुग्मं गाययुग्मं नृत्ययुगलमेव च ।
रक्षद्वयं महाक्रोधचण्डकालास्तथैव च ॥ ३५६ ॥

सर्प्पबीजं रतिबीजं पाशघण्टामुण्डेत्यपि ।
खट्वाङ्गधारिणि ततोऽस्त्रद्वयं हृदयं द्विठः ॥ ३५७ ॥
एकवीरे...

दो माया बीज फिर 'महामङ्गले महामङ्गलदायिनि अभये भयहारिणि' के बाद वह्निस्त्री, उसके बाद 'अभये' फिर तार वाग्भव चामुण्डा प्रासाद प्रेत के पश्चात् 'उत्तानपादे एकवीरे' उसके पश्चात् 'हस गाय नृत्य रक्ष' को दो-दो बार कहे । महाक्रोध चण्ड काल सर्पबीज रतिबीज के बाद 'पाशघण्टामुण्डखट्वाङ्गधारिणि' कहने के बाद दो अस्त्र दो 'ठ एकवीरे' कहना चाहिये । (मन्त्र—ह्रीं ह्रीं महामङ्गले महा-मङ्गलदायिनि अभये भयहारिणि स्वाहा अभये । ओं ऐं क्रैं हौं स्हौः उत्तानपादे एकवीरे हस हस गाय गाय नृत्य नृत्य रक्ष रक्ष क्ष्रूं फ्रों जूं ब्रीं क्लूं पाश घण्टा मुण्डखट्वाङ्ग-धारिणि फट् फट् ठः ठः एक वीरे) ॥ ३५३-३५८ ॥

...ततः पश्चात् तारत्रपाक्रोधास्तथा ।
वाणीरमामारपाशाङ्कुशप्रासादास्तदनन्तरम् ॥ ३५८ ॥
भगवति महाघोरकरालिनि ततः परम् ।
तामसि महाप्रलयताण्डविनि ततः परम् ॥ ३५९ ॥
चर्च्चरीकरतालिके ततो जयद्वयं स्मरेत् ।
जननि तदनु स्मृत्वा जम्भ जम्भ ततः परम् ॥ ३६० ॥
महाकालि तदनु च कालनाशिनि ततः परम्।
भ्रामरि भ्रामरि ततो डमरुभ्रामिणि तथा ॥ ३६१ ॥
मैधस्मरौ तथा भूतं योगिनी कामिनी ततः ।
शाकिनी डाकिनी चैव प्रलयः फेत्कारी तथा ॥ ३६२ ॥
ततोऽस्त्रं हृदयं चैव वैश्वानराङ्गना ततः ।
तामसि तदनु स्मृत्वा...

तार त्रपा क्रोध वाणी रमा मार पाश अङ्कुश प्रासाद के बाद 'भगवति महाघोर-करालिनि तामसि महाप्रलयताण्डविनि चर्चरीकरतालिके' कहने के बाद दो 'जय' कहे। 'जननि' के बाद 'जम्भ जम्भ महाकालि कालनाशिनि भ्रामरि भ्रामरि डमरुभ्रामिणि' कहे । मेधा स्मर भूत योगिनी कामिनी शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी के बाद अस्त्र हृदय अग्निवल्लभा बीजों के बाद 'तामसि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ह्रीं हूं ऐं श्रीं क्लीं आं क्रों हौं भगवति महाघोरकरालिनि तामसि महाप्रलय-ताण्डविनि चर्चरीकरतालिके जय जय जननि जम्भ जम्भ महाकलि कालनाशिनि भ्रामरि भ्रामरि डमरुभ्रामिणि ऐं क्लीं स्फ्रों छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रैं हसफ्रें हसख्फ्रें फट् नमः स्वाहा तामसि) ॥ ३५८-३६३ ॥

...तारवाण्यौ ततः परम् ॥ ३६३ ॥
समरविजयेत्युक्त्वा दायिनि तदनन्तरम् ।

मत्तमातङ्गेति ततो यायिनि तदनन्तरम् ॥ ३६४ ॥
रमाबीजं पाशबीजं हरपत्नी ततः परम् ।
भगवति ततः पश्चाज्जयन्ति तदनन्तरम् ॥ ३६५ ॥
समरे जयं तदनु देहि देहि ततः परम् ।
मम शत्रून् विध्वंसय विध्वंसयेति तत्परम् ॥ ३६६ ॥
विद्रावययुगं तदा भञ्जद्वयं तथापरम् ।
मर्दययुगलं ततस्तुरुयुग्मं तथा वदेत् ॥ ३६७ ॥
हर्य्यङ्गनाहरिसुतौ कामिनी तदनन्तरम् ।
हृदयं वह्निजाया च जयन्ति तदनन्तरम् ॥ ३६८ ॥

तार वाणी के बाद 'समरविजय' कहकर 'दायिनि' फिर 'मत्तमातङ्ग' के बाद 'मायिनि', तदनन्तर रमाबीज पाशबीज हरपत्नी के बाद 'भगवति जयन्ति समरे जयं' के पश्चात् 'देहि देहि' फिर 'मम शत्रून् विध्वसंय विध्वंसय' कहे । तत्पश्चात् 'विद्रावय भञ्ज मर्दय तुरु' को दो-दो बार कहे । हरिअङ्गना हरिसुत कामिनि हृदय वह्निजाया के बाद 'जयन्ति' कहे (मन्त्र—ओं ऐं समरविजयदायिनि मत्तमातङ्गयायिनि श्रीं आं क्रः भगवति जयन्ति समरे जयं देहि देहि मम् शत्रून् विध्वंसय विध्वंसय विद्रावय विद्रावय भञ्ज भञ्ज तुरु तुरु श्रीं क्लीं स्त्रीं नमः स्वाहा जयन्ति) ॥ ३६३-३६८ ॥

ताररमापाशाङ्कुशस्मरक्रोधास्ततः परम् ।
धनदा च समाधिश्च एकानंशे ततः परम् ॥ ३६९ ॥
डमरु डामरि नीलाम्बरे नीलविभूषणे ।
नीलनागासने ततः सकलसुरासुरानिति ॥ ३७० ॥
वशे कुरु कुरु तदा जन्यिके कन्यिके ततः ।
सिद्धिदे वृद्धिदे ततो योगिनी कामिनी तथा ॥ ३७१ ॥
क्रोधस्मरौ शाकिनी च प्रासादं फट्कारं ततः।
वह्निजाया ततः पश्चादेकानंशे ततः परम् ॥ ३७२ ॥
वाग्भवं ब्रह्मवादिन्यै ब्रह्मरूपिण्यै द्विठस्तथा ।
तदन्ते ब्रह्मरूपिणि तारत्रपारमास्मराः ॥ ३७३ ॥
असूया भगवति तथा नीललोहितेश्वरि ततः ।
त्रिभुवनं रञ्जय रञ्जय सकलेति च ॥ ३७४ ॥
सुरासुरानाकर्षयाकर्षय हृदयं तदा ।
वह्निजाया नीललोहितेश्वरि ततः परम् ॥ ३७५ ॥

तार रमा पाश अङ्कुश स्मर क्रोध के बाद धनदा समाधि कहे । उसके बाद 'एकानंशे डमरुडामरि नीलाम्बरे नीलविभूषणे नीलनागासने सकलसुरासुरान् वशे कुरु कुरु' कहे । फिर 'जन्यिके कन्यिके सिद्धिदे वृद्धिदे' कहे । उसके बाद योगिनी कामिनी क्रोध स्मर शाकिनी प्रासाद फट्कार वह्निजाया के बाद 'एकानंशे' कहे ।

वाग्भव के बाद 'ब्रह्मवादिन्यै ब्रह्मरूपिण्यै' दो 'ठ' के अन्त में 'ब्रह्मरूपिणि' कहे । तार त्रपा रमा स्मर असूया के बाद 'भगवति नीललोहितेश्वरि त्रिभुवनं रञ्जय रञ्जय सकलसुरासुरानाकर्षय आकर्षय' के बाद हृदय वह्निजाया फिर 'नीललोहितेश्वरि' कहे । (मन्त्र—ओं श्रीं आं क्रों क्लीं हूं क्षूं हैं एकानंशे डमरुडामरि नीलाम्बरे नीलविभूषणे नीलनागासने सकलसुरान् वशे कुरु कुरु जन्यिके कन्यिके सिद्धिदे वृद्धिदे छ्रीं स्त्रीं हूं क्लीं फ्रें हौं फट् स्वाहा एकानंशे । ऐं ब्रह्मवादिन्यै ब्रह्मरूपिण्यै ठः ठः ब्रह्मरूपिणि ओं ह्रीं श्रीं क्लीं णीं भगवति नीललोहितेश्वरि त्रिभुवनं रञ्जय रञ्जय सकलसुरासुरान् आकर्षय आकर्षय नमः स्वाहा नीललोहितेश्वरि) ॥ ३६९-३७५ ॥

वाणी तस्याः सपत्नी च त्रिकालवसेदिन्यै ततः।
वह्निजाया तदन्ते च त्रिकालवेदिनि ततः ॥ ३७६ ॥
वेदशिरश्च कमला भुवनेशी स्मरस्तथा ।
कामिनी शाकिनी चैव क्रोधमस्त्रं ततः परम् ॥ ३७७ ॥
ब्रह्मवेतालराक्षसि काली महासूया तथा ।
चण्डो विष्णुशवावतंसिके ततः परम् ॥ ३७८ ॥
योगिनी प्रेतबीजं च पीयूषं तदनन्तरम् ।
महारुद्रकुणपारूढे मैधपाशौ ततः शृणु ॥ ३७९ ॥
प्रासादमस्त्रत्रितयं हृदयं वह्निवल्लभा ।
कोरङ्गि...

वाणी उसकी सपत्नी के बाद 'त्रिकालवेदिन्यै फिर वह्निजाया उसके बाद 'त्रिकालवेदिनि' कहे । वेदशिर कमला भुवनेश्वरी स्मर कामिनी शाकिनी क्रोध अस्त्र के बाद 'ब्रह्मवेतालराक्षसि' कहे । काली महासूया चण्ड बीजों के बाद 'विष्णुशवावतंसिके' कहे । योगिनी प्रेतबीज अमृत के बाद 'महारुद्रकुणपारूढे' कहे । मेधा पाश प्रासाद तीन अस्त्र हृदय वह्निजाया 'कोरङ्गि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं श्रीं त्रिकालवेदिन्यै स्वाहा त्रिकालवेदिनि । ओं श्रीं ह्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें हूं फट् ब्रह्मवेतालराक्षसि क्रीं क्षूं फ्रों विष्णुशवावतंसिके छ्रीं स्हौः ग्लूं महारुद्रकुणपारूढे ऐं आं हौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा कोरङ्गि) ॥ ३७६-३८० ॥

...तारवाण्यौ च रमा ह्री स्मर एव च ॥ ३८० ॥
प्रासादक्रोधपाशाश्च योगिनी कामिनी ततः।
क्रोधश्च शाकिनी चैव काली मेघस्तथापरम् ॥ ३८१ ॥
वह्निजाया रक्तदन्ति हरपत्नी स्मरस्तथा ।
असूया शाकिनी चैव डाकिनी प्रलयस्तथा ॥ ३८२ ॥
फेत्कारी कर्णिका चैव हारः सानुस्तथैव च।
इष्टिरस्त्रं वह्निजाया भूतभैरवि ततः परम् ॥ ३८३ ॥
वाणी रमा पाशकला हृदयं तदनन्तरम् ।

ततः पश्चात् षडाम्नायं परिपालिन्यै ततो वदेत् ॥ ३८४ ॥
शोषिण्यै द्राविण्यै ततो नामक्यै भ्रामक्ये ततः ।
जूं बीजं ब्लुं बीजं चैवमादित्यमोकारयुक्तकः ॥ ३८५ ॥
कुलकोटिन्यै ततः काकासनायै शाकिनी ततः ।
अस्त्रं द्विठः कुलकुट्टिनि...

तार वाणी रमा ह्रीं स्मर प्रासाद क्रोध पाश योगिनी कामिनी क्रोध शाकिनी काली मेघ वह्निजाया के बाद 'रक्तदन्ति' कहे । हरपत्नी स्मर असूया शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी कर्णिका हार सानु इष्टि अस्त्र वह्निजाया के बाद 'भूतभैरवि' कहे । वाणी रमा पाश कला हृदय के बाद 'षडाम्नायपरिपालिन्यै शोषिण्यै द्राविण्यै नामक्यै भ्रामक्यै' के पश्चात् जूं बीज ब्लुं बीज ओकार युक्त आदित्य के बाद 'कुलकोटिन्यै काकासनायै' कहे । तत्पश्चात् शाकिनी अस्त्र दो ठ 'कुलकुट्टिनि' कहे । (मन्त्र—ओं ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं हौं हुं आं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्रीं क्लौं स्वाहा रक्तदन्ति । कः क्लीं णीं फ्रें ख्फ्रें हसखफ्रें हसख्फ्रें क्षरह्रीं जरक्रीं रह्रीं रश्रीं फट् स्वाहा भूतभैरवि । ऐं श्रीं आं ईं नमः षडाम्नायपरिपालिन्यै शोषिण्यै द्राविण्यै नामक्यै भ्रामक्यै जूं ब्लुं सौः कुलकोटिन्यै काकासनायै फ्रें फट् फट् ठः ठः कुलकुट्टिनि) ॥ ३८०-३८६ ॥

...ततस्तारं स्मरस्तथा ॥ ३८६ ॥
पीयूषं भुवनेशी च कामिनी क्रोध एव च ।
शाकिनी योगिनी चैव ततश्चण्डं शृणु प्रिये ॥ ३८७ ॥
कामाख्यायै फट्कारं च शिरः कामाख्ये ततः परम् ।
मैधपाशौ प्रासादश्च प्रेताङ्कुशकाला अपि ॥ ३८८ ॥
चतुरशीतिकोटिमूर्त्तये तदनन्तरम् ।
विश्वरूपायै ब्रह्माण्डजठरायै तारं ततः ॥ ३८९ ॥
स्वाहा विश्वरूपे पाशकाले वामकर्णस्ततः परम् ।
ऐं औं क्षेमङ्कर्य्यै ततो द्विठः क्षेमङ्करि ततः ॥ ३९० ॥

तार स्मर अमृत भुवनेशी कामिनी क्रोध शाकिनी योगिनी चण्ड बीजों के बाद 'कामाख्यायै' कहे । फट्कार शिर को कहने के बाद 'कामाख्ये' कहे । मेधा पाश प्रासाद प्रेत अङ्कुश काल बीजों के बाद 'चतुरशीतिकोटिमूर्त्तये विश्वरूपायै ब्रह्माण्डजठरायै' के बाद तार 'स्वाहा' कहे । 'विश्वरूपे' पाशकलाः तत्पश्चात् वामकर्ण फिर ऐं औं कहे 'क्षेमङ्कर्यै' के बाद दो 'ठ' फिर 'क्षेमङ्करि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं क्लीं ग्लूं ह्रीं स्त्रीं हूं फ्रें छ्रीं फ्रों कामाख्यायै फट् स्वाहा कामाख्ये । ऐं आं हौं स्हौः क्रों जूं चतुरशीतिकोटिमूर्त्तये विश्वरूपायै ब्रह्माण्डजठरायै ओं स्वाहा विश्वरूपे आं ईं ऊं ऐं औं क्षेमङ्कर्यै ठः ठः क्षेमङ्करि) ॥ ३८६-३९० ॥

वाण्यागमशिरोमायाकन्दर्पास्तदनन्तरम् ।
निगमागमबोधिते सद्योधनपदं ततः ॥ ३९१ ॥

भगवति कुलेश्वरि ततः क्रोधास्त्रद्विठकाः।
कुलेश्वरि वाग्भवश्च कामबीजं ततः परम् ॥ ३९२ ॥
ततो जगदुन्मादिन्यै ङेऽन्ता कामाङ्कुशा ततः।
विश्वविद्राविणी ङेऽन्ता स्त्रीपुरुषमोहिनी च ॥ ३९३ ॥
चतुर्थ्यन्तां समाभाष्य मायाक्रोधाबलास्तथा।
वह्निस्त्री च ततः पश्चात्कामाङ्कुशे पदं ततः ॥ ३९४ ॥
तारं च हृदयं चैव सर्वधर्मध्वजां ततः।
ङेन्तामुच्चार्य्य ततः सकलसमयाचारेत्यपि ॥ ३९५ ॥
बोधितायै ततः क्रोधमावेशिन्यै ततः परम्।
अस्त्रस्वाहे ततः पश्चादावेशिनि पदं ततः ॥ ३९६ ॥

वाणी आगम शिर माया कन्दर्प के बाद 'निगमागमबोधिते सद्योधनप्रदे भगवति कुलेश्वरि' के पश्चात् क्रोध अस्त्र दो 'ठः' कहे। फिर 'कुलेश्वरि' कहने के बाद वाग्भव कामबीज फिर 'जगदुन्मादिन्यै' कहे। 'चतुर्थ्यन्त कामाङ्कुशा ङेऽन्त विश्वद्राविणी चतुर्थ्यन्त स्त्रीपुरुषमोहिनी कहने के बाद माया क्रोध अबला वह्निस्त्री, तत्पश्चात् 'कामाङ्कुशे' पद कहे। तार हृदय ङेऽन्त 'सर्वधर्मध्वजा' के बाद 'सकलसमयाचार-बोधितायै' कहे। क्रोधबीज के बाद 'आवेशिन्यै' फिर अस्त्र 'स्वाहा', उसके बाद 'आवेशिनि' कहे। (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ओं ह्रीं क्लीं निगमागमबोधिते सद्योधनप्रदे भगवति कुलेश्वरि हूं फट् ठः ठः कुलेश्वरि। ऐं क्लीं जगदुन्मादिन्यै कामाङ्कुशायै विश्वविद्राविण्यै स्त्रीपुरुषमोहिन्यै ह्रीं हूं स्त्रीं स्वाहा कामाङ्कुशायै विश्वविद्राविण्यै स्त्रीपुरुषमोहिन्यै ह्रीं स्त्रीं स्वाहा कामाङ्कुशे। ओं नमः सर्वधर्मध्वजायै सकलसमयाचार-बोधितायै हूं आवेशिन्यै फट् स्वाहा आवेशिनि) ॥ ३९१-३९६ ॥

तारत्रपारमाकामयोगिनीकामिनी तथा।
डाकिनी क्रोधमस्त्रं च करालिनि पदं ततः ॥ ३९७ ॥
मायूरिशिखिपिच्छिकाहस्ते सद्यो धनं पदम्।
खेचरी मेघनाङ्गना ऋक्षकर्णि पदं ततः ॥ ३९८ ॥
जालन्धरि पदमाभाष्य मा मां द्विषन्तु शत्रवः।
नन्दयन्तु भूपतयो भयं मोचय ततः परम् ॥ ३९९ ॥
क्रोधास्त्रे वह्निजाया च मायूरिपदमेव च।
तारमैधामृताङ्कुशा इन्द्राक्षि तदनन्तरम् ॥ ४०० ॥
क्रोधास्त्रत्रयमाभाष्य वह्निजाया ततः परम्।
इन्द्राक्षिपदमाभाष्य काल्यङ्कुशौ ततः परम् ॥ ४०१ ॥
हयग्रीवस्ततः सिद्धो मायाचण्डस्ततः घोणकि।
घोणकिमुखि तुभ्यं नमः स्वाहा ततः(परम्) ॥ ४०२ ॥
घोणकि...

तार त्रपा रमा काम योगिनी कामिनी डाकिनी क्रोध अस्त्र के बाद 'करालिनि मायूरशिखिपिच्छिकाहस्ते सद्योधनं' के बाद खेचरी मेघना अङ्गना बीजों को कहे । फिर 'ऋक्षकर्णि जालन्धरि' पदों को कहकर 'मा मां द्विषन्तु शत्रवः नन्दयन्तु भूपतयो भयं मोचय' के बाद क्रोध अस्त्र वह्निजाया के पश्चात् 'मायूरि' पद कहे । तार मेधा अमृत अङ्कुश बीजों के बाद 'इन्द्राक्षि' तदनन्तर तीन क्रोध तीन अस्त्र वह्निजाया के बाद 'इन्द्राक्षि' पद कहे । काली अङ्कुश 'हयग्रीव सिद्ध माया चण्ड' के बाद घोणकि घोणकिमुखि तुभ्यं नमः स्वाहा घोणकि कहे (मन्त्र—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं ख्फ्रें हूं फट् करालिनि मायूरिशिखिपिच्छिकाहस्ते सद्यो धनं ख्फ्रें क्लौं पां स्त्रीं ऋक्षकर्णि जालन्धरि मा मां द्विषन्तु शत्रवः नन्दयन्तु भूपतयो भयं मोचय हूं फट् स्वाहा मायूरि । ओं ऐं ग्लूं क्रों इन्द्राक्षि हूं हूं हूं फट् फट् फट् स्वाहा इन्द्राक्षि । क्रीं क्रों क्रूं क्रां ह्रीं फ्रों घोणकि घोणकिमुखि तुभ्यं नमः घोणकि) ॥ ३९७-४०३ ॥

...वाक्त्रपापद्माक्रोधकामाश्च शाकिनी ।
योगिनी शाकिनी चैव फेत्कारी तदनन्तरम् ॥ ४०३ ॥
भीमादेवि भीमनादे भीमकरालि ततः परम् ।
महाप्रलयचण्डलक्ष्मीः सिद्धेश्वरि ततः परम् ॥ ४०४ ॥
जीवहीनं पराकूटं बृहत्कूटमतः परम् ।
रथन्तरं ततः कूटं महाघोरेति संवदेत् ॥ ४०५ ॥
घोरतरे भगवति भयहारिणि तत्परम् ।
मां द्विषतो विभाष्यैव निर्मूलययुगं वदेत् ॥ ४०६ ॥
विद्रावययुगं चोक्त्वा उत्सादययुगं ततः ।
ततो महाराज्यलक्ष्मीं वितरयद्वयं हरेत् ॥ ४०७ ॥
देहियुग्मं दापययुगं डाकिनी प्रलयस्तथा ।
अमृतप्रेतप्रासादा... (वदेच्चैव) ततः परम् ॥ ४०८ ॥
क्रोधक्षेत्रपदस्त्राश्च प्रासादस्तत एव च ।
जययुग्मं राक्षसक्षयकारिणि वदेत्ततः ॥ ४०९ ॥
तारत्रपा क्रोधास्तदा त्रिठान्तं त्र्यस्त्रमेव च ।
हृच्छिरसी तदनु भीमादेवी तथापरम् ॥ ४१० ॥

वाक् त्रपा पद्मा क्रोध काम शाकिनी योगिनी शाकिनी फेत्कारी बीजों के बाद 'भीमादेवि भीमनादे भीमकरालि' कहने के बाद महाप्रलय चण्ड लक्ष्मी बीज, फिर 'सिद्धेश्वरि' उसके बाद जीवहीनपराकूट वृहत्कूट तत्पश्चात् रथन्तरकूट फिर 'महाघोरघोरतरे भगवति भयहारिणि मां द्विषतो' कहकर 'निर्मूलय विद्रावय उत्सादय' को दो-दो बार फिर 'महाराज्यलक्ष्मीं' कहे । फिर 'वितरय देहि दापय' को दो-दो बार कहने के पश्चात् डाकिनी प्रलय अमृत प्रेत प्रासाद (कहना चाहिये)... उसके बाद क्रोध क्षेत्रपदस्त्र प्रासाद के बाद दो बार 'जय' फिर 'राक्षसक्षयकारिणि' कहना चाहिये ।

फिर तार त्रपा क्रोध तीन ठ तीन अस्त्र हृदय शिर बीज फिर 'भीमादेवि' कहे। (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं फ्रें छ्रीं फ्रें हसखफ्रें भीमादेवि भीमनादे भीमकरालि क्षूं हसखफ्रीं फ्रों श्रीं सिद्धेश्वरि सहकह्लीं स्हकहलह्रीं सक्लहकह्लीं महाघोरघोरतरे भगवति भयहारिणि मां द्विषतो निर्मूलय निर्मूलय विद्रावय विद्रावय उत्सादय उत्सादय महाराज्यलक्ष्मीं वितरय वितरय देहि देहि दापय दापय खफ्रें हसफ्रीं ग्लूं स्हौः हौं हूं क्षौं ब्लीं हौं जय जय राक्षसक्षयकारिणि ओं ह्रीं हूं ठः ठः ठः फट् फट् फट् नमः स्वाहा भीमादेवि) ॥ ४०३-४१० ॥

तारवाणीरमामायाक्रोधशाकिन्य एव च।
डाकिनी प्रलयश्चैव फेत्कारी फेंकारं तथा ॥ ४११ ॥
प्रविश संसारं तदनु महामाये ततः परम्।
फें फडिति समाभाष्य ब्रह्मशिरोनिकृन्तनि ॥ ४१२ ॥
विष्णुतनुनिर्दलिनि जे जम्भिके ततः परम्।
स्तें स्तम्भिके छिन्दियुगं भिन्दि दह युगं युगम् ॥ ४१३ ॥
मथयुग्मं पचयुग्मं पञ्चशवारूढे ततः।
पञ्चागमप्रिये ततोऽमृतं दस्त्रं च खेचरी ॥ ४१४ ॥
रमा कामस्तथा संवित् पञ्चपाशुपतेत्यपि।
अस्त्रधारिणि सम्प्रोच्य क्रोधत्रितयमेव च ॥ ४१५ ॥
अस्त्रद्वयं वह्निजाया ब्रह्मनिकृन्तनि ततः।

तार वाणी रमा माया क्रोध शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी फेकार के बाद 'प्रविश संसारं महामाये' 'फें फट् ब्रह्मशिरोनिकृन्तनि विष्णुतनुनिर्दलिनि जें जम्भिके स्तें स्तम्भिके' के बाद 'छिन्धि भिन्धि दह मथ पच' को दो-दो बार कहे। फिर 'पञ्चशवारूढे पञ्चागमप्रिये' कहने के बाद अमृत दस्त्र खेचरी रमा काम संवित् के पश्चात् 'पञ्चपाशुपतअस्त्रधारिणि' कहकर तीन क्रोध अस्त्र वह्निजाया के पश्चात् 'ब्रह्म-निकृन्तनि' कहे। (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ऐं श्रीं ह्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें हसखफ्रीं हसख्फ्रें फें प्रविश संसारं महामाये फें फट् ब्रह्मशिरोनिकृन्तनि विष्णुतनुनिर्दलिनि जें जम्भिके स्तें स्तम्भिके छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि दह दह मथ मथ पच पच पञ्चशवारूढे पञ्चागमप्रिये ग्लूं ब्लीं ख्रौं श्रीं क्लीं फें पञ्चपाशुपतास्त्रधारिणि हूं हूं हूं फट् स्वाहा ब्रह्मनिकृन्तनि) ॥ ४११-४१६ ॥

वाक्यांशवेदशिरसस्ततो हृदयमेव च ॥ ४१६ ॥
परशिवविपरीताचारकारिणि ततः परम्।
ह्रीरमाकामयोगिनीकामिन्यस्तत एव हि ॥ ४१७ ॥
महाघोरविकरालिनि खण्डार्द्धशिरोधारिणि।
ततोऽपि भगवत्युग्रे शाकिनी डाकिनी तदा ॥ ४१८ ॥
प्रलयफेत्कार्यौ च कूटं प्राभातिकं ततः।

वाराहिकं ततः कूटं क्रोधास्त्रे वह्निवल्लभा ॥ ४१९ ॥
भुवनेशी ततः क्रोधमर्द्धमस्तके ततः परम् ।
काली तारश्च क्रोधं च शाकिनी कामिनी तदा॥ ४२० ॥
चण्डबीजं ततश्चण्डखेचरि ज्वलयुग्मकम् ।
प्रज्वलद्वितयं चैव निर्म्मांसदेहे नमः ॥ ४२१ ॥

वाक्यांश वेद शिरस हृदय के बाद 'परशिवविपरीताचारकारिणि' के पश्चात् ह्रीं रमा काम योगिनी कामिनी के अनन्तर 'महाघोरविकरालिनि खण्डार्धशिरोधारिणि भगवति उग्रे' को कहने के पश्चात् शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारीकूट फिर प्राभातिक कूट वाराहीकूट क्रोध अस्त्र वह्निजाया भुवनेशी क्रोध को कहे । फिर 'अर्धमस्तके' कहने के बाद काली तार क्रोध शाकिनी कामिनी चण्ड बीजों को कहे । उसके बाद 'चण्डखेचरि' कहने के पश्चात् 'ज्वल प्रज्वल' को दो-दो बार फिर 'निर्मांसदेहे नमः' कहे । फिर दो 'ठ' और 'चण्डखेचरि' कहे । (मन्त्र—ओं नमः परशिवविपरीताचारकारिणि ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं महाघोरविकरालिनि खण्डार्धशिरोधारिणि भगवत्युग्रे फ्रें ख्फ्रें हसफ्रीं हसख्फ्रें... (प्राभातिककूट)... म्लक्षकसहह्रूं हूं फट् स्वाहा । ह्रीं हूं अर्धमस्तके क्रीं ओं हूं फ्रें स्त्रीं फ्रों चण्डखेचरि ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल निर्मांसदेहे ठः ठः चण्डखेचरि) ॥ ४१६-४२१ ॥

द्विठश्चण्डखेचरि हि वेदादिर्नम एव च ।
प्रचण्डघोरदावानलवासिन्यै ततः परम् ॥ ४२२ ॥
ह्रीं हूं समयविद्या कुलतत्त्वधारिणी च ।
ङेऽन्ता ज्ञेया ततः पश्चान्महामांसरुधिरप्रिया ॥ ४२३ ॥
चतुर्थ्यन्ता समाज्ञेया योगिनी बीजमेव च ।
कामिनी कामबीजं च धूमावत्यै ततः परम् ॥ ४२४ ॥
सर्वज्ञाता सिद्धिदायै शाकिन्यस्त्रं शिरस्तथा ।
ततो धूमावति पश्चाद्वाक्त्रपा पाशमेव च ॥ ४२५ ॥
ह्रां सौः क्लीं महाभोगिराजभूषणे ततः परम् ।
सृष्टिस्थितिप्रलयकारिणि तदनन्तरम् ॥ ४२६ ॥
हूं हूङ्कारनादभूरितारिणि भगवति ततः ।
हाटकेश्वरि ततः पश्चादमृतं तदनन्तरम् ॥ ४२७ ॥
दस्रानन्दौ रौद्रबीजं रमावाग्भवचण्डकाः ।
शाकिनी डाकिनी चैव मम शत्रूनिति स्मरेत् ॥ ४२८ ॥
मारय बन्धय द्वौ द्वौ मर्दययुगलं तथा ।
पातययुगलं चैव ततः पश्चान्महेश्वरि ॥ ४२९ ॥
धनधान्यायुरारोग्यैश्वर्य्यं ततो देहिद्वयम् ।
दापययुगलं चैव मानसं तदनन्तरम् ॥ ४३० ॥

पविकापालभारुण्डाः प्रासादं बीजमेव च ।
पाशमङ्कुशवाण्यौ च तारं हृद्वह्निवल्लभा ॥ ४३१ ॥

वेदादि 'नमः' के बाद 'प्रचण्डघोरदावानलवासिन्यै', उसके बाद ह्रीं हं, फिर ङेऽन्त समयविद्याकुलतत्त्वधारिणी, इसके पश्चात् चतुर्थ्यन्त 'महामांसरुधिरप्रिया' फिर योगिनीबीज कामिनी कामबीज कहे । फिर 'धूमावत्यै सर्वज्ञतासिद्धिदायै' के बाद शाकिनी अस्त्र शिर, उसके पश्चात् 'धूमावति' कहे । बाद में वाक् त्रपा पाश ह्रां सौः क्लीं के पश्चात् 'महाभोगिराजभूषणे सृष्टिस्थितिप्रलयकारिणि हूं हूङ्कारनादभूरितारिणि भगवति हाटकेश्वरि' के पश्चात् अमृत दस्र आनन्द, रौद्र रमा वाग्भव चण्ड शाकिनी डाकिनी बीजों को कहे । 'मम शत्रून्' के बाद मारय बन्धय मर्दय पातय' को दो-दो बार कहने के बाद 'महेश्वरि धनधान्यायुरारोग्यैश्वर्यं' के बाद 'देहि दापय' को दो-दो बार कहे । 'मानसं' कहने के बाद पति कापाल भारुण्ड प्रासाद पाश अङ्कुश वाणी तार हृदय वह्निवल्लभा 'हाटकेश्वरि' कहे । (मन्त्र—ओं नमः प्रचण्डघोरदावानलवासिन्यै ह्रीं हं समयविद्याकुलतत्त्वधारिण्यै महामांसरुधिरप्रियायै छ्रीं स्त्रीं क्लीं धूमावत्यै सर्वज्ञता-सिद्धिदायै फ्रें फट् स्वाहा धूमावति । ऐं ह्रीं आं ह्रां सौः क्लीं महाभोगिराजभूषणेसृष्टि-स्थितिप्रलयकारिणि हूं हूङ्कारनादभूरितारिणि भगवति हाटकेश्वरि ग्लूं ब्लीं भ्रूं द्रैं श्रीं ऐं फ्रों फ्रें ख्फ्रें मम शत्रून् मारय मारय बन्धय बन्धय मर्दय मर्दय पातय पातय महेश्वरि धनधान्यायुरारोग्यैश्वर्यं देहि देहि दापय दापय ह्रीं ध्रीं थ्रीं प्रीं हौं आं क्रों ऐं ओं नमः स्वाहा हाटकेश्वरि) ॥ ४२२-४३१ ॥

हाटकेश्वरि तदनु वेदादिः पाशमेव च ।
वाणीह्रीकमलाश्चैव शक्तिसौपर्णि तत्परम् ॥ ४३२ ॥
कमलासने समुच्चार्य्य उच्चाटय द्वयं ततः ।
विद्वेषय द्वयं चैव क्रोधास्त्रे वह्निसुन्दरी ॥ ४३३ ॥
शक्तिसौपर्णि तदनु तारवाण्यौ त्रपा ततः ।
कमलाकामरुषश्चैव योगिनी कामिनी ततः ॥ ४३४ ॥
शाकिनी डाकिनी चैव प्रलयः फेत्कारी तथा ।
मणिमेखला तदनु हारसानू ततः परम् ॥ ४३५ ॥
भगवति महामारि जगदुन्मूलिनि ततः ।
कल्पान्तकारिणि तदा शिरोनिविष्टवामचरणे ॥ ४३६ ॥
दिगम्बरि ततः पश्चात् समयेति ततः परम् ।
ततः कुलचक्रचूडालये मां रक्ष रक्षेति ॥ ४३७ ॥
त्राहियुग्मं पालययुगं प्रज्वलदावानलेत्यपि ।
ज्वालाजटालजटिले ततो हं त्रयमाहरेत् ॥ ४३८ ॥
हृदयं वह्निजाया च महामारि ततः परम् ।

वेदादि पाश वाणी ह्रीं कमला 'शक्तिसौपर्णी' के बाद 'कमलासने' कहकर

'उच्चाटय विद्वेषय' को दो-दो बार फिर क्रोध अस्त्र वह्निजाया शक्तिसौपर्णी । तार वाणी त्रपा कमला काम क्रोध योगिनी कामिनी शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी मणिमेखला हार सानु के बाद 'भगवति महामारि जगदुन्मूलिनि कल्पान्तकारिणि शिरोनिविष्टवामचरणे दिगम्बरि' कहने के पश्चात् 'समयकुलचक्रचूडालये मां रक्ष रक्ष' कहे । 'त्राहि पालय' को दो बार कहने के बाद 'प्रज्वल 'दावानलज्वालाजटिले' कहे । तीन 'हं' कहे । हृदय वह्निजाया महामारि कहे (मन्त्र—ओं आं ऐं ह्रीं श्रीं शक्तिसौपर्णि कमलासने उच्चाटय उच्चाटय विद्वेषय विद्वेषय हूं फट् स्वाहा शक्तिसौपर्णि । ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रीं हसख्फ्रें श्लां रक्ष्रीं जरक्रीं रह्रीं भगवति महामारि जगदुन्मूलिनि कल्पान्तकारिणि शिरोनिविष्टवामचरणे दिगम्बरि, समयकुलचक्रचूडालये मां रक्ष रक्ष त्राहि त्राहि पालय पालय प्रज्वल दावानल ज्वालाजटिले हं हं हं नमः स्वाहा महामारि) ॥ ४३२-४३९ ॥

वेदादिश्च वाणी चैव रक्ताम्बरे तदनन्तरम् ॥ ४३९ ॥
रक्तस्त्रगनुलेपने महामांसरक्तप्रिये ।
महाकान्तारे तदनु मां त्राहिद्वन्द्वं ततः परम् ॥ ४४० ॥
रामाकामत्रपाक्रोधशाकिन्योऽस्त्रं शिरस्तथा ।
मङ्गलचण्डि तदनु मायास्त्रं हृदयं तथा ॥ ४४१ ॥
चण्डोग्रकालिनि ततः परमशिवशक्ति हि ।
सामरस्य ततः पश्चान्निर्वाणदायिनि ततः ॥ ४४२ ॥
नरकङ्कालधारिणि ब्रह्मविष्णुकुणपवाहिनि ।
वाणी वेदशिरश्चैव शाकिनी तदनन्तरम् ॥ ४४३ ॥
ततः प्रत्यक्षं परोक्षं मां द्विषन्ति ये तानपि ।
हनयुग्मं नाशययुग्मं कुष्माण्डडाकिनी तदा ॥ ४४४ ॥
स्कन्दवेतालभयं नुदयुग्मं ततः परम् ।
कोकामुखि च तदनु स्वाहा...

वेदादि वाणी 'रक्ताम्बरे रक्त स्त्रगनुलेपने महामांसरक्तप्रिये महाकान्तारे मां' कहने के बाद 'त्राहि' को दो बार कहना चाहिये । रमा काम त्रया क्रोध शाकिनी अस्त्र शिर के बाद 'मङ्गल चण्डि' कहे । उसके पश्चात् माया अस्त्र हृदय के पश्चात् 'चण्डोग्रकालिनि परमशिवशक्ति सामरस्यनिर्वाणदायिनि नरकङ्काल धारिणि ब्रह्मविष्णुकुणपवाहिनि के बाद वाणी वेदशिर शाकिनी के बाद फिर 'प्रत्यक्ष परोक्षं मां द्विषन्ति ये तानपि' कहे । फिर 'हन नाशय' को दो-दो बार कहे । फिर 'कुष्माण्ड डाकिनी स्कन्दवेतालभयं' के बाद 'नुद' को दो बार उद्धृत करे । 'कोकामुखि' के बाद स्वाहा कहे । (मन्त्र—ओं ऐं रक्ताम्बरे रक्तस्त्रगनुलेपने महामांसरक्तप्रिये महाकान्तोरमा त्राहि त्राहि श्रीं क्लीं ह्रीं हूं फ्रं फट् स्वाहा मङ्गलचण्डि । ह्रीं फट् नमश्चण्डोग्रकालिनि परमशिवशक्ति सामरस्य निर्वाणदायिनि नरकङ्कालधारिणि ब्रह्मविष्णुकुणयवाहिनि ऐं ओं

फ्रें प्रत्यक्षं परोक्षं मां छिपन्ति ये तानपि हन हन नाशय नाशय कूष्माण्डडाकिनी स्कन्दवेतालभयं नुद नुद कोकामुखि स्वाहा) ॥ ४३९-४४५ ॥

...तारं त्रपा ततः ॥ ४४५ ॥
मदनः शाकिनी चैव क्रोधं तारं त्रपा ततः ।
क्रोधबीजं ततः पश्चात् श्मशानेति वदेत् सुधीः ॥ ४४६ ॥
शिखाचारिण्यै भगवत्यै ज्वालाकाल्यै ततः परम् ।
योगिनी कामिनी चैव शाकिनी कालिकापि च ॥ ४४७ ॥
चण्डास्त्रहृच्छिरसां ज्वालाकालि तथापरम् ।
वाणी च कमलाकामपाशाङ्कुशाश्च कालिका ॥ ४४८ ॥
अतिचण्डं योगिनी च कामिनी तदनन्तरम् ।
ततो घोरनादकालि सिद्धिं मे देहि तत्परम् ॥ ४४९ ॥
सर्वं विघ्नमुपशमय सिद्धिकरालि तथापरम् ।
ततः सिद्धिविकरालि क्रोधयुगं वदेत्ततः ॥ ४५० ॥
फट् स्वाहा घोरनादकालिपदं...

तार त्रपा मदन शाकिनी क्रोध तार त्रपा क्रोध के बाद विद्वान् 'श्मशानशिखाचारिण्यै भगवत्यै ज्वालाकाल्यै' कहे । इसके बाद योगिनी कामिनी शाकिनी कालिका चण्ड अस्त्र हृदय शिर के बाद 'ज्वालाकालि' कहे । वाणी कमला काम पाश अङ्कुश कालिका अतिचण्ड योगिनी कामिनी फिर 'घोरनादकालि सिद्धिं में देहि सर्वं विघ्नमुपशमय सिद्धिकरालि' फिर 'सिद्धिविकरालि' दो क्रोध 'फट् स्वाहा घोरनादकालि' कहे (मन्त्र—ओं ह्रीं क्लीं फ्रें हूं ओं ह्रीं हूं श्मशानशिखाचारिण्यै भगवत्यै ज्वालाकाल्यै छ्रीं स्त्रीं फ्रें क्रीं फ्रों फट् नमः स्वाहा ज्वालाकालि । ऐं श्रीं क्लीं आं क्रों क्रीं... (अतिचण्ड)... छ्रीं स्त्रीं घोरनादकालि सिद्धिं में देहि सर्वविघ्नमुपशमय सिद्धिकरालि सिद्धिविकरालि हूं हूं फट् स्वाहा घोरनादकालि) ॥ ४४५-४५१ ॥

...माया ततः ।
क्रोधं च शाकिनी चैव डाकिनी योगिनी तथा ॥ ४५१ ॥
उग्रकाल्यै खेचरीसिद्धिदायिन्यै ततः परम् ।
परापरकुलचक्रनायिकायै वदेत्ततः ॥ ४५२ ॥
अमृतं गारुडं चैव कामिनीक्षेत्रपालिनौ ।
कन्दर्पस्त्रिशूलझङ्कारिण्यै नमः स्वाहा ततः ॥ ४५३ ॥
उग्रकालि ततः पश्चात्प्रासादं प्रेतमेव च ।
आदित्यौकारयुक्तश्च काली माया ततः परम्॥ ४५४ ॥
शाकिनी चण्डरुषश्चैव चास्त्रं वेतालकालि हि ।
कमला भुवनेशी च वाणीमन्मथकालिकाः ॥ ४५५ ॥
भगवति संहारकालि ब्रह्माण्डं च पिषद्वयम् ।

चूर्णययुगलं मां रक्षद्वयं ततः परम् ॥ ४५६ ॥
कालघनरुषपश्चैव क्रोधास्त्रद्वितयं पुनः ।
हृदयं वह्निजाया च संहारकालि तत्परम्॥ ४५७ ॥

माया उसके बाद क्रोध शाकिनी डाकिनी योगिनी के बाद 'उग्रकाल्यै खेचरीसिद्धिदायिन्यै परापरकुलचक्रनायिकायै' कहना चाहिये । अमृत गारुड कामिनी क्षेत्रपाली कन्दर्प के बाद 'त्रिशूलझङ्कारिण्यै नमः स्वाहा उग्रकालि' कहे । प्रासाद प्रेत औकारयुक्त आदित्य काली माया शाकिनी चण्ड क्रोध अस्त्र के बाद 'वेतालकालि' फिर कमला भुवनेश्वरी वाणी काम काली बीजों को कहे । इसके बाद 'भगवति संहारकालि ब्रह्माण्डं' कहने के बाद 'पिष चूर्णय' को दो-दो बार कहे । 'मां' के बाद 'रक्ष' को दो बार कहे । काल घन क्रोध दो अस्त्र दो हृदय वह्निजाया उसके बाद 'संहारकालि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें छ्रीं उग्रकाल्यै खेचरीसिद्धिदायिन्यै परापरकुलचक्रनायिकायै ग्लूं क्रौं स्त्रीं क्षौं क्लीं त्रिशूलझङ्कारिण्यै नमः स्वाहा उग्रकालि । हौं स्हौः सौः क्रीं ह्रीं फ्रें फ्रों हूं फट् वेतालकालि श्रीं ह्रीं ऐं क्लीं क्रीं भगवति संहारकालि ब्रह्माण्डं पिष पिष चूर्णय चूर्णय मां रक्ष रक्ष जूं क्लौं हूं हूं हूं फट् फट् नमः स्वाहा संहारकालि) ॥ ४५१-४५७ ॥

तारवाग्भवमायाश्च रमा मीनध्वजस्ततः ।
महाघोरविकटरूपायै तदनन्तरम् ॥ ४५८ ॥
ज्वलदनलवदनायै सर्वज्ञतासिद्धिदायै ।
कालीशाकिनीक्रोधाश्च हृदस्त्रं वह्निसुन्दरी ॥ ४५९ ॥
रौद्रकालि ततः पश्चात् शाकिनीबीजमुत्तमम् ।
चण्डाट्टहासिनि ततो डाकिनी तदनन्तरम् ॥ ४६० ॥
ब्रह्माण्डमर्दिनि ततः प्रलयश्च ततः परम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवभक्षिणि तत्परं स्मृतम् ॥ ४६१ ॥
फेत्कारी मृत्युमृत्युदायिनि ततः परम् ।
नक्षत्रकूटं तदनु भक्तिसिद्धिविधायिनि ॥ ४६२ ॥
सम्बुद्धिपदमुच्चार्य्य कूटं वाराहिकं ततः ।
भगवति कृतान्तकालि तदनु क्रोधमस्त्रकम् ॥ ४६३ ॥
कुण्डलाख्यं ततः कूटं हृदस्त्रवह्निवल्लभाः ।
कृतान्तकालि तदनु तारवाणीरमास्मराः ॥ ४६४ ॥
शाकिनी कालिका चैव योगिनी कामिनी तथा।
क्रोधं भीमकालि च कालीद्वयं ततः परम् ॥ ४६५ ॥
महाक्रोधं गारुडं च पन्नगस्तदनन्तरम् ।
प्रेतशिवपर्यंकशायिनि पदमेव च ॥ ४६६ ॥
महाभैरवविनादिनि पदमेतत्ततः परम् ।

पशुपाशं मोचय मोचयेति वदेत्सुधीः ॥ ४६७ ॥
कामिनी शाकिनी चैव खेचरी चण्ड एव च।
चण्डकालि क्रोधबीजं फट्द्वयं तदनन्तरम् ॥ ४६८ ॥

तार वाग्भव माया रमा मीनध्वज के बाद 'महाघोरविकटरूपायै ज्वलदनलवदनायै सर्वज्ञतासिद्धिदायै' के पश्चात् काली शाकिनी क्रोध हृदय अस्त्र वह्निजाया कहे । फिर 'रौद्रकालि' के बाद शाकिनी बीज, फिर 'चण्डाट्टहासिनि' फिर डाकिनी बीज तदनन्तर 'ब्रह्माण्डमर्दिनि' के बाद प्रलयबीज फिर 'ब्रह्मविष्णुशिवभक्षिणि' कहे । उसके बाद फेत्कारीबीज, तत्पश्चात् 'मृत्युमृत्युदायिनि' तदनु... (नक्षत्रकूट)... उसके बाद सम्बोधन 'भक्तसिद्धिविधायिनि' का उच्चारण कर वाराहीकूट कहे । तदनन्तर 'भगवति कृतान्त-कालि' कहे । फिर तार वाणी रमा स्मर शाकिनी काली योगिनी कामिनी क्रोधबीज के बाद 'भीमकालि' फिर दो कालीबीज महाक्रोध गारुड पन्नग के पश्चात् 'प्रेतशिवपर्यङ्क-शायिनि' पद कहे । उसके बाद 'महाभैरवविनादिनि' पद कहे । उसके बाद सुधी 'पशुपाशं मोचय मोचय' कहे । कामिनी शाकिनी खेचरी चण्ड' के बाद 'चण्डकालि' फिर क्रोधबीज दो फट् फिर 'चण्डकालि' पद कहे (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं महाघोरविकटरूपायै ज्वलदनलवदनायै सर्वज्ञतासिद्धिदायै क्रीं फ्रें हूं नमः फट् स्वाहा रौद्रकालि । फ्रें चण्डाट्टहासिनि ख्फ्रें ब्रह्माण्डमर्दिनि हसफ्रीं ब्रह्मविष्णुशिव-भक्षिणि हसख्फ्रें मृत्युमृत्युदायिनि... (नक्षत्रकूट)... भक्तसिद्धिविधायिनि म्लक्षकसहहूं भगवति कृतान्तकालि हूं फट् रक्ष क्रीं ॐ नमः फट् स्वाहा कृतान्तकालि । ओं ऐं श्रीं क्लीं फ्रें क्रीं छ्रीं स्त्रीं हूं भीमकालि क्रीं क्रीं क्ष्रूं क्रौं व्रीं प्रेतशिवपर्यङ्कशायिनि महाभैरवविनादिनि पशुपाशं मोचय मोचय स्त्रीं फ्रें ख्रौं फ्रों चण्डकालि हूं फट् फट् चण्डकालि) ॥ ४५८-४६८ ॥

चण्डकालिपदं चैव औंकारस्थो दिवाकरः ।
दस्त्रश्च ब्रह्मभारुण्डौ कलाबीजमतः परम् ॥ ४६९ ॥
धनकालि धनप्रदे धनं मे देहि दापय ।
कालिकाशाकिनीक्रोधास्ततो विषधरेत्यपि ॥ ४७० ॥
वज्रिणि कामबीजं च रमाहृद्वह्निवल्लभाः ।
धनकालि ततः पश्चात्तारभूतौ ततः परम् ॥ ४७१ ॥
सुदीर्घकूटं तदनु मेघो विद्युत्ततः परम् ।
घोरकालि ततः पश्चाद्विश्वं वशीकुरु ततः॥ ४७२ ॥
पुनर्वशीकुरु सर्वं कार्यं साधय द्वयमेव च ।
करालि विकरालि वै योगिनी स्त्री च शाकिनी॥ ४७३ ॥
प्रेतारूढ़े प्रेतावतंसे त्रपा रमा स्मरस्तथा ।
राजानं तदनुस्मृत्य मोहययुगलं ततः ॥ ४७४ ॥
क्रोधास्त्रहृदयाश्चैव घोरकालि ततः परम् ।

औंकारस्थ सूर्य दस्र ब्रह्म भारुण्ड कलाबीज के बाद 'धनकालि धनप्रदे धनं मे देहि दापय' कहे । कालिका शाकिनी क्रोध के पश्चात् 'विषधरवजिणि', फिर काम रमा हृद् वह्निवल्लभा' के पश्चात् 'धनकालि' कहे । तार भूत सुदीर्घकूट मेघ विद्युत् के पश्चात् 'घोरकालि' तत्पश्चात् 'विश्वं वशीकुरु' पुन:वशीकुरु सर्वं कार्यं' के कहने पर 'साधय' को दो बार कहना चाहिये । 'करालि विकरालि' योगिनी स्त्री शाकिनी बीजों को उद्धृत करे । फिर 'प्रेतारूढे प्रेतावतंसे' कहकर त्रपा रमा स्मर के अनन्तर 'राजानं' का स्मरण कर 'मोहय' को दो बार कहे । ततः क्रोध अस्त्र हृदय के बाद 'घोरकालि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—सौ: ब्लीं ठौं प्रीं ईं धनकालि धनप्रदे धनं मे देहि दापय क्रीं फ्रें हूं विषधरवज्रिणि क्लीं श्रीं नमः स्वाहा धनकालि । ओं स्फ्रों... (सुदीर्घ कूट)... ब्लौं क्लौं घोरकालि विश्वं वशीकुरु वशीकुरु सर्वं कार्यं साधय साधय करालि विकरालि छ्रीं स्त्रीं फ्रें प्रेतारूढे प्रेतावतसे ह्रीं श्रीं क्लीं राजनं मोहय मोहय हूं फट् नमः घोरकालि) ॥ ४६९-४७५ ॥

वाणी त्रपा रमा कामा योगिनी कामिनी तथा ॥ ४७५ ॥
शाकिनी कालिकास्त्रे च द्विठः सन्त्रासकालि वै।
कालीयुग्मं मायायुग्मं क्रोधयुग्मं ततः परम् ॥ ४७६ ॥
लेलिहानरसनाकराले तदनन्तरम् ।
रोरूयमानसजीवशिवानक्षत्रमाले च ॥ ४७७ ॥
योगिनी स्त्री शाकिनी च प्रेतकालि ततः परम् ।
भगवति भयानके मम भयं ततः परम् ॥ ४७८ ॥
अपनय ततः स्वाहा प्रेतकालि ततः परम् ।
तारवाणीत्रपाक्रोधा रतिरानन्द एव च ॥ ४७९ ॥
खेचरी च गौरी चैव शाकिनी प्रलयकालि वै ।
प्रलयकारिणि ततो नवकोटि ततः परम् ॥ ४८० ॥
कुलाकुलचक्रेश्वरि दानवः कूर्म्म एव च ।
ब्लूङ्कारं म्लैंकारं चैव द्रावणं च ततः परम् ॥ ४८१ ॥
परमशिवतत्त्वसमयप्रकाशिनि च ।
बिन्दुद्वयान्वितं बीजं जयाख्यं तदनन्तरम् ॥ ४८२ ॥
अस्त्रस्वाहा तदनु प्रलयकालि...

वाणी त्रपा रमा कामा योगिनी कामिनी शाकिनी कालिका दो अस्त्र दो 'ठ' 'सन्त्रासकालि' के बाद काली माया क्रोध बीजों को दो बार कहे । फिर 'लेलिहान-रसनाकराले रोरूयमानसजीवशिवानक्षत्रमाले' के बाद योगिनी स्त्री शाकिनी बीज फिर 'प्रेतकालि भगवति भयानके मम भयं अपनय स्वाहा प्रेतकालि' । तार वाणी त्रपा क्रोध रति आनन्द खेचरी गौरी शाकिनी के बाद 'प्रलयकालि प्रलयकारिणि नवकोटिकुला-कुलचक्रेश्वरि' कहे । फिर दानव कूर्म ब्लूङ्कार म्लैंकार द्रावण के पश्चात् 'परमशिवतत्त्व-समयप्रकाशिनि' कहे । दो बिन्दुओं से युक्त जयबीज फिर अस्त्र स्वाहा के पश्चात्

'प्रलयकालि' कहे । (मन्त्र—ऐं ह्रीं श्रीं क्लूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें क्रीं फट् फट् ठः ठः सन्त्रासकालि क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं लेलिहानरसनाकराले रोरूपमानसजीवशिवानक्षत्रमाले छ्रीं स्त्रीं फ्रें प्रेतकालि भगवति भयानके मम भयं अपनय स्वाहा प्रेतकालि । ओं ऐं ह्रीं हूं क्लूं भ्रूं खौं क्रः फ्रें प्रलयकालि प्रलयकारिणि नवकोटि कुलाकुलचक्रेश्वरि श्रीं प्रीं ब्लूं म्लैं हभ्रीं परमशिवतत्त्व समय प्रकाशिनि क्रः फट् स्वाहा प्रलयकालि) ॥४७५-४८३॥

...तथा परम् ।
पाशकालीकामरमावाग्भवाश्च ततः स्मृताः ॥ ४८३ ॥
विभूतिकालि तदनु सम्पदं मे पुनस्तथा ।
वितरद्वयं सौम्या भव वृद्धिदाभव ॥ ४८४ ॥
सिद्धिदा भवेति च जयद्वयं तथापरम् ।
जीवद्वन्द्वं च अंबीजं कापालदक्षनेत्रकौ ॥ ४८५ ॥
मानसं चैव स्थाणुं च पविरेंकारमेव च ।
भारुण्डं ठद्वयं चैव फट्कारत्रयमेव च ॥ ४८६ ॥
हृदयं वह्निजाया च तारत्रयमतः परम् ।
विभूतिकालि तदनु ताराङ्कुशत्रपास्ततः ॥ ४८७ ॥
स्मरश्च योगिनी चैव शाकिनीस्त्रीरमास्तथा ।
वाग्भवं जयकालि वै परमचण्डे ततः परम् ॥ ४८८ ॥
महासूक्ष्मविद्यासमयप्रकाशिनि तथा परम् ।
क्षौंकारं प्लुङ्कारं चैव व्फ्लुङ्कारं तदनन्तरम् ॥ ४८९ ॥
हृद्वह्निपत्नी तदनु जयकालि...

उसके बाद पाश काली काम रमा वाग्भव के बाद 'विभूतिकालि सम्पदं मे' कहने के बाद 'वितर' को दो बार कहे । 'सौम्या भव वृद्धिदा भव सिद्धिदा भव के बाद 'जय' को दो बार फिर 'जीव' को दो बार अंबीज कपाल दक्षनेत्र मानस स्थाणु वज्र एङ्कार भारुण्ड दो ठ तीन फट् हृदय वह्निजाया फिर तीन तार के बाद 'विभूतिकालि' कहे । तार अङ्कुश त्रपा स्मर योगिनी शाकिनी स्त्री रमा वाग्भव के बाद 'जयकालि परमचण्डे महासूक्ष्मविद्यासमयप्रकाशिनि' के पश्चात् क्षौंकार प्लुकार व्फ्लुङ्कार हृदय वह्निपत्नी फिर 'जयकालि' कहे (मन्त्र इस प्रकार है—आं क्रीं क्लीं श्रीं ऐं विभूति-कालि सम्पदं मे वितर वितर सौम्या भव वृद्धिदा भव सिद्धिदा भव जय जय जीव जीव अं थ्रां इं ठ्रीं उं ध्रीं एं प्रीं ठः ठः फट् फट् फट् नमः स्वाहा ओं ओं ओं विभूति-कालि । ओं क्रों ह्रीं क्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं श्रीं ऐं जयकालि परमचण्डे महासूक्ष्मविद्यासमय-प्रकाशिनि क्षौं प्लु वफ्लुं नमः स्वाहा जयकालि) ॥ ४८३-४९० ॥

...ततः परम् ।
वाग्भवं कमला चैव वेदमस्तकमेव च ॥ ४९० ॥
गुरुभिरन्वितं बीजं फ्रङ्कारं सप्त चोद्धरेत् ।

भोगकालि ततः पश्चात् फेत्कारी तदनन्तरम् ॥ ४९१ ॥
त्रेताबीजं फट्त्रयं च स्वाहा भोगकालि ततः ।
क्रोधं च हृदयं चैव कल्पान्तकालि तत्परम् ॥ ४९२ ॥
भगवति भीमरावे कान्तं पान्तस्थमेव च ।
रेफसंस्थं चान्तवर्णं वामकर्णविभूषितम् ॥ ४९३ ॥
तदन्ते विनियोज्यैवं नादबिन्दुसमन्वितम् ।
इन्द्रारूढो मकारादिवामनेत्रविभूषितम् ॥ ४९४ ॥
नादबिन्दुसमायुक्तं द्वितीयं बीजमुद्धरेत् ।
पपञ्चमो वह्निसंस्थो वामनेत्रेण भूषितः ॥ ४९५ ॥
सनादं तार्त्तीयबीजं मेघमाले ततः परम् ।
महामारीश्वरि ततो विद्युत्कटाक्षे ततः परम् ॥ ४९६ ॥
अरूपे बहुरूपे च विरूपे च ततः परम् ।
ज्वलितमुखि तदनु चण्डेश्वरि तथापरम् ॥ ४९७ ॥
सानुः द्रावणः स्वाहा च कल्पान्तकालि तत्परम् ।

उसके बाद वाग्भव कमला वेदमस्तक सात गुरु स्वरों से युक्त फ्रङ्कार के बाद 'भोगकालि' तत्पश्चात् फेत्कारी त्रेता बीज तीन 'फट् स्वाहा' के बाद 'भीमरावे' कहे । कान्त (=ख) पान्तस्थ (=फ) रेफसंस्थ अन्तवर्ण को वामकर्ण एवं नादबिन्दु से विभूषित कहे । उसके पश्चात् इन्द्रारूढ मकारादि वामनेत्रविभूषित नादविन्दुयुक्त द्वितीयबीज (=फ्रं) को उद्धृत करे । पञ्चम को वह्नि वामनेत्र तथा नाद से विभूषित कर कहे । तार्त्तीयबीज के बाद 'मेघमाले महामारीश्वरि विद्युत्कटाक्षे अरूपे वहुरूपे विरूपे' के बाद 'ज्वलितमुखि चण्डेश्वरि' कहे । सानु द्रावण 'स्वाहा' के बाद 'कल्पान्तकालि' कहे । (मन्त्र—ऐं श्रीं ओं फ्रां फ्रीं फ्रूं फ्रें फ्रैं फ्रों फ्रौं भोगकालि हसखफ्रें हसखफ्रें फट् फट् फट् स्वाहा भोगकालि । हूं नमः कल्पान्तकालि भगवति भीमरावे खफहूं भौं फ्रूं म्रूं बं मेघमाले महामारीश्वरि विद्युत्कटाक्षे अरूपे बहुरूपे विरूपे ज्वलितमुखि चण्डेश्वरि रह्रीं रश्रीं स्वाहा कल्पान्तकालि) ॥ ४९०-४९८ ॥

तारं च योगिनी चैव क्ष्वेडं वामाक्षिसंयुतम्॥ ४९८ ॥
कला क्लङ्कारं च डामरमुखि तत्परम् ।
वज्रशरीरे तदनु क्रोधबीजं ततः परम् ॥ ४९९ ॥
सन्तानकालि तदनु फट्कारं द्विठमेव च ।
पुनर्मन्थानकालि च तारबीजं त्रपा ततः ॥ ५०० ॥
क्रोधबीजं धर्मकूटं कूटं कुन्दाख्यमेव च ।
ततो वैहायसीकूटं वायवीयकूटं ततः ॥ ५०१ ॥
भारुण्डाख्यं ततः कूटं दुर्ज्जयकालि तत्परम् ।
हट्टायुधधारिणि वज्रशरीरे ततः परम् ॥ ५०२ ॥

इष्टिबीजं सानुबीजं भारुडण्स्थोऽनलस्तदा ।
कालविध्वंसिनि ततः कुलचक्रराजेश्वरि ॥ ५०३ ॥
सर्वैश्च गुरुभिर्युक्तं स्त्रीबीजं नव चोद्धरेत् ।
फट्त्रयं वह्निजाया च दुर्ज्जयकालि तत्परम् ॥ ५०४ ॥

तार योगिनी वामाक्षियुक्तक्ष्वेड कला ब्लङ्कार के बाद 'डामरमुखि वज्रशरीरे' कहे । पश्चात् क्रोधबीज, फिर 'सन्तानकालि' तदनु फट्कार दो 'ठ' पुनः 'मन्थानकालि' फिर तार त्रपा क्रोधबीज धर्मकूट कुन्दकूट वैहायसीयकूट वायवीयकूट भारुण्डकूट के बाद 'दुर्जयकालि हट्टायुधधारिणि वज्रशरीरे' कहे । पुनः इष्टिबीज सानुबीज भारुण्डस्थ अनल कहे । ततः 'कालविध्वंसिनि कुलचक्रराजेश्वरि' कहने के बाद सभी गुरु स्वरों से युक्त नव स्त्री बीज कहे । तत्पश्चात् तीन फट् वह्निजाया के बाद 'दुर्जयकालि' कहे। (मन्त्र—ओं छ्रीं ग्रीं ब्लीं डामरमुखि वज्रशरीरे हूं सन्तानकालि फट् ठः ठः मन्थानकालि (सन्तान कालि) । ओं ह्रीं हूं रलहक्षसमहफ्रछ्रीं कहलश्रीं हल्क्षकमहस-ब्ग्रऊं क्षम्लकस्हरयब्रूं क्षहलीं दुर्जयकालि हट्टायुधधारिणि वज्रशरीरे रश्रीं रह्रीं क्षहलीं कालविध्वंसिनि कुलचक्रराजेश्वरि स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं स्त्रें स्त्रों स्त्रौं स्त्रः फट् फट् फट् स्वाहा दुर्जयकालि) ॥ ४९८-५०४ ॥

वाणीपाशकलावामकर्णमायारमास्मराः ।
क्रोधं घोराचाररौद्रे महाघोरवाडवेति ॥ ५०५ ॥
सन्धिङ्कृत्वा ततोऽग्निं च ग्रसद्वयमतः परम्।
महाबले महाचण्डयोगेश्वरि नमो द्विठः ॥ ५०६ ॥
कालकालि ततो वाणी चामुण्डा तदनन्तरम् ।
ततः पश्चाद्विरिञ्चिश्च महारुद्रान्तमस्तकः ॥ ५०७ ॥
ततः(परं) पयोबीजं वज्रकालि महाबले ।
धृतिबीजं ततः पश्चान्नारसिंहं ततः परम् ॥ ५०८ ॥
सद्यो महाप्रपञ्चरूपे रौषिकानलमित्यपि ।
पतयुग्मं फेरुमुखि ततः पश्चाच्छृणुष्व मे ॥ ५०९ ॥
योगिनी डाकिनी खेचरी भूचरी सुरूपिणी ।
तदनु चक्रसुन्दरि महाकालि तथापरम् ॥ ५१० ॥
कापालि तदनुस्मृत्य च मध्यं वह्निबीजकम् ।
कलाबिन्दुयुतं स्मृत्वा तान्तस्य च तथैव च ॥ ५११ ॥
मणिमेखला तदनु कहद्वयं ततः परम् ।
त्वां प्रपद्ये तुभ्यन्नमः स्वाहा वज्रकालि ततः ॥ ५१२ ॥

वाणी पाश कला वामकर्ण माया रमा स्मर क्रोध के बाद 'घोराचाररौद्रे महाघोर-वाडव' से 'अग्निं' को जोड़कर दो 'ग्रस' कहे । फिर 'महाबले महाचण्डयोगेश्वरि नमः' के बाद दो 'ठ' कहे । 'कालकालि' के बाद वाणी चामुण्डा तत्पश्चात् ब्रह्मा

महारुद्रन्तमस्तक के बाद पयोबीज कहे । 'वज्रकालि महाबले' के पश्चात् धृतिबीज नरसिंहबीज को कहकर 'सद्यो महाप्रपञ्चरूपे रौषिकानलं' कहने के बाद 'पत' को दो बार कहे । 'फेरुमुखि योगिनी डाकिनी खेचरी भूचरी सुरूपिणि' तदनु 'चक्रसुन्दरि महाकालि कापालि' का स्मरण कर कलाबिन्दुयुक्त वह्निबीजसहित मध्य का फिर उसी प्रकार तान्त का कथन कर मणिमेखला तदनु दो 'कह' के बाद 'त्वां प्रपद्ये तुभ्यं नमः स्वाहा वज्रकालि' कहना चाहिये । (मन्त्र—ऐं आं ईं ऊं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं घोराचाररौद्रे महाघोरवाडवाग्निं ग्रस ग्रस महाबले महाचण्डयोगेश्वरि नमः ठः ठः कालकालि । ऐं फ्रैं ब्रूं (महारुद्रान्तमस्तकपयोबीज =?) वं वज्रकालि महाबले क्ष्रौ क्ष्रौं सद्यो महाप्रपञ्चरूपे रौषिकानलं पत पत फेरुमुखि योगिनी डाकिनी खेचरी भूचरी-स्वरूपिणि चक्रसुन्दरि महाकालि कापालि रीं णीं (श्रीं) रक्ष्रां कह कह त्वां प्रपद्ये तुभ्यं नमः स्वाहा वज्रकालि) ॥ ५०५-५१२ ॥

तारमैधत्रपालक्ष्मीस्मरास्तथा शृणुष्व मे ।
ततः सिद्धियोनि महाराविणि तदनन्तरम् ॥ ५१३ ॥
ततः परमगुह्यातिगुह्यमङ्गले ततः परम् ।
विद्याकालि ततस्त्वष्टा लाङ्गूलं काकिनी ततः ॥ ५१४ ॥
उदुम्बरसुदशनौ चान्तस्थः कान्त एव च ।
नदवामकर्णयुक्तं रान्तस्थः काल एव च ॥ ५१५ ॥
असुरो योगिनी चैव धीवरी च स्वरूपिणी ।
तथैव शवरी पीवरी च तथा शृणु ॥ ५१६ ॥
चर्च्चिके भक्षिके तदनु रक्षिके तदनन्तरम् ।
हर्षबीजं ततः पश्चादहर्षं तदनन्तरम् ॥ ५१७ ॥
ठत्रयं फट्त्रयं चैव नमः स्वाहा ततः परम् ।
विद्याकालि...

तार मेधा त्रपा लक्ष्मी स्मर के बाद 'सिद्धयोनि महाराविणि परमगुह्यातिगुह्यमङ्गले' के बाद 'विद्याकालि' कहे । फिर त्वष्टा लाङ्गूल काकिनी उदुम्बर सुदशन अन्तस्थ-कान्त नदवामकर्णयुक्त रान्तस्थ काल असुर योगिनी के बाद 'धीवरीस्वरूपिणी' कहे । उसी प्रकार 'शवरी पीवरी चर्चिके भक्षिके रक्षिके' कहे । तदनन्तर हर्षबीज उसके बाद अहर्ष, फिर तीन ठ तीन फट् 'नमः स्वाहा विद्याकालि' कहना चाहिए । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धयोगिनि महाराविणि परमगुह्यातिगुह्यमङ्गले विद्याकालि ब्लां हफ्रीं फ्रीं भ्रीं स्क्रीं (अन्तस्थकान्त नद वामकर्ण) रछूं ज्रूं प्रीं छ्रीं धीवरीस्वरूपिणि शवरी पीवरी चर्चिके भक्षिके रक्षिके हें जां ठः ठः ठः फट् फट् फट् नमः स्वाहा विद्याकालि) ॥ ५१३-५१८ ॥

...ततः पश्चात्तारपाशकलास्तथा ॥ ५१८ ॥
वाणीभारुण्डकापाला ग्रीं स्त्रूं प्रैं म्लौं तथा ।

कान्तचान्तचकारान्ता वह्न्यारूढाश्च पार्वति ॥ ५१९ ॥
षष्ठस्वरसमायुक्ता नादबिन्दुविभूषिता ।
ममध्यं रेफबीजं तु कलाबीजसमन्वितम् ॥ ५२० ॥
चतुर्दशस्वरोपेतं यान्तं बिन्दुविभूषितम् ।
मौं बीजं तदनुस्मृत्य स्वाहा शक्तिकालि ततः॥ ५२१ ॥
तारं च फेत्कारीकूटं हृदयं तदनन्तरम् ।
चण्डातिचण्डे तदनु मायाकालि ततः परम् ॥ ५२२ ॥
कालवञ्चनि तदनु महाङ्कुशे ततः परम् ।
नन्दनाख्यं ततः कूटं पातालनाग चेत्यपि ॥ ५२३ ॥
वाहिनि गगनग्रासिनि ब्रह्माण्डनिष्पेषिणि ततः।
हं त्रयञ्च मनस्त्रयं क्रोधत्रयं ततः परम् ॥ ५२४ ॥
तारं माया क्रोधं चैव चामुण्डा डाकिनी ततः ।
महाचण्डवज्रिणि च भ्रमरि भ्रामरि ततः ॥ ५२५ ॥
महाशक्ति ततश्चक्रकर्त्तरी तदनन्तरम् ।
कुलार्णवचारिणि च फिङ्कारं फाङ्कारं ततः ॥ ५२६ ॥
फें फूं फौं समयेति विद्यागोपिनि तत्परम् ।
किरीटी ताण्डवी हंसी कूटत्रयमतः परम् ॥ ५२७ ॥
महाकालि ततः पश्चात् समयलाभं ततः परम्।
कुरुद्वन्द्वं ततो विद्यां प्रकाशयद्वयं ततः ॥ ५२८ ॥
सिद्धो माया चण्डबीजं धर्मबीजं तथा परम् ।
ह्रौं बीजं च जयोबीजं गौरीबीजं तथैव च ॥ ५२९ ॥
अस्त्रं च वह्निपत्नी च महाकालि ततः परम् ।

हे पार्वति ! तार पाश कला वाणी भारुण्ड कपाल ग्रीं स्त्रूं प्रैं म्लौं कान्त चान्त चकारान्त को वह्निबीज षष्ठस्वर तथा नादविन्दु से समन्वित कर कहे । मकार को रेफबीज कलाबीज से युक्त कहना चाहिये । बिन्दु से युक्त मान्त को चौदह स्वरों से युक्त करे । मौं बीज के बाद 'स्वाहा', फिर 'शक्तिकालि' कहे । तार फेत्कारीकूट हृदय के बाद 'चण्डातिचण्डे मायाकालि कालवञ्चनि महाङ्कुशे के पश्चात्..... (नन्दन-कूट)... कहे । फिर 'पातालनागवाहिनि गगनग्रासिनि ब्रह्माण्डनिष्पेषिणि' कहने के बाद तीन ह, तीन मन तीन क्रोध कहने के बाद तार माया क्रोध चामुण्डा डाकिनी कहे । तत्पश्चात् 'महाचण्डवज्रिणि भ्रमरि भ्रामरि महाशक्तिचक्रकर्त्तरि कुलार्णवचारिणि' के बाद फिङ्कार फाङ्कार फें फूं फौं कहे । 'समयविद्यागोपिनि' के बाद किरीटी ताण्डवी हंसी नामक तीन कूट के बाद 'महाकालि समयलाभं' कहना चाहिये । 'कुरु' को दो बार 'विद्यां' के बाद 'प्रकाशय' को दो बार कहे । फिर सिद्ध माया चण्डबीज धर्मबीज ह्रौं बीज जयोबीज गौरीबीज अस्त्र वह्निपत्नी के बाद 'महाकालि' कहे । (मन्त्र—ओं आं ईं ऐं प्रीं थ्रीं ग्रीं स्त्रूं प्रैं म्लौं खूं छूं टूं म्रीं खूं छूं टूं म्रीं रं रां रिं रीं रुं रूं रृं रॄं

रूल्र रूलृं रें रैं रों रौं मौं स्वाहा शक्तिकालि । ओं हसखफ्रें नमश्चण्डातिचण्डे मायाकालि कालवञ्चनि महाङ्कुशे... (नन्दनकूट)... पातालनागवाहिनि गगनग्रासिनि ब्रह्माण्ड निष्पेषिणि हं हं हं नमो नमो नमो हूं हूं हूं ओं ह्रीं हूं क्रैं ख्फ्रें महाचण्डवज्रिणि भ्रमरि भ्रामरि महाशक्तिचक्रकर्त्तरि कुलार्णवचारिणि फिं फां फें फूं फौं समयविद्यागोपिनि... (किरीटीकूट) म्लब्य्रमीं स्हक्ष्लमहज्रूं महाकालि समयलाभं कुरु कुरु विद्यां प्रकाशय प्रकाशय क्रां ह्रीं क्रौं क्रैं ह्रौं क्रं क्रः फट् स्वाहा महाकालि) ॥ ५१८-५३० ॥

वाग्भवश्च ततः पश्चात्परापरेति संवदेत् ॥ ५३० ॥
रहस्यसाधिके ततः कुलकालि ततः परम् ।
शाकिनी योगिनी चैव कामिनीह्रीरुषस्तथा ॥ ५३१ ॥
स्मरामृतं लाङ्गूलं च मस्थः क्षेत्रपाली ततः ।
बिन्दुद्वयेन संयुज्य त्र्यस्त्रं तत्र चाहरेत् ॥ ५३२ ॥
कुलकालि ततः पश्चात्तारमायास्मरास्तथा ।
क्रोधं च शाकिनी चैव परापरपरमेत्यपि ॥ ५३३ ॥
रहस्यकाली कुलक्रमपरम्पराप्रचारिणि ततः ।
भगवति नादकालि करालरूपिणि ततः ॥ ५३४ ॥
मनःकूटं शाकिनी च डाकिनी प्रलयस्तथा ।
फेत्कारीबीजं तदनु मम शत्रूनिति वदेत् ॥ ५३५ ॥
मर्दययुगलं चैव चूर्णययुग्ममेव च ।
पातयद्वन्द्वं नाशययुगं भक्षयद्वितयं तथा ॥ ५३६ ॥
खेचराख्यं महाकूटं पावित्राख्यं ततः परम् ।
कूटं गजघटाख्यं हि शृङ्खलाकूटमेव च ॥ ५३७ ॥
दण्डाख्यकूटं तदनु नवकोटि ततः परम् ।
कुलाकुलचक्रेश्वरि ततः पश्चाद्वदेत्सुधीः ॥ ५३८ ॥
सकलगुह्यानन्ततत्त्वधारिणि तदनन्तरम् ।
कूँ चूँ टूँ पूँ मां कृपय द्वितयं तथा ॥ ५३९ ॥
त्रपा क्रोधं शाकिनी च योगिनी कामिनी तथा ।
अस्त्रं च वह्निपत्नी च नादकालि ततः परम् ॥ ५४० ॥

वाग्भव बीज उसके बाद 'परापर' कहे । 'रहस्यसाधिके कुलकालि' के बाद शाकिनी योगिनी कामिनी ह्रीं क्रोध स्मर अमृत लाङ्गूल मस्थ दो बिन्दु से युक्त क्षेत्रपाली और तीन अस्त्र कहना चाहिये । 'कुलकालि' कहने के बाद तार माया स्मर क्रोध शाकिनी के बाद 'परापरपरमरहस्यकालि कुलक्रमपरम्पराप्रचारिणि भगवति नादकालि करालरूपिणि' के बाद मनःकूट शाकिनी डाकिनी प्रलय फेत्कारी बीज उसके बाद 'मम शत्रून्' कहे । 'मर्दय चूर्णय पातय नाशय भक्षय' को दो-दो बार तत्पश्चात् खेचर पावित्र गजघटा शृङ्खला एवं दण्डकूटों को कहने के पश्चात् विद्वान् 'नवकोटि-

कुलाकुलचक्रेश्वरि' कहे । उसके बाद 'सकलगुह्यानन्ततत्त्वधारिणि कूं चूं टूं तूं पूं मां' कहने पर फिर 'कृपय' को दो बार कहे । त्रपा क्रोध शाकिनी योगिनी कामिनी अस्त्र वह्निपत्नी के बाद 'नादकालि' कहे (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं परापररहस्यसाधिके कुलकालि फ्रें छ्रीं स्त्रीं ह्रीं हूं क्लीं ग्लूं हफ्रीं मक्षौः फट् फट् फट् कुलकालि । ओं ह्रीं क्लीं हूं फ्रें परापरपरमरहस्यकालि कुलक्रमपरम्पराप्रचारिणि भगवति नादकालि कराल-रूपिणि उलखलहक्षमखब्रूं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रीं हसखफ्रें मम शत्रून् मर्दय मर्दय चूर्णय चूर्णय पातय पातय नाशय नाशय भक्षय भक्षय सखक्लक्ष्मध्रयब्लीं उलकहलक्षक्रमध्रीं सहलक्षव्रठक्ष्रीं... (शृङ्खलाकूट)... (दण्डकूट)... नवकोटि कुलाकुलचक्रेश्वरि सकल-गुह्यानन्ततत्त्वधारिणि कूं चूं टूं तूं पूं मां कृपय कृपय ह्रीं हूं फ्रें छ्रीं स्त्रीं फट् स्वाहा नादकालि) ॥ ५३०-५४० ॥

तारं च शाकिनी चैव चतुरशीति तत्परम् ।
कोटिब्रह्माण्ड तदनु सृष्टिकारिणि तत्परम् ॥ ५४१ ॥
प्रज्वलज्ज्वलनलोचने वज्रसमदंष्ट्रायुधे ।
दुर्निरीक्ष्याकारे तदनु भगवति ततः परम् ॥ ५४२ ॥
मुण्डकालि ततः पश्चात् कहद्वन्द्वं तुरुद्वयम् ।
दमयुग्मं चटयुग्मं प्रचटयुगलं ततः ॥ ५४३ ॥
हरिहराख्यं तत्कूटं कूटं कूटाख्यमेव ।
पत्रकूटं ततः पश्चात् सर्वसिद्धिं देहि द्वयम् ॥ ५४४ ॥
सर्वैश्वर्य्यं तदनु दापययुगलं ततः ।
विद्युदुज्ज्वलजटे वै विकटसटे च ततः ॥ ५४५ ॥
महाविकटकटे च त्रपाकामक्रोधास्तथा ।
योगिनी कामिनी चैव शाकिनी हृदयं द्विठः॥ ५४६ ॥
मुण्डकालि...

तार शाकिनी के पश्चात् 'चतुरशीतिकोटिब्रह्माण्डसृष्टिकारिणि प्रज्वल ज्वलन-लोचने वज्रसमदंष्ट्रायुधे दुर्निरीक्ष्याकारे' के बाद 'भगवति मुण्डकालि' कहे । तत्पश्चात् 'कह तुरु दम चट प्रचट को दो-दो बार कहे । हरिहरकूट कूटकूट पत्रकूट के बाद 'सर्वसिद्धिं' कहे । फिर 'देहि' को दो बार कहने के पश्चात् 'दापय' को दो बार कहे । 'विद्युदुज्वलजटे विकटसटे महाविकटकटे' के पश्चात् त्रपा काम क्रोध योगिनी कामिनी शाकिनी हृदय दो 'ठ' के बाद 'मुण्डकालि' कहे । (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—ओं फ्रें चतुरशीतिकोटिब्रह्माण्डसृष्टिकारिणि प्रज्वल ज्वलनलोचने वज्रसमदंष्ट्रायुधे दुर्निरीक्ष्याकारे भगवति मुण्डमालि कह कह तुरु तुरु दम दम चट चट प्रचट प्रचट... (हरिहराख्यकूट कूटाख्यकूट)... (पत्रकूट)... सर्वसिद्धिं देहि देहि सर्वैश्वर्यं दापय दापय विद्युदुज्वलजटे विकटसटे महाविकटकटे ह्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें नमः ठः ठः मुण्डकालि) ॥ ५४१-५४७ ॥

...ततः पश्चात्तारं वाग्भव एव च।
पाशरमाकामत्रपामहाक्रोधास्ततः परम् ॥ ५४७ ॥
ततो दस्त्रस्तथा सह्फ्यूँ च चौंकारं क्वींकारं तथा।
धूमकालि ततः पश्चात्सर्वमेवेति तत्परम् ॥ ५४८ ॥
मे वशं च कुरुद्वन्द्वं पाहियुग्ममतः परम्।
जम्भिके करालिके ततः पूतिके घोणिके ततः॥ ५४९ ॥
खन्त्रयमस्त्रहृदये धूमकालि ततः परम्।
वाण्यङ्कुशौ शाकिनी च योगिनी काम एव च ॥ ५५० ॥
आज्ञाकालि ततः पश्चान्ममाज्ञां राजान इत्यपि।
ततः शिरसा धारयन्तु क्रोधमस्त्रशिरस्तथा ॥ ५५१ ॥
ततः परमाज्ञाकालि तारत्रपे तथैव च।
चण्डबीजं ड्रींकारं च ड्रैंकारं तिग्मकालि च ॥ ५५२ ॥
तिग्मरूपे तिग्मातितिग्मे भ्रमं मोचयेत्यपि।
स्वं प्रकाशय स्वाहा तिग्मकालि...

तार वाग्भव पाश रमा काम त्रपा महाक्रोध द्रस्त्र के बाद रह्फ्यूं चौंकार क्वींकार के बाद 'धूमकालि सर्वमेव मे वशं' कहे। 'कुरु और पाहि' को दो-दो बार कहे। इसके बाद 'जम्भिके करालिके पूतिके घोणिके' तीन खं अस्त्र हृदय के बाद 'धूमकालि' कहे। वाणी अङ्कुश शाकिनी योगिनी काम बीजों के बाद 'आज्ञाकालि' फिर 'ममाज्ञां राजानः शिरसा धारयन्तु' क्रोध अस्त्र शिर के बाद 'आज्ञाकालि' कहे। तार त्रपा चण्डबीज ड्रींकार ड्रैंकार के बाद 'तिग्मकालि तिग्मरूपे तिग्मातितिग्मे भ्रमं मोचय स्वं प्रकाशय स्वाहा तिग्मकालि' कहे। (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ऐं आं श्रीं क्लीं ह्रीं क्षूं ब्लीं स्हफ्यूं औं क्वीं धूमकालि सर्वमेव मे वशं कुरु कुरु पाहि पाहि जम्भिके करालिके पूतिके घोणिके खं खं खं फट् नमः धूमकालि। ऐं क्रौं फ्रें छ्रीं क्लीं आज्ञाकालि ममाज्ञां राजानः शिरसा धारयन्तु हूं फट् स्वाहा आज्ञाकालि। ओं ह्रीं क्रौं ड्रीं ड्रैं तिग्मकालि तिग्मरूपे तिग्मातितिग्मे भ्रमं मोचय स्वं प्रकाशय स्वाहा तिग्मकालि) ॥ ५४७-५५३ ॥

...ततः परम् ॥ ५५३ ॥
तारं वाणी त्रपा चैव योगिनी कामिनी तथा।
शाकिनी कमला कामक्रोधस्तथा महाकालि॥ ५५४ ॥
लेलिहानरसनाभयानके ततः परम्।
घोरतरदशनचर्वितब्रह्माण्डे ततः ॥ ५५५ ॥
चण्डयोगेश्वरीशक्तितत्त्वसहिते ततः।
गाँ जाँ डाँ दाँ राँ प्रचण्डचण्डिनि सद्योधने ततः॥ ५५६ ॥
महामारीसहायिनि भगवति भयानके।

चामुण्डा योगिनी ततो डाकिनी शाकिनी तथा॥ ५५७ ॥
भैरवीमातृगणमध्यगे तदनन्तरम् ।
जयद्वन्द्वं कहयुग्मं हसद्वयं ततः परम् ॥ ५५८ ॥
प्रहसयुगलं जम्भयुग्मं तुरुयुगं तथा ।
धावद्वयं श्मशानवासिनि तदनन्तरम् ॥ ५५९ ॥
शववाहिनि नरमांसभोजिनि ततः परम् ।
कङ्कालमालिनि ततः फेंकारत्रयमेव च ॥ ५६० ॥
तुभ्यं नमो नमः स्वाहा महारात्रिकालि ततः ।

तार वाणी त्रपा योगिनी कामिनी शाकिनी कमला काम क्रोधबीजों के बाद 'महाकालि लेलिहानरसनाभयानके' के पश्चात् 'घोरतरदशनचर्वितब्रह्माण्डे चण्ड-योगेश्वरीशक्तितत्त्वसहिते' के पश्चात् गां जां डां दां रां प्रचण्डचण्डिनि (सद्योधने) महामारीसहायिनि भगवति भयानके चामुण्डा योगिनी डाकिनी शाकिनी भैरवीमातृगण-मध्यगे' कहने के बाद 'जय कह हस प्रहस जम्भ तुरु धाव' को दो-दो बार कहना चाहिये । तदनन्तर 'श्मशानवासिनि शववाहिनि नरमांसमोजिनि कङ्कालमालिनि' के बाद तीन फ्रें 'तुभ्यं नमो नमः स्वाहा महारात्रि कालि' कहे । (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—ओं ऐं ह्रीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें श्रीं क्लीं हूं महाकालि लेलिहानरसनाभयानकेघोरतर-दशनचर्वितब्रह्माण्डे चण्डयोगेश्वरीशक्तितत्त्वसहिते गां जां डां दां रां प्रचण्डचण्डिनि सद्योधने महामारीसहायिनि भगवति भयानके चामुण्डायोगिनीडाकिनीभैरवीमातृगणमध्यगे जय जय कह कह हस हस प्रहस प्रहस जम्भ जम्भ तुरु तुरु धाव धाव श्मशान-वासिनि शववाहिनि नरमांसभोजिनि कङ्कालमालिनि फ्रें फ्रें फ्रें तुभ्यं नमो नमः स्वाहा महारात्रिकालि) ॥ ५५३-५६१ ॥

फेत्कारी च भगवति सङ्ग्रामकालि तत्परम् ॥ ५६१ ॥
सङ्ग्रामे जयमेवोक्त्वा देहियुग्मं वदेत्ततः ।
मां द्विषतो मम वशे कुरुद्वयं स्मरेत्सुधीः ॥ ५६२ ॥
पाँ पीं पूँ पौं ततश्च ज्वलद्वयं ततः परम् ।
प्रज्वलद्वितयं चैव विद्युत्केशि ततः परम् ॥ ५६३ ॥
पातालनयनि तदा ब्रह्माण्डोदरि तत्परम् ।
महोत्पातं प्रशमययुगं मायाक्रोधौ ततः ॥ ५६४ ॥
योगिनी कामिनी चैव शाकिनी हृदयं द्विठः ।
सङ्ग्रामकालि...

फेत्कारी बीज फिर 'भगवति सङ्ग्रामकालि सङ्ग्रामे जयमेव' कहकर 'देहि' को दो बार कहे । फिर 'मां द्विषतो मम वशे' कहने के बाद विद्वान् 'कुरु' का दो बार स्मरण करे । पां पीं पूं पैं पौं को कहकर 'ज्वल' और 'प्रज्वल' को दो-दो बार कहने के पश्चात् 'विद्युत्केशि पातालनयनि ब्रह्माण्डोदरि महोत्पातं' कहे । 'प्रशमय' को दो

बार कहने के बाद फिर माया क्रोध योगिनी कामिनी शाकिनी हृदय दो 'ठः' ततः 'सङ्ग्रामकालि' कहे। (मन्त्र इस प्रकार है—हसखफ्रें भगवति सङ्ग्रामकालि सङ्ग्रामे जयमेव देहि देहि मां द्विषतो मम वशे कुरु कुरु पां पीं पूं पैं पौं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल विद्युत्केशि पातालनयनि ब्रह्माण्डोदरि महोत्पातं प्रशमय प्रशमय ह्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें नमः ठः ठः सङ्ग्रामकालि) ॥ ५६१-५६५ ॥

...तदनु वाग्भवः शाकिनी तथा ॥ ५६५ ॥
योगिनी क्रोधः क्षेत्रपालीबीजं ततः परम् ।
नक्षत्रनरमुण्डेति मालालङ्कृतायै तदा ॥ ५६६ ॥
चतुर्दशभुवनसेवितपादपद्मा ङेन्ता ।
भगवत्यै शवकालिकायै ततः परं शृणु ॥ ५६७ ॥
यकारादिक्षकारान्ता वामकर्णविभूषिताः ।
नादबिन्दुसमायुक्ता नवबीजानि चोद्धरेत् ॥ ५६८ ॥
दुष्टग्रहनाशिन्यै च शुभफलदायिन्यै च ।
रुद्रासनायै तदनु सानुबीजं समाचरेत् ॥ ५६९ ॥
समेखलाजलं चैव हं खं वारत्रयं वदेत् ।
क्रोधत्रयं ठान्तत्रयं फट्त्रयं हृदयं द्विठः ॥ ५७० ॥
शवकालि ततः पश्चाद्वाणी त्रपा तथापरम् ।
सर्वदीर्घयुतं क्रञ्च नादबिन्दुसमन्वितम् ॥ ५७१ ॥
पूर्वसन्ध्यक्ष(रैर्ह्रीं)नं नादहीनं तथा प्रिये ।
क्रमेण षष्ठबीजानि वह्निस्थः क्षेत्रपस्तथा ॥ ५७२ ॥
वमदग्निमुखि ततः फेरुकोटिपरिवृते ।
विस्त्रस्तजटाभारे च भगवति तथैव च ॥ ५७३ ॥
नग्नकालि ततः पश्चाद्रक्ष पाहि द्वयं द्वयम् ।
परमशिवपर्य्यङ्कनिवासिनि तथोच्चरेत् ॥ ५७४ ॥
कतृतीयचतुर्थौ च वह्निसंस्थौ कलान्वितौ ।
एवं च पञ्चवर्गाणां बीजानां दश चाहरेत् ॥ ५७५ ॥
विकरालमूर्त्तिकतामुपहृत्येति तत्परम् ।
दर्शय क्रोधहृदयं नग्नकालि ततः परम् ॥ ५७६ ॥

वाग्भव शाकिनी योगिनी क्रोध क्षेत्रपाली बीजों के बाद 'नक्षत्रनरमुण्डमाला-लङ्कृतायै' कहे। 'चतुर्दशभुवनसेवितपादपद्मा' को चतुर्थ्यन्त कहे। 'भगवत्यै शव-कालिकायै' के बाद यकार से लेकर क्षकार तक नव बीजों को वामकर्ण नादविन्दु से युक्त कर उद्धृत करे। फिर 'दुष्टग्रहनाशिन्यै शुभफलदायिन्यै रुद्रासनायै' के बाद सानुबीज कहे। मेखला के सहित जलबीज फिर 'हं' और 'खं' को तीन-तीन बार कहे। तीन क्रोध तीन ठान्त तीन फट् हृदय और दो 'ठ' कहने के बाद 'शवकालि'

कहे । वाणी त्रपा समस्त दीर्घों एवं नादविन्दु से युक्त 'क्र' को कहे । हे प्रिये ! यह पूर्वसन्ध्यक्षरों तथा नाद से हीन भी हो । वह्नि के साथ क्षेत्रपाली को क्रम से छह बीजों (=दीर्घस्वरों) से युक्त कहे । 'वमदग्निमुखि फेरुकोटिपरिवृते विस्रस्तजटाभारे भगवति नग्नकालि' के बाद 'रक्ष' और 'पाहि' को दो-दो बार कहे । 'परमशिवपर्यङ्क-निवासिनि' का उच्चारण करे । इसी प्रकार पाँच वर्गों के दश बीजों को कहे । 'विकरालमूर्त्तिकतामुपहृत्य दर्शय' कहे । फिर क्रोध हृदय के बाद 'नग्नकालि' कहे । (मन्त्र—ऐं फ्रें छ्रीं हूं क्षौं नक्षत्रनरमुण्डमालालङ्कृतायै चतुर्दशभुवनसेवितपादपद्मायै भगवत्यै शवकालिकायै यूं रूं लूं वूं शूं षूं सूं हूं क्षूं दुष्टग्रहनाशिन्यै शुभफलदायिन्यै रुद्रासनायै रह्रीं रयक्ष्रीं हं हं हं खं खं खं हूं हूं हूं उं उं उं फट् फट् फट् नम: ठ: ठ: शवकालि । ऐं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रू क्रें क्रैं क्रों क्रौं क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं क्ष्र: वमदग्निमुवि फेरुकोटिपरिवृते विस्रस्तजटाभारे भगवति नग्नकालि रक्ष रक्ष पाहि पाहि परमशिव-पर्यङ्कनिवासिनि ग्री घ्रीं ज्रीं झीं ड्रीं ढ्रीं द्रीं ध्रीं ब्रीं भ्रीं विकरालमूर्त्तितामुपहृत्य दर्शय हूं नम: स्वाहा नग्नकालि) ॥ ५६५-५७६ ॥

पाशाङ्कुशवाग्भवाश्च प्रेतबीजं तथापरम् ।
सर्गहीनं प्रेतबीजं त्रस्थं नादकलान्वितम् ॥ ५७७ ॥
आनन्दबीजं तदनु डूङ्कारं त्रिकुटा तत: ।
व्नैं रुधिरकालिकायै निपीतेति स्मरेत्तत: ॥ ५७८ ॥
बालनररुधिरायै त्वगस्थिचर्म्मा तत: परम् ।
वशिष्टायै महाश्मशानधावनप्रचलित ॥ ५७९ ॥
पिङ्गजटाभारायै च नारसिंहं तत: परम् ।
थ्रौं च्रौं फ्रौं खूौं ममाभीष्टसिद्धिं तत: ॥ ५८० ॥
देहिद्वन्द्वं वितरयुगलं क्रोधमेव च ।
डाकिनि राकिनि चैव शाकिनि काकिनि तथा॥ ५८१ ॥
लाकिनि हाकिनि चैव सद्यो धनानि चोद्धरेत् ।
नररुधिरं च तत: पिबद्वयं तत: स्मृतम् ॥ ५८२ ॥
महामांसं खाद खाद वाग्भवं तारमेव च ।
रमात्रपाकामक्रोधा: शाकिनी योगिनी तत: ॥ ५८३ ॥
कामिन्यस्त्रं द्विठश्चैव रुधिरकालि तत्परम् ।
कालीबीजं करङ्कधारिणि तदनन्तरम् ॥ ५८४ ॥
कङ्कालकालि तदनु प्रसीदयुगलं तत: ।
विद्यामावाहयामि तवाज्ञया तत: परम् ॥ ५८५ ॥
समागत्य मयि चिरं तिष्ठन्तु द्विठ एव च ।
कङ्कालकालि...

पाश अङ्कुश वाग्भव प्रेतबीज (वि)सर्गहीन प्रेतबीज नाद और कला से युक्त त्रस्थ

(=नृ अस्थि = मश) आनन्दबीज उसके बाद डूङ्कार फिर त्रिकूटा ब्नैं के बाद 'रुधिरकालिकायै निपीतबालनररुधिरायै त्वगस्थिचर्मा' के बाद 'वशिष्टायै महाश्मशान-धावनप्रचलितपिङ्गजटाभारायै' के बाद नारसिंह बीज फिर द्रौं च्रौं फ्रौं ख्रौं कहे । 'ममाभीष्टसिद्धिं' कहने के बाद 'देहि' और वितर' को दो-दो बार कहे । क्रोधबीज के बाद 'डाकिनि राकिनि शाकिनि काकिनि लाकिनि हाकिनि (सद्योधने) नररुधिरं कहने के बाद 'पिब' को दो बार कहे । फिर 'महामांसं खाद खाद' के पश्चात् वाग्भव तार रमा त्रपा काम क्रोध शाकिनी योगिनी कामिनी अस्त्र दो 'ठः' के बाद 'रुधिरकालि' कहे । कालीबीज 'करङ्कधारिणि' उसके बाद 'कङ्कालकालि' उसके बाद 'प्रसीद' को दो बार कहे । 'विद्यामावाहयामि तवाज्ञया' के बाद 'समागत्य मयि चिरं तिष्ठतु' कहने के अनन्तर दो 'ठः कङ्कालकालि' कहे । (मन्त्र—आं क्रों ऐं स्हौः स्हौं (मशं?) भ्रूं डूं ल्यूं ब्नैं रुधिरकालिकायै निपीतबालनररुधिरायै त्वगस्थिचर्मावशिष्टायै महाश्मशानधावन-प्रचलितपिङ्गजटाभारायै क्ष्रौं ध्रौं च्रौं फ्रौं ख्रौं ममाभीष्टसिद्धिं देहि देहि वितर वितर डूं डाकिनि राकिनि शाकिनि काकिनि लाकिनि हाकिनि (सद्योधने) नररुधिरं पिब पिब महामांसं खाद खाद ऐं ओं श्रीं ह्रीं क्लीं हूं फ्रें छ्रीं स्त्रीं फट् ठः ठः रुधिरकालि । क्रीं करङ्कधारिणि कङ्कालकालि प्रसीद प्रसीद विद्यामावाहयामि तवाज्ञया समागत्य मयि चिरं तिष्ठतु ठः ठः कङ्कालकालि) ॥ ५७७-५८६ ॥

...तदनु तारवाणीरमास्तथा ॥ ५८६ ॥
पाशकर्णत्रपाकामक्रोधशाकिन्य एव च ।
अतिचामुण्डा क्लीं चैव भगवति ततः परम् ॥ ५८७ ॥
भयङ्करकालि ततस्त्रैलोक्यदुर्निरीक्ष्य च ।
रूपे तदनु सम्भाष्य नवकोटि भैरवी च ॥ ५८८ ॥
ततश्चामुण्डाशतकोटिपरिवृते ततः परम् ।
तदनु मम द्विषतो हन मथ द्वयं द्वयम् ॥ ५८९ ॥
पच युग्मं विद्रावय युगं पातय चेत्यपि ।
निःशेषय युगं चोक्त्वा सानुबीजं ततः परम् ॥ ५९० ॥
सर्वदीर्घयुतेनैव पूर्वसन्ध्यक्षरे हीनम् ।
बिन्दुसर्गविहीनं च ततश्च हृदयास्त्रके ॥ ५९१ ॥
भयङ्करकालि...

तार वाणी रमा पाश कर्ण त्रपा काम क्रोध शाकिनी अतिचामुण्डा क्लीं के बाद 'भगवति भयङ्करकालि' कहे । फिर 'त्रैलोक्यदुर्निरीक्ष्यरूपे' कह कर 'नवकोटिभैरवी-चामुण्डाशतकोटिपरिवृते' के पश्चात् 'मम द्विषतो' कहकर 'हन मथ पच विद्रावय पातय निःशेषय' को दो-दो बार कहने के पश्चात् समस्त दीर्घ से युक्त पूर्वसन्ध्यक्षरों से हीन विन्दु और विसर्ग से हीन सानु बीच कहे । तत्पश्चात् हृदय और अस्त्र कहे । फिर 'भयङ्करकालि' कहे । (मन्त्र—ओं ऐं श्रीं आं ऊं ह्रीं क्लीं हूं फ्रें (क्रैं?) क्लीं

भगवति भयङ्करकालि त्रैलोक्यदुर्निरीक्ष्यरूपे नवकोटिभैरवीचामुण्डाशतकोटिपरिवृते मम द्विषतो हन हन मथ मथ पच पच विद्रावय विद्रावय पातय पातय निःशेषय निःशेषय रह्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं नमः फट् भयङ्करकालि) ॥ ५८६-५९२ ॥

...ततस्तारत्रपारमास्मराः ।
योगिनी कामिनी चैव शाकिनी भस्मली तथा ॥ ५९२ ॥
पाशहीनं भस्मबीजं षष्ठस्वरविभूषितम् ।
तदेव वाग्भवयुतं ततः पश्चाद्विनिर्द्दिशेत् ॥ ५९३ ॥
वह्निः पान्तं तथा वान्तं चतुर्दशस्वरैर्युतः ।
सबिन्दुं बीजमुच्चार्य्य कर्णिका तदनन्तरम् ॥ ५९४ ॥
पपञ्चमं च रेफस्थं मेखलाबीजमेव च ।
मेखला च ततः पश्चाद्वह्निपत्नी ततः परम् ॥ ५९५ ॥
फेरुकालि तदन्ते च...

तार त्रपा रमा स्मर योगिनी कामिनी शाकिनी भस्मली (=भूतिबीज?) पाशहीन एवं षष्ठस्वरविभूषित भस्मबीज वही (=भस्मबीज) वाग्भव से युक्त कर कहना चाहिये । वह्नि को चौदह स्वरों तथा पान्त वान्त को बिन्दु से युक्त उच्चारित कर कर्णिका बीज को कहना चाहिये । पवर्ग के पञ्चम वर्ण को रेफ युक्त फिर मेखलाबीज फिर वह्निपत्नी के बाद 'फेरुकालि' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ध्रीं स्त्रीं फ्रें (त्रृं टूं टें?) रं रां रिं रीं रुं रूं रृं रॄं रें रैं रों रौं रं रः फं शं क्षरह्रीं म्ररक्ष्रीं रक्ष्रीं स्वाहा फेरुकालि) ॥ ५९२-५९६ ॥

...वाणीक्रोधौ ततः परम् ।
प्रचण्डे चाक्षिवितते विकटकालि ततः परम् ॥ ५९६ ॥
फाँ फीं फूँ मुञ्जयुग्मं वलायुग्मं ततः परम् ।
त्रुटयुग्मं हृदयं च द्विठो विकटकालि ततः ॥ ५९७ ॥
जयक्रोधौ आये माये तायेे प्रचण्डचण्डे वै ।
रक्षिणि भक्षिणि चैव दक्षिणि द्विठ एव च ॥ ५९८ ॥
करालकालि तदनु प्रणवः शाकिनी तथा ।
सर्वाभयप्रदे चैव सर्वसम्पत्प्रदे तथा ॥ ५९९ ॥
चटिनि वटिनि चैव कटिनि च स्फुरद्वयम् ।
प्रस्फुरयुगलं चैव ग्राँ ग्रीं ग्रूँ चैव ग्रौं ग्रः नमः स्वाहा ॥ ६०० ॥

वाणी क्रोध के बाद 'प्रचण्डे अक्षिवितते विकटकालि फां फीं फूं के बाद 'मुञ्ज' 'बला त्रुट' को दो-दो बार इसके बाद हृदय दो 'ठ' फिर 'विकटककालि' कहे । जय क्रोध के पश्चात् 'आये माये ताये प्रचण्डचण्डे रक्षिणि भक्षिणि दक्षिणि' के बाद दो 'ठ' । 'करालकालि' के बाद प्रणव शाकिनी बीज फिर 'सर्वाभयप्रदे सर्वसम्पत्प्रदे चटिनि वटिनि कटिनि' के बाद 'स्फुट प्रस्फुर' को दो-दो बार फिर 'ग्रां ग्रीं ग्रूं ग्रौं ग्रः

नमः स्वाहा' कहे । (मन्त्र इस प्रकार है—ऐं हूं प्रचण्डाक्षिवितते विकटकालि फां फीं फूं रहैं रहैं स्कीः स्कीः त्रुट त्रुट नमः ठः ठः करालकालि । ओं फ्रें सर्वाभयप्रदे सर्वसम्पत्प्रदे चटिनि वटिनि कटिनि स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर ग्रां ग्रीं ग्रूं ग्रौं ग्रः नमः स्वाहा) ॥ ५९६-६०० ॥

तथा शाकिनी डाकिनी चैव तारं वाणी ततः ।
पाशाङ्कुशकालिकाश्च रमामायास्मरास्तथा ॥ ६०१ ॥
क्रोधं च योगिनी चैव कामिनी शाकिनी तथा ।
ध्रींकारं च त्रिशक्तिं च क्षमा कुष्माण्डी तत्परम् ॥ ६०२ ॥
घोरघोरतरकालि ब्रह्माण्डबर्हिणि ततः ।
निर्गतमस्तके त(था) जटाविधूननेत्यपि ॥ ६०३ ॥
चकिततपोलोके ज्वालामालिनि तत्परम् ।
सम्मोहिनि संहारिणि सन्तारिणि ततः परम् ॥ ६०४ ॥
क्लां क्लों क्लूँ चोक्त्वा गृह्ण खादय युगं युगम् ।
भक्षद्वयं ततः सिद्धिं देहिद्वयं ततः परम् ॥ ६०५ ॥
मम शत्रूनिति स्मृत्य नाशययुगलं ततः ।
मथयुग्मं विद्रावय युगलं तदनन्तरम् ॥ ६०६ ॥
मारययुगं स्तम्भययुगं जम्भययुगलं ततः ।
स्फोटययुगं विध्वंसययुगलं परिकीर्त्तितम् ॥ ६०७ ॥
उच्चाटययुगं चापि हर तुरु युगं युगम् ।
दमयुग्मं मर्दयुग्मं भस्मीकुरु युगं तथा ॥ ६०८ ॥
सर्वभूतभयङ्करि सर्वशत्रुक्षयङ्करि ।

शाकिनी डाकिनी तार वाणी पाश अङ्कुश काली रमा माया स्मर क्रोध योगिनी कामिनी शाकिनी के बाद ध्रींकार त्रिशक्ति क्षमा कुष्माण्डी के पश्चात् 'घोरघोरतरकालि ब्रह्माण्डबर्हिणि निर्गतमस्तके जटाविधूननचकिततपोलोके ज्वालामालिनि सम्मोहिनि संहारिणि सन्तारिणि' के बाद 'क्लां क्लीं क्लूं बलिं' कहकर 'गृह्ण खादय भक्ष को दो-दो बार कहे । 'सिद्धिं' के पश्चात् 'देहि' को दो बार फिर 'मम शत्रून्' कहकर 'नाशय मथ विद्रावय मारय स्तम्भय जम्भय स्फोटय विध्वंसय उच्चाटय हर तुरु दम मर्दय भस्मीकुरु' को दो-दो बार कहे । 'सर्वभूतभयङ्करि सर्वशत्रुक्षयङ्करि' के बाद शाकिनी डाकिनी को कहे । (मन्त्र—फ्रें ख्फ्रें ओं ऐं आं क्रों क्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें ध्रीं क्रूं श्रूं क्रौं घोरघोरतरकालि ब्रह्माण्डबर्हिणि निर्गतमस्तके जटाविधूनन-चकिततपोलोके ज्वालामालिनि सम्मोहिनि संहारिणि सन्तारिणि क्लां क्लीं क्लूं बलिं गृह्ण गृह्ण खादय खादय भक्ष भक्ष सिद्धिं देहि मारय स्तम्भय स्तम्भय जम्भय जम्भय स्फोटय स्फोटय विध्वसय विध्वंसय उच्चाटय उच्चाटय हर हर तुरु तुरु दम दम मर्द मर्द भस्मीकुरु भस्मीकुरु सर्वभूतभयङ्करि सर्वशत्रुक्षयङ्करि) ॥ ६०१-६०९ ॥

शाकिनी डाकिनी चैव प्रलयः फेत्कारी तथा॥ ६०९ ॥
ततः सर्वजनसर्वेन्द्रियहारिणि तत्परम् ।
त्रिभुवनमारिणि च संसारतारिणि ततः ॥ ६१० ॥
स्फ्रें स्फ्रौं ज्रौं क्ष्रौं चैव म्लैं क्लीं व्लीं तथा ।
श्रीं प्रसीद भगवति नमः स्वाहा ततः परम् ॥ ६११ ॥
माया क्रोधश्च कामश्च योगिनी तदन्तरम् ।
घोरघोरतरकालि ततो नु भुवनेश्वरी ॥ ६१२ ॥
शाकिनी चाङ्कुशं चैवामृतं योगिनी तथा ।
कामिनीक्रोधभूताश्च डाकिनी प्रलयस्तथा ॥ ६१३ ॥
फेत्कारी चामुण्डा चैव प्रेतबीजं ततः परम् ।
अस्त्रं शिरः कामकलाकालि ततः परं शृणु ॥ ६१४ ॥
डाकिनी सानुबीजं च तुङ्गश्चूडा ततः परम् ।
मणिमेखलाबलिजं चैव जलं च तदनन्तरम् ॥ ६१५ ॥
सभोगोऽस्त्रं कामकलाकालि...

शाकिनि डाकिनि प्रलय फेत्कारी का उच्चारण करने के बाद 'सर्वजनसर्वेन्द्रिय-हारिणि' कहे, उसके बाद 'त्रिभुवनमारिणि संसारतारिणि' कहने के पश्चात् स्फ्रें स्फ्रों ज्रौं क्ष्रौं म्लैं क्लीं ब्लीं श्रीं प्रसीद भगवति नमः स्वाहा' कहना चाहिये । माया क्रोध काम योगिनी बीजों का उच्चारण करने के बाद 'घोरघोरतरकालि' का उच्चारण करना चाहिए । उसके बाद भुवनेश्वरी शाकिनी अङ्कुश अमृत योगिनी कामिनी क्रोध भूत डाकिनी प्रलय फेत्कारी चामुण्डा प्रेतबीज कहकर उसके बाद अस्त्र शिर 'कामकला-कालि' कहे । उसके बाद डाकिनी सानुबीज तुङ्ग चूडामणि मेखला बलिज जल कहना चाहिए । तदनन्तर भोग अस्त्र 'कामकलाकालि' कहना चाहिये । (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—फ्रें ख्फ्रें हसफ्रीं हसख्फ्रें सर्वजनसर्वेन्द्रियहारिणि त्रिभुवन-मारिणि संसारतारिणि स्फ्रें स्फ्रों ज्रौं क्ष्रौं म्लैं क्लीं ब्लीं श्रीं प्रसीद भगवति नमः स्वाहा । ह्रीं हूं क्लीं छ्रीं घोरघोरतरकालि ह्रीं फ्रें क्रों ग्लूं छ्रीं स्त्रीं हूं स्फ्रों ख्फ्रें हसफ्रीं हसखफ्रें क्रैं स्हौः फट् स्वाहा कामकलाकालि ख्फ्रें रह्रीं रज्रीं रक्रीं रक्ष्रीं रछ्रीं यहसखफ्रीं फट् कामकलाकालि) ॥ ६०९-६१६ ॥

...तथापरं च रुट् ।
अस्त्रं च शाकिनी चैव कामकलाकालिका च॥ ६१६ ॥
ङेऽन्ता नमः शिरः पश्चात्कामकलाकालि ततः।
तारं वाणी योगिनी च शाकिनी स्मर एव च॥ ६१७ ॥
कामिनीभूतरुषश्चैव क्रीं कामकलाकालि ततः ।
अङ्कुशं भूतबीजं च शाकिनी डाकिनी ततः ॥ ६१८ ॥
क्रोधं कामकलाकालि मन्मथः कालिका ततः ।

क्रोधाङ्कुशौ तथा भूतं कामकलाकालि ततः ॥ ६१९ ॥
भूताङ्कुशौ क्रोधबीजं काली स्मरः शिरस्तथा।
ततः कामकलाकालि सम्बोधनपदं ततः ॥ ६२० ॥
ततः सर्वशक्तिमयशरीरे तदनन्तरम् ।
ततः सर्वमन्त्रमयविग्रहे तदनन्तरम् ॥ ६२१ ॥
महासौम्यमहाघोररूपधारिणि तत्परम् ।
भगवति कामकलाकालि सम्बोधनपदम् ॥ ६२२ ॥
हरपत्नी हरिजाया मन्मथो वाग्भवस्तथा ।
पाशाङ्कुशक्रोधाश्चैव योगिनी कामिनी ततः॥ ६२३ ॥
शाकिनी डाकिनी चैव चामुण्डा तत एव हि।
यक्षबीजं मेखला च पयःसानू ततः परम् ॥ ६२४ ॥
भासाख्यकूटं तदनु कूटं वाराहिकं ततः ।
अश्वमेधं ततः कूटं कूटं च शाम्भवं ततः ॥ ६२५ ॥
पाशुपतं ततः कूटं क्रोधत्रयं ततः परम् ।
अस्त्रद्वयं हृदयं च वह्निजाया ततः परम् ॥ ६२६ ॥
इति ते कथितो देवि प्राणायुताक्षरी मया ।

क्रोध अस्त्र शाकिनी चतुर्थ्यन्त कामकलाकालिका 'नमः' शिरः के बाद 'कामकलाकालि' कहे । उसके बाद तार वाणी योगिनी शाकिनी स्मर कामिनी भूत क्रोध 'क्रीं' उसके बाद 'कामकलाकालि' कहे, फिर अङ्कुश भूतबीज शाकिनी डाकिनी क्रोध के पश्चात् 'कामकलाकालि' कहकर फिर मन्मथ कालिका क्रोध अङ्कुश भूत कहे, फिर 'कामकलाकालि' कहना चाहिए । तत्पश्चात् भूत अङ्कुश क्रोधबीज काली स्मर शिर, उसके पश्चात् 'कामकलाकालि' सम्बोधनपद कहना चाहिए । तत्पश्चात् 'सर्वशक्तिमयशरीरे' पुनः 'सर्वमन्त्रमयविग्रहे' कहना चाहिये । इसके बाद 'महासौम्य-महाघोररूपधारिणि' के बाद 'भगवति कामकलाकालि' सम्बोधन कहना चाहिये । इसके बाद हरपत्नी हरिजाया मन्मथ वाग्भव पाश अङ्कुश क्रोध योगिनी कामिनी शाकिनी डाकिनी चामुण्डा यक्षबीज मेखला पय सानु कहने के बाद भासाकूट वाराहीकूट अश्वमेधकूट शाम्भवकूट पाशुपतकूट कहकर फिर क्रोधत्रय अस्त्रद्वय हृदय और वह्निजाया कहना चाहिये । (मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है— हूं फट् फ्रें कामकलाकाल्यै नमः स्वाहा कामकलाकालि क्रों स्फ्रों फ्रें ख्फ्रें हूं कामकला-कालि । क्लीं क्रीं हूं क्रों स्फ्रों कामकलाकालि स्फ्रों क्रों हूं क्रीं क्लीं स्वाहा कामकला-कालि सर्वशक्तिमयशरीरे सर्वमन्त्रमयविग्रहे महासौम्यमहाघोररूपधारिणि भगवति कामकलाकालि क्रः श्रीं क्लीं ऐं आं क्रों हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें क्रैं स्कौं रक्ष्रीं वं रह्लीं क्षह्लम्लव्य्रऊँ म्लक्षकसहह्रूं ह्रस्लहसकह्लीं स्हजहलक्षम्लवनऊँ सग्लक्षमहरह्रूं हूं हूं हूं फट् फट् नमः स्वाहा) ॥ ६१६-६२७ ॥

[कामकलाकाल्याः प्राणायुताक्षरी मन्त्रः]

ओं ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें क्रों क्षौं आं स्फ्रों स्वाहा कामकलाकालि, ह्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रीं ठः ठः दक्षिणकालिके, ऐं क्रीं ह्रीं हूं स्त्रीं फ्रें स्त्रीं ख्फ्रें भद्रकालि हूं हूं फट् फट् नमः स्वाहा भद्रकालि, ओं ह्रीं ह्रीं हूं हूं भगवति श्मशानकालि नरकङ्कालमालाधारिणि ह्रीं क्रीं कुणपभोजिनि फ्रें फ्रें स्वाहा श्मशानकालि, क्रीं हूं ह्रीं स्त्रीं श्रीं क्लीं फट् स्वाहा कालकालि, ओं फ्रें सिद्धिकरालि ह्रीं छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नमः स्वाहा गुह्यकालि, ओं ओं हूं ह्रीं फ्रें छ्रीं स्त्रीं श्रीं क्रों नमो धनकाल्यै विकरालरूपिणि धनं देहि देहि दापय दापय क्षं क्षां क्षिं क्षीं क्षुं क्षूं क्षृं क्षॄं क्ष्लृं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षः क्रों क्रोः आं ह्रीं ह्रीं हूं हूं नमो नमः फट् स्वाहा धनकालिके, ओं ऐं क्लीं ह्रीं हूं सिद्धिकाल्यै नमः सिद्धिकालि, ह्रीं चण्डाट्टहासनि जगद्ग्रसनकारिणि नरमुण्डमालिनि चण्डकालिके क्लीं श्रीं हूं फ्रें स्त्रीं छ्रीं फट् फट् स्वाहा चण्डकालिके नमः कमलवासिन्यै स्वाहालक्ष्मि ओं श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः महालक्ष्मि, ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा अन्नपूर्णे, ओं ह्रीं हूं उत्तिष्ठपुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितं यदि शक्यमशक्यं वा क्रोधदुर्गे भगवति शमय स्वाहा हूं ह्रीं ओं, वनदुर्गे ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोरघोरतरतनुरूपे चट चट प्रचट प्रचट कह कह रम रम बन्ध बन्ध घातय घातय हूं फट् विजयाघोरे, ह्रीं पद्मावति स्वाहा पद्मावति, महिषमर्दिनि स्वाहा महिषमर्दिनि, ओं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा जयदुर्गे, ओं ह्रीं दुं दुर्गायै स्वाहा, ऐं ह्रीं श्रीं ओं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वग्रहवशङ्करि सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वजनमनोहरि सर्वमुखरञ्जिनि सर्वराजवशङ्करि सर्वलोकममुं मे वशमानय स्वाहा, राजमातङ्गि उच्छिष्टमातङ्गिनि हूं ह्रीं ओं क्लीं स्वाहा उच्छिष्टमातङ्गि, उच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः ठः उच्छिष्टचाण्डालिनि, ओं ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां मुखं वाचं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशय ह्लीं ओं स्वाहा बगले, ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं धनलक्ष्मि ओं ह्रीं ऐं ह्रीं ओं सरस्वत्यै नमः सरस्वति, आं ह्रीं हूं भुवनेश्वरि, ओं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं आं अश्वारूढायै फट् फट् स्वाहा अश्वारूढे, ओं ऐं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ऐं ह्रीं स्वाहा नित्यक्लिन्ने । स्त्रीं क्षमकलह्रहसव्यूं... (बालाकूट)... (बगलाकूट)... (त्वरिताकूट) जय भैरवि श्रीं ह्रीं ऐं ब्लूं ग्लौः अं आं इं राजदेवि राजलक्ष्मि ग्लं ग्लां ग्लिं ग्लीं ग्लुं ग्लूं ग्लृं ग्लॄं ग्लॢं ग्लें ग्लैं ग्लों ग्लौं ग्लः क्लीं भ्रीं ध्रीं ऐं ह्रीं क्लीं पौं राजराजेश्वरि ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्टग्रहं ग्रस स्वाहा शूलिनि, ह्रीं महाचण्डयोगेश्वरि ध्रीं थ्रीं प्रीं फट् फट् फट् फट् फट् जय महाचण्ड-योगेश्वरि, श्रीं ह्रीं क्लीं प्लूं ऐं ह्रीं क्लीं पौं क्षीं क्लीं सिद्धिलक्ष्म्यै नमः क्लीं पौं ह्रीं ऐं राज्यसिद्धिलक्ष्मि ओं क्रः हूं आं क्रों स्त्रीं हूं क्षौं ह्रां फट्... (त्वरिताकूट)... (नक्षत्र-कूट)... सकहलमक्षखव्रूं... (ग्रहकूट)... म्लकह्लक्षरस्त्रीं... (काम्यकूट)... यम्लव्रीं... (पार्श्वकूट)... (कामकूट)... ग्लक्षकमह्लव्र्यऊं ह्लह्लव्य्रकऊं मफ्रलहलहखफ्रूं म्लव्य्रवऊं...

(शङ्खकूट)... म्लक्षकसहहूं क्षम्लब्रसहस्हक्षक्लस्त्रीं रक्षलह्मसहकब्रूं... (मत्स्यकूट)... (त्रिशूलकूट)... झसखग्रमऊं ह्लक्ष्मली ह्रीं ह्रीं हूं क्लीं स्त्रीं ऐं क्रौं छ्रीं फ्रें क्रीं ग्लक्षकमह्लव्य्रऊं हूं अघोरे सिद्धिं मे देहि दापय स्वाहा अघोरे, ओं नमश्चामुण्डे करङ्किणि करङ्कमालाधारिणि किं किं विलम्बसे भगवति, शुष्कानिनि खं खं अन्त्रकरावनद्धे भो भो वल्ग वल्ग कृष्णभुजङ्गवेष्टिततनुलम्बकपाले हृष्ट हृष्ट हट्ट हट्ट पत पत पताकाहस्ते ज्वल ज्वल ज्वालामुखि अनलनखखट्वाङ्गधारिणि हाहा चट्ट चट्ट हूं हूं अट्टाट्टहासिनि उड्ड उड्ड वेतालमुखि अकि अकि स्फुलिङ्गपिङ्गलाक्षि चल चल चालय चालय करङ्कमालिनि नमोऽस्तु ते स्वाहा विश्वलक्ष्मि, ओं ह्रीं क्ष्रीं द्रीं शीं क्रीं हूं फट् यन्त्रप्रमथिनि ख्फ्रें ल्रीं ज्रीं क्रीं ओं ह्रीं फ्रें चण्डयोगेश्वरि कालि फ्रें नमः चण्डयोगेश्वरि, ह्रीं हूं फट् महाचण्डभैरवि ह्रीं हूं फट् स्वाहा महाचण्डभैरवि, ऐं ह्रीं क्लीं फ्रें ऐं ह्रीं श्रीं त्रैलोक्यविजयायै नमः स्वाहा त्रैलोक्यविजये, ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हौं जयलक्ष्मि युद्धे मे विजयं देहि हौं आं क्रों फट् फट् फट् स्वाहा जय लक्ष्मि । ...(अतिचण्ड बीज)... महाप्रचण्डभैरवि हूं फ्रों? (टकारयुक्त अतिचण्ड बीज) फ्रटं हम्लब्रीं बफ्रटं ब्रकम्लब्लक्लऊं रफ्रटं महामन्त्रेश्वरि, ओं ह्रीं श्रीं क्लीं हौं हूं वज्रप्रस्तारिणि ठः ठः वज्रप्रस्तारिणि, ओं ह्रीं नमः परमभीषणे हूं हूं नरकङ्कालमालिनि फ्रें फ्रें कात्यायनि व्याघ्रचर्मावृतकटि क्रीं क्रीं श्मशानचारिणि नृत्य नृत्य गाय गाय हस हस हूं हूङ्कारनादिनि क्रों क्रों शववाहिनि मां रक्ष रक्ष फट् फट् हूं हूं नमः स्वाहा कात्यायनि, ऐं ह्रीं श्रीं षैं सैं फैं रैं स्हौः षां मीं धूं ह्रां (?) ह्रीं हूं ...(योगिनीकूटौ)... हसखफ्रें... शिवशक्तिसमरसचण्डकापालेश्वरि हूं नमश्चण्डकापालेश्वरि, ऐं क्रीं क्लीं पौं सखक्लक्ष्मध्रयब्लीं क्लीं भ्रीं ध्रीं क्लीं भ्रीं ध्रीं महासुवर्णकूटेश्वरि कमलक्षसहब्लूं श्रीं ह्रीं ऐं नमः स्वाहा सुवर्णकूटेश्वरि ऐं ह्रीं श्रीं आं ग्लीं ईं आं अं नमो भगवति वार्तालि वार्तालि वाराहि वाराहि वराहमुखि ऐं ग्लूँ अन्धे अन्धिनि नमः रुन्धे रुन्धिनि नमः जम्भे जम्भिनि नमः मोहे मोहिनि नमः स्तम्भे स्तम्भिनि नमः सर्वदुष्टे प्रदुष्टानां सर्ववाक्चित्तचक्षुःश्रोत्रमुखगतिजिह्वास्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रं वशं कुरु कुरु ऐ क्रीं श्रीं ठः ठः ठः ठः ठः ओं ऐं हूं फट् ठः ठः ओं ग्लुं ह्रीं वार्तालि वाराहि ह्रीं ग्लुं वार्तालि वाराहि ओं चण्डवार्तालि ऐं ह्रीं श्रीं आं ग्लूं ईं वार्तालि वार्तालि वाराहि वाराहि शत्रून् दह दह ग्रस ग्रस ईं आं ग्लुं हुं फट् जय वार्तालि ऐं ह्रीं श्रीं (महाबीज) श्रूं स्हौः ओं ह्रीं हूं फ्रें राज्यप्रदे ख्फ्रें हसखफ्रें उग्रचण्डे रणमर्दिनि हूं फ्रें छ्रीं स्त्रीं सदा रक्ष रक्ष त्वं रूपं मां रूपं च जूं सः मृत्युहरे नमः स्वाहा, अः उग्रचण्डे ऐं (योगिनीकूट)... हसखफ्रें हसखफ्रीं औं ह्रीं हसफ्रें हूं फ्रें उग्रचण्डे (चण्डेश्वरमहाप्रेतबीजे)... स्वाहा श्मशानोग्रचण्डे ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रीं (अमृतकूट)... खफ्रीं हसखफ्रीं रुद्रचण्डायै रह्रीं नमः स्वाहा रुद्रचण्डे । ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं (फेत्कारी कूट वामनेत्रविभूषित) चण्डकूटे ख्फें ग्लक्षकमह्लव्य्रीं प्रचण्डायै नमः स्वाहा प्रचण्डे, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रें ह्रीं (सन्धिकूट)... चण्डनायिकायै नमः त्रूं नमः स्वाहा चण्डनायिके, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रें हसखफ्रूं (चण्डेश्वरकूट ईकारबिन्दुयुक्तमहाप्रेत बीज)... क्लीं नमः स्वाहा चण्डे महादेवि, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रीं चण्डवत्यै क्ष्म्लूं नमः स्वाहा चण्डवति.

ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रें क्षम्लकस्हरयब्रूं... ख्क्रीं (अतिप्रेत) अतिचण्डायै नम: ग्लूं नम: स्वाहा अतिचण्डे, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रें (श्मशानकूट)... ख्क्रीं (महाप्रेत) चण्डिकायै द्रैं नम: स्वाहा चण्डिके, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रें, स्हफ्रीं क्लीं हूं... क्लह्रीं कात्यायन्यै ख्फ्रें कामदायिन्यै हूं नम: स्वाहा ज्वालाकात्यायनि, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं क्लीं हूं श्रीं हभ्रीं महिषमर्दिनि श्रीं ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं उन्मत्तमहिषमर्दिनि ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं (नक्षत्रकूट शङ्खकूट) महामहेश्वरि तुम्बुरेश्वरि स्वाहा तुम्बुरेश्वरि, ओं ह्रीं क्लीं हूं ग्लूं आं ऐं हूं स्हौ: फ्रें चैतन्यभैरवि फ्रें फ्रें स्हौं: क्रों आं ऐं ग्लूं हूं क्लीं ह्रीं ओं फट् ठ: ठ: चैतन्यभैरवि, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं मुण्डमधुमत्यै शक्तिभूतिन्यै ह्रीं ह्रीं ह्रीं फट् मधुमति । वद वद वाग्वादिनि स्हौं: क्लिन्नक्लेदिनि महाक्षोभं कुरु स्हौ: वाग्वादिनि, भैरवि ह्रीं फ्रें ख्फ्रें क्लीं पूर्णेश्वरि सर्वकामान् पूरय ओं फट् स्वाहा पूर्णेश्वरि, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं रक्तरक्ते महारक्तचामुण्डेश्वरि अवतर अवतर स्वाहा रक्तचामुण्डेश्वरि माहेशि, ओं ह्रीं श्रीं त्रिपुरावागीश्वर्यै नम: त्रिपुरावागीश्वरि, हसें (मारकूट)... (महाप्रेत बीज)... कालभैरवि (निशाकूट कूर्चकूट तुङ्गप्रतुङ्गकूट)... चण्डवारुणि, ओं अघोरे हा हा घोरे घोरघोरतरे हूं सर्वशर्वशर्वे ह्लें नमस्ते रुद्ररूपे ह: ह: ओं घोरे, ह्रीं श्रीं क्रों क्लूं ऐं क्रौं छ्रीं फ्रें क्रीं ख्फ्रें हूं अघोरे सिद्धिं मे देहि दापय स्वाहा क्षूं अघोरे, ओं ह्रीं फ्रें हूं महादिग्वीरे (महादिगम्वरि) ऐं श्रीं क्लीं आं मुक्तकेशि चण्डाट्टहासिनि छ्रीं स्त्रीं क्रीं ग्लौं मुण्डमालिनि ओं स्वाहा दिगम्बरि । ओं ऐं ह्रीं कामकलाकालेश्वरि सर्वमुखस्तम्भिनि सर्वजनमनोहरि सर्वजन-वशङ्करि सर्वदुष्टनिमर्दिनि सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि छिन्धि शृङ्खलां त्रोटय त्रोटय सर्वशत्रून् जम्भय जम्भय द्विषान् निर्दलय निर्दलय सर्वान् स्तम्भय स्तम्भय मोहनास्त्रेण द्वेषिण: उच्चाटय उच्चाटय सर्ववश्यं कुरु कुरु स्वाहा देहि देहि सर्वं कालरात्र्यै कामिन्यै गणेश्वर्य्यै नम: कालरात्रि, ओं ऐं आं ईं णं ईं ऐह्येहि भगवति किरातेश्वरि विपिनकुसुमा-वतंसिनिकर्णे भुजगनिर्मोककञ्चुकिनि ह्रीं ह्रीं हं हं कह कह ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल सर्वसिद्धिं दद दद देहि देहि दापय दापय सर्वशत्रून् दह दह बन्ध बन्ध पठ पट (पच पच) मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय हूं हूं हूं फट् नम: स्वाहा किरातेश्वरि, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं वज्रकुब्जिके हसखफ्रीं प्राणेशि त्रैलोक्याकर्षिणि ह्रीं क्लीं अङ्गद्राविणि स्मराङ्गने अनघे महाक्षोभकारिणि ऐं क्लीं ग्लौ: ग्लं ग्लां ग्लिं ग्लीं ग्लुं ग्लूं ग्लृं ग्लॄं ग्लल्टं ग्लें ग्लैं ग्लों ग्लौं ग्ल: ग्लौ: ग्लौं वज्रकुब्जिके, नमो भगवति घोरे महेश्वरि हसखफ्रीं देवि श्रीकुब्जिके रह्रीं स्र्रीं स्र्रूं ङञणनम अघोरामुखि छां छीं छूं किलि किलि विच्चे पादुकां पूजयामि नम: समयकुब्जिके, ओं ऐं ह्रीं क्लीं फ्रें हसफ्रीं हसखफ्रें क्षह्रम्लव्र्यीं भगवति विच्चे घोरे हसखफ्रें ऐं श्रीं कुब्जिके, रह्रीं रह्रूं स्हौं ङञणनम अघोरामुखि छां छीं छूं किलि किलि विच्चे स्त्रीं हूं स्हौ: पादुकां पूजयामि नम: स्वाहा, मोक्षकुब्जिके नमो भगवति सिद्धे महेशानि हसफ्रां हसफ्रीं हसफ्रूं कुब्जिके रह्रां रह्रीं रह्रूं खगे ऐं अघोरे अघोरामुखि किलि किलि विच्चे पादुकां पूजयामि नम: भोगकुब्जिके, ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें श्र्यों श्र्यों? भगवत्यम्ब (प्राभातिककूट सकारादियुक्त प्राभातिककूट)... कुब्जिकायै हसकलक्रीं यां ग्लौं ठौं... ऐं क्रूं ङञणनम अघोरामुखि छां छीं छूं किलि

किलि विच्चे म्रों श्रों हसखफ्रें श्रीं ह्रीं ऐं जयकुब्जिके ऐं ह्रीं श्रीं सहसखफ्रीं स्हौं भगवत्यम्ब (प्राभातिकूट सकारादियुक्तप्राभातिककूट ईकारयुक्त) कुब्जिके (बालाकूट)... (ईकारयुक्तबालाकूट)... (बालाकूट ऊकारयुक्त) ङञणनम अघोरामुखि छां छीं किलि किलि विच्चे फट् स्वाहा हूं फट् स्वाहा नमः ऐं ऐं ऐं सिद्धिकुब्जिके, ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रीं स्हौः म्लक्षकसहहूं सम्लक्षकसहहूं स्त्रहफ्रीं?... (षष्ठस्वरविहीनं तु कला-बीजेन भूषितम् । एतद्बीजं सभाभाष्य) कुब्जिके ह्रीं ह्रीं आगच्छ आगच्छ आवेशय आवेशय वेधय वेधय ह्रीं ह्रीं सम्लक्षकसहहूं म्लक्षकसहहूं नमः स्वाहा आवेशकुब्जिके (महेन्द्रकूट)... हसखफ्रें (पित्सकूट)... (मार्जारमणित्रृषिसारङ्गकूटानि) ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं कालि कालि महाकालि मांसशोणितभोजिनि ह्रां ह्रीं ह्रूं रक्तकृष्णमुखि देवि मा मां पश्यन्तु शत्रवः श्रीं हृदयशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि ह्रां हृदयाय नमः हृदय शिवदूति, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं नमो भगवति दुष्टचाण्डालिनि रुधिरमांसभक्षिणि कपाल-खट्वाङ्गधारिणि हन हन दह दह पच पच मम शत्रून् ग्रस ग्रस मारय मारय हूं हूं हूं फट् स्वाहा शिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि ह्रीं शिरसे स्वाहा शिरः शिवदूति, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हसखफ्रां हसखफ्रीं हसखफ्रूँ महापिङ्गलजटाभारे विकटरसनाकराले सर्वसिद्धिं देहि देहि दापय दापय शिखाशिवदूति श्री पादुकां पूजयामि हूं शिखायै वषट् शिखा-शिवदूति, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं महाश्मशानवासिनि घोराट्टहासिनि विकटतुङ्गकोकामुखि ह्रीं क्लीं श्रीं महापातालतुलितोदरि भूतवेतालसहचारिणि अनघे कवचशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि कवचाय हूं कवचशिवदूति, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं लेलिहानरसनाभयानके विस्रस्तचिकुरभारभासुरे चामुण्डाभैरवीडाकिनीगणपरिवृते फ्रें ख्फ्रें हूं आगच्छ आगच्छ सान्निध्यं कल्पय कल्पय त्रैलोक्यडामरे महापिशाचिनि नेत्रशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रशिवदूति । ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं गुह्यातिगुह्यकुब्जिके हूं हूं हूं फट् मम सर्वोपद्रवान् मन्त्रतन्त्रई(ति)यन्त्रचूर्णप्रयोगादिकान् परकृतान् करिष्यन्ति तांन् सर्वान् हन हन मथ मथ मर्दय मर्दय दंष्ट्राकरालि फ्रें हूं फट् गुह्यातिगुह्यकुब्जिके अस्त्रशिवदूति श्रीपादुकां पूजयामि अस्त्राय फट् अस्त्र शिवदूति, ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं हूं हूं हूं हूं हूङ्कारघोरनादविद्राविद्राविजगत्त्रये ह्रीं ह्रीं ह्रीं प्रसारितायुतभुजे महावेगप्रधाविते क्लीं क्लीं क्लीं पदविन्यासत्रासितसकलपाताले श्रीं श्रीं श्रीं व्यापकशिवदूति जितेन्द्रिये परमशिव-पर्यङ्कशायिनि छ्रीं छ्रीं छ्रीं गलद्रुधिरमुण्डमालाधारिणि घोरघोरतररूपिणि फ्रें फ्रें फ्रें ज्वालामालि पिङ्गजटाजूटे अचिन्त्यमहिमबलप्रभावे स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं दैत्यदानवनिकृन्तनि सकलसुरासुरकार्यसाधिके ओं ओं ओं फट् नमः स्वाहा व्यापकशिवदूति, ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं क्रों ह्रीं आं हूं टं गं सं (महापुरुष) हौं ग्लूं क्रौं हसखफ्रें फ्रों क्रूं छ्रीं फ्रें क्लौं ब्लौं क्लूं स्हौः स्फ्रें खैं जूं ब्रीं कालसङ्कर्षिणि हूं हूं स्वाहा कालसङ्कर्षिणि, ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हसखफ्रें हूं हूं कुक्कुटि क्रीं आं क्रों फ्रें फ्रों फट् फट् स्वाहा कुक्कुटि, ओं ह्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें भ्रमराम्बिके शत्रुमर्दिनि आं क्रों हौं हूं छ्रीं फट् फट् नमः स्वाहा ओं भ्रमराम्बिके, फ्रों धनदे ह्रीं सां सीं सूं सङ्कटादेवि सङ्कटेभ्यो मां तारय तारय श्रीं क्लीं हौं हूं आं फट् स्वाहा सङ्कटादेवि, ओं क्रों हौं भोगवति ओं ह्रीं यं रं लं वं शं षं सं हं

क्षं षं सं हं क्षं षः सः हः क्षः हूं नमोः भगवति महार्णवेश्वरि त्रैलोक्यग्रसनशीले आं ईं ऊं फट् स्वाहा महार्णवेश्वरि, आं क्षीं पीं चूं भगवति (झूं) (प्रभातकूट)... म्लक्षक सहहूं चण्डझङ्कारकापालिनि जयकङ्केश्वरि ठः ठः जयकङ्केश्वरि, ओं ह्रीं आं शवरेश्वर्यै नमः शवरेश्वरि । ओं ऐं आं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं फ्रें ख्फ्रें हसखफ्रें पिङ्गले पिङ्गले महापिङ्गले क्रीं हूं फ्रें छ्रीं स्हौः क्रीं क्रों फ्रें स्त्रीं श्रीं फ्रों... ब्लौं ब्रीं ठः ठः सिद्धिलक्ष्मि ओं ऐं ह्रीं क्लीं भगवति महामोहिनि ब्रह्मविष्णुशिवादिसकलसुरासुरमोहिनि सकलं जनं मोहय मोहय वशीकुरू वशीकुरू कामाङ्गद्राविणि कामाङ्कशे स्त्रीं स्त्रीं स्त्रीं क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ओं महामोहिनि, ऐं क्लीं यं क्ष्स्त्रीं हं हां हिं हीं हुं हूं हं हलं हें हैं हों हौं हः ह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं त्रिपुरसुन्दरि हूं नमो मूकाम्बिकायै वादिनों मूकय मूकय आं क्लीं ह्रीं स्हें स्हः सौः स्वाहा मूकाम्बिके, ह्रीं क्रौं हूं फट् एकजटे ह्रीं क्रौं हूं नीलसरस्वति ओं ह्रीं क्रों वीं फट् उग्रतारे ओं श्रीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये वीं वीं फट् ठः ठः छिन्नमस्ते ओं नमो भगवत्यै पीताम्बरायै ह्रीं ह्रीं सुमुखि वगले विश्वं मे वशं कुरु कुरु ठः ठः छिन्नमस्ते ओं नमो भगवत्यै पीताम्बरायै ह्रीं ह्रीं सुमुखि वगले विश्वं मे वशं कुरु कुरु ठः ठः वश्यवगले हूं रक्ष त्रिकण्टकि ओं क्रों क्लीं श्रीं क्रः आं स्त्रीं हूं जयदुर्गे रक्ष रक्ष स्वाहा सङ्ग्रामजयदुर्गे ह्रीं क्लीं हूं विजयप्रदे ओं ऐं हौं ग्लूं क्रौं ब्रीं फट् ब्रह्माणि, ओं हौं ग्लूं आं ह्रीं श्रीं वीं माहेश्वरि व्रीं ब्लौं क्लौं फ्रें क्लूं क्रीं फ्रों जूं ग्लूं स्हौः हूं हूं फट् फट् स्वाहा माहेश्वरि, ह्रीं ऐं क्लीं औं कौमारि मयूरवाहिनि शक्तिहस्ते हूं फ्रें स्त्रीं फट् फट् स्वाहा कौमारि । ओं नमो नारायण्यै जगत्स्थितिकारिण्यै क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं आं जूं ठः ठः वैष्णवि । ओं नमो भगवत्यै वराहरूपिण्यै चतुर्दशभुवनाधिपायै भूपतित्वं मे देहि दापय स्वाहा वाराहि, ओं आं क्रों हूं जूं ह्रीं क्लीं स्त्रीं क्षूं क्षौं फ्रों जूं फ्रें जिह्वासटाघोररूपे दंष्ट्राकराले नारसिंहि हौं हौं हौं हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा नारसिंहि, ओं क्लीं श्रीं हूं इन्द्राणि ह्रीं ह्रीं जय जय क्षौं क्षौं फट् फट् स्वाहा इन्द्राणि, ओं क्रों क्रीं फ्रें फ्रों छ्रीं ख्रौं णीं हसखफ्रें ब्लौं जूं क्लूं ह्रीं व्रीं क्षूं क्रौं चामुण्डे ज्वल ज्वल हिलि हिलि किलि किलि मम शत्रून् त्रासय त्रासय मारय मारय हन हन पच पच भक्षय भक्षय क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं फट् फट् ठः ठः चामुण्डे ओं नमः कामेश्वरि कामाङ्कुशे कामप्रदायिके भगवति नीलपताके भगान्तिके महेश्वरि क्लूं नमोऽस्तु ते परमगुह्ये वीं वीं वीं हूं हूं हूं मदने मदनान्तदेहे त्रैलोक्यमावेशय हूं फट् स्वाहा नीलपताके, क्रीं क्रीं हूं हूं हूं हूं क्रों क्रों क्रों श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं चण्डघण्टे शत्रून् स्तम्भय स्तम्भय मारय मारय हूं फट् स्वाहा चण्डघण्टे । २९६ पद्यार्थः द्विरुक्तिं भजत इति विचारणीयम् ।...

ओं ह्रीं श्रीं हूं क्रों क्रीं स्त्रीं क्लीं स्हजहलक्ष्म्लवनऊं (उमाकूट)... लक्षमहजर-क्रव्र्यऊं हस्लक्षकमहव्रूं म्लकहक्षरस्त्रै चण्डेश्वरि ख्रौं छ्रीं फ्रें क्रौं हूं हूं फट् फट् स्वाहा चण्डेश्वरि, ओं ऐं आं ह्रीं हूं क्रों क्षौं क्रीं क्रौं फ्रें अनङ्गमाले स्त्रियमाकर्षयाकर्षय त्रुट त्रुट छेदय छेदय हूं हूं फट् फट् स्वाहा अनङ्गमाले, ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं क्रीं आं क्रों

फ्रों हूं क्षूं हसखफ्रें फ्रें हरसिद्धे सर्वसिद्धिं कुरु कुरु देहि देहि दापय दापय हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा हरसिद्धे, ओं क्रों क्रौं हसखफ्रें हूं छ्रीं फेत्कारि दद दद देहि देहि दापय दापय स्वाहा फेत्कारि ऐं श्रीं आं हौं हूं स्फ्रों स्हौ: फ्रें छ्रीं स्त्रीं ठ्रीं ध्रीं प्रीं थ्रीं क्रां ओं लवणेश्वरि क्र: छ्रीं हूं स्त्रीं फ्रें नाकुलि ओं ऐं आं हूं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं जूं मृत्युहारिणि ओं ऐं ह्रीं हूं नमो भगवति रुद्रवाराहि रुद्रतुण्डप्रहारे क्रं क्रं क्रां क्रां सर्वोत्पातान् प्रशमय प्रशमय क्लीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें नम: स्वाहा वज्रवाराहि, ओं ह्रीं क्षौं क्रों हं हं हं हयग्रीवेश्वरि चतुर्वेदमयि फ्रें छ्रीं स्त्रीं हूं सर्वविद्यानां मय्यधिष्ठानं कुरु कुरु स्वाहा हयग्रीवेश्वरि, ओं ऐं आं ह्रीं स्ह: परमहंसेश्वरि कैवल्यं साधय स्वाहा परमहंसेश्वरि, ओं ह्रीं श्रीं श्रीं श्रीं क्लीं क्लीं निर्विकारस्थचिदानन्दघनरूपायै मोक्षलक्ष्म्यै अमितानन्तशक्तितत्त्वायै क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ओं मोक्षलक्ष्मि ओं क्रीं नमो ब्रह्मवादिन्यै क्रीं ओं नम: स्वाहा, ह्रीं क्लीं हूं फ्रें शातकर्णि महाघोररूपिणि ओं श्रीं छ्रीं स्त्रीं फट् फट् स्वाहा शातकर्णि, ओं ओं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल महेश्वरि सर्वमुखरूपे जातवेदसि ब्रह्मास्त्रेण नाशय सचराचरं जगत् स्वाहा जातवेदसि, ओं आं ऐं क्रों क्रीं श्रीं क्लीं हूं फ्रें महानीले प्रलयाटोप-घोरनादघुर्घुरि आत्मानमुपशमय जूं स: स्वाहा महानीले, ओं क्लीं क्रां क्लीं ब्रह्मविद्ये जगद्ग्रसनशीले महाविद्ये ह्रीं हूं ह्रीं विष्णुमाये क्षोभय क्षोभय क्लीं क्रों आं स्हीं शिवे सर्वास्त्राणि ग्रस ग्रस हूं फट्; ओं स्हीं बगलामुखि सर्वशत्रून् स्तम्भय स्तम्भय ब्रह्मशिरसे ब्रह्मास्त्राय हूं क्लीं स्हीं ओं नम: स्वाहा विष्णुमाये, ओं ह्रीं फ्रें ख्फ्रें श्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं गुह्येश्वरि महागुह्यविद्यासम्प्रदायबोधिके आं क्रों ग्लूं फट् कृष्णलोहिततनूदरि हौं हां हीं फट् नम: ठ: ठ: गुह्येश्वरि, ओं नमो श्वेतपुण्डरीकासनायै प्रतिसमयविजयप्रदायै भगवत्यै अपराजितायै क्र: श्रीं क्ली फट् स्वाहा ओं अपराजिते, ओं ह्रीं हं हां महाविद्ये मोहय विश्वकर्मकम् ऐं श्रीं क्लीं त्रैलोक्यमावेशय हूं फट् फट् महाविद्ये, ऐं स्हौ: ख्फ्रें डलखल हक्षखमव्र्यूं एह्येहि भगवति वाभ्रवि महाप्रलयताण्डवकारिणि गगनग्रासिनि श्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें शत्रून् हन हन सर्वैश्वर्यं दद दद महोत्पातान् विध्वंसय विध्वंसय सर्वरोगान् नाशय नाशय ओं श्रीं क्लीं हौं आं महाकृत्याभिचारग्रहदोषान् निवारय निवारय मथ मथ क्रों जूं ग्लूं हसखफ्रीं ख्फ्रें स्वाहा वाभ्रवि, ओं ह्रीं श्रीं हूं भगवति महाडामरि डमरुहस्ते नीलपीतमुखि जीवब्रह्मगलनिष्पेषिणि, छ्रीं स्त्रीं श्रीं हूं भगवति महाडामरि डमरुहस्ते नीलपीतमुखि जीवब्रह्मगलनिष्पेषिणि, छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें महाश्मशानरङ्गचर्चरी गायिके तुरु तुरु मर्द मर्द मर्दय मर्दय हसख्फ्रें स्वाहा डामरि, ओं ह्रीं फ्रें वेतालमुखि चर्चिके हूं छ्रीं स्त्रीं ज्वालामालि विस्फुलिङ्गरमणि महाकापालिनि कात्यायनि श्रीं क्लीं ख्फ्रें कह कह धम धम ग्रस ग्रस आं क्रों हौं नरमांसरूधिर-परिपूरितकपाले ग्लूं क्लौं ब्लूं णीं णीं णीं फट् फट् स्वाहा चर्चिके, ह्रीं ह्रीं महामङ्गले महामङ्गलदायिनि अभये भयहारिणि स्वाहा अभये, ओं ऐं क्रैं हौं स्हौ: उत्तानपादे एकवीरे हस हस गाय गाय नृत्य नृत्य रक्ष रक्ष क्षूं फ्रों जूं ब्रीं क्लूं पाशघण्टामुण्ड-खट्वाङ्गधारिणि फट् फट् नम: ठ: ठ: एकवीरे, ओं ह्रीं हूं ऐं श्रीं क्लीं आं क्रों हौं भगवति महाघोरकरालिनि तामसि महाप्रलयताण्डविनि चर्चरीकरतालिके जय जय

जननि जम्भ जम्भ महाकालि कालनाशिनी भ्रामरि भ्रामरि डमरुभ्रामिणि ऐं क्लीं स्फ्रों छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रें हसखफ्रें फट् नमः स्वाहा तामसि भ्रामरि भ्रामरि डमरुभ्रामिणि ऐं क्लीं स्फ्रों छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसखफ्रीं हसखफ्रें फट् नमः स्वाहा तामसि, ओं ऐं समरविजयदायिनि मत्तमातङ्गयायिनि श्रीं आं क्रः भगवति जयन्ति समरे जयं देहि देहि मम शत्रून् विध्वंसय विध्वंसय विद्रावय विद्रावय भञ्ज भञ्ज मर्दय मर्दय तुरु तुरु श्रीं क्लीं स्त्रीं नमः स्वाहा जयन्ति, ओं श्रीं आं क्रों क्लीं हूं क्षूं हैं एकानंशे डमरुडामरि नीलाम्बरे नीलविभूषणे नीलनागासने सकलसुरासुरान् वशे कुरु कुरु जन्यिके कन्यिके सिद्धिदे वृद्धिदे छ्रीं स्त्रीं हूं क्लीं फ्रें हौं फट् स्वाहा एकानंशे, ऐं ब्रह्मवादिन्यै ब्रह्मरूपिण्यै ठः ठः ब्रह्मरूपिणि ओं ह्रीं श्रीं क्लीं णीं भगवति नीललोहितेश्वरि त्रिभुवनं रञ्जय रञ्जय सकलसुरासुरान् आकर्षयाकर्षय नमः स्वाहा नीललोहितेश्वरि, ऐं श्रीं त्रिकालवेदिन्यै स्वाहा त्रिकालवेदिनि, ओं श्रीं ह्रीं क्लीं स्त्रीं फ्रें हूं फट् ब्रह्मवेतालराक्षसि क्रीं क्षूं फ्रों विष्णुशवावतंसिके छ्रीं स्हौः ग्लूं महारुद्रकुणपारूढे ऐं आं हौं फट् फट् फट् नमः स्वाहा कोरङ्गिः, ओं ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं हौं हूं आं छ्रीं स्त्रीं हूं फ्रें क्रीं क्लौं स्वाहा रक्तदन्ति, कः क्लीं णीं फ्रें ख्फ्रें हसखफ्रीं हसखफ्रें क्षरह्रीं जरक्रीं रह्रीं रश्रीं फट् स्वाहा भूतभैरवि, ऐं श्रीं आं ईं नमः षडाम्नायपरिपालिन्यै शोषिष्यै द्राविण्यै नामक्यै भ्रामक्यै जूं ब्लुं सौः कुलकोटिन्यै (कुल कोटिट्न्यै) काकासनायै फ्रें फट् ठः ठः कुलकुटिट्नि, ओं क्लीं ग्लूं ह्रीं स्त्रीं हूं फ्रें छ्रीं फ्रों कामाख्यायै फट् स्वाहा कामाख्ये, ऐं आं हौं स्हौः क्रों जूं चतुरशीतिकोटिमूर्त्तये विश्वरूपायै ब्रह्माण्डजठरायै ओं स्वाहा विश्वरूपे, आं ईं ऊं ऐं औं क्षेमङ्कर्य्यै ठः ठः क्षेमङ्करि, ऐं ओं ह्रीं क्लीं निगमागमबोधिते सद्यो धनप्रदे (?) भगवति कुलेश्वरि हूं फट् ठः ठः कुलेश्वरि, ऐं क्लीं जगदुन्मादिन्यै कामाङ्कुशायै विश्वविद्राविण्यै स्त्रीपुरुषमोहिन्यै ह्रीं हूं स्त्रीं स्वाहा कामाङ्कुशे, ओं नमः सर्वधर्मध्वजायै सकलसमयाचारबोधितायै हूं आवेशिन्यै फट् स्वाहा आवेशिनि, ओं ह्रीं श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं ख्फ्रें हूं फट् करालिनि मायूरिशिखिपिच्छकाहस्ते सद्यो धनं ख्फ्रें क्लौं पां स्त्रीं ऋृक्षकर्णि जालन्धरि मा मां द्विषन्तु शत्रवः नन्दयन्तु भूपतयो भयं मोचय हूं फट् स्वाहा मायूरि, ओं ऐं ग्लूं क्रों इन्द्राक्षि हूं हूं हूं फट् फट् फट् स्वाहा इन्द्राक्षि, क्रीं क्रों क्रूं क्रां ह्रीं फ्रों घोणकि घोणकिमुखि तुभ्यं नमः स्वाहा घोणकि, ऐं ह्रीं श्रीं हूं क्लीं फ्रें छ्रीं फ्रें हसखफ्रें भीमादेवि भीमनादे भीमकरालि क्षूं हसखफ्रीं फ्रों श्रीं सिद्धेश्वरि सहकह्रीं स्हकहलह्रीं सक्लह्रकह्रीं महाघोरघोरतरे भगवति भयहारिणि मां द्विषतो निर्मूलय निर्मूलय विद्रावय विद्रावय उत्सादय उत्सादय महाराज्यलक्ष्मीं वितरय वितरय देहि देहि दापय दापय ख्फ्रें हसख्फ्रीं ग्लूं स्हौः हौं हूं क्षौं ब्लीं हौं जय जय राक्षसक्षयकारिणि ओं हीं हूं ठः ठः ठः फट् फट् फट् नमः स्वाहा भीमादेवि, ओं ऐं श्रीं ह्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें हसखफ्रीं हसखफ्रें फ्रें प्रविश संसारं महामाये फ्रें फट् ब्रह्मशिरोनिकृन्तनि विष्णुतनुनिर्दलिनि जें जम्भिके स्तें स्तम्भिके छिन्दि छिन्दि भिन्दि भिन्दि दह दह मथ मथ पच पच पञ्चशवारूढे पञ्चागमप्रिये ग्लूं ब्लीं खौं श्रीं क्लीं फ्रें पञ्चपाशुपतास्त्र-धारिणि हूं हूं हूं फट् फट् स्वाहा ब्रह्मनिकृन्तनि ओं नमः परशिवविपरीताचारकारिणि ह्रीं

श्रीं क्लीं छ्रीं स्त्रीं महाघोरविकरालिनि खण्डार्धशिरोधारिणि भगवत्युग्रे फ्रें ख्फ्रें हसफ्रीं हसखफ्रें... (प्राभातिककूट) म्लक्षकसहह्रूं हूं फट् स्वाहा, ह्रीं हूं अर्धमस्तके क्रीं ओं हूं फ्रें स्त्रीं फ्रों चण्डखेचरि ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल निर्मांसदेहे ठः ठः चण्डखेचरि, ओं नमः प्रचण्डघोरदावानलवासिन्यै ह्रीं हं समयविद्याकुलतत्त्वधारिण्यै महामांसरुधिरप्रियायै छ्रीं स्त्रीं क्लीं धूमावत्यै सर्वज्ञतासिद्धिदायै फ्रें फट् स्वाहा धूमावति । ऐं ह्रीं आं ह्रां सौः क्लीं महाभोगिराज भूषणे सृष्टिस्थितिप्रलयकारिणि हूं हूङ्कारनादभूरिकालनाशिनि तारिणि भगवति हाटकेश्वरि ग्लूं ब्लीं भ्रूं द्रैं श्रीं ऐं फ्रों फ्रें ख्फ्रें मम शत्रून् मारय मारय बन्धय बन्धय मर्दय मर्दय पातय पातय महेश्वरि धनधान्यायुरारोग्यैश्वर्यं देहि देहि दापय दापय ठ्रीं ध्रीं थ्रीं प्रीं हौं आं क्रों ऐं ओं नमः स्वाहा हाटकेश्वरि, ओं आं ऐं ह्रीं श्रीं शक्तिसौपर्णि कमलासने उच्चाटय उच्चाटय विद्वेषय विद्वेषय हूं फट् स्वाहा शक्तिसौपर्णि, ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें हसफ्रीं हसखफ्रें श्लां रक्षीं जरक्रीं रह्रीं भगवति महामारि जगदुन्मूलिनि कल्पान्तकारिणि शिरोनिविष्टवामचरणे दिगम्बरि समयकुलचक्रचूडालये मां रक्ष रक्ष त्राहि त्राहि पालय पालय प्रज्वलदावानलज्वालाजटालजटिले हं हं हं नमः स्वाहा महामारि, ओं ऐं रक्ताम्बरे रक्तस्रगनुलेपने महामांसरक्तप्रिये महाकान्तारे मां त्राहि त्राहि (श्रीं?) स्त्रीं क्लीं ह्रीं हूं फ्रें फट् स्वाहा मङ्गलचण्डि, ह्रीं फट् नमश्चण्डोग्रकालिनि परमशिवशक्तिसामरस्यनिर्वाणदायिनि नरकङ्कालधारिणि ब्रह्मविष्णुकुणपवाहिनि ऐं ओं फ्रें प्रत्यक्षं परोक्षं मां द्विषन्ति ये तानपि हन हन नाशय नाशय कूष्माण्डडाकिनीस्कन्दवेतालभयं नुद नुद कोकामुखि स्वाहा, ओं ह्रीं क्लीं फ्रें हूं ओं ह्रीं हूं श्मशानशिखाचारिण्यै भगवत्यै ज्वालाकाल्यै छ्रीं स्त्रीं फ्रें क्रीं फ्रों फट् नमः स्वाहा ज्वालाकालि, ऐं श्रीं क्लीं आं क्रों क्रीं... (अतिचण्ड) छ्रीं स्त्रीं घोरनादकालि सिद्धिं मे देहि सर्वविघ्नमुपशमय सिद्धिकरालि सिद्धिविकरालि हूं हूं फट् स्वाहा घोरनादकालि, ह्रीं हूं फ्रें ख्फ्रें छ्रीं उग्रकाल्यै खेचरीसिद्धिदायिन्यै परापरकुलचक्रनायिकायै ग्लूं क्रौं स्त्रीं क्षौं क्लीं त्रिशूलझङ्कारिण्यै नमः स्वाहा उग्रकालि, हौं स्हौः सौः क्रीं ह्रीं फ्रें फ्रों हूं फट् वेतालकालि, श्रीं ह्रीं ऐं क्लीं क्रीं भगवति संहारकालि ब्रह्माण्डं पिष पिष चूर्णय चूर्णय मां रक्ष रक्ष जूं क्लौं हूं हूं हूं फट् फट् नमः स्वाहा संहारकालि, ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं महाघोरविकटरूपायै ज्वलदनलवदनायै सर्वज्ञतासिद्धिदायै क्रीं फ्रें हूं नमः फट् स्वाहा रौद्रकालि, फ्रें चण्डाट्टहासिनि ख्फ्रें ब्रह्माण्डमर्दिनि हसफ्रीं ब्रह्मविष्णुशिवभक्षिणि हसखफ्रें मृत्युमृत्युदायिनि... (नक्षत्रकूट) भक्तसिद्धिविधायिनि म्लक्षकसहह्रूं भगवति कृतान्तकालि हूं फट् रक्षक्रीं ॐ नमः फट् स्वाहा कृतान्तकालि, ओं ऐं श्रीं क्लीं फ्रें क्रीं छ्रीं स्त्रीं हूं भीमकालि क्रीं क्रीं क्ष्रूं क्रौं व्रीं प्रेतशिवपर्यङ्कशायिनि महाभैरवविनादिनि पशुपाशं मोचय मोचय स्त्रीं फ्रें ख्रौं फ्रों चण्डकालि हूं फट् फट् चण्डकालि, सौः ब्लीं ठौं प्रीं ईं धनकालि धनप्रदे धनं मे देहि दापय क्रीं फ्रें हूं विषधरवज्रिणि क्लीं श्रीं नमः स्वाहा धनकालि, ओं स्फ्रों... (सुदीर्घकूटः) ब्लौं क्लौं घोरकालि विश्वं वशीकुरु वशीकुरु सर्वं (कार्यं?) साधय साधय करालि विकरालि छ्रीं स्त्रीं फ्रें प्रेतारूढे प्रेतावतंसे ह्रीं श्रीं क्लीं राजानं मोहय मोहय हूं

फट् नमः घोरकालि, ऐं ह्रीं श्रीं क्लूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें क्रीं फट् ठः ठः सन्त्रासकालि, क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं लेलिहानरसनाकराले रोरूयमानसजीवशिवानक्षत्रमाले छ्रीं स्त्रीं फ्रें प्रेतकालि भगवति भयानके मम भयमपनय स्वाहा प्रेतकालि, ओं ऐं ह्रीं हूं क्लूं भ्रूं ख्रौं क्रः फ्रें प्रलयकालि प्रलयकारिणि नवकोटिकुलाकुलचक्रेश्वरि श्रीं भ्रीं ब्लूं म्लैं हभ्रीं परमशिवतत्त्वसमयप्रकाशिनि क्रः फट् स्वाहा प्रलयकालि, आं क्रीं क्लीं श्रीं ऐं विभूतिकालि सम्पदं मे वितर वितर सौम्या भव वृद्धिदा भव सिद्धिदा भव जय जय जीव जीव अं थ्रां इं ठ्रीं उं ध्रीं एं प्रीं ठः ठः फट् फट् फट् नमः स्वाहा ओं ओं ओं विभूतिकालि । ओं क्रों ह्रीं क्लीं छ्रीं फ्रें स्त्रीं श्रीं ऐं जयकालि परमचण्डे महासूक्ष्मविद्यासमयप्रकाशिनि क्ष्रौं प्लुं वफलुँ नमः स्वाहा जयकालि, ऐं श्रीं ओं फ्रां फ्रीं फ्रूं फ्रें फ्रैं फ्रों फ्रौं भोगकालि हसखफ्रें हसखफ्रैं फट् फट् फट् स्वाहा भोगकालि, हूं नमः कल्पान्तकालि भगवति भीमरावे खफहूं भौं फ्रूँ म्रूं बं मेघमाले महामारीश्वरि विद्युत्कटाक्षे अरूपे बहुरूपे विरूपे ज्वलितमुखि चण्डेश्वरि रह्रीं हभ्रीं स्वाहा कल्पान्तकालि, ओं छ्रीं ज्रीं ब्लीं डामरमुखि वज्रशरीरे हूं सन्तानकालि फट् ठः ठः मन्थानकालि (सन्तानकालि), ओं ह्रीं हूं रलहक्षसमहफ्रछ्रीं कहलश्रीं ह्लक्षकमहसव्भ्रऊं क्षम्लकस्हरयब्रुं क्षहलीं दुर्जयकालि हट्टायुधधारिणि वज्रशरीरे रश्रीं रह्रीं क्षहलीं कालविध्वंसिनि कुलचक्रराजेश्वरि स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं स्तृं स्त्रें स्त्रैं स्त्रों स्त्रौं स्त्रः फट् फट् फट् स्वाहा, दुर्जयकालि, ऐं आं ईं ऊं ह्रीं श्रीं क्लीं हूं घोराचाररौद्रे महाघोरवाडवाग्निं ग्रस ग्रस महाबले महाचण्डयोगेश्वरि नमः ठः ठः कालकालि, ऐं क्रैं व्रूं (महारुद्रान्तमस्तकः पयोबीजं 'वं'?) वज्रकालि महाबले क्ष्रौः क्ष्रौं सद्यो महाप्रपञ्चरूपे रौषिकानलं पत पत फेरुमुखि योगिनीडाकिनीखेचरीभूचरी सु (ख) रूपिणि चक्रसुन्दरि महाकालि कापालि रीं णीं (थ्रीं) रक्ष्रां कह कह त्वां प्रपद्ये तुभ्यं नमः स्वाहा वजकालि, ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धियोनि महाराविणि परम गुह्यातिगुह्यमङ्गले विद्याकालि ब्लां हफ्रीं फ्रीं भ्रीं स्क्रीं (स्कीं) (चान्तस्थः कान्त एव च) रछ्रूं ज्रूं प्रीं छ्रीं धीवरीस्वरूपिणि शवरी पीवरी चर्चिके भक्षिके रक्षिके हें जां ठः ठः ठः फट् फट् फट् विद्याकालि, ओं आं ईं ऐं प्रीं थ्रीं ग्रीं स्त्रूं भ्रैं म्लौं खूं छूं टूं भ्रीं यं यां यिं यीं युं यूं यृं यॄं य्लृं यें यैं यों यौं यः भौं स्वाहा शक्तिकालि, ओं हसखफ्रें नमश्चण्डातिचण्डे मायाकालि कालवञ्चनि महाङ्कुशे (नन्दनकूटं)... पातालनागवाहिनि गगनग्रासिनि ब्रह्माण्डनिष्पेषिणि हं हं हं नमो नमो नमः हूं हूं हूं ओं ह्रीं हूं क्रैं ख्फ्रें महाचण्डवज्रिणि भ्रमरि भ्रामरि महाशक्तिचक्रकर्तरीकुलार्णव चारिणी फि फां फें फूं फौं समय विद्यागोपिनि (किरीटीकूट)... म्लब्भ्रमीं स्हक्ष्लमहजूं महाकालि समयलाभं कुरु कुरु विद्यां प्रकाशय प्रकाशय क्रां ह्रीं क्रौं क्रैं ह्रौं क्रं क्रः फट् स्वाहा महाकालि, ऐं परापररहस्यसाधिके कुलकालि फ्रें छ्रीं स्त्रीं ह्रीं हूं क्लीं ग्लूं हफ्रीं मक्षौः फट् फट् फट् कुलकालि, ओं ह्रीं क्लीं हूं फ्रें परापरपरमरहस्यकालिकुलक्रमपरम्पराप्रचारिणि भगवति नादकालि करालरूपिणि डलखलहक्षमखव्रूँ (?) फ्रें ख्फ्रें हसँफ्रीं हसखफ्रें मम शत्रून् मर्दय मर्दय चूर्णय चूर्णय पातय पातय नाशय नाशय भक्षय भक्षय सखक्लक्ष्मध्रयब्लीं ज्लकहलक्षव्रमथ्रीं सहलक्षव्रठक्षीं (शृङ्खलाकूट)...

(दण्डकूट)... नवकोटिकुलाकुलचक्रेश्वरि सकलगुह्यानन्ततत्त्वधारिणि कूं चूं टूं तूं पूं मां कृपय कृपय ह्रीं हूं फ्रें छ्रीं स्त्रीं फट् स्वाहा नादकालि ओं फ्रें चतुरशीतिकोटि-ब्रह्माण्डसृष्टिकारिणि प्रज्वलज्ज्वलनलोचने वज्रसमदंष्ट्रायुधे दुर्निरीक्ष्याकारे भगवति मुण्डकालि कह कह तुरु तुरु दम दम चट चट प्रचट प्रचट (हरिहराख्यं तत्कूटं)... (कूटं कूटाख्यमेव च)... (पत्रकूटं)... सर्वसिद्धिं देहि देहि सर्वैश्वर्यं दापय दापय विद्युदुज्ज्वलजटे विकटसटे महाविकटकटे ह्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें नमः ठः ठः मुण्डकालि, ओं ऐं आं श्रीं क्लीं ह्रीं क्षूं ब्लीं स्हफ्यूं औं क्वीं धूमकालि सर्वमेव मे वशं कुरु कुरु पाहि पाहि जम्भिके करालिके पूतिके घोणिके खं खं खं फट् नमः धूमकालि, ऐं क्रों फ्रें छ्रीं क्लीं आज्ञाकालि ममाज्ञां राजानः शिरसा धारयन्तु हूं फट् स्वाहा आज्ञाकालि, ओं ह्रीं क्रौं ड्रीं ड्रूं तिग्मकालि तिग्मरूपे तिग्मातितिग्मे भ्रमं मोचय स्वं प्रकाशय स्वाहा तिग्मकालि, ओं ऐं ह्रीं छ्रीं स्त्रीं फ्रें श्रीं क्लीं हूं महाकालि लेलिहानरसनाभयानके घोरतरदशनचर्वितब्रह्माण्डे चण्डयोगीश्वरीशक्तितत्त्वसहिते गां जां डां दां रां प्रचण्डचण्डिनि (सद्योधने?) महामारीसहायिनि भगवति भयानके चामुण्डा-योगिनीडाकिनीशाकिनीभैरवी मातृगणमध्यगे जय जय कह कह हस हस प्रहस प्रहस जम्भ जम्भ तुरु तुरु धाव धाव श्मशानवासिनि शववाहिनि नरमांसभोजिनि कङ्काल-मालिनि फ्रें फ्रें फ्रें तुभ्यं नमो नमः स्वाहा महारात्रिकालि, हसखफ्रें भगवति सङ्ग्राम-कालि सङ्ग्रामे जयं देहि देहि मां द्विषतो मम वशे कुरु कुरु पां पीं पूं पैं पौं ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल विद्युत्केशि पातालनयनि ब्रह्माण्डोदरि महोत्पातं प्रशमय प्रशमय ह्रीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें नमः ठः ठः सङ्ग्रामकालि, ऐं फ्रें छ्रीं हूं क्षौं नक्षत्रनरमुण्डमाला-लङ्कृतायै चतुर्दशभुवनसेवितपादपद्मायै भगवत्यै शवकालिकायै यूं रूं लूं वूं शूं षूं सूं हूं क्षूं दुष्टग्रहनाशिन्यै शुभफलदायिन्यै रुद्रासनायै रह्रीं रयक्ष्रीं हं हं हं खं खं खं हूं हूं हूं डं डं डं फट् फट् फट् नमः ठः ठः शवकालि, ऐं ह्रीं क्रीं क्रीं क्रूं क्रें क्रैं क्रों क्रौं (पूर्व सन्ध्यक्षरैर्हीनं नाद हीनं तथा प्रिये?) क्ष्रां क्ष्रीं क्ष्रूं क्ष्रैं क्ष्रौं क्षः वमदग्निमुखि फेरूकोटिपरिवृते विस्रस्तजटाभारे भगवति नग्नकालि रक्ष रक्ष पाहि पाहि परमशिव-पर्यङ्कनिवासिनि ग्रीं घ्रीं ज्रीं झ्रीं ड्रीं ढ्रीं द्रीं ध्रीं ब्रीं भ्रीं विकरालमूर्तिकतामुपहृत्य दर्शय हूं नमः स्वाहा नग्नकालि, आं क्रों ऐं स्हौः (सर्गहीनं प्रेतबीजं त्रस्थनादकलान्वितम्?) भ्रूं डूं ल्यूं ब्नै रूधिरकालिकायै निपीतबालनररुधिरायै त्वगस्थिचर्मावशिष्टायै महाश्मशान-धावनप्रचलितपिङ्गजटाभारायै खौं थ्रौं च्रौं फ्रौं खौं ममाभीष्टसिद्धिं देहि देहि वितर वितर हूं डाकिनि राकिनि शाकिनि काकिनि लाकिनि हाकिनि सद्योधनानि नररुधिरं पिब पिब महामांसं खाद खाद ऐं ओं श्रीं ह्रीं क्लीं हूं फ्रें छ्रीं स्त्रीं फट् ठः ठः रुधिरकालि, क्रीं करङ्कधारिणि कङ्कालकालि प्रसीद प्रसीद विद्यामावाहयामि तवाज्ञया समागत्य मयि चिरं तिष्ठतु ठः ठः कङ्कालकालि, ओं ऐं श्रीं आं ऊं ह्रीं क्लीं हूं फ्रें... (आतिचामुण्डा) क्लीं भगवति भयङ्करकालि त्रैलोक्यदुर्निरीक्ष्यरूपे नवकोटिभैरवीचामुण्डाशतकोटिपरिवृते मम द्विषतो हन हन मथ मथ पच पच विद्रावय विद्रावय पातय पातय निःशेषय निःशेषय रह्रीं ह्रां ह्रीं हूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं नमः फट् भयङ्करकालि, ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ध्रीं

स्त्रीं फ्रें (त्र्हं?)... (भस्मली) (पाशहीनं भस्मबीजं षष्ठस्वरविभूषितम्)... टूं (तदेव वाग्भवयुतं?)... टें रं रां रिं रीं रुं रूं रलं रलूं रें रैं रों रौं रं रः फं शं क्षरह्रीं म्ररक्ष्रीं रक्ष्रीं स्वाहा फेरुकालि, ऐं हुं प्रण्डाक्षिवितते विकटकालि फां फीं फूं रहैं रहैं स्कीः स्कीः त्रुट त्रुट नमः ठः ठः विकटकालि क्रं हूं आये माये ताये प्रचण्डचण्डे रक्षिणि भक्षिणि दक्षिणि ठः ठः करालकालि, ओं फ्रें सर्वभयप्रदे सर्वसम्पत्प्रदे चटिनि वटिनि कटिनि स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर ग्रां ग्रीं ग्रूं ग्रौं ग्रः नमः स्वाहा, फ्रें ख्फ्रें ओं ऐं आं क्रों क्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें ध्रीं क्रूं श्रूं क्रौं घोरघोरतरकालि ब्रह्माण्डवर्हिणि निर्गतमस्तके जटाविधूननचकिततपोलोके ज्वालामालिनि सम्मोहिनि संहारिणि सन्तारिणि क्लां क्लीं क्लूं बलिं गृह्ण गृह्ण खादय खादय भक्ष भक्ष सिद्धिं देहि देहि मम शत्रून् नाशय नाशय मथ मथ विद्रावय विद्रावय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय जम्भय जम्भय स्फोटय स्फोटय विध्वंसय विध्वंसय उच्चाटयोच्चाटय हर हर तुरु तुरु दम दम मर्द मर्द भस्मीकुरु भस्मीकुरु सर्वभूतभयङ्करि सर्वशत्रुक्षयङ्करि फ्रें ख्फ्रें हसफ्रीं हसख्फ्रें सर्वजनसर्वेन्द्रियहारिणि त्रिभुवनमारिणि संसारतारिणि स्फ्रें स्फौं ग्रौं क्ष्रौं म्लैं क्लीं ब्लीं श्रीं प्रसीद भगवति नमः स्वाहा, ह्रीं हूं क्लीं छ्रीं घोरघोरतकालि ह्रीं फ्रें क्रों ग्लूं छ्रीं स्त्रीं हूं स्फ्रों ख्फ्रें हसफ्रीं हसखफ्रें क्रै स्हौः फट् स्वाहा कामकलाकालि, ख्फ्रें रह्रीं रज्रीं रक्रीं रक्ष्रीं रछ्रीं यहसखफ्रीं फट् कामकलाकालि, ...(परा) हूं फट् फ्रें कामकलाकालिकायै नमः स्वाहा कामकलाकालि क्रों स्फ्रों फ्रें ख्फ्रें हूं कामकलाकालि, क्लीं क्रीं हूं क्रों स्फ्रों कामकलाकालि स्फ्रों क्रों हूं क्रीं क्लीं स्वाहा कामकलाकालि सर्वशक्तिमयशरीरे सर्वमन्त्रमयविग्रहे महासौम्यमहाघोररूपधारिणि भगवति कामकलाकालि क्रः श्रीं क्लीं ऐं आं क्रों हूं छ्रीं स्त्रीं फ्रें ख्फ्रें क्रैं स्फ्रौं रक्ष्रीं वं रह्रीं क्षह्रम्लव्य्रऊँ म्लक्षकसहहूं ह्रस्लहसकह्रीं स्हजहलक्षम्लवनऊँ सग्लक्षमहरहूं हूं हूं हूं फट् फट् नमः स्वाहा—

[कामकलाकाल्याः अयुताक्षरमन्त्रस्य फलश्रुतिः]

देव्याः कामकलाकाल्याः सर्वसिद्धिप्रदायिका ॥ ६२७ ॥
अस्याः स्मरणमात्रेण नासाध्यं भुवि विद्यते ।
रावणं हतवान् देवि सञ्जप्य राघवः पुरा ॥ ६२८ ॥
हिरण्यकशिपुं दैत्यं जघान परमेश्वरः ।
एवं सञ्जप्य देवेशि त्रिपुरं हतवान् हरः ॥ ६२९ ॥
कार्त्तवीर्य्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रभृत् ।
त्रैलोक्यविजयी वीरो मनोरस्यप्रसादतः ॥ ६३० ॥
मनोरस्य प्रसादेन कुबेरोऽभूद्धनाधिपः ।
मनोरस्य प्रसादेन अमरेशः शचीपतिः ॥ ६३१ ॥
मनोरस्य प्रभावश्च बहु किं कथ्यते त्वयि ।
कीर्त्यर्थी कीर्त्तिं लभते धनार्थी लभते धनम् ॥ ६३२ ॥
राज्यार्थी राज्यं लभते यशोऽर्थी लभते यशः ।

विद्यार्थी लभते विद्यां मुक्त्यर्थी मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ६३३ ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं दारार्थी दारमाप्नुयात् ।
षष्ठकालीं च सम्पूज्य सञ्जप्य मनुमुत्तमम् ॥ ६३४ ॥
यद्यद्वाञ्छति यल्लोकस्तत्तदाप्नोति सत्वरम् ।
यथा चिन्तामणिर्देवि यथा कल्पद्रुमस्तरुः ॥ ६३५ ॥
यथा रत्नाकरः सिन्धुः सुरभिश्च यथा धेनुः ।
तथाशुफलदो देवि मन्त्रोऽयुताक्षरः सदा ॥ ६३६ ॥

अयुताक्षरमन्त्र के जप का फल—हे देवि ! यह मैंने तुमको कामकलाकाली का सर्वसिद्धिप्रदायक प्राणायुताक्षर मन्त्र बतलाया । इसके स्मरणमात्र से इस पृथिवी पर कुछ भी असाध्य नहीं है । हे देवि ! प्राचीनकाल में राघव रामचन्द्र ने इसका जप कर रावण का वध किया था । परमेश्वर ने हिरण्यकशिपु दैत्य को मारा था । हे देवेशि ! इसी प्रकार जप कर भगवान् शङ्कर ने त्रिपुर का नाश किया था । सहस्रबाहुधारण करने वाले वीर कार्त्तवीर्यार्जुन नामक राजा इस मन्त्र के प्रभाव से त्रैलोक्यविजयी हुए थे । इसी मन्त्र के प्रभाव से कुबेर धन के स्वामी बने । शचीपति इन्द्र इसके प्रभाव से देवताओं के ईश हुए । इस मन्त्र का बहुत प्रभाव बतलाया गया है । तुमसे क्या कहा जाय । कीर्त्ति चाहने वाला कीर्त्ति, धन चाहने वाला धन, यशोऽर्थी यश, विद्यार्थी विद्या, मुक्त्यर्थी मुक्ति, पुत्रार्थी पुत्र और दारार्थी दारा प्राप्त करता है । षष्ठकाली अर्थात् कामकलाकाली की पूजा और इस उत्तम मन्त्र का जप कर मनुष्य जो-जो चाहता है वह शीघ्र ही प्राप्त करता है । हे देवि ! जिस प्रकार चिन्तामणि (दिव्यमणि अथवा मन्त्र), कल्पद्रुम वृक्ष, रत्नाकर सिन्धु तथा सुरभि गाय है, उसी प्रकार यह अयुताक्षर मन्त्र सदा शीघ्र फल देने वाला है ॥ ६२७-६३६ ॥

देव्याः कामकलाकाल्याः सर्वं निगदितं तव ।
नित्यार्चनं जपं चैव स्तोत्रं कवचमेव च ॥ ६३७ ॥
सहस्रनामस्तोत्रं च तस्य गद्यमनुत्तमम् ।
पूजाकाले न्यासादिकं सर्वं निगदितं त्वयि ॥ ६३८ ॥
तव स्नेहेन देवेशि सर्वमेतत्प्रकाशितम् ।
अतिगुह्यतमं देवि न प्रकाश्यं कदाचन ॥ ६३९ ॥
मा प्रकाशय देवेशि शपथे तिष्ठ सर्वदा ।
अधुना किं श्रवणेच्छा ते तन्मे कथय पार्वति ॥ ६४० ॥

॥ इत्यादिनाथविरचितायां पञ्चशतसाहस्र्यां महाकालसंहितायां
श्रीकामकलाकाल्याः प्राणायुताक्षरीमन्त्रोद्धारो नाम पञ्चदशतमः पटलः ।
समाप्तश्चायं कामकलाकाल्याः सपर्य्यापर्य्यायः ॥ १५ ॥

शुभमस्तु

मैंने कामकलाकाली के विषय में सब कुछ तुम्हें बतला दिया । नित्यपूजा जप स्तोत्र कवच सहस्रनाम स्तोत्र उसका गद्य पूजाकाल में न्यास आदि सब तुम्हें बतला दिया गया । हे देवेशि ! तुम्हारे प्रेम के कारण यह सब प्रकाशित किया गया । हे देवि ! यह अतिगुह्य है । इसका कभी भी प्रकाशन नहीं करना चाहिये । हे देवि ! इसका कभी भी प्रकाशन मत करना, सर्वदा शपथ में रहना । हे पार्वति ! अब क्या सुनने की इच्छा है वह मुझे बताओ ॥ ६३७-६४० ॥

॥ इस प्रकार श्रीमद् आदिनाथविरचित पचास हजार श्लोकों वाली महाकाल-संहिता के कामकलाकाली खण्ड के प्राणायुताक्षरीमन्त्रोद्धार नामक पञ्चदश पटल की आचार्य राधेश्यामचतुर्वेदीकृत 'ज्ञानवती' हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥ १५ ॥

...❀...

परिशिष्ट (१)

पारिभाषिक शब्दकोश

अनङ्गगन्ध—अठारह वर्ष अथवा उससे कम आयु की स्त्री का प्रथम दिन का आर्त्तव रक्त ।

अन्तरात्मा—पञ्चतन्मात्र मन बुद्धि और अहङ्कार रूप पुर्यष्टक के साथ समस्त योनियों में शुभ-अशुभ कर्म से बँधा तथा नाना योनियों में भटकने वाला जीव ।

अर्घ्य—देवता या विशिष्ट महापुरुष के सत्कार के लिये एकत्रित सामग्री । इसमें जल गन्ध चन्दन पुष्प फल दूर्वा दक्षिणा आदि वस्तुयें संगृहीत होती हैं ।

आत्मा—प्रधान अर्थात् प्रकृति तत्त्व के साथ साम्य स्थापित कर सुख दुःख से रहित जीव ।

आधार—इसे मूलाधार चक्र कहते हैं । यह लिङ्ग के मूल में स्थित होता है । यहाँ चतुर्दल कमल की कल्पना है । यह पृथ्वी तत्त्व का प्रतीक है ।

आवरण—प्रधान देवता के चारो ओर आगे पीछे कई पंक्तियों में विराजमान उनके सहवासी या अङ्गभूत देवता आदि ।

इडा—कन्द से निकल कर रीढ़ की हड्डी के बाँयीं ओर ऊपर चलने वाली मुख्य नाडी जो बाँयें नासारन्ध्र में पहुँचकर समाप्त हो जाती है । इसे चन्द्र नाडी भी कहते हैं ।

कन्द—नाभि के नीचे तथा लिङ्गमूल के ऊपर स्थित पक्षी के अण्डे के समान वह मांसपिण्ड जहाँ से ७२००० नाड़ियाँ निकल कर सम्पूर्ण शरीर को व्याप्त करती हैं ।

कवच—वह मन्त्र अथवा स्तोत्र जिसके द्वारा साधक देवताओं से तत्तत् अङ्गों की रक्षा के लिए याचना कर अपने को सुरक्षित करता है ।

कामकला—कामेश्वर (शिव) से अभिन्न उसकी विमर्श शक्ति । महात्रिपुरसुन्दरी का नामान्तर ।

काली—पार्वती की उपाधि या शिव की पत्नी का नाम ।

कुबेर—धन के देवता । ये रावण के बड़े भाई हैं तथा उत्तर दिशा में अधिष्ठातृ रूप में विराजमान रहते हैं ।

चतुर्भद्र—धर्म अर्थ काम मोक्ष ।

चतुर्वर्ग—धर्म अर्थ काम मोक्ष ।

चन्द्रहास खड्ग—रावण की तलवार का नाम ।

डाकिनी—यह देवी रक्तवर्ण चतुर्बाहु द्वादश सूर्य के सदृश देदीप्यमान मूलाधार चक्र में निवास करती हैं । पक्षान्तर में यह एक प्रकार की आसुरी शक्ति या आत्मा है, जिसे भूतिनी भी कहते हैं । यह बच्चों तथा स्त्रियों को अभिभूत कर कष्ट पहुँचाती है ।

तीर्थ—सुरा । गुड़, अन्न, फल आदि अनेक प्रकार के द्रव्यों से बनायी गयी यह अनेक प्रकार की होती है ।

परमात्मा—त्रिविध मलों, कर्म, कला से रहित तथा देशाध्वा कालाध्वा से परे निर्मल जीव ।

परमीकरण—किसी भी पदार्थ या व्यक्ति को संस्कार के द्वारा परमेश्वर सदृश अत्यन्त उत्कृष्ट बनाना ।

पिङ्गला—कन्द से निकल कर रीढ़ की हड्डी के दायीं ओर ऊपर चलने वाली मुख्य नाड़ी जो दाँयें नासारन्ध्र मे जाकर समाप्त हो जाती है । इसे सूर्य नाड़ी भी कहते हैं ।

पुरश्चरण—किसी मन्त्र में जितने अक्षर होते हैं । उस मन्त्र का उतने हजार जप लघु पुरश्चरण तथा उतने लाख जप का वृहत् पुरश्चरण होता है । पुरश्चरण की एक निश्चित प्रक्रिया होती है ।

बलि—किसी भी देवता या असुर के लिये पूजा के अन्त में अर्पणीय वस्तु । यह पशु-पक्षी उनका मांस या अन्न आदि कुछ भी हो सकता है । भक्त प्रह्लाद के पुत्र विरोचन के पुत्र का नाम ।

बाणासुर—राजा बलि का पुत्र । माहेश्वर (मध्य प्रदेश) में इसका मन्दिर नर्मदा नदी के मध्य में स्थित है ।

बाह्यात्मा—स्थूल देह से संसक्त तथा रूप रस आदि विषयों का भोग करने वाला जीव ।

ब्रह्मा—ये सत्यलोक में रहते हैं । प्रजापति के नाम से अंशतः अवतीर्ण होकर ये संसार की सृष्टि करते रहते हैं । देवताओं के एक सौ वर्ष का इनका एक दिन होता है । इस परिमाण से इनकी आयु १०० वर्ष की होती है ।

निरात्मा—स्थूल सूक्ष्म भूतों से अप्रभावित तथा मायीय मल से युक्त जीव ।

मधुपर्क—दही, घी और मधु का मिश्रण (दध्ना मधुसर्पिम्यां मधुपर्क इहोच्यते) । वाममार्ग मे पशु का रक्त-मांस आदि ।

मणिपुर—यह चक्र अग्नितत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है । इसकी स्थिति स्वाधिष्ठान के ऊपर है । यह दशदल चक्र है ।

मन्त्र—वे अक्षर या अक्षरसमूह जो किसी सिद्धपुरुष द्वारा प्रवर्तित किये जाते हैं। उनमे वर्णों या शब्दों का परिवर्तन नहीं हो सकता। ये अक्षरसमूह दिव्य शक्ति से सञ्चालित होते हैं।

मलमास—हिन्दू पञ्चाङ्ग में मास की व्यवस्था चन्द्रमा के उदयास्त की दृष्टि से की गयी है। उसके अनुसार प्रत्येक तीसरे वर्ष में एक महीना बढ़ जाता है इस प्रकार वह वर्ष तेरह महीनों का होता है। यह पूर्ववर्ती दो वर्षों का अवशिष्ट काल होता है। किसी भी महीने के कृष्ण पक्ष के बाद से प्रारम्भ होकर शुक्ल कृष्ण दो पक्षों का यह मास पुरुषोत्तम मास भी कहा जाता है।

महाकाल—शिव का दूसरा नाम। प्रलयकर्त्ता के रूप में शिव का एक रूप।

महाशङ्ख—मनुष्य की खोपड़ी।

मातृका—'अ' से लेकर 'क्ष' तक का वर्णसमूह। यह परा संवित् का ही रूपान्तर है। 'मातृ' शब्द से अज्ञात अर्थ में 'कन्' प्रत्यय जोड़कर 'मातृका' शब्द निष्पन्न हुआ है। अज्ञाता माता = मातृका। आदि क्षान्त वर्णों का वास्तविक स्वरूप सामान्य लोगों को ज्ञात नहीं होता।

मुद्रा—१. शरीर अथवा अङ्गों का विशेष रूप से तोड़ना या मरोड़ना। जैसे—योगमुद्रा, जालन्धरमुद्रा, शङ्खमुद्रा, पल्लवमुद्रा आदि। २. भुना या तला खाद्य पदार्थ जो सुरा के साथ खाया जाता है।

योगिनी—शिव या दुर्गा की सेविकायें। इनकी संख्या आठ है।

यक्षिणी—दुर्गा देवी की सेवा में रहनें वाली विशेष प्रकार की स्त्रियाँ। कभी-कभी ये मृत्युलोक में पुरुषों से भी सम्बन्ध रखती हैं।

विशुद्ध—इसे शाकिनी भी कहते हैं। यह चक्र कण्ठ मे स्थित है और सोलह दलों वाला है। इसे आकाश तत्त्व का प्रतीक मानते हैं।

वज्र—देवराज इन्द्र का अस्त्र जिसे महर्षि दधीचि की हड्डियों से बनाया गया था।

वरुण—जल तत्त्व के अधिष्ठातृ देव। इनकी दिशा पश्चिम है जिसमें ये विराजमान रहते हैं।

वसु—ये ऊर्ध्व लोक में रहने वाले देवता हैं। इनकी संख्या आठ है। महाभारत के भीष्मपितामह आठवें वसु के अवतार थे।

शक्ति—वह स्त्री जो वाममार्गी साधना में मैथुन के लिये प्रयुक्त होती है।

शाकिनी—एक प्रकार की आसुरी या पिशाचिनी या परी जो कि दुर्गा की सेविका होती है।

षडङ्गन्यास—हृदय, शिर, शिखा, दोनों भुजायें, तीनों नेत्र और सम्पूर्ण शरीर। ये छह अङ्ग न्यास के लिये माने गये हैं। इसमें मन्त्र या बीजाक्षर का उच्चारण

करते हुए सम्बद्ध देवता का आवाहन किया जाता है ।

समित्—हवन आदि कार्यो के लिये शिष्यों के द्वारा जङ्गल से लायी गयी लकड़ी आदि ।

सामरस्य—चक्रों का भेदन करने के बाद अथवा अन्य उपायों के द्वारा अत्यन्त निर्मल होकर जीव का शिवशक्ति स्वरूप होना ।

स्वाधिष्ठान—मूलाधार के ऊपर वर्त्तमान छह दलों वाला चक्र । यह जल तत्त्व का प्रतीक माना जाता है । यह चक्र मूत्राशय के आस पास स्थित है । इस चक्र का भेदन करते समय कामवासना सर्वाधिक उद्दीप्त होती है ।

सुषुम्ना—यह नाड़ी भी कन्द से निकलती है और रीढ़ की अँड़तीस हड्डियों के बीच से होकर ऊपर जाती है । आगे चलकर यह दो भागों मे बँट जाती है । एक भाग आज्ञाचक्र में और दूसरा सहस्त्रार में चला जाता है । समाधिस्थ योगी का प्राणवायु इसी में सञ्चरण करता रहता है । इसे मध्यनाड़ी भी कहते हैं ।

सदाशिव—परमेश्वर का तीसरा अवतार । इनमें माया का स्पर्श नहीं रहता । ये सदा परमेश्वर के ध्यान में मग्न रहते हुए सृष्टि का सञ्चालन करते रहते हैं । इन्हें सर्वदा 'अहम्' का ही बोध होता है । ये आणव भक्त से अल्पमात्रा में संश्लिष्ट रहते हैं ।

स्वयम्भू पुष्प—किसी भी स्त्री का प्रथम दिन का आर्त्तव रक्त ।

...❀...

परिशिष्ट (२)

बीज-कूट अनुक्रमणिका

अग्निः—रं
अग्निजाया—स्वाहा
अग्निवल्लभा—स्वाहा
अग्निस्त्री—स्वाहा
अग्न्यङ्गना—स्वाहा
अङ्कुशः—क्रों
अङ्गना—स्त्रीं
अतिचण्डः—(?)
अतिचण्डाः—(?)
अतिप्रेतः—(?)
अधरः—ऐं
अधोदतः—ओं
अधोदन्तः—ओं
अधोरदः—ओं
अध्वा—हां
अनङ्गः—क्लीं
अनन्तः—ख्रैं
अनलभामिनी—स्वाहा
अनलाङ्गना—स्वाहा
अनाख्या—(कूटः) क्षस्हम्लवयरऊँ
अनाहत—हसखफ्रां
अनेहसः—जूं
अप्सरसः—गां
अबला—स्त्रीं
अमरः—य्लैं
अमृतम्—ग्लूं
अमृतम् कूटः—(?)
अश्वमेधः (कूटः) ह्स्लहसकह्रीं
असूया—णीं

अस्त्रम्—फट्
अस्थिभेदी—ठं
आकाशः—हं
आगमः—ओं (?)
आगमशीर्षः—ओं
आग्नेयः (कूटः) रक्षम्लह्कसछ्व्रऊं
आग्नेयास्त्रम् (उपकूटः)—रम्लव्रीं
आज्ञा (कूटः)—क्षरहम्लव्र्ईऊं
क्षस्हम्लव्र्ईऊं
आनन्दः (कूटः)—स्हलकह्क्ष्रूं
आनन्दः—भ्रूं
आद्य (सृष्टिबीजम्)—हसखफ्रूं
आधारः—म्रैं
आमर्षः—हूं
आमृतम्—ग्लूं
आस्यम्—आं
इन्द्रः (बीजम्)—(इ।लं)
इन्द्रः (कूटः) रक्षलह्मसहकब्रूं, लम्लब्रीं
इन्द्रस्वरः—औं
इष्टिः (कूटः)—(?)
इष्टिः—रश्रीं
ईशः (कूटः)
ईशानः (कूटः)—व्रकम्लब्लक्लऊं
इर्ष्या—वीं
उग्रः—ह्रीं
उत्तमाङ्गम्—स्वाहा
उदुम्बरः—म्रीं
उमा (कूटः)—(?)
उर्ध्वदन्तः—ओ

चतुर्थस्वरः—ई
चतुर्दशस्वरः—औ
चन्द्रः—ग्लौं
चन्द्रः (कूटः)—सकहलमक्षखब्रूं
चामुण्डा—क्रैं
चामुण्डा (कूटः)—(चछयवब्रीं)
चूडा—स्वाहा/वषट्
चूडामणिः—रझीं, रक्रीं
चैतन्यम्—ऐं
जम्भः—रफ्रीं
जयः—क्रं
जलदः—क्लौं
जाया—स्त्रीं
ज्येष्ठः—द्रूं
डाकिनी—ख्फ्रें
डाकिनी (कूटः)—मह्लक्ष्लब्य्रऊं
तत्त्वम्—स्हें
तडित्—ब्लौं
ताण्डवी (कूटः)—म्लब्रमई
तात्पुरुषः (कूटः)—क्षमब्लहकयह्रीं
तापिनी—म्रां
तारः—ओं
तारकः—ओं, रां
तार्तीयकः—(ह्सौं/ह्सौः/सौं)
तुङ्गः—रज्रीं
तुङ्गः (कूटः)—(?)
तृतीयः—(ल)
त्रपा—ह्रीं
त्रिकूटा—ल्यूं
त्रिपुटा—प्लूं
त्रिशक्तिः—क्रूं
त्रिशिखा—क्रीं
त्रिशूलः (कूटः)—(?)
त्रेता—ह्स्ख्फ्रैं
त्वरिता (कूटः)—(?)
त्वष्टा—क्रश्रौं
दक्षनेत्रकम्—इं
दक्षस्कन्धः—क
दक्षिणचक्षुः—इं
दक्षिणा—रफ्रें
दण्डः—ह्रां
दस्रः—ब्लीं
दानवः—श्रीं
दिवाकरः (कूटः)—म्लकह्लक्षरस्त्रीं
(अथवा) नटक्षटक्षब्य्रईऊँ
दीर्घतनुच्छदः (कवचम्)—हूं
द्रावणः—हभ्रीं
द्वादशाहः (कूटः)—क्षलह्लक्षम्लब्रीं
द्वादशिका—ऐ
धनदा—क्ष्रूं
धरा—लं
धरा (कूटः)—ग्लक्षकमह्लब्य्रऊँ
धर्मः—क्रैं
धर्म्यः—(ञ/ध)
धृतिः—क्ष्रौः
ध्यानम्—वूः
ध्रुवः—यौं
नकुलीशः— हं
नक्षत्रम्—ब्लैं
नक्षत्रम् (कूटः)—(?)
नन्दनम्—ह्लौं (?)
नभः—हं
ना—पां
नाकुलम्—त्रीं
नागः—व्रीं, तां
नादः—अं
नारसिंहः—क्ष्रौं
नाळीकम्—क्षरस्त्रीं
निरञ्जनम्—स्हीं
निर्मलम्—ज्लूं

मनः (कूटः)—डलखलहक्षखमब्रऊं
मनोभूः—क्लीं
मन्मथः—क्लीं
महद्—पूं
महती—(?)
महाकालः—(हूं?)
महाक्रोधः—क्षूं
महापुरुषः—(?)
महाप्रलयः—(?)
महाप्रेतः—(ह्सहौं?)
महाबीजम्—क्ष्रूं
महारुद्रान्तमस्तकः—(?)
महारुषः—क्षूं
महाव्रतम् (कूटः)—स्हक्ष्मह्लक्षग्लीं
महासूया—क्षूं, णूं (?)
महासेनः—(?)
मही—लं
मा—श्रीं
मातृका—पौं
माता—पौं
मानसम्—ट्रीं
माया—ह्रीं
मायिकः—ह्रीं
मारः—क्लीं
मारः (कूटः)—(?)
मार्जारः (कूटः)—(?)
माहेन्द्रः (कूटः)—(?)
माहेश्वरः (कूटः)—क्लवह्लण्कह्लनसक्लईं
मीनकेतनः—क्लीं
मीनध्वजः—क्लीं
मुक्ता—क्ष्रीं
मुखम्—आं
मेखला—रक्ष्रीं
मेघः—क्लौं
मेदिनी—लं
मेधा—ऐं
मैधः—ऐं
यक्षः—क्ष्लौं
याभ्यम् (कूटः)—हम्लब्रीं
योगः—रध्रूं
योगिनी—छ्रीं
योगिनी (कूटः)—(?)
योषित्—स्त्रीं
रतिः—क्लूं
रतिप्रियः—क्रलौं
रथन्तरः—म्रूं
रामा—स्त्रीं
रावः—फ्रें
रुक्—हूं
रुद्रः—फहलक्षां, द्रैं
रुद्रस्वरः—ए
रुषः—हूं
रोषः—हूं
रौद्रः—द्रैं
रौद्रकः—द्रैं
रौद्रः (कूटः)—सहठलक्षह्लमक्रीं
लक्ष्मी—श्रीं
लज्जका—ह्रीं
लज्जा—ह्रीं
लाङ्गूलम्—ह्फ्रीं
वक्त्रम्—भ्रीं, आं
वगला (कूटः)—(ह्लीं?)
वज्रम्—स्त्रीं
वधूः (कूटः)—(?)
वनिता—स्त्रीं
वराहः (कूटः)—म्लक्षकसहहूं
वह्निः—रं
वह्निकामिनी—स्वाहा
वह्निनारी—स्वाहा
वह्निनितम्बिनी—स्वाहा

सर्पः (कूटः)—म्लकह्लक्षरस्त्रैं
संविद्—फें
संहारः—हसफ्रौं
सानुः—रह्रीं
सानुः (कूटः)—(?)
सारङ्ग (कूटः)—(?)
सारस्वतम्—ऐं
सार्मः—क्रों
सिद्धः (कूटः)—ख्लह्लवनगक्षरछ्रीं
सिद्धिः—क्रां
सिंहः—णूं
सुदर्शनः—स्कीं
सुधा—ग्लूं
सुन्दरी—स्त्रीं
सुरतपिनी—(?)
सूर्यः—सः
सृणिः—क्रों
सृष्टिः—हस्खफ्रूं
सृष्टिः (कूटः)—रक्षखरऊं
सोमः—सकह्लमक्षखव्रूं
सौत्रामणिः (कूटः)—ग्लरक्षफ्रथरक्लीं
सौपर्णः—क्रौं
स्त्री—स्त्रीं
स्थाणुः—उं
स्थितिः (कूटः)—रक्षक्रूं
स्मरः—क्लीं
स्वर्णम् (कूटः)—क्लीं भ्रीं घ्रीं
सुवर्णम् (कूटः)—क्लीं भ्रीं घ्रीं
हयग्रीवः—क्रूं
हरपत्नी—क्रः
हराङ्गना—क्रः
हरिजाया—श्रीं
हरिपुत्री—क्लीं
हरिसुन्दरी—श्रीं
हर्षः—हें
हंसः (कूटः)—ब्लहतह्नसचैं
हंसी (कूटः)—(?)
हाकिनी—रक्षश्रीं
हारः—ह्लक्षम्लैं
हार्दम्—नमः
हिरण्यगर्भः (कूटः)—क्षस्हम्लव्रईं
हृत्—नमः
हृदयम्—नमः
हृल्लेखा—(?)
हेतुः—ऐं
ह्रीः—ह्रीं

...❧❀❧...

परिशिष्ट (३)

ग्रन्थान्तरे समुद्धृता महाकालसंहिताश्लोकाः

खिष्टीयषोडशतमशतकस्योत्तरार्द्धभवो मैथिलस्तन्त्रविन्नरसिंहठक्कुरस्तारा-भक्तिसुधार्णवे विविधेषु प्रसङ्गेषु प्रमाणतया महाकालसंहितायाः श्लोकानुद्धरति । एवं पुरश्चर्यार्णवेऽष्टादशतमशतकभवे नेपालभूपालाज्ञया प्रणीते तान्त्रिकविषयसंग्रहात्मके ग्रन्थे महाकालसंहिताश्लोकाः समुल्लिखिता उपलभ्यन्ते । तस्मान् मिथिलायाँ नेपाले च तदानीं महाकालसंहितायाः प्रसिद्धिः प्रचारश्च निश्चीयेते ।

कालक्रममनुसृत्येह ताराभक्तिसुधार्णवे पुरश्चर्यार्णवे समागतानि महाकाल-संहितापद्यानि संगृह्यन्ते—

(क) ताराभक्तिसुधार्णवस्य द्वितीयतरङ्गे मन्त्रग्रहणनियमप्रकरणेऽभिहितं महाकालसंहितावचनम्—

न शास्त्रमालोक्य वदेन्नाचरेन्न जपेदपि ।
न पश्येन्नोपदिश्याच्च न कुर्यान्नैव साधयेत् ॥
गुरूपदेशतो लब्ध्वा जपन्यासार्चनादिकम् ॥
पश्चात् तत्साधयेत् सर्वं सदा तद्भावभावितः ॥

एतत् पङ्क्तिचतुष्टयं पुरश्चर्यार्णवस्यापि प्रथमभागेऽस्मिन्नेव प्रसङ्गे समुपलभ्यते ।

(ख) उक्तग्रन्थस्य पञ्चमे तरङ्गे आसवार्पणावसरे तत्प्रकारं प्रदर्श्याभिहितम्—

द्रव्येण सात्त्विकेनैव ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम् ।
एवं दद्यात् क्षत्रियोऽपि पैष्टिकीं न कदाचन ॥
नारिकेलोदकं काँस्ये ताम्रे गव्यं तथा मधु ।
राजन्यवैश्ययोर्दानं न द्विजस्य कदाचन ॥
एवं प्रदानमात्रेण हीनायुर्ब्राह्मणो भवेत् ।
× × × ×
क्षीरेण ब्राह्मणैस्तर्प्या घृतेन नृपवंशजैः ।
माक्षिकैर्वैश्यवर्णैस्तु आसवैः शूद्रजातिभिः ॥

(ग) दमनारोपणं कर्मागमेषु प्रसिद्धम् । तदधिकृत्य ताराभक्तिसुधार्णवस्य सप्तमे तरङ्गे महाकालसंहिताश्लोकाः समुद्धृताः । ते हि—

दमनारोपणाख्यैका पवित्रारोपणी परा ।
प्रतिसंवत्सरं चैते यो न कुर्वीत साधकः ॥
तस्य वर्षकृता पूजा व्यर्था भवति भामिनि ।
कृतामपि विलुम्पन्ति भूतप्रेतादयो गणाः ॥
प्रतिसंवत्सरं तस्मात् कुर्याद् यत्नेन साधकः ।
दमनारोपणं कर्म पवित्रारोहणं तथा ॥

× × × ×

कालस्तदीयो मुख्यस्तु शुक्लपक्षे मधोर्मतः ।
मध्यमो माधवो ज्येष्ठः शुचिस्त्वधम उच्यते ॥
चातुर्मास्ये प्रविष्टे तु यः कुर्याद् दामनं विधिम् ।
न तस्य दुर्मतेः सिद्धिर्विपरीतं च जायते ॥
भूताः प्रेताः प्रनृत्यन्ति क्षुधासम्पीडितोदराः ।
अस्माकं भाग्ययोगेन चेत् कश्चितत्साधकोऽधमः ॥
सुप्ते जनार्दने कुर्याद् दमनारोपणं विधिम् ।
तदा वयं विलुम्पामो भक्षयामोऽर्चनं च तत् ॥
अतो वसन्ते शरदि ग्रीष्मे कुर्यादमुं विधिम् ।
नैव वर्षासु शरदि हेमन्ततौं न च प्रिये ॥
तस्मादृतुत्रये पूर्वोदिते दमनकार्चनम् ।
न परर्तुत्रये कार्यं देवी प्रीतिं विधित्सता ॥
अद्योत्तरफल्गुनीभं तिथिश्चापि त्रयोदशी ।
शुक्लपक्षश्चैत्रमासो योगो वृद्धिस्तथैव च ॥
इयं तिथिरनङ्गाख्या तव नाम्ना भविष्यति ।
त्वामस्यां येऽर्चयिष्यन्ति गन्धपुष्पादिविस्तरैः ॥
नैवेद्यधूपदीपाद्यैर्गीतवाद्यादिनर्तनैः ।
(अ)श्लीलवचनाक्षेपैः माद्रकद्रव्यभोजनैः ॥
योनिलिङ्गादिशब्दानां प्रलापैर्हास्यकारकैः ।
तत्तदाकारवचनैर्महोत्सवसमन्वितैः ।
त्वं वरानीप्सितान् दद्यास्तेषां मद्वचनं स्मर ॥
तत्परेऽहनि विस्तार्या मत्पूजा मकरध्वज ।
अधिवासनकर्माङ्गभूतं सङ्कल्पमाचरेत् ॥
राशितिथ्यादिकं प्रोच्य वर्तमानतया स्थितम् ।
वार्षिकार्चासमाप्त्यर्थं श्वः कर्तव्यस्य कर्मणः ॥
ततः प्रभाते उत्थाय कृत्वा नित्यक्रियां स्वकाम् ।
कृतार्चासम्भृतिः पूजामण्डपं समुपाविशेत् ॥
मूर्तियन्त्रालयादीनि कुर्यादुज्ज्वलितानि हि ।

सङ्कल्पं पुरतः कुर्यात् तदनन्तरमीश्वरि ॥
दमनारोपकर्माहं करिष्य इति चोल्लिखेत् ।

× × × ×

शक्तिपूजा च कर्तव्या दमनारोपणोत्तरम् ।
कृते पुरस्तात् सकलं विफलं जायते प्रिये ॥
शक्त्यर्चनेऽकृते चापि निष्फलं जायते तथा ।
अतः कार्या शक्तिपूजा दमनारोपणोत्तरम् ॥
समर्च्य दमनं चैत्रे तेन चाभ्यर्च्य कालिकाम् ।
सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।
चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामधिवासनपूर्वकम् ॥
आरोप्य दमनं दुर्गां विधिनानेन पूजयेत् ।
मयोक्तेन वरारोहे तथा पुण्यफलं शृणु ॥
अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च ।
तत्फलं समवाप्यासौ देववद् दिवि मोदते ॥
एवं यः कुरुते पूजां दमनारोपणाभिधाम् ।
भवन्ति नापदस्तस्य कदाचिदपि सुन्दरि ॥
सिद्ध्यन्ति तस्य मन्त्राश्च नारीणां वल्लभो भवेत् ।
सर्वसम्पद्युतः श्रीमान् मोदते दिवि देववत् ॥

(घ) पवित्रारोहणकर्मप्रसङ्गे महाकालसंहितापद्यानि यथेहोद्धृतानि—

कालो ग्रीष्मः शरद् वर्षा एषु मुख्यतमः प्रिये ।
केचिद् वसन्तमिच्छन्ति कालं माध्यमिकं बुधाः ॥
नैव हेमन्तशिशिरौ प्रशस्येते कदाचन ।

(ङ) पवित्रस्य स्वरूपमधिकृत्याभिहितम्—

तच्च कार्पासजं ज्ञेयं शाणं वा पट्टजं तथा ।
कृतं नवगुणं सूत्रमुपवीतमुदीर्यते ॥
(त्रयाणां) तद्धि वर्णानामंसे तिष्ठति सुन्दरि ।
तदेव सूत्रं देवानां कण्ठे बहुगुणीकृतम् ॥
पवित्रमिति नाम्नैव कथ्यते निगमादिषु ।
आम्नायभेदाद् भिद्यन्ते सूत्रवर्णाः सुरेश्वरि ॥
पूर्वार्द्धयोः सितं सूत्रं रक्तसूत्रं तथोत्तरे ।
पश्चिमेऽप्यथ पीतं हि अधोदक्षिणयोर्मतम् ॥
न नीलाक्तं भवेत्सूत्रं षडाम्नायेषु कर्हिचित् ।
आम्नायेष्वथ सर्वेषु प्रशस्तं सितमेव हि ॥

कुमारीकर्तितं सूत्रमतिप्राशस्त्यकारकम् ।
पतिमत्या कृतं मध्यमधमं विधवाकृतम् ॥
विप्रक्षत्रार्यजातीनां पत्नीभी रचितं शुचि ।
आवर्जितं यच्छूद्राभिस्तदशुच्येव कथ्यते ॥
विशेषतो ह्यमीषां हि विहितं पतिहीनया ।
वैश्यया कर्तितं सूत्रं मेध्यमित्यपरे जगुः ॥
रजक्या वाथ यान्त्रिक्या काषायपटयाथ वा ।
गोप्या वाप्यथ मुण्डिन्या मालिन्या यद्विनिर्मितम् ॥
तत्सूत्रजपवित्रेण साधको नरकं व्रजेत् ।
तस्मात् सूत्रविनिर्माणे यत्नः कार्यो विशेषतः ॥
मध्यमः स्त्रीगृहीयस्तु पुंवारः श्रेष्ठ उच्यते ।
षण्डाहोऽधमकल्पः स्यात् तिथी रिक्ता विवर्जिता ॥
सापि भूततिथौ ग्राह्या चतुर्थी भौम एव च ।
रवौ तु सप्तमी वर्ज्या रिक्ता वर्ज्या गुरावपि ॥
तिथिस्त्याज्या न कापीह भौमेन सहिता यदि ।
पुंनक्षत्रस्य योगेन फलाधिक्यं हि जन्यते ॥
तानि त्वजीवदिनकृत् विष्णवो निर्ऋतिस्तथा ।
कमप्येतेषु पूर्वेद्युः परेद्युरपि वा पुनः ॥
यावत्यो देवताः सन्ति नित्ये नैमित्तिकेऽपि च ।
याश्चावृत्तिपरीवाराः पञ्चायतनसंयुताः ॥
अपेक्षितं हि सर्वेषां पवित्रमत्र कर्मणि ।
कृताञ्जलिः पद्यमेनं मन्त्ररूपमुदीरयेत् ॥

त्वं सूचनाद् वेदमखक्रियाणां
प्राप्तोऽसि कार्पासजसूत्रसंज्ञाम् ।
त्वया विनिर्माय बहूपवीतं
दास्येऽमरेभ्यो भव सूत्र पूतम् ॥

× × × ×

अथ नैमित्तिकसममारभेतार्चनं बुधः ।
नैवेद्यधूपदीपानां कर्तव्या भूयसी स्थितिः ॥
आकारणीया यत्नेन स्वस्ववर्ग्यास्तु देशिकैः ।
कुसुमैस्तोरणं कार्यं बहिरन्तर्गृहस्य च ॥

× × × ×

यस्य यस्य तु देवस्य यो योऽर्चावसरो भवेत् ।
तस्य तस्य तु देवस्य तस्मिँस्तस्मिन् वरानने ॥
पवित्रं तस्य दातव्यं तन्मन्त्रोच्चारपूर्वकम् ।

तथा—

छागाश्चावश्यकत्वेन दातव्या बलिकर्मणि ॥

(ङ) शिवाबलिप्रसङ्गे ताराभक्तिसुधार्णवे समागताः महाकालसंहिताश्लोकाः—

पुराद् बहिर्निशाकाले महारण्यसमीपतः ।
गृहीत्वा भक्ष्यवस्तूनि पूजासम्भृतिमप्युत ॥
आप्तैरनुगतो द्वित्रैः प्रदद्याद् फैरवीबलिम् ।
आमानि पक्वान्यपि च मांसानि विधिनार्पयेत् ।
तत्रोदीचीदिग्वदनो वीतभीः शुचिरूर्जितः ।
प्राणायामं षडङ्गं च विधायार्घ्यं प्रपूज्य वै ॥
उत्थाय मुक्तचिकुरः शिवा आकारयेच्छनैः ।

× × × ×

स्थानादस्मादपसरेत् किञ्चिद् दूरतरं प्रिये ।
शिवा यथा वीतभया आगच्छन्त्यत्रसन्निधौ ॥
तत्र स्थित्वा निरीक्षेत किं किं ता भक्षयन्ति हि ।
सर्वा आगत्य चेत्सर्वं प्रदत्तं भक्षयन्ति हि ॥
विनिर्दिशेत् सर्वसिद्धिं राज्यलाभं धनागमम् ।
यद्यत्ता भक्षयन्त्यत्रं तत्तत्फलमवाप्नुयात् ॥
यद्यच्च नैव खादन्ति तत्तन्नैव फलं भवेत् ।
कुमारीपूजनादौ तु विशेषोऽस्योपवर्णितः ॥
तेन नात्र ब्रुवे देवि ग्रन्थाधिक्यभयादपि ।
कुमारीरूपमास्थाय यथा (-याति) महेश्वरी ॥
शिवारूपं तथा कृत्वा स्वयमायाति कालिका ।
ततो भक्तिः प्रकर्तव्या तासु यत्नेन साधकैः ॥
शिवासु भक्षयन्तीषु सर्वेभ्यो बलिमाहरेत् ।
संहारभैरवायादौ वटुकेभ्यस्ततः परम् ॥
विनायकेभ्यो मातृभ्यः क्षेत्रपालेभ्य एव च ।
योगिनीभ्यो डाकिनीभ्यः शिवदूतिभ्य एव च ।
पुरोक्तो मन्त्र आसीद्धि तेन तेन बलिं हरेत् ॥
महदैश्वर्यमाप्नोति निःशेषं भक्षयन्ति चेत् ।
अर्धे तु मध्यमा सिद्धिरभक्षे तु विपद् भवेत् ॥
खादित्वोत्थाय तिष्ठत्सु शिवावृन्देषु तत्र हि ।
दण्डवत् प्रणमेत् सर्वाः स्वेष्टदेवीधिया स्वयम् ॥
पुष्पाञ्जलिं समादाय गन्धचन्दनचर्चितम् ।
उत्थाय मुक्तचिकुरो मीलिताक्षो दिगम्बरः ॥

भक्तिशाली वीतभयः किञ्चित् प्रणतकन्धरः ।
स्तुतिं कुर्वीत् स्तवैरेतैर्वरप्रार्थनपूर्वकम् ॥
शिवारूपधरे देवि कामकालि नमोऽस्तु ते ।
उल्कामुखि ललज्जिह्वे घोररावे श्रृगालिनि ॥
श्मशानवासिनि प्रेते शवमांसप्रियेऽनघे ।
अरण्यचारिणि शिवे फेरो जम्बूकरूपिणि ॥
नमोऽस्तु ते महामाये जगत्तारिणि कालिके ।
मातङ्गि कुक्कुटे रौद्रि कालकालि नमोऽस्तु ते ॥
सर्वसिद्धिप्रदे देवि भयङ्करि भयापहे ।
प्रसन्ना भव देवेशि मम भक्तस्य कालिके ॥
संसारतारिणि जये जयसर्वशुभङ्करि ।
विस्रस्तचिकुरे चण्डे चामुण्डे मुण्डमालिनि ॥
संहारकारिणि क्रुद्धे सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे ।
दुर्गे किराति शबरि प्रेतासनगतेऽभये ॥
अनुग्रहं कुरु सदा कृपया मां विलोकय ।
राज्यं प्रयच्छ विकटे वित्तमायुः सुतान् स्त्रियम् ॥
शिवाबलिविधानेन प्रसन्ना भव फेरवे ।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमो नमः ॥
इत्येतैरष्टभिः श्लोकैः शिवास्तोत्रमुदीरयेत् ।
ततस्तच्छेषमन्नं यद् भाजनं चान्यदेव वा ।
सर्वं हि निखनेद् भूमौ प्रयत्नेनैव पार्वति ॥
यदि काकाः खराः श्वानो ये चान्ये पापजातयः ।
भक्षयन्ति तदुच्छिष्टं तदा विघ्नः प्रजायते ॥
रात्रावेव समागच्छेन्निर्भयो विपिनान्तरात् ।
आगत्य गन्धपुष्पाद्यैः पुनर्देवीं प्रपूजयेत् ॥

(च) ताराभक्तिसुधार्णवस्य दशमे तरङ्गे पशुबलिप्रकरणे समागताः महाकाल-संहिताश्लोकाः—

कृष्णसारं तथा छागं मृगादीनां विधानपि ।
मेषं च महिषं घृष्टिं तथा पञ्चनखानपि ॥
कपोतं टिट्टिभं हंसं चक्रवाकं च लावकम् ।
शरालिं तित्तिरिं मत्स्यान् कलविङ्कं च फेरवम् ॥
अनुक्तं नैव दातव्यं द्विजवर्यैः कदाचन ।
सिंहं व्याघ्रं नरं तद्वत् क्षत्रियः परिकल्पयेत् ॥
विहाय कृष्णसारं च क्षत्रियादेर्भवेद् बलिः ।

सिंह व्याघ्रं नरं दत्वा ब्राह्मणो ब्रह्महा भवेत् ॥
मूषं मार्जारकं चाषं शूद्रो दत्वा पतत्यधः।
चन्द्रहासेन खड्गेन हन्यादेकप्रहारतः ॥
उत्थाय हननं कुर्यात् नोपविश्य कदाचन ।
स्वहस्तेन पशुं हत्वा पशुयोनिमवाप्नुयात् ॥
विं च त्रिपक्षतो न्यूनं महिषादींस्त्रिवर्षतः ।
अन्यं त्रिमासतो न्यूनं न दद्याच्च कदाचन ॥
वृद्धं वा विकृताङ्गं वा न कुर्याद् बलिकर्मणि ।
स्वगात्ररुधिरं दातुं क्षत्रियादेर्भवेद् विधिः ॥
सात्त्विको जीवहत्यां हि कदाचिदपि नो चरेत् ।
इक्षुदण्डं च कूष्माण्डं तथा वन्यफलादिकम् ।
क्षीरपिण्डैः शलिचूर्णैः पशुं कृत्वा चरेद् बलिम् ॥
तत्तत्फलविशेषेण तत्तत्पशुमुपानयेत् ।
कूष्माण्डं महिषत्वेन छागत्वेन च कर्कटीम् ॥

(छ) ताराभक्तिसुधार्वणस्य सप्तमे तरङ्गे कुमारीपूजाप्रसङ्गे समुद्धृताः महाकालसंहिताश्लोकाः—

(कुमारीपूजामाहात्म्यम्)

न तथा तुष्यति शिवा बलिहोमस्तुतीरणैः ।
कुमारीपूजनेनात्र यथा सद्यः प्रसीदति ॥
न केवलं पूजयेत् तां भोजयेच्चापि यत्नतः।
व्यङ्ग्यता चाप्यकरणात् पूजायाः परिकीर्तिता ॥
करणात् साङ्गताऽपि स्यादन्यस्मिन्न कृतेऽपि हि ।
कौलानां निशिपूजोक्ता स्मार्तानामापराह्णिकी ॥
नित्या तु शारदार्चायां काम्या नैमित्तिकीतरा।

(कुमारीलक्षणम्)

सुस्नातां पीतरक्तादिनानारागोज्ज्वलां शुभाम् ॥
सर्वालङ्कारचित्राङ्गीमज्ञातानङ्गचेष्टिताम् ।
अजातपुंमनः सङ्गां सप्ताष्टनववार्षिकीम् ॥
अनीचजातिं गौराङ्गीं पितृमातृमतीमति ।
अदन्तुरामवाग्दत्तामधिकोनाङ्गवर्जिताम् ॥
अदीर्घकेशीमुद्दीप्तां सुस्मितास्यामलोभिनीम् ।

(निन्दितकुमारीलक्षणम्)

श्यामां दीर्घदतीमोतुनयनां पिङ्गमूर्धजाम् ॥

तनुमूनगतिं क्रुद्धां कुब्जां खञ्जां च खर्विकाम् ।
भ्रूकेशाल्पत्वसहितां तथा चैव गलद्व्रणाम् ।
जातस्तनरजोऽनङ्गां प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
एतद्भिन्ना कुमारी तु वरणीयार्चनक्रमे ।

(कुमारीपूजाविधिः)

गीतवादित्रनिर्घोषैरानन्दादरपूर्वकम् ।
नीत्वा पूजागृहद्वारि कुमारीस्ता अयुग्मिकाः ॥
पञ्च वा सप्त वा चापि नवैकादश वा पुनः ।
मुख्यैका तासु कर्त्तव्या या स्यात् सर्वाङ्गसुन्दरी ॥
बह्वीनामप्यभावे हि भवेदेका कुमारिका ।
काम्ये नैमित्तिके चैका बह्व्यः शारदपूजने ॥
श्रेणीभूता उत्थिताश्च नम्रीभूतानना अपि ।
स्थापयित्वा क्रमेणैता मुख्यामादौ नियोज्य च ।
देवीबुद्धिं विधायास्यां साधको विगतज्वरः ।
गृहीतमदिरामत्रः कल्पितार्चनसम्भृतिः ॥
प्राणायामं विधायादौ ततो भूतापसारणम् ।
गुरुं गणपतिं नत्वा वामदक्षिणयोस्ततः ।
मध्ये कुमारीं च तथा मूलदेवीस्वरूपिणीम् ।
छोटिकाभिस्तथा तालत्रितयैर्बन्धनं दिशाम् ॥

तथा—

कुमार्याः मूलभूतायाः पादौ प्रक्षालयेत् ततः ।

तथा—

तज्जलं मस्तके दद्याद् देवीपादोदप्रज्ञया ॥
सोत्तरीयाँशुकेनैव पादाम्बूपनयेत् ततः ।
पुनरक्षतमादाय विघ्नानुत्सारयेत् प्रिये ॥
उदीर्यमाणमन्त्रेण तालत्रयपुरःसरम् ।
तारपाशकलाकूर्चास्त्राणि प्रथमतो वदेत् ॥
भूतान्यपसारय च विघ्नान्नाशय चेत्यपि ।
हृच्छीर्षे चरमे दद्यात् एकविंशाक्षरो मनुः ।
कुमार्या सहिताः सर्वे तया देवीस्वरूपया ।
दर्शनार्थं समायान्ति यावन्तो देवयोनयः ॥
प्रेताः भूताः पिशाचाश्च गन्धर्वा गुह्यका अपि ।
राक्षसा दानवा यक्षा ये चान्ये क्रूरकर्मिणः ॥
सह प्रविश्यकौमार्या मण्डपं शारदार्चनम् ।

लुम्पन्ति च कुमार्यर्चां पूजां विध्वंसयन्ति च ॥
अतो वारद्वयं कार्यं विघ्नस्योत्सारणं प्रिये ।
ततः स्ववामहस्तेन कुमार्याः दक्षिणं करम् ॥
गृहीत्वा दक्षचरणविनिःक्षेपपुरःसरम् ।
पँक्तिभूताः कुमारीस्ताः श्लोकरूपं मनुं पठन् ॥
पूजागृहान्तः शनकैर्नमन्मौलिः प्रवेशयेत् ।
समस्तजगतामाद्ये जगदाधाररूपिणि ।
कुमारीरूपमास्थाय प्रविशेदं गृहं मम ।
भवत्याः कीदृशं रूपं जाने मातरहं न हि ॥
कुमारीरूपमेवेदं पश्यामि नरचक्षुषा ।
भक्तिं मदीयां विज्ञाय त्वत्पादाम्बुजयोः शिवे ॥
त्वया प्रकटितं रूपमीदृशं सर्वसिद्धये ।
दृष्टिः कार्या न मे पापे सञ्चारेणासतः पथः ॥
दृढायां केवलं भक्तौ दातव्या सुरवन्दिते ।
शिवाद्यास्तवरूपं हि कीदृशं नेति जानते ॥
ज्ञास्यामि को वराकोऽहं पाञ्चभौतिकविग्रहः ।
इति पञ्च पठन् श्लोकान् स्वपृष्ठेनैव तारयेत् ॥
अनीक्षमाण एवेशि गीतवाद्यपुरःसरम् ।

× × × ×

मुख्यं तत्पूजनं प्रोक्तं मुख्याया एव तन्मनुम् ॥
तत्पूजयैव ताः सर्वाः पूजिताः स्युर्न संशयः ।

× × × ×

बलिं दत्वा ततो देवयोनिभ्यः परमेश्वरि ॥

(कुमारीन्यासविधिः)

आरभेत निरालस्यः कुमारीन्यासमुत्तमम् ।
नामान्यादौ खलु महाचण्डयोगेश्वरी मता ॥
ततः सिद्धिकराली च पुनः सिद्धिविकराल्यपि ।
महाडामर्यथ ज्ञेयाः वज्रकापालिनी ततः ॥
मुण्डमालिन्यट्टहासिन्येते द्वे परिकीर्तिते ।
प्रतिपदादि पूर्णान्तं वृद्धिभेदेन पूजयेत् ॥
महापर्वसु ता देवि विशेषाद्युपचारकैः ।
महानवम्यां देवेशि कुमारीश्च प्रपूजयेत् ॥
पिङ्गलां पूजयेद्यस्तु षोडशैश्चैव भक्तिमान् ।
चण्डकापालिनी कालचक्रेश्वर्यप्यनन्तरम् ॥

गुह्यकाली ततः कात्यायनी कामाख्यया सह ।
चामुण्डा सिद्धिलक्ष्मीश्च कुब्जिका तदनन्तरम् ॥
मातङ्गी तदनु ज्ञेया चण्डेश्वर्यथ कीर्त्यते ।
सर्वशेषेऽथ कौमारी एता अष्टादशेरिता ॥
अङ्गान्यतो वच्मि शिरो मुखं तदनु चक्षुषी ।
कर्णौ नासापुटे चापि कपोलौ तत्पुरौ(?) पुनः ॥
अधरोष्ठौ दन्तपंक्ती स्कन्धौ हृदयमेव च ।
बाहू च जठरं पृष्ठमुरू जानू तथैव च ॥
जङ्घे पादौ च सर्वाङ्गं तावन्त्येव स्थलानि च ।

पुनः सप्तमतरङ्गे—

ततोऽर्घस्थापनं कुर्यात् नित्यके यदुदाहृतम् ॥
पूजोपकरणस्यापि शुद्धिरुक्ता पुरोक्तवत् ।
ततो ध्यानं प्रकुर्वीत कुमार्या वक्ष्यमाणकम् ॥
उपचारांस्ततः सर्वान् पाद्यादीन् स्तुतिपश्चिमान् ।
भूषणानि दुकूलानि सिन्दूरालक्तकावपि ॥
कज्जलादर्शविख्याततालवृन्तानि पेटिका ।
परिकर्माधारचोलमञ्चिका पीठदोलिका ॥
मञ्चालिका च मञ्जूषा पादुके कुथपट्टके ।
चन्द्रातपोपसंख्यानं तथोद्वर्तनभाजनम् ॥
शय्योपधानपर्यङ्काः समुद्गा च प्रसाधनी ।
प्रतिग्राहश्च हिन्दोला तथा सीमन्तवर्तिका ॥
गोरोचनामृगमदौ कर्पूरं कुङ्कुमं तथा ।
एवमादीनि चान्यानि यावच्छक्यानि सुन्दरि ॥
प्रदातव्यानि वस्तूनि कुमारी तुष्यते तथा ।
ततो यत् स्थापितं पात्रं कुमार्यै प्रतिपादयेत् ॥
स्वीकुर्यात् सा च तत्रैव तथा यत्नं समाचरेत् ।
अगृहीते तु तत्पात्रे महान् दोषोऽभिजायते ॥
अतो यत्नस्तथा कार्यः स्वीक्रियेत तथा तया ।
ततो गृहीत्वा कुसुमाक्षतं तस्याः कलेवरे ॥
पञ्चाशत्संख्यकाः शक्तीः क्रमतः परिपूजयेत् ।

(कुमारीशक्तिनामानि)

ता इदानीं प्रवक्ष्यामि सावधाना निशामय ।
आद्या जया च विजया ऋद्धिदा माययान्विता ।
कला च सिद्धिदा सूक्ष्मा प्रभा स्यात् सुप्रभा ततः ।

विद्युता च विशुद्धिश्च नन्दिनी च विशुद्धियुक् ॥
अपराजिता च ललिता लक्ष्मीर्गौरी तथैव च ।
अथ मेधा च गायत्री सावित्री च स्वधा पुनः ॥
स्वाहेच्छे च क्रिया विद्या प्रज्ञा दीप्ता च चेतना ।
भद्रा ज्येष्ठा तथोमा च शिवा च मुदिता क्षमा ॥
श्रद्धाथ विमला कौमुद्यपि वै विशदा ततः ।
अशोका ज्ञानदा चैव बलदा राज्यदापि च ।
मैत्री तदनु रुद्राणी भवानी च मृडान्यपि ।
सर्वज्ञा चण्डिका वापि कुमारी सर्वशेषगा ॥
पञ्चाशत्संख्यका एता कुमार्याः शक्तयः स्मृताः ।
भैरवानष्ट तदनु पूजयेदक्षतादिभिः ॥
भैरवीभ्यस्ततो विघ्नविनायकेभ्य एव च ।
वटुकक्षेत्रपालाभ्यां योगिभ्य(ोऽथ)तथैव च ॥
भूतेभ्यः प्रेतयक्षेभ्यः डाकिनीभ्यस्तथैव च ।
कुर्वीत पूजनं देवि कुसुमाक्षतचन्दनैः ॥
पुनरष्टौ सर्वशेषे ङेऽन्ता देवीर्यजेत् प्रिये ।
महामाया कालरात्रिस्ततो वै सर्वमङ्गला ॥
पूज्या डमरुका पश्चात् राजराजेश्वरी तथा ।
सम्पत्प्रदा भगवती कुमारी तदनन्तरम् ॥
समाप्येत्थं कुमार्यर्चा तत्पुरो भुवि वारिणा ।
वर्तुलं मण्डलं कृत्वा तन्मध्ये कुलकामिनीम् ॥
विलिख्य जपाकुसुमाक्षतचन्दननागजैः ।
पूजयेन्मण्डलं तच्च शुभदायै नमो वदेत् ॥
स्थालीगतं ततः सर्वमन्नं तत्र निवेश्य हि ।
नानाविधां च सामग्रीं लेह्यचोष्यादिघट्टिताम् ॥
मांसमीनसुरापूर्णां भक्ष्यचर्व्यादिपूरिताम् ।
कुमारीदक्षहस्तं च स्थापयित्वान्नमूर्धनि ।
उत्तानं वक्ष्यमाणेन मनुनान्नं समुत्सृजेत् ॥

× × × ×

इतरासां कुमारीणां प्रत्येकं पूजनं चरेत् ।
गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्नैवेद्यैरन्नसम्भृतैः ॥
अन्नानि यादृशान्यस्यै मुख्यायै कल्पितानि हि ।
अन्याभ्यस्तादृशान्येव दातव्यान्येष निश्चयः ॥
फलाफलं तु मुख्याया ज्ञेयमत्र विपश्चिता ।
भुञ्जानासु कुमारीषु न तूर्यध्वनिमाचरेत् ॥

नान्यत्र च मनो दद्यात् सम्बाधं नैव कल्पयेत् ।
कोलाहलं निषेधेत अमङ्गल्यानि यानि च ॥
रुदितापानवायू च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
सावधानो भवेदत्र किमादौ भक्षयन्ति ताः ॥
मिथः किं वा प्रजल्पन्ति कुत्र वा वस्तुनि स्पृहा ।
कुत्र दृष्टिं प्रक्षिपन्ति भीताः किं वा वदन्त्यमूः ॥
इत्यादि नानाजातीयाश्चेष्टा आसां प्रयत्नतः ।
सावधानतया ज्ञेया भद्राभद्रस्य सूचकाः ॥
भक्षयन्तीषु तास्वेव पठेत् तत्स्तोत्रमत्वरम् ।
कृताञ्जलिर्नम्रशिरा आसामन्ते क्षिपन् दृशौ ॥

(कुमारीस्तोत्रम्)

जयकालि महाभीमे भीमरावे भयापहे ।
संसारदावाग्निशिखे वृजिनार्णवतारिणि ॥
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रभूतेशप्रभृत्यमरवन्दिते ।
सर्गपालनसंहारकारिण्यहितमारिणि ॥
गुह्यकालि परानन्दरसपूरितविग्रहे ॥
परब्रह्मरसास्वादकैवल्यानन्ददायिनि ।
गुणातीतेऽपि सगुणे महाकल्पान्तनर्तकि ।
कुमारीरूपमास्थाय विज्ञे प्रज्ञास्वरूपिणि ॥
आगतासि ममागारं शरद्यर्चासमाप्तये ।
सांवत्सरिककल्याणसूचनाय तथैव च ॥
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि सफलं जीवितं मम ।
यस्मात् त्वमीदृशं कृत्वा कौमारं रूपमुत्तमम् ॥
गुह्यकाली समायाताब्दिकपूजाजिघृक्षया ।
त्वमेवैतेन रूपेण देवेभ्यः प्रार्थिता पुरा ॥
दत्तवत्यसि साम्राज्यं वरानपि समीहितान् ।
मह्यमप्यद्य देवेशि वरं पुरा दत्तवत्यसि ।
विष्णवे च त्वमेवादास्तथा पालनशक्तिताम् ॥
महारुद्राय संहारकर्तृत्वमददः शिवे ।
देवेभ्यश्चापि दैत्यानां नाशने दक्षतामपि ॥
अन्तर्यामिन्यसीशानि त्रिलोकीवासिनामपि ।
निवेदयामि किं तेऽहं सर्वकर्मैकसाक्षिणि ॥
शत्रुनाशं राज्यलाभं शरीरारोग्यमेव च ।
त्वत्पादाम्बुजयोर्भक्तिं याचेऽहं चतुरो वरान् ॥

नमस्ते भगवत्यम्ब नमस्ते भक्तवत्सले ।
नमस्ते जगदाधाररूपिणि त्राहि मां सदा ॥
मातर्न वेद्मि रूपं ते न शरीरं न वा गुणम् ।
भक्त्या हृत्स्थितया पूजां तव जानाम्यनन्यधीः ॥
त्वं माता त्वं पिता बन्धुस्त्वमेव जगदीश्वरि ।
त्वं गतिः शरणं त्वं च स्वर्गस्त्वं मोक्ष एव च ॥
विहाय त्वां जगन्मातर्नान्यां जानामि देवताम् ।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽतु नमस्तेऽस्तु नमो नमः ॥
एभिः श्लोकैः स्तुतिं कुर्यात् कुमारीणां वरानने ।
दद्यादाचमनीयं हि भोजनान्ते गतत्वरः ॥
ततः प्रदद्यात् ताम्बूलं मृगचन्द्राधिवासितम् ।
सह वाद्यादिभिस्तावदनुव्रज्य विसर्जयेत् ॥
कुमारीभोजनचेष्टाभ्यां शुभाशुभफलज्ञानम् ।
शुभाशुभफलं वच्मि साम्प्रतं तव पार्वति ॥
तत्राप्यादौ शुभं वक्ष्ये विपरीतं ततोऽस्य च ।
तदुच्छिष्टं ततो दद्याज्जम्बुकेभ्योऽथ भूतले ॥
निखनेदप्सु वा देवि समालोड्य विसर्जयेत् ।
आदौ भक्ते करे दत्ते सुभिक्षं विषये भवेत् ॥
पायसे याजमानस्य पशुवृद्धिः प्रजायते ।
घृते स्यादायुराधिक्यं पूप ऐश्वर्यमृद्ध्यते ॥
तथा मोदकशष्कुल्योः सन्ततिर्भूयसी भवेत् ।
मत्स्यजातिष्वर्थलाभः कृशरे यानसम्पदः ॥
मांसे तु पुत्रलाभः स्यात् तेमने कामिनी भवेत् ।
फलं मांसविशेषस्य भिन्नं भिन्नं ब्रुवे हि तत् ॥
अर्थलाभस्तु वाराहे खाड्गे तु विजयो रणे ।
माहिषेण तु मांसेन राज्यप्राप्तिर्भवेद् ध्रुवम् ॥
आरोग्यं हारिणेनाशु कार्ष्णसारेण वाग्मिता ।
शाशे मेधावितां गच्छेदाजेऽप्यजरतामपि ॥
आवये पलले देवि सर्वकल्याणमाप्नुयात् ।
कामठे मेदिनीलाभो बह्वन्नत्वं च राङ्कवे ॥
वार्ध्रीनसे शत्रुनाशो हांसे मनुजवश्यता ।
कीर्तिस्तु महती दध्नि दुग्धे सम्पदनुत्तमा ॥
पिष्टके तनयावाप्तिः शाके च रिपुसङ्क्षयः ।
हालायां पुण्यवृद्धिः स्यात् चोष्ये संसत्सु वाग्मिता ॥
धनागमः फाणिते तु कूर्चिकायां बलोन्नतिः ।

तुम्बीवृन्ताककूष्माण्डकारवेल्लपटोलकैः ॥
घोषशूरणदीर्घाङ्घ्रिमूलकैस्तेमने कृते ।
विद्यालाभो भवेद्देवि तर्के वाक्पटुतापि च ॥
गोधूमचूर्णघटितवस्तुनि प्रतिभावने ।
देव्यां दृष्टौ भवेन्मोक्षो मण्डपेऽप्युन्नतिर्भवेत् ॥
चामरछत्रयोस्तालवृन्तपर्यङ्कयोरपि ।
घण्टादर्पणयोश्चापि दृग्दाने भूपतिर्महान् ॥
आकल्पालङ्करणयोः स्पर्शचालनदृष्टिषु ।
नानाविधानि सौख्यानि भवन्ति महितुः प्रिये ॥
एवंविधानि भूयांसि चेष्टितान्यशनानि च ।
शुभदेशीनि जायन्ते विपरीतान्यतः शृणु ॥
मुख्यभूता कुमारी चेद्धसति द्वित्रिवारकम् ।
दुर्भिक्षं जायतेऽवश्यं प्रजाः स्युः पीडिता अपि ॥
राजा विनाशमायाति कुमार्या रोदने कृते ।
उच्चारे तु महामारी पुरीषे पुरदाहनम् ॥
अभोजने शत्रुभयमापदो बहुभोजने ।
अभाषणे त्वामयाः स्युर्विपदो बहुभाषणे ॥
उपसर्गा बहुविधाश्चेष्टया करपादयोः ।
अतिलज्जा विनाशाय तथा निर्लज्जता शुचे ॥
नानोत्पातास्तु मौने स्युः स्वापे राज्ञो विनाशनम् ।
सर्वनाशस्तु भीतायां क्रुद्धायां मृत्युरेव च ॥
आवेशे तत्क्षणाद् राजा म्रियते नात्र संशयः ।
शङ्कितायां शत्रुशङ्का श्रान्तायामीतितो भयम् ॥
चिन्तितायां तु विज्ञेयं तद्राष्ट्रस्यैव पातनम् ।
मोहे चित्तविनाशः स्याज्जाड्ये पूजा तु निष्फला ॥
चाञ्चल्ये चञ्चला लक्ष्मीः पूजकस्यैव जायते ।
विषादवत्यथ यदि कुमारी तत्र जायते ॥
सराजं सप्रजं राष्ट्रं तदा सीदति पार्वति ।
रोगेण म्रियते राजा यदि रुग्णा प्रजायते ॥
दुर्भिक्षमरकातङ्कामत्यश्रूणि विमुञ्चति ।
सर्वनाशो भवेत्तर्हि धुनोति यदि मस्तकम् ॥
त्रस्तायां रिपुतस्त्रासस्तस्य राज्ञः प्रदिश्यते ।
कम्पे सति स्याद् विमुखी कालिका परमेश्वरी ॥
नीचैः शिरश्चेत् कुरुते असन्तुष्टा तदेश्वरी ।
हीनायुः स्यात्तदा पृथ्वीपतिश्चेद् गद्गदस्वना ॥

पूजकस्य भवेद् दैन्यं व्याकुला यदि जायते ।
मोहेन व्याकुलायां तु सर्वं नगरमाकुलम् ॥
व्रीडितायां भवेद् रोगः स्वेदे दारधनक्षयः ।
अधोवायुं त्यजति चेत् कुमारी दैवयोगतः ॥
पीडितं परचक्रेण तदा भवति पत्तनम् ।
गीतं गायति चेत्तत्र कुमारी रहिता क्रिया ॥
सप्रजाराष्ट्रतनयदारस्य नृपतेर्मृतिः ।
सहागताभिः कदाचिन्मुख्या विवदते यदि ॥
तदा समायात्यकस्मात् परचक्रं सुदारुणम् ।
यया कयाचित् सार्द्धं वा येन केनचिदेव वा ॥
कुमारी भाषते वीतभयमन्दाक्षसाध्वसा ।
प्रजायन्ते तदा तस्य विषयेषु षडीतयः ॥
व्यत्यासं यदि भक्ष्यस्य कुर्वते करचालनैः ।
व्यस्तं समस्तं भवति मनसो वाञ्छितं प्रिये ॥
उपायनीकृतं यत्तद् द्रव्यं देव्यै तु मण्डपे ।
तच्चेत् कराभ्यां स्पृशति कान्दिशीको भवेन्नृपः ॥
निर्वापयति चेद् दीपं कुमारी मुखमारुतैः ।
बुद्धिभ्रंशो भवेत्तर्हि ज्ञानदीपश्च नश्यति ॥
दैवयोगाद्धि नृत्यन्ति कुमार्यश्चेत् सुराकुलाः ।
सराजकः सविषयः श्मशानमिव जायते ॥
वासांस्युत्सृज्य नग्नाः स्युर्यदि तत्र कुमारिकाः ।
शत्रुभिर्म्रियते तर्हि राजा समरमूर्धनि ॥
यदि फूत्कृत्य कूर्दन्ते करौ धृत्वा भ्रमन्ति च ।
भूतावेशः क्षितीशस्य जायते नात्र संशयः ॥
उच्चरिष्यामि हर्म्ये वा वदन्तीत्थं कुमारिकाः ।
भोजनावसरे तर्हि महामारीभयं भवेत् ॥
वामे वा दक्षिणे वापि चलत्तारकया दृशा ।
रक्तोग्रया घूर्णयते शिरः स्वस्य कुमारिका ॥
कुरुते वाट्टहासं सा येन त्रस्यन्ति मानवाः ।
भूतावेशो भवेत्तर्हि प्रेता नृत्यन्ति वा पुरे ॥
दन्तैर्दन्तान् पीडयित्वा कुर्यात् कटकटारवम् ।
प्रयाति सदनं मृत्योः सदारसुतबान्धवः ॥
दृशावनिमिषे कृत्वा सन्दश्योष्ठं रदेन च ।
सन्तर्जयति शीर्षं च कम्पयन्ती कुमारिका ॥
तदेव फलमुद्दिष्टं यः स्यात् कटकटारवे ।

आत्यन्तिकं भजेन्मौनं करेणान्नं स्पृशेन्न च ॥
शिरोऽत्यर्द्धं च नमयेदङ्गुष्ठेन लिखेद् भुवम् ।
विदध्यात् भूतले रेखां करजैर्निष्प्रयोजनम् ॥
संहताभ्यां कराभ्यां च कण्डूयेदथवा शिरः ।
तृणान्यकारणं छिन्द्यादङ्गुलीस्फोटमाचरेत् ॥
पाणिभ्यां मुद्रयेन्नेत्रे द्वौ कर्णौ पिदधाति वा ।
कुर्वीत वा बाहुरिकां पार्ष्णिघृष्टिं करोति वा ॥
महान्तं ग्रासमादत्ते मुखं व्यादाय तिष्ठति ।
अन्नोपरि क्षुतं धत्ते जृम्भणं वा मुहुर्मुहुः ॥
गृहीत्वा पाणिना वान्नं चतुर्दिक्षु क्षिप्त्यपि ।
उत्थाय वा प्रचलति त्यक्त्वान्नं पूजनं तथा ॥
आयाति वमनं वास्याः स्यातां रोमाञ्चवेपथू ।
निर्गच्छतोऽथवा गात्रात् पूयास्रे हेतुमन्तरा ॥
आकस्मादेव कुरुते काकुं चेत् कारणं विना ।
अश्लीलं वल्गति तथा स्ववर्ग्यार्थे प्ररोदिति ॥
अमुक्तालङ्कृतीर्मुञ्चेद् गृहं यास्यामि वा वदेत् ।
यस्य कस्यापि कुर्याद् भर्त्सनं तत्स्थले स्थिता ॥
उपालभेत वा काञ्चित् सहैवास्या उपेयुषीम् ।
भिनत्ति वाऽनिदानं सा स्वहस्तवलयानि वा ॥
कृते मृतस्य कस्यापि बन्धोः शोचति तत्रगा ।
यत्किञ्चिद् वा प्रलपति निर्निमित्तं कुमारिका ॥
सर्वमेतदमङ्गल्यं विज्ञेयं त्रिदशार्चिते ।
दुर्भिक्षं धननाशश्च रोगो मारीभयं तथा ॥
पदे पदेऽत्र विपदः शोको व्याधी रिपून्नतिः ।
परचक्रागमोऽकस्मादग्निदाहः पुरे गृहे ॥
मृत्युस्त्रासश्च दारिद्र्यं विच्छेदो बन्धुभिः सह ।
भूतप्रेतपिशाचाभिनिवेशोऽपि गृहे गृहे ॥
अष्टभिश्च महारोगैः प्रजानां निधनं भवेत् ।
इतस्ततः प्रधावन्ति लोकाः भयनिपीडिताः ॥
किं बहूक्तेन देवेशि कल्प आकालिको भवेत् ।
इतरेषामणीयस्तु भयं राज्ञां महद् भवेत् ॥
कुमारीचेष्टितद्वारा ज्ञायते हि शुभाशुभम् ।
वार्षिकं च फलं राज्ञो जयो वाथ पराजयः ॥
मृत्युर्दुःखं धनं सौख्यं शत्रुभीतिर्बलोन्नतिः ।

राज्यवृद्धिः प्रजापीडा व्यङ्ग्यतानीकसङ्क्षयः ॥
कुमारीपूजनात् सर्वं जायते भोजनादपि ।
परीक्ष्यं यत्नतस्तस्माद् राज्ञा स्वस्य शुभाशुभम् ॥
अर्चातोऽपि विशेषेण भोजनेन सुरेश्वरि ।
जाते शुभे समीचीनं वृत्ते तदितरत्र हि ॥
काम्यार्चा बहुसम्भारैर्दोषं तज्जं निवारयेत् ।
निवृत्य स्वगृहं याता यदि रुग्णा कुमारिका ॥
तस्मिन्नेवाहनि भवेत् तथापि न शुभं फलम् ।
इत्यादिफलबाहुल्यं शुभस्याप्यशुभस्य च ॥
मया विविच्य कथितं ध्रियस्व हृदि यत्नतः ।
ततो निशीथसमये विधिवत् पूजनं पुनः ॥
पीठमूर्त्योः प्रकुर्वीत धूपदीपानुलेपनैः ।
नैवेद्यैरुपहारैश्च गीतवाद्यादिभिस्तथा ॥

पुरश्चर्यार्णवे समागताः महाकालसंहिताश्लोकाः—

(क) निशामयाधराम्नायगोचरान् देवतामनून् ।
यत्राद्यभूता विख्याता भीमादेवी भयानका ॥
कुलबाला च दुर्गा च सर्वाम्नायप्रपूजिता ।
तयोः पूजा तु सर्वत्र नित्यत्वेनाभिधीयते ॥

कालीस्वरूपप्रकारप्रदर्शनप्रसङ्गे प्रथमतरङ्गे—

(ख) काली नवविधा प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
आद्या दक्षिणकाली च भद्रकाली तथा परा ॥
अन्या श्मशानकाली च कालकाली चतुर्थिका ।
पञ्चमी गुह्यकाली च पूर्वं या कथिता मया ॥
षष्ठी कामकला काली सप्तमी धनकालिका ।
अष्टमी सिद्धिकाली च नवमी चण्डकालिका ॥

प्राणायामप्रसङ्गे तत्र तृतीयतरङ्गे—

(ग) मूलमन्त्रस्य जापेन मात्राषोडशकेन हि ।
वामनासापुटेनैव पूरयित्वानिलं बलात् ॥
पुनस्तस्य चतुःषष्ट्यावृत्त्यां वायुं विकुम्भ्य च ।
पुनर्द्वात्रिंशदावृत्त्या मूलमन्त्रस्य पार्वति ॥
नासापुटेन दक्षेण रेचयेद् सकलानिलम् ।
प्रकारेणेदृशेनैकः प्राणायामो हि जायते ॥
आवश्यकं तत्त्रयं हि फलाधिक्यं समुच्चये ।

भूतशुद्धिप्रकरणे तस्मिन्नेव तरङ्गे—

(घ) हृत्पुण्डरीकादात्मानं ज्वलद्दीपशिखाकृतिम् ॥
सुषुम्णा वर्त्मना ब्रह्मबीजमन्त्रेण मस्तके ।
सहस्रदलमध्यस्थे संयोज्य परमात्मनि ॥
वामनासापुटेनाथ पूरयित्वा समीरणम् ।
सबिन्दु वायुबीजं च धूम्रवर्णं विभाव्य च ॥
तदेव बीजं देवेशि पञ्चाशद्वारमीडयेत् ।
तदुत्पन्नेन वातेन शुष्कं देहं विचिन्त्य च ॥
सहैव रेचयेद् वायुं ततो नासापुटेन च ।
वामेन वायुमुत्तोल्य सहस्रदलमध्यगम् ॥
विभाव्य परमात्मानं चन्द्ररूपं वरानने ।
सानुस्वारं वायुबीजं पञ्चाशद्वारमुच्चरन् ॥
तस्मात् चन्द्रात्सुधावृष्ट्या देहमाप्लाव्य सुन्दरि ।
भूबीजेन सनादेन शुद्धं संयोज्य विग्रहम् ॥
लोनीकृतानि यानीह पञ्चभूतानि वै पुरा ।
यथास्थानं स्थापयित्वा ब्रह्मबीजं पुनर्गृणन् ॥
अहङ्कारादिभिस्तत्त्वैः सहैव परमात्मनि ।
जीवात्मानं समाकृष्य स्थापयित्वा हृदम्बुजे ॥
देवीरूपमथात्मानं चिन्तयेत् क्षणमूर्जितः ।

अमृतीकरणप्रकरणे तस्मिन्नेव तरङ्गे—

(ङ) ततः प्रसूनं संगृह्य त्रिखण्डामुद्रया सुधीः ।
करकच्छपिकां बद्ध्वा ध्यानं देव्याः समाचरेत् ॥
यस्य मन्त्रस्य यद् ध्यानं यादृशं परिकीर्तितम् ।
तेनैव ध्यानयोगेन ध्यायीत जगदम्बिकाम् ॥
वहन्नासापुटद्वारा हृदयाम्बुजमध्यतः ।
देवीं पुष्पे समानीय पुष्पं मन्त्रे प्रविन्यसेत् ॥

उपचारपरिचयावसरे तस्मिन्नेव तरङ्गे—

पाद्यार्घाचमनीयं स्नानीयं चत्वार्यनुक्रमात् ।
गन्धं पुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च ॥
पुनराचमनीयं च दशैतान् सम्प्रचक्षते ।

निषिद्धविहितपुष्पाण्यधिकृत्य तत्रैव—

(च) तुलसीभिरपामार्गैर्धत्तूरैः सिन्धुवारकैः ।
अर्कपुष्पैर्वासकैश्च नैव देवीं प्रपूजयेत् ॥

शिरीषैः कर्णिकारैश्च चम्पकैः कोविदारकैः ।
बकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैः कुरुण्टकैः ॥
लताभिर्ब्रह्मवृक्षस्य मृदुदूर्वाङ्कुरैरपि ।
काञ्चनारैरशोकैश्च पुन्नागैः केतकीदलैः ॥
सेफालिकाभिर्यूथीभिर्जातीभिर्दमनैरपि ।
शतवर्गैर्मल्लिकाभिरम्लानैर्बन्धुजीवकैः ॥
झिण्टीभिश्च जपापुष्पैः करवीरैश्च किंशुकैः ।
पारिजातैः पाटलैश्च पद्मैर्नीलोत्पलैरपि ॥
माधवीभिर्मरुवकैरपराजितयापि च ।
असनैश्च कदम्बैश्च द्रोणपुष्पैश्च केसरैः ।
अर्चयेत् कुसुमैरेतैर्देवीं साधकसत्तमः ।
बिल्वपत्रं तथा प्रीतिकरं देव्या वरानने ॥
न तथान्यत् किञ्चिदस्ति पुष्पेषु प्रीतिकारकम् ।
अतो यत्नेन दातव्यं बिल्वपत्रं त्रिपत्रयुक् ॥

× × × ×

(छ) एकजातीयकैः पुष्पैर्भिन्नजातीयकैरपि ।
माला तथैकवर्णा स्यात् भिन्नवर्णापि वा भवेत् ॥
सा पुनस्त्रिविधा ज्ञेया परिणाहवशेन तु ।
पतेद् हृदयपर्यन्तं या मालामोदशालिनी ॥
वैकक्षिका सा विज्ञेया सर्वावरतया स्थिता ।
अधोऽवलम्बिनो नाभेः कौसुमी या स्रगुच्यते ॥
सा धोरणी परिज्ञेया मध्यमा पूर्वतोऽधिका ।
आगुल्फस्रंसिनी या तु पादपद्मोपरि स्थिता ॥
वनमालेति सा प्रोक्ता सर्वाभ्यः स्रग्भ्य उत्तमा ।

दूतीयागप्रकरणे निषिद्धशक्तिपरिगणनावसरे तत्र—

(ज) ऋषिकन्यां न चाकर्षेन् मद्यपानां च कन्यकाम् ।
द्विजातीनां स्त्रियं चापि व्रतस्थानां स्त्रियं तथा ॥
गुर्वङ्गना गुरोः पत्नीं सगोत्रां शरणागताम् ।
शिष्ययोषा न चाकर्षेद् पापिनां वनितां तथा ॥
नापुष्पितां गुर्विणी वा बालापत्यां तथा पुनः ।

पुनःकीदृशी शक्तिः परिग्राह्येति तत्रैव—

स्नातां दिव्याम्बरधरां नानालङ्कारभूषिताम् ।
युवतीं पीनवक्षोजां तथा चाकृतभोजनाम् ॥
हस्ते गृहीत्वा वामोरौ स्थापयेच्छक्तिमुत्तमाम् ।

अशक्नुवानो वोढुं तां देवीवामेऽथवासने ॥

पुनः द्विजस्यानधिकारोऽत्रेति यथा—

स्वयोषां परयोषां वा नैवाकृष्य द्विजो जपेत् ।
लोभाद् यदि चरेदेवमधो याति द्विजस्तदा ॥
इहामुत्र फलं नास्ति हीनायुरपि जायते ।

पुरश्चरणप्रकरणे तत्राभिहितम्—

(झ) नियमास्तत्र भूयांसः प्रकर्तव्याः प्रयत्नतः ।
अवैधकरणात् सिद्धिहानिः स्यान्नात्र संशयः ॥

बलिप्रसङ्गेऽभिहितम्—

गणेशवटुकक्षेत्रपालेभ्यो बलिमाहरेत् ।
योगिनीभ्यश्च पूर्वादिप्रादक्षिण्येन देशिकः ॥
गणाधिपतये पश्चाद् वटुकाय निवेदयेत् ।

कालीमन्त्रपुरश्चरणप्रकरणे—

द्विजानां चैव सर्वेषां दिवाविधिरिहोच्यते ।
शूद्राणां च तथा प्रोक्तं रात्राविष्टं महाफलम् ॥

× × × ×

द्रव्येण सात्त्विकेनैव ब्राह्मणः पूजयेच्छिवाम् ।
स्वकीयां परकीयां वा सामान्यवनितां तथा ॥
जपेयुस्ताः समाकृष्य क्षत्रविट्शूद्रजातयः ।

× × × ×

श्रूयते यत्फलाधिक्यं तन्त्रादौ मद्यदानतः ।
तद्धि शूद्रपरं ज्ञेयं न तु द्विजपरं प्रिये ॥

× × × ×

कदाचिदनुकल्पोक्तां दद्याद् देव्यै द्विजः सुराम् ।
उपमद्यानि ते वच्मि तानि देव्यवधारय ॥
आर्द्रकस्य गुडस्यापि समभागे भवेत्सुरा ।
ताम्रपात्रे तथा क्षौद्रं पयो गव्यं तथात्र च ॥
नारिकेलोदकं कांस्ये रीतौ तालरसोऽपि च ।
रसालश्च रसो रङ्गे शङ्खे वा पानसो रसः ॥
मधूकपुटके द्राक्षा तत्पुष्पं तद्दलेऽपि च ।
चिञ्चारसं पद्मपत्रेऽश्वत्थे कारकपानकम् ॥
उपमद्यानि चैतानि द्वादश स्युर्वरानने ।
द्विजो दित्सति चेन्मद्यं दद्यादेतानि नो सुराम् ॥

एतान्यपि न देयानि सात्त्विकैर्धर्मभीरुभिः ।
मद्यं वाप्युपमद्यं वा मद्यं नाम न गच्छति ॥
पातित्यं किन्तु नामीभिस्तैरेव पतितो भवेत् ।
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रे गव्यं तथा मधु ॥
राजन्यवैश्ययोर्दानं न विप्रस्य कदाचन ।
एवं प्रदानमात्रेण हीनायुर्ब्राह्मणो भवेत् ॥
वस्तुष्वन्येषु तिष्ठत्सु देवीप्रीतिकरेषु च ।
किमेतया वै सुरया कदन्नमलरूपया ॥
भूतप्रेतपिशाचार्थं पूयमिश्रं सुरामिषम् ।
तद् ब्राह्मणेन नो देयं देव्यै नात्तव्यमेव च ॥
न चैतया तुष्यति सा बहु वापि घृणायते ।
उद्विग्ना च भवेत् तस्माद् दद्यान्नैव द्विजः सुराम् ॥
हतो वेदो हतो धर्मः परलोको हतः स्वकः ।
कुलं हतं हता जातिर्हतं ब्राह्मण्यमेव च ॥
प्राज्ञंमन्येन मूर्खेण पिबता ज्ञानतः सुराम् ।
किं कृतं साधितं किं वा किञ्च वा समुपार्जितम् ॥
यदयं हतवान् स्वस्य सर्वं मद्योपसेवनात् ।
एवमेवाज्ञानमग्नो मामप्याशु हनिष्यति ॥
उद्विग्नैवं महामाया भवेत् तदवलोकनात् ।
कैवर्तपुक्कसम्लेच्छरजकान्त्यावसायिनाम् ॥
चर्मकारनटप्रोथमेदोवेणूपजीविनाम् ।
सिद्धदुर्गन्धिशुष्कान्नं द्रव्यं मह्यं निवेद्य हि ॥
सुधावत् पिबतां पुंसां कथं विट्सु नहि स्पृहा ।
अन्ये न सन्ति वस्त्वाद्या नैवेद्यकरणाय किम् ॥
अस्पृश्यं यत् तदानीय मह्यं ददति कौलिकाः ।
ऋचो यजूंषि सामानि ह्यथर्वाङ्गिरसस्तथा ॥
वेदेभ्यः कोटिगुणिता महामन्त्रास्तथैव च ।
ये प्लावयन्ति देहस्थान् मद्यैराकण्ठपूरितैः ॥
मामपि प्लावयिष्यन्ति किमाश्चर्यं हि ते जनाः ।
सात्त्विकैरेव नैवेद्यैः कन्दैः पुष्पैः फलैर्दलैः ॥
अभावे भाव(तोय)भक्तिभ्यां सत्यं तुष्टा भवाम्यहम् ।
न मद्यमांसविस्तारैः प्रेतराक्षसभोजनैः ॥
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा मरीच्यत्र्यङ्गिरोमुखा ।
एतेषामन्वयोद्भूताः पुनरन्ये सहस्रशः ॥
कश्यपश्चैव दुर्वासा दत्तात्रेयश्च चन्द्रमाः ।

बृहस्पतिर्विश्रवाश्च शक्तिर्दक्षो मृकण्डुजः ॥
नारदः कपिलो व्यासः काकाग्निर्जमदग्निजः ।
दाक्षः कविरथर्वा च शाण्डिल्यो गौतमो मनुः ॥
नचिकेता भरद्वाजः श्वेताश्वतर एव च ।
और्वो दधीचिश्च्यवन ऋचीकश्च पराशरः ॥
शातातपो लोमशश्च जैगीषव्यश्च देवलः ।
पैठीनसिर्वीतहव्यः संवर्तोऽगस्तिरासुरिः ॥
उपमन्युर्मतङ्गश्च तथा वाजश्रवाः कठः ।
उद्दालकश्चारुणेय आश्वलायन एव च ॥
उत्तङ्कश्च यवक्रीतः कात्यायन ऋतश्रवाः ।
एते चान्ये च मुनयो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥
ईजानाः क्रतुभिः सर्वैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
गृणन्तो निगमं सर्वं कुर्वन्तो दुश्चरं तपः ॥
ध्यायन्तो निष्कलं ब्रह्म जपन्तो मामकं मनुम् ।
सर्वदा सात्त्विकैरेवोपचारैः पूजयन्ति माम् ॥
सदा मय्यर्पितहृदः सदा मद्भावभाविताः ।
सदा मच्छ्रणं प्राप्ताः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥
वाय्वाहारा निराहारा ऊर्ध्वरेतस एव च ।
तपोबलाद् भ्रंशयितुं शक्रमप्यलमीदृशाः ।
न निवेदितवन्तस्ते किमर्थं मदिरां मयि ॥
विज्ञायास्यां महादोषं निन्द्यतां पापहेतुताम् ।
गर्हाकरत्वं पातित्यकारित्वं पूतितामपि ॥
परलोकविनाशित्वं तथा नरकहेतुताम् ।
विप्रत्वजातिहन्तृत्वं म्लेच्छतुल्यत्वकारिताम् ॥
अतस्तत्यजुरेवैनां संगृह्य श्रुतिपद्धतिम् ।
यद्यस्यां दोषराहित्यं पुण्यकारित्वमेव च ।
स्यात् तदा ते कथं मह्यं ददुर्नैव सुरां द्विजाः ॥
धर्मव्यवस्थां ज्ञात्वेत्थमन्येऽपि द्विजजातयः ।
निवेदयिष्यन्ति नैव मह्यं मद्यं कथञ्चन ॥
बोधिता अपि शास्त्रार्थैरनादृत्य वचो मम ।
मोहाद् व्यवहरिष्यन्ति लोभोपहतचेतसः ॥
ये केचित् तान् धर्मराजः शासिष्यति न संशयः ।
तीव्रैर्दण्डैर्महाघोरनरकादिनिपातनैः ।
इति सत्यं पुरा मह्यं प्रोवाच जगदम्बिका ॥
तत्राहमवदं देवि देवीवक्त्रोत्थिताक्षरैः ।

अतः परं श्रुत्युदितं धर्ममद्वाक्यमेव च ॥
देव्याज्ञां च समुल्लङ्घ्य ये दास्यन्ति सुरां द्विजाः ।
तेषां शास्त्री महामाया श्रोतव्यं शृण्वतः परम् ॥
द्विजेतरः सम्प्रदद्याद् देव्यै मद्यं सदा रहः ।
स्वयं महाप्रसादं च भुञ्जीत प्रत्यहं प्रिये ॥
मांसानि दग्धमीनाश्च सर्वदैव निवेदयेत् ।
शूद्रादीनामथैतेषां सद्यस्तुष्यति कालिका ॥
द्विजानां यावती निन्दा कथिता मद्यदानतः ।
शूद्राणां तावती ज्ञेया प्रशस्तिर्वरवर्णिनि ॥
अतः शूद्रः प्रयत्नेन देव्यै मद्यं निवेदयेत् ।
दीर्घायुष्ट्वमरोगित्वं वाग्मित्वं राजमान्यताम् ॥
पुत्रक्षेत्रकलत्रार्थपरिपूर्णत्वमेव च ।
अन्ते स्वर्गादिगमनं शूद्रः प्राप्नोति मद्यतः ॥
श्रूयते यत्फलाधिक्यं तन्त्रादौ मद्यदानतः ।
तद्धि शूद्रपरं ज्ञेयं नैव द्विजपरं प्रिये ॥
स्वयं यदन्नो भवति तदन्नास्तस्य देवताः ।
पितरश्च तदन्नाः स्युरित्येवं वैदिकी स्थितिः ॥
प्राणिजातिषु सर्वासु मानुष्यमतिदुर्लभम् ।
मानुष्येष्वपि देहेषु शूद्रः श्रेष्ठोऽन्त्यजातितः ॥
शूद्राच्छतगुणो वैश्यो वैश्यात् साहस्रिको नृपः ।
नृपात् कोटिगुणो विप्रो ज्ञेयः स्वाध्यायतत्परः ॥
अत एव हि सर्गादौ जगत्सृष्ट्वा चराचरम् ।
यद्यत् सारतरं वस्तु तद् ब्रह्मादाद् द्विजातये ॥
वेदाः षडङ्गशास्त्राणि क्षमा सत्यं तपो धृतिः ।
शौचं दानं दया धर्मो विवेकः कलभाषिता ॥
त्यागः शान्तिश्च मर्यादा स्वाध्यायोऽध्यात्मचिन्तनम् ।
यज्ञाः सर्वहविर्गव्यं पयो मेध्यान्नमेव च ॥
एतेषां विपरीतानि ददौ शूद्रेभ्य एव च ।
त्रयाणामपि वर्णानां दासभावमदात् ततः ॥
सर्वशिल्पोपजीवित्वं मन्त्रराहित्यमेव च ।
अनाशीस्त्वमशौचत्वमपाङ्क्तेयत्वमेव च ॥
अस्पृश्यत्वमपाठित्वमसम्भाष्यत्वमेव च ।
मद्यमांसोपयोगित्वं तद् विक्रेतृत्वमेव च ॥
देवेभ्यस्तत्प्रदातृत्वं तदुत्पादित्वमेव च ।
म्लेच्छादिदेशगमनं तत्सम्पर्कित्वमेव च ॥

महासाहसकारित्वं वेदाश्रोतृत्वमेव च ।
एतस्मात् कारणाद्देवि वेदमर्यादयानया ॥
ब्रवीमि मदिरादानेष्वेषामेवाधिकारिता ।
दोषोऽणुरपि नैतेषां देवेभ्यो मद्यदानतः ॥
फलातिरेकता वापि श्रूयते निगमादिषु ।
अतः प्रयत्नतः शूद्रो दद्याद्देव्यै परिस्नुतम् ॥
तामेव वर्जयेद् विप्रः सदा प्राणात्ययेऽपि हि ।
निशम्यापीदृशान् दोषानथ चेद् दातुमिच्छति ॥
स च सा न विजानाति धर्मं वा पापमेव वा ।

× × × ×

गुह्यकाल्यास्तु मन्त्राणामष्टादशभिदाः प्रिये ।
सर्वागमेषु गोप्यास्ते न प्रकाश्याः कदाचन ॥
मन्त्राणां भेदतो ध्यानभेदाः स्युर्विविधास्तथा ।
यन्त्रभेदा अपि तथा वाहनानां भिदास्तथा ॥
यो मन्त्रो येन चाभ्यस्तस्तन्नाम्ना सः प्रकीर्तितः ।
ब्रह्मणा च वशिष्ठेन रामेण च तथा प्रिये ॥
हिरण्याक्षानुजेनापि कुबेरेण यमेन च ।
भरतेन दशास्येन बलिना वासवेन च ॥
विष्णुनान्यैश्च देवैश्च दैत्येन्द्रैर्विविधैरपि ।
उपासिता सिद्धिहेतोर्लब्धा सिद्धिश्च भूयसी ॥
शतवक्त्राशीतिवक्त्रा षष्टिवक्त्रा तथैव च ।
षट्त्रिंशदानना विंशदानना परिकीर्तिता ॥
तथा विंशतिवक्त्रा च दशवक्त्रा च कालिका ।
पञ्चवक्त्रा त्रिवक्त्रा च द्विवक्त्रा चैकवक्त्रिका ॥
या गुह्यकाली तन्मध्ये भरतोपासिता प्रिये ।
दशवक्त्रा षोडशार्णा चतुष्पञ्चाशदोर्युता ॥
सर्वासां गुह्यकालीनां सा वै मुख्यतमा स्मृता ।
तामेवादौ व्याहरामि व्याहरिष्ये ततः पराः ॥
षोडशाक्षरको मन्त्रः कीलितश्चाप्यकीलितः ।
तत्रादौ कीलितं वच्मि ततो वक्ष्याम्यकीलितम् ॥
कीलकाकीलकध्यानमेकमेव हि पार्वति ।
आदौ वेदादिमुद्धृत्य ततः पस्य द्वितीयकम् ॥
एकारयुक्तं दधो रेफं बिन्दुं च योजयेत् ॥
सिद्धिशब्दं ततः प्रोच्य करालिं च विनिर्दिशेत् ।
लज्जां क्रोधमनुस्मृत्य कफोणिं वाममुद्धरेत् ॥

वामदृग्बिन्द्वधोवह्नियुक्तं कुर्यात् ततश्च तम् ।
वधूबीजं पुनर्मन्त्रद्वितीयं बीजमुद्धरेत् ॥
हृन्मन्त्रो वह्निजाया च मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ।
अथवा कामिनीबीजात् पूर्वं क्रोधमनुस्मरेत् ॥
इयं हि भरतोपास्या कीलितापि च शापतः ।

× × × ×

भरतोपास्या षोडशाक्षरी द्विविधा तत्राद्या क्रीलिता द्वितीया त्वकीलितेत्यर्थः । सप्तदशाक्षरीमाह—

रामोपास्यामतो वक्ष्येऽक्षरसप्तदशान्विताम् ।
सापि हारीतमुनिना कीलिता तपसो बलात् ॥
आदौ तस्यैव मन्त्रस्य चतुरोऽर्णान् समुद्धरेत् ।
द्वितीयबीजोपरि च हसखं विनियोजयेत् ॥
एवं तु पञ्चमं बीजं षष्ठं खेन च वर्जितम् ।
सप्तमं हसहीनं च करालि तदनन्तरम् ॥
त्रयोदशैकादशके स्थाने सप्तममक्षरम् ।
पञ्चमं द्वादशस्थाने द्वितीयं च चतुर्दशे ॥
आद्यं पञ्चदशे कुर्याद् वह्निजायान्तगो मनुः ।
हारीतोपासिता ह्येषा च्यवनोपासितां शृणु ॥
षष्ठपञ्चमयोरस्य व्यत्ययः समुदीरितः ।
एतावतैव भवति च्यावनी सुमहाफला ।

अत्रापि रामोपासिता सप्तदशाक्षरी द्विविधा हारीतोपासिता च्यवनोपासिता च । तयोर्मध्ये हारीतोपासितैव कीलिता च्यवनोपासिता तु न कीलितेति बोध्यम् ।

ऋष्यादिकमाह—

षोडशाक्षरयोर्मन्त्रभेदयोरधुना ब्रुवे ।
ऋष्यादिकं ततः सप्तदश्याश्च कथयामि ते ॥
अथर्वा ऋषिरुद्दिष्टो जगती छन्द उच्यते ।
देवता गुह्यकाली च द्वितीयार्णं तु कीलकम् ॥
शक्तिस्तु दशमं बीजं द्वितीये नवमं भवेत् ।
पुरुषार्थचतुष्कस्य सिद्धये कामनास्थितिः ॥
सप्तदश्यास्तु मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिर्मतः ।
छन्दश्च सुप्रतिष्ठाख्यं देवता गुह्यकालिका ॥
पञ्चमार्णं कीलकं स्यात् सप्तमं शक्तिरुच्यते ।
तदेव विपरीतं हि च्यावन्यां समुदीरितम् ॥
प्रयोगः सर्वसिद्ध्यर्थं जपे प्रोच्चारितो भवेत् ।

अन्येषां मन्त्रभेदानां यदुद्धारं वदामि ते ॥
तदा ऋष्यादिकं तेषां कथयिष्यामि पार्वति ।

अथ षडङ्गन्यासस्तत्रैव—

द्वे पञ्च त्रीणि च द्वे द्वे पुनर्द्वे पुनस्तथा ।
वर्णाक्षराणां भारत्यास्तत्तत्स्थाने प्रविन्यसेत् ॥
तावन्तोऽर्णाः सप्रणवास्तत्र तत्र स्थले न्यसेत् ।
यादृशी च्यावनीमन्त्रवर्णावल्यनुतिष्ठति ॥
तारयोर्मध्यवर्तीनि देवीवर्णानि तानि हि ।
न्यसेत् स्थानेषु तेष्वेव हारीतोपासिते मनौ ॥

ध्यानमाह—

भरतोपासिता या च रामोपास्या च या स्मृता ।
ध्यानं तयोरेकमेव कथ्यमानं मया शृणु ॥
ध्यायेद् देवीप्रभावोत्थप्रोच्छलद्रक्तवारिधिम् ।
उत्तुङ्गोत्तुङ्गकल्लोलप्रपूरितदिगन्तरम् ॥
तत्र द्वीपं रक्तमांसपूरितं रक्तबालुकम् ।
नवकोटिकचामुण्डाकोटिभैरववेष्टितम् ॥
तन्मध्ये मण्डलं ध्यायेद् योजनायुतविस्तृतम् ।
भैरवीकोटिघटितं प्राकारं तत्र चिन्तयेत् ॥
एकं श्मशानं तन्मध्ये शतयोजनविस्तृतम् ।
चिन्तयेत् प्रोच्छलद् वह्निज्वालाव्याप्तक्ष्मण्डलम् ।
योगिनीकोटिविहितकरतालिकचेष्टितम् ॥
नारान्त्रनद्धमुण्डस्त्रक्कृततोरणमालिकम् ।
तदन्तःस्थायिनीं कालीं ध्यायेन्निश्चलमानसः ॥
रत्नसिंहासनं दिव्यं हीरामुक्तादिनिर्मितम् ।
धारयन्तं चतुष्कोणे युगं वेदं विचिन्तयेत् ॥
सत्ययुगं च ऋग्वेदं शुक्लवर्णं च पूर्वगम् ।
त्रेतायुगं यजुर्वेदं पीतवर्णं च दक्षगम् ॥
द्वापरं सामवेदं च रक्तं पश्चिमदिग्गतम् ।
अथर्ववेदं च कलिं श्याममुत्तरदिग्गतम् ॥
उपवेदस्य शुभ्रस्य मूर्ध्नि सिहासनं स्थितम् ।
तस्य सिहांसनस्योर्ध्वमन्यत् सिंहासनं महत् ॥
स्वस्वास्त्रवाहनयुतैर्दिगष्टपतिभिर्वृतम् ।
देव्याः सिंहासनधरांस्तांश्च ध्यायेदतन्द्रितः ॥
स्वां स्वां दिशमवष्टभ्य स्थितान् परमशोभितान् ।

इन्द्रं पीतं सवज्रं च स्थितमैरावतोपरि ॥
पावकं रक्तवर्णं च छागस्थं शक्तिपाणिकम् ।
यमं कृष्णं कासरस्थं दण्डहस्तं भयानकम् ॥
निर्ऋतिं धूमवर्णं च खड्गहस्तं तुरङ्गमम् ।
वरुणं पाशहस्तं च शुभ्रं मकरवाहनम् ॥
श्यामं वायुं ध्वजधरं हरिणोपरि संस्थितम् ।
गदाधरं कुबेरञ्च कुङ्कुमाभं नरे स्थितम् ॥
ईशानं शुभ्रवर्णं च शूलहस्तं वृषे स्थितम् ।
सिंहासनं तृतीयं च पञ्चप्रेतैर्धृतं प्रिये ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
एते पञ्च महाप्रेताः स्थिताः सिंहासनादधः ॥
पीतः श्यामस्तथा रक्तो धूम्रः श्वेतः क्रमादिमे ।
दण्डं चक्रं च शक्तिं च शूलं खट्वाङ्गमेव च ॥
धारयन्तो मुखे न्यस्ततर्जनीकास्त्रिलोचनाः ।
केशरिद्विपकोलाश्च फेत्काररवभीषणाः ॥
ऊर्ध्वं स्थूलतरं घोरं कृष्णवर्णं चतुर्भुजम् ।
पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं च कीकशाभरणान्वितम् ॥
खट्वाङ्गं कर्तृकां दक्षे कपालं डमरुं तथा ।
धारयन्तं मुण्डमालायुतं दंष्ट्राग्रभीषणम् ॥
तदूर्ध्वं षोडशदलं पद्मं यज्ञोपकल्पितम् ।
ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमो वाजपेयश्च षोडशी ॥
चयनं पुण्डरीकश्च राजसूयोऽश्वमेधकः ।
बार्हस्पत्यं विश्वजिच्च गोमेधो नरमेधकः ॥
सौत्रामण्यर्धसावित्री सूर्यकान्तोऽचलम्भिदः ।
एतादृशैः षोडशभिर्दलैः पद्मं प्रकल्पितम् ॥
तस्योपरि ततो ध्यायेच्छिवासनमनुत्तमम् ।
बिन्दुनादयुतं नीलं शशाङ्ककृतलाञ्छनम् ॥
महार्घरत्नाभरणं त्रिनेत्रं भीमदर्शनम् ।
वज्रदंष्ट्रानखस्पर्शं पदमपृष्ठे शिवोत्तमम् ॥
पिङ्गोग्रैकजटाभारं द्विभुजं नागहारिणम् ।
वसानं चर्मवैयाघ्रं शूलखट्वाङ्गधारिणम् ॥
अष्टपत्राम्बुजं तस्योपरिष्टान्नवमासनम् ।
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुर्दिशि ॥
यशो विवेकः कामश्च मोक्षश्चेति विदिग्दिशि ।
एवमष्टदलाम्भोजोपविष्टां गुह्यकालिकाम् ॥

ध्यायेन्नीलोत्पलश्यामामिन्द्रनीलसमद्युतिम् ।
घनाघनतनुद्योतां स्निग्धदूर्वादलद्युतिम् ॥
ज्ञानरश्मिच्छटाटोपज्योतिर्मण्डलमध्यगाम् ।
दशवक्त्रां गुह्यकालीं सप्तविंशतिलोचनाम् ॥
द्विद्विनेत्रयुतां वक्त्रे वामदक्षिणसम्मुखे ।
सप्तस्वन्येषु वक्त्रेषु त्रित्रिलोचनसंयुताम् ॥
उर्ध्ववक्त्रं द्वीपकाख्यं चण्डयोगेश्वरीति हि ।
तस्याधः केशरिमुखं श्वेतवर्णं विभीषणम् ॥
तस्याधः फेरुवक्त्रं च कृष्णं त्रैलोक्यडामरम् ।
वानरास्यं ततो वामे रक्तवर्णं महोज्ज्वलम् ॥
नरास्यं तदधो ज्ञेयं किर्मीराभं महोत्कटम् ।
ऋक्षवक्त्रं भवेद्दक्षे धूम्रवर्णं भयानकम् ॥
गारुडास्यं ततो वामे पिङ्गवर्णं सुचञ्चुकम् ।
दक्षिणे मकरास्यं च हरिताभं प्रकीर्तितम् ॥
गजास्यं वामतः प्रोक्तं गौरवक्त्रं स्रवन्मदम् ।
हयास्यं दक्षिणे काल्याः श्यामवर्णं विचिन्तयेत् ॥
महादंष्ट्राकरालानि दारुणस्वनवन्ति च ।
अट्टाट्टहासयुक्तानि स्रवद्रक्तानि सर्वदा ॥
लेलिहानविनिष्क्रान्तललज्जिह्वान्वितानि च ।
अहर्निशं कम्पमानान्यास्यानि दधतीं शिवाम् ॥
भीमनिर्ह्रादिनीं भीमां भ्रूभङ्गकुटिलाननाम् ।
पिङ्गलोर्ध्वजटाजूटां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ॥
नानारत्नविनिर्माणसुमुण्डस्वर्णभूषणाम् ।
स्रवद्रक्तनृमुण्डासृक्क्कृतनक्षत्रमालिकाम् ॥
आकण्ठगुल्फलम्बिन्यालङ्कृतां मुण्डमालया ।
श्वेतास्थिगुलिकाहारग्रैवेयकमहोज्ज्वलाम् ॥
शवदीर्घाङ्गुलीपङ्क्तिमण्डितोरःस्थलस्थिराम् ।
कठोरपिङ्गलोत्तुङ्गवक्षोजयुगलान्विताम् ॥
महामारकतग्राववेदिश्रोणिपरिष्कृताम् ।
विशालजघनाभोगामतिक्षीणकटिस्थलाम् ॥
अन्त्रनद्धार्भकशिरोवलत्किङ्किणिमण्डिताम् ।
चतुःपञ्चाशता दोष्णां भूषितां जगदम्बिकाम् ॥
रत्नमालां कपालं च चर्मपाशं तथैव च ।
शक्तिं खट्वाङ्गमुण्डे च भुशुण्डीं धनुरेव च ॥
चक्रं घण्टां ततो बालप्रेतशैलमतः परम् ।

नरकङ्कालनकुलौ सर्पमुन्मादवंशिकाम् ॥
मुद्गरं वह्निकुण्डं च डमरुं डिण्डिमं तथा ।
भिन्दिपालं च मुशलं पाशं पट्टिशमेव च ॥
शतघ्नीं च शिवापोतं वामहस्तेषु बिभ्रतीम् ।
अथ दक्षभुजे रत्नमालां कर्त्रीमसिं तथा ॥
तर्जनीमङ्कुशं दण्डं रत्नकुम्भं त्रिशूलकम् ।
पञ्च पाशुपतान् बाणान् शोषकोन्मादमूर्छकान् ॥
संहारकान् मृत्युकरानेवं नामप्रधारिणः ।
कुन्तं च पारिजातञ्च छुरिकां तोमरं तथा ॥
पुष्पमालां डिण्डिमं च गृध्रं चैव कमण्डलुम् ।
मांसखण्डं श्रुवं बीजपूरं श्रुचं तथैव च ॥
परशुं च गदां यष्टिं मुष्टिं कुणपलालनम् ।
धारयन्तीं महारौद्रीं जगत्संहारकारिणीम् ॥
जवापुष्पाभनागेन्द्रकृतनूपुरयुग्मकाम् ।
पाटलोरगनिर्माणलसदङ्गदशोभिताम् ॥
धूसराहिकृतस्फीतकटिसूत्रावलम्बिनीम् ।
सुपाण्डुरभुजङ्गेन्द्रकृतताटङ्कशोभिताम् ॥
श्वेतदर्वीकरानद्धजटामुकुटमण्डिताम् ।
वैयाघ्रचर्मवसनां द्वीपिचर्मोत्तरीयकाम् ॥
किङ्किणीजालशोभाढ्यां वीरघण्टानिनादिनीम् ।
नूपुरारावललितां घर्घराशब्दभीषणाम् ॥
कटकाङ्गदकेयूरनरास्थिकृतशोभनाम् ।
रक्तपद्ममयीं मालां पादपद्मावलम्बिनीम् ॥
काञ्चीकट्टारकप्रेङ्खत्कटिमध्यविराजिताम् ।
ब्रह्मसूत्रोज्ज्वलत्कण्ठयोगपट्टोत्तरीयकाम् ।
सौम्योग्रभूषणैर्युक्तां नागाष्टकविराजिताम् ।
रत्नकुण्डलकर्णश्रीपञ्चकालानलस्थिताम् ॥
पद्मोपरि स्थितां देवीं नृत्यमानां सदोदिताम् ।
पद्मासनसुखासीनां सर्वदेवाधिदेवताम् ।
मुक्तहुँकारजिह्वाग्रं चालयन्तीं विचिन्तयेत् ।
त्रिकोटिशक्तिचामुण्डानवकोटिभिरन्विताम् ॥
महायोगिनिकोटीनामष्टादशभिरूर्जिताम् ।
चरन्तीं च हसन्तीं च डाकिनीषष्टिकोटिभिः ॥
भैरव्यशीतिकोटीभिः परिवारैश्च वेष्टिताम् ।
कोटिकालानलज्वालान्यक्कारोद्यत्कलेवराम् ॥

महाप्रलयकोट्यर्कविद्युदर्बुदसन्निभाम् ।
दुर्निरी(क्ष्यां) महाभीमां सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥
शत्रुपक्षक्षयकरीं दैत्यदानवसूदिनीम् ।
निर्विकारां निराभासां कूटस्थां चिद्विलासिनीम् ॥
अद्वैतां परमानन्दां नित्यां शुद्धां निरञ्जनाम् ।
सृष्टिः स्थितिश्च संहारोऽनाख्या भासा पदाभिधाम् ॥
वेदान्तवेद्यां कैवल्यरूपां निर्वाणकारिणीम् ।
गुणातीतामात्मरूपप्रबोधातीतगोचराम् ॥
एवं ध्येया महाकाली प्रोद्भिन्ननवयौवना ।
पञ्चवक्त्रस्य मध्यस्था गुह्यकाली परेश्वरी ॥

अथ पुरश्चरणं तत्रैव—

पर्वते वा नदीकूले शून्यागारे शिवालये ।
पीठे चतुष्पथे कुर्यात् पुरश्चरणमुत्तमम् ॥
नियमास्तत्र भूयांसः प्रकर्त्तव्याः प्रयत्नतः ।
अवैधकरणात् सिद्धिहानिः स्यान्नात्र संशयः ॥
त्रिकालमाचरेत् स्नानं हविष्यं भक्षयेन्निशि ।
स्वमन्त्रं चाक्षसूत्रं च गुरोरपि न दर्शयेत् ॥
त्यजेद् दुष्टप्रवादं च परीवादं च वर्जयेत् ।
तथा दुर्जनसंसर्गान् स्त्रीशूद्रालापनं तथा ॥
वस्त्रं कुशासनं व्याघ्रचर्म चापि नृमुण्डकम् ।
आसनं च महादेवि प्रशस्तश्चोत्तरामुखः ॥
शुद्धस्फटिकरुद्राक्षनृमुण्डास्थिविनिर्मिताम् ।
जपमालां शुभां विद्धि प्रशस्तामुत्तरोत्तराम् ॥
अनेनोक्तविधानेन लक्षसंख्यं जपेन्मनुम् ।
होमं दशांशतः कुर्यात् तर्पणं चाभिषेचनम् ॥
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत् प्रिये ।

× × × ×

दशवक्त्रा तु या प्रोक्ता गुह्यकाली मया तव ।
प्रकृतिः सा परिज्ञेया कालीनां जगदम्बिका ॥
अन्या विकृतयः प्रोक्ताः कार्यकारणभेदतः ।
सैव ज्ञेया वरारोहे निर्गुणब्रह्मरूपिणी ॥
जगत्सर्वं वशे तस्या वश्या कस्यापि सा न च ।
विश्वं सर्वं सृजति सा कोऽपि सृजति तां नहि ॥
सा पालयति संसारं तां पालयति कोऽपि न ॥

तां न संहरते कोऽपि सा सर्वं संहरत्यदः ।
तदाज्ञयाऽनिलो वाति सूर्यस्तपति तद्भयात् ॥
तद्भीत्याग्निः पचत्यन्नं मृत्युश्चरति तद्भयात् ।

× × × ×

कामकलाकालीमन्त्र—

परात्पर परेशान शशाङ्ककृतशेखर ।
योगादियोगिन् सर्वज्ञ सर्वभूतदयापर ॥
त्वत्तः श्रुताः मया मन्त्राः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः ।
विधिवत् पूजनं चापि न्यासावरणकक्रमैः ॥
तारा च छिन्नमस्ता च तथा त्रिपुरसुन्दरी ।
बाला च बगला चापि त्रिपुरा भैरवी तथा ॥
काली दक्षिणकाली च कुब्जिका (शब)रेश्वरी ।
अघोरा राजमातङ्गी सिद्धिलक्ष्मीस्त्वरुन्धती ।
अश्वारूढा भोगवती नित्यक्लिन्ना च कुक्कुटी ॥
कौमारी चापि वाराही चामुण्डा चण्डिकापि च ।
भुवनेशी तथोच्छिष्टचाण्डाली चण्डघण्टिका ॥
कालसङ्कर्षिणी चापि गुह्यकाली तथापरा ।
एताश्चान्याश्च वै देव्यः समन्त्राः कथितास्त्वया ॥
किन्तु कामकलाकालीं नोक्तवानसि मे प्रभो ।
तत्किं मय्यपि गोप्यं ते प्रायशः परमेश्वर ॥
न हीदृशं त्रिलोकेषु तव किञ्चन विद्यते ।
यदकथ्यं मयि भवेदपि प्राणाधिकाधिकम् ॥
तत् किं गोपयसि प्राज्ञ मयीदं दैवतं महत् ।
यद्यस्मि ते दयापात्रं मान्यास्मि स्नेहभाजनम् ॥
अनुग्राह्यास्मि कान्तास्मि तदेमां वद सम्प्रतम् ।
देवीं कामकलाकालीं समन्त्रध्यानपूर्विकाम् ॥

महाकाल उवाच—

धन्यास्यनुगृहीतासि तया देव्यैव सर्वथा ।
यत्ते बुद्धिः समुत्पन्ना तां देवी प्रति भामिनि ॥
विधाय शपथं देवि कथयामि तवाग्रतः ।
न हीदृशं भुक्तिमुक्तिसाधनं भुवि विद्यते ॥
यथार्थमात्थ देवि त्वं गोप्यत्वं चापि सर्वथा ।
किन्तु भक्तिविशेषात्ते कथयामि न संशयः ॥
राज्यं दद्याद् धनं दद्यात् स्त्रियं दद्यात् शिरस्तथा ।

न तु कामकलाकालीं दद्यात् कस्यापि न क्वचित्॥
इन्द्रेणोपासिता पूर्वं देवराज्यमभीप्सता ।
वरुणेन कुबेरेण ब्रह्मणा च मया तथा ॥
रामेण रावणेनापि यमेनापि विवस्वता ।
चन्द्रेण विष्णुना चापि तथान्यैश्च महर्षिभिः ॥
सहेलं वा सलीलं वा यस्याः स्मरणमात्रतः ।
विद्यालक्ष्मीः राज्यलक्ष्मीः कीर्तिलक्ष्मीर्वशे स्थिता॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
राज्यार्थी लभते राज्यं कान्तार्थी कामिनीं शुभाम् ॥
यशोऽर्थी कीर्तिमाप्नोति मुक्त्यर्थी मुक्तिमाप्नुयात्।
अणिमाद्यष्टसिद्ध्यर्थी सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात् ॥
द्विसप्ततितमं यावद् पुरुषाः पूर्वजाः स्मृताः ।
तेषां भाग्योदयैः पूर्णैर्विद्येयं यदि लभ्यते ॥
तदा सर्वस्वदानेन गृह्णीयादविचारयन् ।
कृतकृत्यं मन्यमानो गुरोः पादावभिस्पृशन् ॥
एकतः प्राणदानं स्यादेकतश्चैतदर्पणम् ।
तुलया विधृतं चेत्स्यादेतद् दानं विशिष्यते ॥
पूर्वजन्मार्जितैः पुण्यैर्लभ्यते वा न लभ्यते ।
शपथं कुरु देवेशि प्रकाश्येयं न कुत्रचित् ॥
सत्यं सत्यं त्रिसत्यं मे ततो वक्ष्यामि पार्वति ।
नो चेत् तेऽपि न वक्ष्यामि प्रमाणं तत्र सैव मे ॥

देव्युवाच—

शपे त्वच्चरणाब्जाभ्यां हिमाद्रिं शिरसा शपे।
शपे स्कन्दैकदन्ताभ्यां यद्येनामन्यतो ब्रुवे ॥
शपेऽथ वा तया देव्या यां मे त्वं कथयिष्यसि ।
प्रकाशयामि यद्येनां सैव मे विमुखी भवेत् ॥

महाकाल उवाच—

साधु साधु महाभागे प्रतीतिर्मेऽधुना त्वयि ।
अकार्षीः शपथं यस्मात् तस्माद् वक्ष्याम्यसंशयम्॥
समाहिता सावधाना भव देवि वरानने ।
विधेहि चित्तमेकाग्रं बद्ध्वाञ्जलिपुटं प्रिये ॥
कालीं कामकलापूर्वां शृणुष्वावहिता मम ।
× × × ×
या गुह्यकाली सैवेयं काली कामकलाभिधा ॥

मन्त्रभेदाद् ध्यानभेदाद् भवेत् कामकलात्मिका ।
यथा त्रिभेदा तारा स्यात् सुन्दरी सप्तसप्ततिः ॥
दक्षिणा पञ्चभेदा स्यात् तथेयं गुह्यकालिका ।
सप्तधा ध्यानमन्त्राभ्यां जायते भिन्नरूपिणी ॥
यथा पञ्चाक्षरो मन्त्रो देवी चैकजटा स्मृता ।
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो देवी दक्षिणकालिका ॥
तथान्येष्वपि देवेषु मुख्यासु बहुषु प्रिये ।
देवी कामकलाकाली मनुरष्टादशाक्षरः ॥
षोडशार्णा यथा मुख्या सर्वश्रीचक्रमध्यगा ।
तथेयं नवकालीषु सदा मुख्यतमा स्मृता ॥
त्रैलोक्याकर्षणो नाम मन्त्रोऽस्याः परिकीर्तितः ।
तस्योद्धारं प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन पार्वति ॥
श्रुत्वावधारयस्वेमां सर्वकल्याणहेतवे ।

मन्त्रोद्धारमाह—

आद्यवर्गाद्यवर्णोऽक्ष्णा वामेन परिशीलितः ।
मूर्ध्नि मूर्धा यतृतीययुगधः परिकीर्तितः ॥
बिन्दुवामाक्षिसंयुक्तो वह्निः खपरमस्तकः ।
वामश्रुत्यर्धचन्द्रेण तृतीयः सपरो भवेत् ॥
दक्षस्कन्धोर्ध्वदन्ताभ्यां चाक्ष(धो)रो बिन्दुमस्तकः ।
ओष्ठवर्गद्वितीयो हपूर्वाधरोष्ठबिन्दुयुक् ॥
षडक्षराणि सम्बोध्य यथानामस्थितिक्रमात् ।
प्रतिलोमेन चोद्धृत्य तानि बीजानि पञ्च वै ॥
भूतबीजाद्यमारभ्य मारबीजान्तमेव हि ।
वैश्वानरवधूयुक्तो मन्त्रो ह्यष्टादशाक्षरः ॥
अस्याः स्मरणमात्रेण यावत्यः सन्ति सिद्धयः ।
स्वयमायान्ति पुरतो जपादीनां च का कथा ॥
सप्त कामकलाकाल्याः मनवः सन्ति गोपिताः ।
तेषु सर्वेषु मन्त्रेषु मुख्योऽयं परिकीर्तितः ॥
स्मरणादस्य मन्त्रस्य मूर्छिताः सर्वदेवताः ।
स्तम्भिताः वेपमानाश्च उत्तिष्ठन्त्यतिविह्वलाः ॥
निदेशवर्तिनो भूत्वा वर्तन्ते चेटका इव ।
किं बहूक्तेन देवेशि सत्यपूर्वं ब्रवीम्यहम् ॥
सहस्रवदनेनापि लक्षकोट्याननेन वा ।
महिमा वर्णितुं शक्यो नास्य वर्षायुतैर्मया ।
सामान्यतो विजानीहि यद्यदिच्छति साधकः ।

तत्तत्करोति सकलं प्रजापतिरिवापरः ॥
त्रैलोक्याकर्षको नाम मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।

ऋष्यादिन्यासमाह—

अतः परं प्रवक्ष्यामि छन्दश्चर्षिं च बीजकम् ।
अस्य कामकलाकालीमन्त्रस्याहमृषिर्मतः ॥
छन्दश्च बृहती ख्यातं देवी चेयं प्रकीर्तिता ।
आद्यबीजं तु बीजं स्यात् क्रोधार्णं शक्तिरेव च ।
विनियोगोऽस्य सर्वस्य सर्वदा सर्वसिद्धये ॥
षडङ्गं पञ्चबीजैस्तैर्नाम्नाप्येकं च कारयेत् ।
नामाक्षराणि प्रत्येकं तत्र देयानि पार्वति ॥

अथ ध्यानम्—

ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि कुरु चित्तैकतानताम् ।
उद्यद्घनाघनाश्लिष्यज्जपाकुसुमसन्निभाम् ॥
मत्तकोकिलनेत्राभां पक्वजम्बूफलप्रभाम् ।
सुदीर्घप्रपदालम्बिविस्रस्तघनमूर्द्धजाम् ॥
ज्वलदङ्गारवच्छोणनेत्रत्रितयभूषिताम् ।
उद्यच्छारदसम्पूर्णचन्द्रकोकनदाननाम् ॥
दीर्घदंष्ट्रायुगोदञ्चत्विकरालमुखाम्बुजाम् ।
वितस्तिमात्रनिष्क्रान्तललज्जिह्वाभयानकाम् ॥
व्यात्तननतया दृश्यद्द्वात्रिंशद्दन्तमण्डलाम् ।
निरन्तरं वेपमानोत्तमाङ्गां घोररूपिणीम् ॥
अंसासक्तनृमुण्डासृक् पिबन्तीं वक्त्रकन्दरात् ।
सृक्कद्वन्द्वस्रवद्रक्तस्नापितोरोजयुग्मकाम् ॥
उरोजाम्भोजसंसक्तसम्पतद्रुधिरोच्चयाम् ।
सशीत्कृतिं धयन्तीं तल्लेलिहानरसज्ञया ॥
ललाटे घननारासृग्विहितारुणचित्रकाम् ।
सद्यश्छिन्नगलद्रक्तनृमुण्डकृतकुण्डलाम् ।
श्रुतिनद्धकचालम्बिवतंसलसदंसकाम् ।
स्रवदस्रौघया शश्वन्मानव्या मुण्डमालया ॥
आकण्ठगुल्फलम्बिन्यालङ्कृतां केशबद्धया ।
श्वेतास्थिगुलिकाहारग्रैवेयकमहोज्ज्वलाम् ॥
शवदीर्घाङ्गुलीपँक्तिमण्डितोरःस्थलस्थिराम् ।
कठोरपीवरोत्तुङ्गवक्षोजयुगलान्विताम् ॥
महामारकतग्राववेदिश्रोणिपरिष्कृताम् ।

विशालजघनाभोगामतिक्षीणकटिस्थलाम् ॥
अन्त्रनद्धार्भकशिरोवलत्किङ्किणिमण्डिताम् ।
सुपीनषोडशभुजां महाशङ्खाञ्चदङ्गकाम् ॥
शवानां धमनीपुञ्जैर्वेष्टितैः कृतकङ्कणाम् ।
ग्रथितैः शवकेशैः स्रग्दामभिः कटिसूत्रिणीम् ॥
शवपोतकरश्रेणीग्रथनैः कृतमेखलाम् ।
शोभमानाङ्गुलीमांसमेदोमज्जाङ्गुलीयकैः ॥
असिं त्रिशूलं चक्रं च शरमङ्कुशमेव च ।
लालनं च तथा कर्त्रीमक्षमालां च दक्षिणे ॥
पाशं च परशुं नागं चापं मुद्गरमेव च ।
शिवापोतं खर्परं च वसासृङ्मेदसान्वितम् ।
लम्बत्कचं नृमुण्डं च धारयन्तीं स्ववामतः ।
विलसन्नूपुरां देवीं ग्रथितैः शवपञ्जरैः ॥
श्मशानप्रज्वलद्घोरचिताग्निज्वालमध्यगाम् ।
अधोमुखमहादीर्घप्रसुप्तशवपृष्ठगाम् ॥
वमन्मुखानलज्वालाजालव्याप्तदिगन्तराम् ।
प्रोत्थायैव हि तिष्ठन्तीं प्रत्यालीढपदक्रमात् ॥
वामदक्षिणसंस्थाभ्यां नदन्तीभ्यां मुहुर्मुहुः ।
शिवाभ्यां घोररूपाभ्यां वमन्तीभ्यां महानलम् ॥
विद्युदङ्गारवर्णाभ्यां वेष्टितां परमेश्वरीम् ॥
अतीवभीषमाणाभ्यां शिवाभ्यां शोभितां मुहुः ।
कपालसंस्थं मस्तिष्कं ददतीं च तयोर्द्वयोः ॥
दिगम्बरां मुक्तकेशीमट्टहासभयानकाम् ।
सप्तधा बद्धनारान्त्रयोगपटटविभूषिताम् ॥
संहारभैरवेणैव सार्धं सम्भोगमिच्छतीम् ।
अतिकामातुरां कालीं हसन्तीं खर्वविग्रहाम् ॥
कोटिकालानलज्वालान्यक्कारोद्यत्कलेवराम् ।
महाप्रलयकोट्यर्कविद्युदर्बुदसन्निभाम् ॥
कल्पान्तकारिणीं कालीं महाभैरवरूपिणीम् ।
महाभीमां दुर्निरीक्ष्यां सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥
शत्रुपक्षक्षयकरीं दैत्यदानवसूदिनीम् ।
चिन्तयेदीदृशीं देवीं कालीं कामकलाभिधाम् ॥

अथ पुरश्चरणं तत्रैव—

अतः परं प्रवक्ष्यामि पौरश्चरणिकं विधिम् ।

एकस्मिन् यत्र विहिते सिद्धिस्तात्कालिकी भवेत् ॥
भूमिशुद्धिर्द्रव्यशुद्धिः पूर्वैव कथिता मया ।
यमाश्च नियमा ये स्युः पुरश्चरणकर्मणि ॥
सर्वानेव प्रयुञ्जीत सततं भक्तितत्परः ।
कृतनित्यक्रियः प्रातः कृतपूजाविधिः शुचिः ॥
नरास्थि निखनेद् भूमावस्त्रमन्त्रमुदीरयन् ।
तारं क्रोधोऽनु ह्रीं पाशस्मरभूतान् समुद्धरेत् ॥
सिद्धिमुच्चार्य देहीति युग्मं वह्न्यङ्गनां वदेत् ।

अथ कामकलायन्त्रम्—

यन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि तत्र धेहि मनः प्रिये ।
भूपुरे वसुपत्राढ्ये(?) पद्ममष्टदलान्वितम् ॥
केशराणि प्रकल्प्यानि तदन्तश्चापि कर्णिकाम् ।
कर्णिकान्तस्त्रिकोणस्य त्रितयं पृथगेव हि ॥
बहिस्त्रिकोणकोणेषु लिखेद् बीजत्रयं शुभम् ।
मायाबीजं तु वामे स्यात् क्रोधबीजं तु दक्षिणे ॥
अधः पाशं विनिर्दिश्य कन्दर्पार्णं तु मध्यतः ।
तदन्तः स्थायिनी देवी तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
एतद्यन्त्रं महादेवि सर्वकामफलप्रदम् ।
एतस्य सर्वयन्त्राणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

गुह्यकालीयन्त्रम्—

सबिन्दुत्र्यारपञ्चारविभिन्ननवकोणयुक् ।
वृत्तयोरन्तरेऽष्टारयुतं तदनु भाविनि ॥
वस्वर्कभूपच्छदनाम्भोजवृत्तान्वितं ततः ।
अष्टाशनिसमायुक्तमन्तर्बहिरथापि च ॥
अष्टशूलाष्टमुण्डाढ्यं वह्निज्वालायुतेन हि ।
श्मशानेनावृतं शेषे शोणितोदेन वेष्टितम् ॥
यन्त्रराजमिदं देवि पूजनाय प्रकल्पितम् ।
भरतश्च्यवनश्चापि हारीतश्च जवालकः ॥
दक्षश्चैते जनाः पञ्च पूजयन्त्यमुनाम्बिकाम् ।
बिन्दुः पञ्चारषट्कोणत्रिकोणनवकोणगः ॥
अष्टारवृत्तसहितषोडशच्छदपद्मयुक् ।
पूर्ववृत्तान्वितः शेषे पूर्ववत् सकलं प्रिये ॥
पूज्योऽयं रामयक्षेशनाहुषाणां वरानने ।

तथा—

तदुपर्येव चास्तीर्य स्वासनं सुष्ठु कल्पितम् ।
नृमुण्डमग्रतः कृत्वा नरास्थिजपमालया ॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः ।
अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकं तथैव च ॥
दशांशं होमयेन्मन्त्री तर्पयेदभिषेचयेत् ।
होमे सन्तर्पणे चैव पूजावत् कथितो विधिः ॥
पूजायां वा प्रयोगे वा होमे वा तर्पणेऽथ वा ।
गुह्यकालीविधानेन सर्वं कार्यं शुचिस्मिते ॥
अत्रानुक्तं विधानं यत् तत्रत्यं तत्प्रकल्पयेत् ।
तत्राप्यनुक्तं यत् किञ्चित् तत्रोक्तो दक्षिणाविधिः ।

इति कालीमन्त्रपुरश्चरणप्रकरणम् ।

× × × ×

श्रीविद्यामन्त्रपुरश्चरणप्रकरणे—

नातः परतरा विद्या न भूता न भविष्यति ।
केनापि नैव शप्तेयं न च केनापि कीलिता ॥

× × × ×

उद्यच्चन्द्रोदयक्षुब्धरक्तपीयूषवारिधेः ।
मध्ये हेममयी भूमी रत्नमाणिक्यमण्डिता ॥
तन्मध्ये नन्दनोद्यानं मदनोन्मादनं महत् ।
नित्याभ्युदितपूर्णेन्दुज्योत्स्नाजालविराजितम् ॥
सदा सह वसन्तेन कामदेवेन रक्षितम् ।
कदम्बचूतपुन्नागनागकेशरचम्पकैः ॥
बकुलैः पारिजातैश्च सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः ।
झङ्कारमुखरैर्भृङ्गैः कूजद्भिः कोकिलैः शुकैः ॥
नानावर्णैरथान्यैश्च द्विजसङ्घैर्निषेवितम् ।
शिखिकारण्डहंसाद्यैर्नानापक्षिभिरावृतम् ॥
नानापुष्पलताकीर्णैः शोभितं वृक्षखण्डकैः ।
पर्यन्तदीर्घिकोत्फुल्लकमलोत्पलसम्भवैः ॥
रजोभिर्धूसरैः सम्यक् सेवितं मलयानिलैः ।
ध्यात्वैवं नन्दनोद्यानं तदन्तः प्राङ्गणं स्मरेत् ॥
शुद्धकाञ्चनसङ्काशवसुधाभिरलङ्कृतम् ।
प्राङ्गणं चिन्तयित्वेत्थं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥

तन्मध्ये मण्डपं ध्यायेद् व्याप्तब्रह्माण्डमण्डलम् ।
सहस्रादित्यसङ्काशं चतुरस्रं सुशोभितम् ॥
रत्नतेजःप्रभापुञ्जपिञ्जरीकृतदिङ्मुखम् ।
मध्यस्तम्भविनिर्मुक्तं कोणस्तम्भसमन्वितम् ॥
महामाणिक्यवैदूर्यरत्नकाञ्चनभूषितम् ।
मुक्तादामवितानाढ्यं रत्नसोपानमण्डितम् ॥
मन्दवायुसमाक्रान्तं गन्धधूपतरङ्गितम् ।
रत्नचामरघण्टादिवितानैरुपशोभितम् ॥
जातीचम्पकपुन्नागकेतकीमल्लिकादिभिः ।
रक्तोत्पलसिताम्भोजमाधवीभिः सुपुष्पकैः ॥
बद्धाभिश्चित्रमालाभिः सर्वत्र समलङ्कृतम् ।
तिर्यगूर्ध्वलसद्रक्तपुत्तलीकोटिमण्डितम् ॥
नानारत्नादिभिर्दिव्यैर्निर्मितं विश्वकर्मणा ।
तन्मध्ये भावयेन्मन्त्री पारिजातं मनोहरम् ॥
स्वर्णादिरत्नभूमिं च बालुकां काञ्चनप्रभाम् ।
उद्यदादित्यसङ्काशं व्याप्तब्रह्माण्डमण्डलम् ॥
शतयोजनविस्तीर्णं ज्योतिर्मन्दिरमुत्तमम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं हेमप्राकारमण्डितम् ।
रत्नोपक्लृप्तसंशोभिकपाटाष्टकसंयुतम् ।
नवरत्नसमाक्लृप्ततुङ्गगोपुरतोरणम् ॥
हेमदण्डशिखालम्बिध्वजावलिपरिष्कृतम् ।
मध्यकोणस्थितस्तम्भनवरत्नसमन्वितम् ॥
महामाणिक्यवैदूर्यरत्नचामरशोभितम् ।
कल्पवृक्षे गिरेः पार्श्वे छत्रं तन्मण्डपोपरि ॥
सुवर्णसूत्रै रचितं तन्मध्ये रत्नमण्डपम् ।
तन्मध्ये स्फुरितं ध्यायेत् त्रिशृङ्गं ज्योतिरुत्तमम् ॥
तस्य मध्ये महाचक्रं पीयूषपरिपूरितम् ।
रत्नसिंहासनं तस्या वेद्या मध्ये स्मरेच्छुभम् ॥
विरिञ्चिविष्णुरुद्रेशरूपपादचतुष्टयम् ।
सदाशिवमयं साक्षात् तस्मिन् परशिवात्मकम् ॥
पुष्पपर्यङ्कतन्मध्ये श्रीमदुद्यानपीठके ।
पर्यङ्कबन्धविलसन् स्वस्तिकासनशालिनीम् ॥
ध्यायेत् परशिवाङ्कस्थां पद्ममध्योज्ज्वलाकृतिम् ।
त्रिपुरां सुन्दरीं देवीं बालार्ककिरणारुणाम् ॥
जपाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमोपमाम् ।

पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमारुणसन्निभाम् ॥
स्फुरन्मुकुटमाणिक्यकिङ्किणीजालमण्डिताम् ।
कालालिकुलसङ्काशकुटिलालकपल्लवाम् ॥
प्रत्यगारुणसङ्काशवदनाम्भोजमण्डिताम् ।
किञ्चिदर्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम् ॥
पिनाकधनुराकारभ्रूलतां परमेश्वरीम् ।
आनन्दमुदितोल्लासलीलान्दोलितलोचनाम् ॥
स्फुरन्मयूखसङ्घातविलसद्धेमकुण्डलाम् ।
स्वगण्डमण्डलाभोगजितेन्द्वमृतमण्डलाम् ॥
विश्वकर्मविनिर्माणसूत्रविस्पष्टनासिकाम् ।
ताम्रविद्रुमबिम्बाभरक्तोष्ठीममृतोपमाम् ।
दाडिमीबीजपङ्क्त्याभदन्तपङ्क्तिविराजिताम् ॥
स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम् ॥
अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् ।
कम्बुग्रीवां महादेवीं मृणालसदृशैर्भुजैः ॥
रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकरां भुजाम् ।
कराम्बुजनखज्योतिर्विद्योतितनभस्तलाम् ॥
मुक्ताहारलतोपेतसमुन्नतपयोधराम् ।
त्रिबलीवलयामुक्तमध्यदेशसुशोभिताम् ॥
लावण्यसरिदावर्तनिम्ननाभिविभूषिताम् ।
अनर्घ्यरत्नघटितकाञ्चीयुतनितम्बिनीम् ॥
नितम्बबिम्बद्विरदरोमराजिवराङ्कुशाम् ।
कदलीललितस्तम्भकुमारोरुमीश्वरीम् ॥
लावण्यकदलीतुल्यजङ्घायुगलमण्डिताम् ।
गूढगुल्फपदद्वन्द्वप्रपदाजितकच्छपाम् ।
तनुं दीर्घाङ्गुलीछन्ननखराजिविराजिताम् ॥
ब्रह्मविष्णुशिरोरत्ननिघृष्टचरणाम्बुजाम् ।
शीतांशुशतसङ्काशकान्तिसन्तानहासिनीम् ॥
लौहित्यजितसिन्दूरपाददाडिमरागिणीम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानां पाशाङ्कुशकरोद्यताम् ॥
रक्तपद्मनिविष्टां तु रक्ताभरणभूषिताम् ।
जगदाह्लादजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम् ॥
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां तु पञ्चबाणधनुर्धराम् ।
कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननाम् ॥
महामृगमदोद्दामकुङ्कुमारुणविग्रहाम् ।

सर्वशृङ्गारवेशाढ्यां सर्वाभरणभूषिताम् ॥
जगदानन्दजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम् ।
जगदाकर्षणकरीं जगत्कारणरूपिणीम् ॥
सर्वलक्ष्मीमयीं नित्यां सर्वशक्तिमयीं भजे ।

अथ दीपिनी विद्या तत्रैव—

वाङ्मायाकमलाबीजं वाग्भवाद्ये नियोजयेत् ।
तारं लक्ष्मीं च वाग्बीजं मन्मथं भुवनेश्वरीम् ॥
तज्जप्त्वा च ततः पश्चाद् वाग्भवाख्यं समुच्चरेत् ।
प्रवणं भुवनेशानीं रमां कामं च वाग्भवम् ॥
कामराजं ततो जप्त्वा त्रैलोक्यक्षोभकारकम् ।
ऊँकारं चापि वाग्बीजं रमां मन्मथमायया ॥
स्वप्नावतीं महादेवि जपेत् तत्र समाहितः ।
प्रणवं चाधरं कामं रमां च भुवनेश्वरीम् ॥
मधुमतीं ततो जप्त्वा मायाश्रीकूर्चबीजकम् ।
प्रणवाद्यं च देवेशि हंसबीजपुटीकृतम् ॥
एतद्‌बीजं समुच्चार्य शक्तिकूटं ततो जपेत् ।

× × × ×

छिन्नमस्तामन्त्रपुरश्चरणम्—

अथातश्छिन्नमस्तायाः मन्त्रं ते व्याहराम्यहम् ।
जिघृक्षयापि यस्य स्युः साधकस्याष्टसिद्धयः ॥
नातः परतरा काचिदुग्रा देवी भविष्यति ।
तस्मादसक्तैर्मनुजैर्न ग्राह्येयं कथञ्चन ॥
सिद्धिर्वा मृत्युरपि वा द्वयोरेकतरं भवेत् ।
प्रणवं च रमाबीजं लज्जां वाग्भवमेव च ॥
वज्रवैरोचनीये च इत्येवं तत उद्धरेत् ।
क्रोधद्वयं ततश्चास्त्रं स्वाहान्तः षोडशाक्षरः ॥

× × × ×

ध्यानमस्याः प्रवक्ष्यामि तत्र चेतो निवेशय ।
स्वनाभौ नीरजं ध्यायेत् शुद्धं विकसितं सितम् ॥
तत्पद्मकोशमध्ये तु मण्डलं चण्डरोचिषः ।
जपाकुसुमसङ्काशं रक्तबन्धूकसन्निभम् ॥
रजःसत्त्वतमोरेखायोनिमण्डलसन्निभम् ।
मध्ये तस्या महादेवीं सूर्यकोटिसमप्रभाम् ॥
छिन्नमस्तां करे वामे धारयन्तीं स्वमस्तकम् ।

प्रसारितमुखीं भीमां लेलिहानोग्रजिह्विकाम् ॥
पिबन्तीं रक्तधारां च निजकण्ठसमुद्भवाम् ।
विकीर्णकेशपाशां तां नानापुष्पसमन्विताम् ॥
दक्षिणे च करे कर्त्रीं मुण्डमालाविभूषिताम् ।
दिगम्बरां महाघोरां प्रत्यालीढपदस्थिताम् ॥
अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ।
सदा षोडशवर्षीयां पीनोन्नतपयोधराम् ॥
नागाङ्गनां नागकाञ्चीं नागनूपुरसंयुताम् ।
नागकुण्डलसंयुक्तामष्टनागसमन्विताम् ॥
विपरीतरतासक्तरतिकामोपरि स्थिताम् ॥
डाकिनीवर्णिनीयुक्तां वामदक्षिणयोगतः ।
दक्षिणे वर्णिनीं ध्यायेद् वामपार्श्वे तु डाकिनीम् ॥
वर्णिनीं लोहितश्यामां मुक्तकेशीं दिगम्बराम् ।
कपालकर्त्रिकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः ॥
देवीगलोच्छलद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम् ।
अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥
डाकिनीं वामपार्श्वे तु कल्पान्तज्वलनोपमाम् ।
विद्युच्छटाभनयनां दन्तपँक्तिवलाकिनीम् ॥
दंष्ट्राकरालवदनां पीनोत्तुङ्गपयोधराम् ।
महाघोरां महादेवीं मुक्तकेशीं दिगम्बराम् ॥
लम्बोदरीं कालरात्रीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ।
लेलिहानमहाजिह्वां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
कपालकर्तृकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः ॥
देवीगलोच्छलद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम् ।
करस्थितकपालेन भीषणेनातिभीषणाम् ॥
आभ्यां निषेव्यमाणां तु ध्यायेद् देवीं विचक्षणः ।
दुर्निरीक्ष्यां चेतसापि सर्वकामफलप्रदाम् ॥

पुरश्चर्यार्णवस्य तृतीयभागे एकादशतरङ्गे ९९३ तमपृष्ठतः १०७८ पृष्ठं यावत् दुर्गोत्सवविधिप्रकरणे महाकालसंहितायाः गुह्यकालीखण्डस्य त्रयोदश-पटलीयाः श्लोकाः प्रायशः सहस्रमिताः सङ्कलिताः सन्ति । सर्वेषां पद्यानामिह समावेशो ग्रन्थकलेवरं वर्धयेदिति विचार्य नैव विहितः । तत एवाकलनीयास्ते श्लोकाः सुधीभिः साधकैरिति प्रार्थ्यते ।

…•∞❀∞•…

कामकलाकाल्याधारणीयाख्ययन्त्रम्

(द्र० षष्ठपटलस्य श्लोकाः २२-३०, पृ० ७१-७२)

कामकलाकाल्याः काममोहनाख्ययन्त्रम्
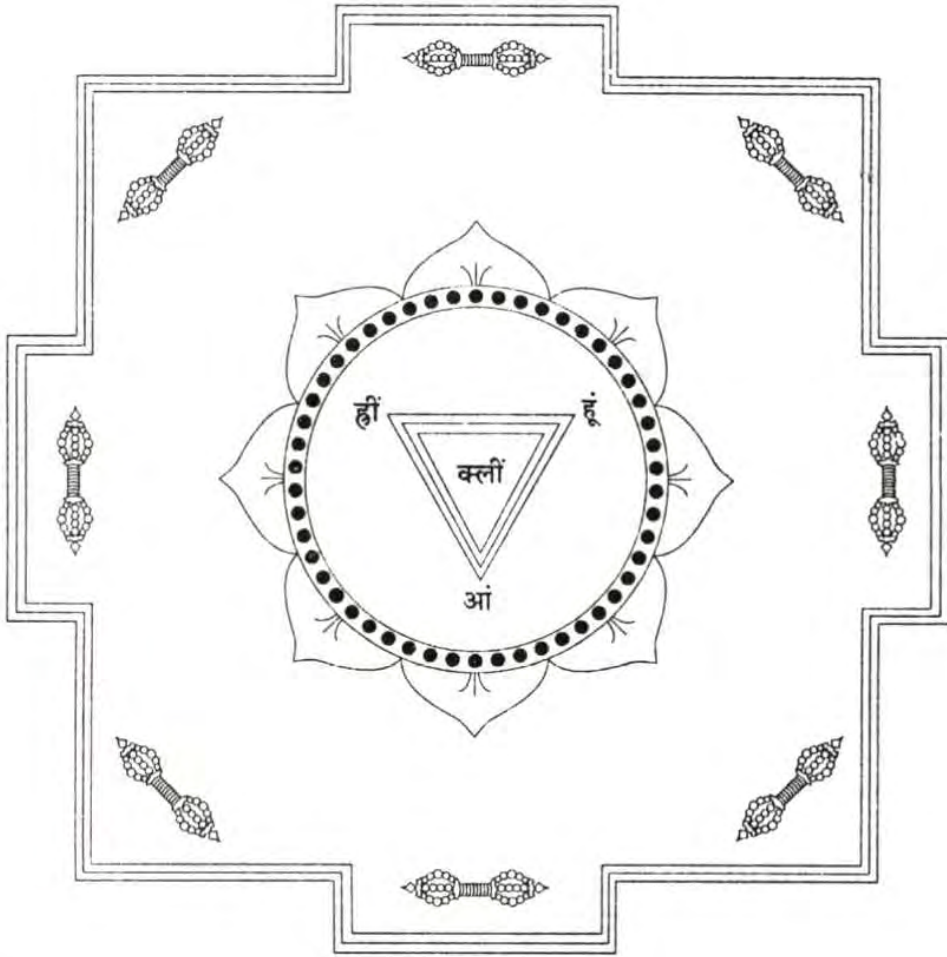
(द्र० द्वितीयपटलस्य श्लोकाः ४५-४९ पृ० १४-१५)

श्लोकानुक्रमणी

श्लोकानुक्रमणी